प्रबोधचन्द्रोदय और उसकी हिन्दी परम्परा

प्रबोधचन्द्रोदय और उसकी हिन्दी परम्परा

[आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि के लिए स्वीकृत रूपकात्मक शैली के नाटकों का सर्वप्रथम एवं मौलिक अध्ययन विषयक शोध प्रबन्ध]

लेखिका

डॉ० श्रीमती सरोज अग्रवाल

एम० ए०, पी-एच० डी० (स्वर्णपदक विभूषिता) विशारद (संस्कृत)



१८८३ शक

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

प्रथम संस्करण १९६२

दस रुपए

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

ओ३म्

सादर समर्पित

भारत के उन महान् मनीषियों को
जिनकी ज्ञान-गरिमा की झलक
से ही संसार चकित
और स्तब्ध है

प्रकाशकीय

सस्कृत नाट्य-परपरा मे भागवत विचारधारा का प्रवेश, शान्त रस की अभिव्यक्ति और पारलौकिक विषयो की अवतारणा को लेकर रूपक-रचना— नाट्य-शास्त्र मे नया मोड था यद्यपि भरत मुनि के नाट्य शास्त्र मे प्रतिपादित रूपक विधाओ के साथ इसकी सगति नही बैठती। सन साधना एव पारलौकिक ज्ञान को अधिक लोक-सुलभ बनाने के लिए रूपक रचना का आश्रय भागवत कवियो ने लिया, इसमे सन्देह नही। भागवत विचारधारा से प्रभावित रूपक रचनाओ मे 'प्रबोधचन्द्रोदय' का अपना विशिष्ट महत्त्व है। भाषा शैली और साहित्यिक लालित्य से उसने सस्कृत नाट्य शैली को ही नही प्रभावित किया अपितु ११ वी शती मे नाटक रचना की रूपकात्मक नूतन परपरा स्थापित भी की, जिसका प्रतिपादन नाट्य शास्त्र के आचार्यों को सम्मत नही था। जीवन और लोक का धर्म विवेचन छोड कर केवल आत्म प्रबोध की चर्चा ऐसे कृतिकारो का अपना लक्ष्य था।

भागवत धर्म की भक्ति-धारा और पारलौकिक जिज्ञासा ने उस समय की लोकरुचि को इतना प्रभावित किया कि 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक परपरा के विपरीत होते हुए भी बहुत समादृत हुआ और ऐसे नाटको की परपरा भी चलती रही।

'प्रबोधचन्द्रोदय' का यथेष्ट प्रभाव स्वभावत हिन्दी नाटको पर भी पडा। उसके कुछ अनुवाद भी हिन्दी मे हुए और उसके अनुकरण पर कुछ रचनाएँ भी हुईं। 'प्रबोधचन्द्रोदय' की रचना और उसकी हिन्दी परपरा की छानबीन मे सस्कृत और हिन्दी नाट्य साहित्य के अनेक पहलुओ का उद्घाटन होता है। डॉ० श्रीमती सरोज अग्रवाल की प्रस्तुत कृति इस दिशा मे सर्वप्रथम और सराहनीय प्रयास है। उनके इस शोध-प्रबन्ध मे गभीर अनुशीलन और मौलिक चिन्तन की छाप है, जिसका समादर हिन्दी तथा सस्कृत साहित्य के प्रेमी-अन्वेषक अवश्य करेंगे।

हिन्दी मे अपने विषय की सम्मान्य रचना होने के कारण इस शोध प्रबध की उपादेयता स्वत सिद्ध है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ऐसी कृति का प्रकाशन कर प्रसन्नता का अनुभव करता है। हमे विश्वास है कि पाठक इस कृति का स्वागत करेंगे।

रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री
सहायक मन्त्री

६ जून, १९६२

परिचय

श्रीमती सरोज अग्रवाल द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध 'प्रबोध चन्द्रोदय और उसकी हिन्दी परम्परा' संस्कृत और हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एव रोचक विषय की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है। कृष्ण मिश्र' ने 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक की रचना कीर्तिवर्मा चन्देल (११ वी शती) के राज्य काल मे की थी। यह एक अध्यात्म रूपक है जिसमे वेदान्त की साधना पद्धति के अनुसार विवेक या ज्ञान की मोह पर विजय का नाटकीय चित्रण है। भागवत परम्परा के अनुसार भगवान् के छह गुण है—ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य। इनमे से ऐश्वर्य के द्वारा अहकार, वीर्य या पराक्रम के द्वारा क्रोध, यश के द्वारा मद, श्री के द्वारा लोभ, वैराग्य के द्वारा काम और ज्ञान या विवेक के द्वारा मोह नामक शत्रु पर विजय प्राप्त की जाती है। इस प्राचीन सूत्र को लेकर सस्कृत साहित्य मे कई रच-नाएँ हुई। उनमे 'उपमिति भव प्रपञ्च कथा' नामक सस्कृत गद्य काव्य का महत्त्व पूर्ण स्थान है। किन्तु इस क्षेत्र मे कृष्ण मिश्र की 'प्रबोध-चन्द्रोदय' नामक नाट्यकृति सबसे अधिक सफल और प्रभावशाली रचना है। 'प्रबोध-चन्द्रोदय' की लम्बी हिन्दी परम्परा मे जो रचनाएँ हुई उनका और स्वय 'प्रबोध-चन्द्रोदय' नाटक का बहुत ही सुन्दर अध्ययन प्रस्तुत ग्रन्थ मे किया गया है। प्रबोध-चन्द्रोदय के प्राचीन हिन्दी अनुवाद लगभग २० हैं। इनमे से १२ अनुवादो का आलोचनात्मक और तुलना-त्मक अध्ययन इस ग्रन्थ मे किया गया है। सबसे प्रथम मल्ह कवि ने सन् १५४४ मे पद्यानुवाद किया था। कुछ अनुवाद मिश्रित गद्य-पद्य और कुछ केवल गद्य मे भी हुए। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने भी १८७२ ई० मे एक गद्य-पद्य मिश्रित अनुवाद 'पाखण्ड-विडम्बनम्' नाम से किया था। इस साहित्य की विशेषता प्रतीक पात्रो की कल्पना है जिनमे मनुष्य स्वभाव के गुण, भाव तथा जीवन की समस्याओ को नाटको के पात्रो के रूप मे ढालकर चरित्राकन किया जाता है। इस शोध प्रबन्ध मे इन प्रतीक पात्रों का भी बहुत ही रोचक और सूक्ष्म विवेचन किया गया है। ज्ञान, वैराग्य, सन्तोष तथा मोह, कामना, अहकार आदि अच्छी और बुरी प्रवृत्तियो का द्वद्व इस प्रकार के नाटकीय साहित्य की विशेषता है। हमे आशा है कि प्रस्तुत शोध निबन्ध मे प्रदर्शित मार्ग द्वारा 'प्रबोधचन्द्रोदय' की परम्परा मे निर्मित सस्कृत और

हिन्दी भाषा की अनेक प्रवृत्तियों का पाठक नई रुचि से अध्ययन करने में प्रवृत्त होंगे। शोध की जो मान्य वैज्ञानिक पद्धति है उसके उच्च मानदण्ड का निर्वाह इस ग्रन्थ में किया गया है जिसके लिए लेखिका बधाई की पात्र है।

काशी विश्वविद्यालय
२५–५–६२

वासुदेवशरण अग्रवाल

भूमिका

विद्यापीठ शोध-परिषद

(अनुसधान-संगम)

क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ प्रमुख रूप से एक शोध सस्थान है। आरम्भ काल से ही विद्यापीठ ने चार विशिष्ट क्षेत्रो मे शोध को वैज्ञानिक स्तर पर लाने का प्रयत्न किया है :—

(क) भाषा विज्ञान (ग) तुलनात्मक साहित्य

(ख) पाठालोचन (घ) लोक साहित्य

इनमे से प्रत्येक विषय मे विद्यापीठ ने ठोस वैज्ञानिक प्रणाली का विकास और उपयोग तो किया ही है, साथ ही विषय-विवेचन और प्रस्तुतीकरण मे भी स्तर को ऊचा उठाने का ध्यान रखा है। आज अनुसधान सगम की अवधानता मे उसके विविध शोध प्रबन्ध प्रकाशित किए जा रहे है। इसमे हमारा उद्देश्य केवल यही है कि ज्ञान के क्षेत्र मे हमारा यह योगदान सुविज्ञ अनुसन्धानको और विचारको के समक्ष पहुँचे। ज्ञान के क्षेत्र मे व्यक्ति और सस्था का महत्व अपने कृतित्व को औरो के विचारार्थ प्रस्तुत कर देने तक ही है। उसका उचित मूल्याकन और उपयोग तो विद्वान् पाठको और आगे के अनुसधित्सुओ का ही दायित्व है।

मुझे प्रस्तुत ग्रन्थ को विद्वानो और पाठको की सेवा मे प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है और मैं आशा करता हूँ कि हमारे विद्यापीठ के निर्देशन मे प्रस्तुत किए गए इस प्रबन्ध का स्वागत होगा। इसकी लेखिका ने अपनी शक्तिभर पूर्ण परिश्रम और अध्यवसाय से सामग्री को जुटाया है और उसे वैज्ञानिक रूप प्रदान किया है। ज्ञान की उपासिका इस अनुसधात्री का मैं अभिनन्दन करता हूँ, जिसने अपने लिए तो पी-एच० डी० की उपाधि इस व्याज मे प्राप्त की है, पर ज्ञान सुधा की एक घूट वसुधाभर के लिए सुलभ कर दी है। मैं समझता हूँ, मेरे इस अभिनन्दन मे इस शोध-प्रबन्ध के पाठक भी मेरा साथ देगे। ज्ञान की ज्योति का यह एक कण अन्य ज्योतिकणो को ज्योतित करने की परम्परा स्थापित करे, यही मेरी शुभकामना है।

क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

विश्वनाथ प्रसाद
निदेशक

होलिकोत्सव, १९६२ (वि० स० २०१८)

प्राक्कथन

डॉ० सरोज अग्रवाल लिखित 'प्रबोधचन्द्रोदय और उसकी हिन्दी परम्परा' को प्रकाशित देखकर मुझे प्रसन्नता होना स्वाभाविक है। यह इनका शोध प्रबन्ध है। इसी पर इन्हें पी-एच० डी० की उपाधि आगरा विश्वविद्यालय ने प्रदान की है। इस प्रबन्ध की उत्कृष्टता का एक प्रमाण यह भी है कि इसे विश्वविद्यालय के द्वारा 'श्री सी० बी० अग्रवाल स्वर्ण पदक' प्रदान किया गया है।

'प्रबोधचन्द्रोदय' श्री कृष्ण मिश्र ने सस्कृत मे लिखा था। सस्कृत के इस ग्रथ का सस्कृत में ही महत्व स्वीकृत नही हुआ, हिन्दी मे भी इसने अत्यन्त लोक-प्रियता प्राप्त की। इसके अनुवाद हुए, रूपान्तर हुए तथा इसकी प्रेरणा से इसकी शैली के अनुकरण में भी कितने ही ग्रथ लिखे गये। अत इसका महत्व स्वयसिद्ध है।
प्रबोधचन्द्रोदय पहले तो नाटक है,

> नाटक भी ऐसा जिसमे 'पात्र' रूपक-पात्र है—जिससे इसे 'Allegorical' नाटक कहा जा सकता है।
> रूपक, आध्यात्मिक तथा धार्मिक तत्वो को मूर्तरूप देकर प्रस्तुत किया है। फलत यह एक धार्मिक नाटक है धार्मिक नाटक भी ऐसा कि जिसमे विविध धर्मो और सप्रदायो की आलोचना है और उनके दार्शनिक तत्वो का विवेचन भी है।

इस प्रकार इस नाटक मे कितनी ही विशेषताएँ एक साथ ही प्रस्तुत कर दी गयी है। धर्म और दर्शन के नीरस तत्वो को कथातत्व, अभिनय तथा रस-सचार से युक्त करके सभी कोटि के व्यक्तियो के लिए इसे ग्राह्य बना दिया गया था। ऐसे अनोखेपन ने ही इसे इतना लोकप्रिय तथा अनुकरणीय बनाया।

भारतीय साहित्य के इस अमूल्य रत्न का मूल्य हिदी के लिए भी सोलहवी शती से चार सौ वर्षों तक अक्षुण्ण बना रहा है। इसी के अन्तर्दर्शन तथा इसकी परपरा के स्वरूप को हृदयगम करने कराने के लिए इस विदुषी लेखिका ने यह शोध-प्रबध प्रस्तुत किया है और पाठक देखेगे कि लेखिका इस प्रयत्न मे सफल हुई है।

मैं आरम्भ से ही लेखिका के प्रयत्नो से परिचित रहा हू, अत भली प्रकार कह सकता हू कि इसने किसी भी अडचन को अडचन नही माना और अपने धैर्य को

कभी नही छोडा। सामग्री प्राप्त करने के जितने भी और जैसे भी स्रोत हो सकते थे सभी तक यह पहुच गयी है। इस सामग्री का अध्यवसायपूर्वक अध्ययन भी लेखिका ने किया है। इस सबध मे भी विविध विद्वानो से सपर्क स्थापित करने मे इसने कसर नही छोडी। इस प्रकार इसने सामग्री और उसके अध्ययन को वैज्ञानिक प्रणाली से इस प्रबध मे गुथ दिया है।मेरी तुच्छ सम्मति मे तो इसने साहित्यिक अनुसधान का एक नवीन आदर्श प्रस्तुत किया है। मै आशा करता हूं। कि इस कृति का हार्दिक स्वागत होगा।

सत्येन्द्र

एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट
कार्यवाहक सचालक

क० मु० हिन्दी तथा भाषा विज्ञान
विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

आमुख

'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक अपनी अनोखी रूपक-शैली के कारण संस्कृत-वाङ्मय के नाटक-साहित्य मे अद्वितीय है। परन्तु आज से कुछ वर्ष पहले यह तथ्य प्राय अज्ञात-सा था कि इस नाटक-रत्न के न केवल संस्कृत मे, अपितु देश की अन्य भाषाओं मे भी, अनुवाद पाये जाते है। मैं तो प्रारम्भ मे इस नाटक की शैली पर ही मुग्ध थी, पर अध्ययन का क्रम जब कुछ आगे चला और धीरे-धीरे इसकी विशाल परम्परा मे आने वाली कुछ कृतियाँ दिखाई देने लगी तो मन मे इस विषय पर अनुसन्धान करने का विचार जाग्रत हो चला। इसी अकुरित विचार को मूर्त-रूप देने के हेतु जब इसकी परम्परागत कृतियों की खोज मे मैं निरत हो गई और कुछ दिनो के उपरान्त जब हिन्दी मे ही इससे प्रभावित कितनी ही रचनाओ का पता चलने लगा तो केवल 'प्रबोधचन्द्रोदय' की हिन्दी परम्परा के ऊपर अनुसन्धान-कार्य करने की प्रेरणा मिली। इसी प्रेरणा का फल प्रस्तुत अध्ययन है। प्रस्तुत-प्रबन्ध मे रूपक शैली का विकास, रूपक नाटक प्रबोधचन्द्रोदय का अध्ययन और उसकी हिन्दी परम्परा का अध्ययन सम्पन्न किया गया है।

इस अनुसन्धान के मध्य कठिनाइयाँ भी कम नही आयी। सबसे प्रमुख और जटिल समस्या थी 'प्रबोधचन्द्रोदय' के अनुवादो और रूपान्तरो की अप्रकाशित रचनाओ के सकलन की। इसके लिए मुझे अनेक पुस्तकालयो तथा संस्थाओ तक पहुँच करनी पडी। फलस्वरूप, कुछ हस्तलिखित ग्रन्थो की प्रतिलिपियाँ, अपने व्यय से, कराकर मँगानी पडी, जिससे यह कार्य बहुव्यय साध्य सिद्ध हुआ। मुझे जिन महानुभावो और संस्थाओ से हस्तलिखित ग्रन्थो की प्रतिलिपियाँ प्राप्त करने मे सहायता मिली, वे निम्न है —

१ पुस्तक प्रकाश पुस्तकालय, जोधपुर।

२ अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

३ दिगम्बर जैन क्षेत्र, श्री महावीर जी, अनुसन्धान विभाग, महावीर भवन, सवाई मानसिह हाइवे, जयपुर।

४ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

दूसरी समस्या 'प्रबोधचन्द्रोदय' की परम्परा के नाटको की थी। हिन्दी

साहित्य मे, स्वतन्त्र रूप से, रूपक नाटको पर न तो कोई अध्ययन ही किया गया है और न हिन्दी साहित्य के इतिहास-ग्रन्थो मे इनके सम्बन्ध मे कोई विवरण ही मिलता है। अतएव मुझे इस दिशा मे स्वतन्त्र रूप से कार्य करना पडा है। इन नाटको को अनेक पुस्तकालयो मे निरन्तर खोज से, परिश्रम के साथ प्राप्त किया जा सका है। इस कार्य मे मुझे जिन पुस्तकालयो से सहायता मिली है, वे निम्न हैं —

१ चिरजीव पुस्तकालय, आगरा।

२ नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा।

३ मारवाडी पुस्तकालय, दिल्ली।

४ आगरा विश्वविद्यालय केन्द्रिय पुस्तकालय, आगरा।

मेरी इन समस्याओ को सुलझाने मे सहायता देने वाले श्री अगरचन्द्रजी नाहटा, श्री कस्तूरचन्द जी कासलीवाला तथा उपर्युक्त पुस्तकालयो के अध्यक्षो को मैं साभार धन्यवाद देती हूँ।

श्री महेन्द्र प्रसाद जी, डा० जयदेव, श्री मोहनवल्लभ पन्त और श्री ज्ञानदत्त जी मिश्र ने अपनी पुस्तके भेज कर मुझे कृतार्थ किया। अतएव मैं उनकी कृतज्ञ हूँ और साथ ही उन सस्थाओ और सज्जनो की भी, जिन्होने बिना विलम्ब किये, मेरे प्रत्येक पत्र का उत्तर देकर मुझे प्रोत्साहित किया है।

रामस्वरूप गर्ल्स कॉलेज की प्रबन्ध समिति को मैं शत शत धन्यवाद देती हूँ, जिसने मुझे अनुसन्धान कार्य के लिए अनुमति और यथासमय अवकाश प्रदान कर सहयोग दिया।

पण्डित हरिश्चन्द्र जी विद्यालकार, जगदेव सिंह जी सिद्धान्ती शास्त्री, प० दीनानाथ जी शास्त्री, प० भीमसेन जी शास्त्री, श्री सत्यानन्द जी शास्त्री, प० मथुराप्रसाद द्विवेदी शास्त्री, प० श्रीकान्त पाण्डेय और प० सुखदेव जी शास्त्री ने सस्कृत साहित्य से सम्बन्धित प्रकरण पर अपने शुभ परामर्श देकर मुझे कृतार्थ किया है, इन विद्वानो की मैं सदा ऋणी रहूँगी।

कन्हैयालाल माणिक लाल मुशी हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ के सचालक डा० विश्वनाथ प्रसाद के सुयोग्य सचालन मे प्राप्त समस्त सुविधाओ से मैंने पर्याप्त लाभ उठाया है अब उन्होने पुस्तक के लिए भूमिका लिखकर जो विशेष कृपा की है तदर्थ मैं उनकी सदैव अनुगृहीता रहूँगी। श्रीयुत उदयशकर जी शास्त्री ने भी उचित परामर्श, उपयोगी सूचनाएँ देकर मुझे सहायता पहुँचाई। अत वे एव हिन्दी विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष तथा अन्य कर्मचारी भी मेरे धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होने मेरे अनुसन्धान के निमित्त मुझे सभी सुविधाएँ प्रदान की!

डा० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० दशरथ ओझा, डा० उदयभानु सिंह, डा० विजयेन्द्र स्नातक, डा० गोपीनाथ तिवारी, डा० भगीरथ मिश्र, डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डा० सोमनाथ गुप्त, डा० ओम प्रकाश गुप्त, डा० के० एन० दुबे 'यतीन्द्र', डा० सुधीर कुमार गुप्त, डा० राजकुमार जैन, श्री प० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड गुरुकुल कागडी हरिद्वार तथा श्री एस० वी० पन्त (पिलानी) को समय समय पर मुझे उचित परामर्श देकर लाभान्वित करने के हेतु मैं अपना हार्दिक धन्यवाद देती हूँ।

इस विशाल परम्परा का यह अध्ययन जो दो वर्ष की अल्प अवधि मे सम्पन्न हो सका है उसका समस्त श्रेय पूज्य डा० श्री सत्येन्द्र जी के आदर्श एव सहानुभूति-पूर्ण निर्देशन को ही है। अनेक कठिनाइयो के सामने आने पर उन्होने मुझे कभी निराश और हतोत्साह नही होने दिया और परिश्रम से शोधकार्य मे निरत रहने की पवित्र प्रेरणा देकर उसे शीघ्र सम्पन्न करने का साहस दिया इसके अतिरिक्त मेरी प्रार्थना पर डा० साहब ने इस पुस्तक का भावपूर्ण प्राक्कथन लिखकर जो अनुग्रह किया है उसके लिए मैं सदैव उनकी आभारी रहूँगी।

'प्रबोध चन्द्रोदय और उसकी हिन्दी परम्परा' पुस्तक मूलरूप मे आगरा विश्व-विद्यालय की पी० एच० डी० की उपाधि के लिए प्रबन्ध (Thesis) रूप मे प्रस्तुत की गई थी, उसी को यथास्थान सशोधित कर अब प्रकाशित कराया जा रहा है।

मेरी प्रार्थना पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के अधिकारी गण इस पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए सहर्ष तैयार हो गये। जिस प्रयास और तत्परता के साथ सम्मेलन ने पुस्तक को प्रकाशित किया है उसके लिए मैं सम्मेलन के आदाता महोदय श्रीयुत जगदीश स्वरूप और अन्य कार्यकर्ताओ को धन्यवाद देना अपना परम कर्त्तव्य समझती हूँ।

—सरोज अग्रवाल

प्रबन्ध के संकेत और संक्षेप

अ०	– अध्याय
का०	– कारिका
द० रू०	– दशरूपक
ना० शा०	– नाट्यशास्त्र
प०	– परिच्छेद
पृ०	– पृष्ठ
प्र० च०	– प्रबोधचन्द्रोदय
पू० भा० ना० साहि०	– पूर्व भारतेन्दु नाटक साहित्य
भा० का० ना० साहि०	– भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य
सा० द०	– 'साहित्य-दर्पण'
हि० ना० सा० इति०	– हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास
हि० सा० इति०	– हिन्दी साहित्य का इतिहास
हि० ना० उद० वि०	– हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास

विषय सूची

प्रथम अध्याय

प्रबोधचन्द्रोदय का रचयिता और उसका इतिवृत्त

कृष्ण मिश्र

संस्कृत के सुप्रसिद्ध नाटक प्रबोधचन्द्रोदय ने अपने जन्मकाल से ही साहित्यिकों और धार्मिकों को अत्यन्त प्रभावित किया और इसी कारण यह अनेक भाषाओं मे अनूदित भी हो चुका है। प्रबोधचन्द्रोदय के रचयिता कृष्ण मिश्र हैं। इतिहासों और अनुवादो मे प्रबोधचन्द्रोदय के रचयिता का नाम 'श्रीकृष्ण मिश्र' ही मिलता है।[1] प्रबोधचन्द्रोदय की उपलब्ध प्रतियों[2] की प्रस्तावना मे सूत्रधार ने नाटक के रचयिता का नाम कृष्ण मिश्र ही लिया है। प्रबोधचन्द्रोदय के हिन्दी अनुवादों मे द्वैत है। कुछ मे नाम कृष्ण मिश्र है, कुछ मे कृष्ण भट्ट।[3] 'भट्ट' शब्द सम्भवतः विद्वान पण्डित के अर्थ मे लिख दिया गया है।[4] इस प्रकार अन्तरग और बहिरग

---

१. नाटककार के समय पर विचार करते हुए इतिहासों और अनुवादों के नाम दिये हैं।

२. (१) चौखम्बा बनारस, (२) निर्णय सागर प्रेस, (३) त्रिवेन्द्रम सीरीज प्रस्तावना-सूत्रधार--ततो यत्पूर्वमस्मद्गुरुभिस्तत्रभवद्भिः श्री कृष्णमिश्रैः प्रबोध चन्द्रोदयं नाम नाटकं निर्माय भवतः समर्पितमासीत्।

३. मिश्र नाम	भट्ट नाम	नाम नहीं है
१. महेशचन्द्र प्रसाद, पृ० २	१. मल्ह कवि, पृ० १	१. जसवन्त सिह
२. कार्ष्णि गोपालदास, पृ० १०	२. ब्रजवासीदास, पृ० २	२. अयोध्याप्रसाद चौधरी
३. गुलाब सिह, पृ० ४		
४. भुवदेव दुबे, पृ० ३		

४. भट्ट शब्द के अर्थ हिन्दी विश्वकोश में निम्न प्रकार से दिये हैं--(१) जाति विशेष (ब्रह्मवैवर्त पु० ब्रह्म : ब १० अ०), (२) स्वामित्व, (३) वेदाभिज्ञ, (४) पण्डित, (५) योद्धासूर, (६) भाट, (७) ब्राह्मणों की एक उपाधि, (८) महाराष्ट्र ब्राह्मणों की एक उपाधि। इसके धारण करने वाले दक्षिण भारत मालव

प्रमाणों से यह सिद्ध है कि प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के रचयिता का नाम कृष्णमिश्र ही है।

कृष्ण मिश्र का व्यक्तित्व

२. प्रबोधचन्द्रोदय जैसे महान् ग्रन्थ (नाटक) का प्रणयन करने वाले कृष्ण मिश्र का व्यक्तित्व अवश्य ही महान् रहा होगा। उनकी विद्वत्ता, पाण्डित्य और निरीक्षण शक्ति अवश्य ही अपूर्व रही होगी, तभी वह सामयिक धर्म दर्शन से समन्वित भावात्मक रूपक शैली के नाटक की नूतन उद्भावना कर सके। उनकी मेधा-शक्ति तीक्ष्ण थी। उनमे निर्भीक आलोचना की गहन गम्भीर प्रतिभा थी और साथ ही समाज-हितैषिणी भावना भी विशेष रूप से बलवती थी। समाज के धार्मिक, चारित्रिक पतन से उनको जो मर्मान्तिक पीडा थी, वह प्रबोधचन्द्रोदय के समसामयिक वर्णनो से स्पष्ट है।

३ कृष्ण मिश्र का यह विलक्षण व्यक्तित्व तो था ही, वह एक श्रेष्ठ गुरुपूज्य भी थे। उनको सूत्रधार प्रबोध चन्द्रोदय की प्रस्तावना मे गुरुपूज्य स्वीकार करता है।[1] इसके अतिरिक्त मिश्र के सम्बन्ध मे जो किवदन्तियाँ प्रसिद्ध है उनमे भी वह तपस्वी,[2] परम विद्वान[3] और हितैषी गुरु के रूप मे प्रसिद्ध है। इन्हीं किवदन्तियों

आदि कई प्रान्तों में पाये जाते है। (९) महाराष्ट्र ब्राह्मण भट्ट—१. मोक्षपद मीमांसा के प्रणेता। २. आलकारिक, अलंकार सर्वस्व मे उनका नामोल्लेख है। ३. सस्कृतज्ञ और वेदपारंग ब्राह्मणो की उपाधि।

—हिन्दी विश्वकोश, भाग १५, नगेन्द्र वसु (१९२८)।

१. स० प्रबोधचन्द्रोदय प्रस्तावना, प्रथम अक, पृ० ६—
"अस्मद्गुरुभिस्तत्रभवद्भिः श्रीकृष्णमिश्रैः।"

२. मल्ह कवि, पृ० २।
"गंगा सागर पहुंचे जाय। तहं कोइ रह्यो समाधि लगाय।

३. (क) नानकदास, पृ० १।
तहा रहे कृष्णदास भट नाम, अति प्रवीन पडित गुन ग्राम॥
परम विवेकवान हरि भगत, अहि निश कृष्ण भगति आसकत॥
तिनका एक शिष्य था मूढ, जो वनकर चचल वडह हूढ॥

कृष्णदास भट थे परवीने। शास्त्र पुरान सभे जिन चीने॥
(ख) ब्रजवासी दास, पृ० २।
परम दयाल दीन हितकारी। जीवन को पूरण चित कारी॥
शिष्यन करै ज्ञान उपदेशा। जनम मरन जिहि मिटैकलेशा॥
मोह तिमिरनाशक जिमि धामा। कृष्णदासभट अस ता नामा॥

के आधार पर (प्र० च० का उद्देश्य बताते समय), उनके सम्बन्ध में, हिन्दी अनुवादकों ने गुरु-शिष्य की कथा एवं तपस्वी होने की कथा का संकेत किया है।

कृष्ण मिश्र का निवास-स्थान

४. कृष्ण मिश्र के निवास-स्थान के सम्बन्ध मे कोई प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नही होता। अतः असन्दिग्ध शब्दो में यह कह सकना कठिन है कि उन्होंने अपने जन्म से किस प्रदेश को अलंकृत किया था। 'प्रबोधचन्द्रोदय' के टीकाकारों और अनुवादकों ने यद्यपि अनुश्रुतियों और अन्तःसाक्ष्य आदि के आधार पर कृष्ण मिश्र के निवास-स्थान के सम्बन्ध मे कल्पनाएँ की है, परन्तु उनकी कल्पनाए अज्ञान और जातीय तथा प्रान्तीय पक्षपात की दुर्बल भित्ति का सहारा लेने के कारण केवल कल्पनाएँ ही रह गई है, अतएव वे ग्राह्य भी नही हो सकती। फिर भी यह समझकर कि सम्भव है इन लोगों के मतों की समीक्षा से कोई ऐसा सूत्र पकड मे आ जावे जिसमे हम मिश्र जी के निवास-स्थान के सम्बन्ध में कुछ निश्चित संकेत दे सके। अनुवादकों और टीकाकारो के एतत् सम्बन्धी मतों की समीक्षा कर लेनी आवश्यक है।

५ 'प्रबोधचन्द्रोदय' के हिन्दी अनुवादकों मे से मल्ह कवि,[1] ब्रजवासी दास[2] और नानकदास[3]—आदि ने कृष्ण मिश्र का दक्षिण का निवासी बतलाया

(ग) निर्णय सागर प्रेस से प्रकाशित—प्रकाश और चन्द्रिका व्याख्या संस्कृत टीका, पृष्ठ १।

१. मल्ह कवि—प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ ३।

.........., नट पयान दछिन दिस कीयो।
गंगासागर पहुंचे जाय, तहां कोइ रह्यो समाधि लगाय॥

× × ×

कृश्नभट्ट को आयसु लयौ, तब पांय लाग्यौ बिदा नट भयौ॥

२. ब्रजवासीदास, प्र० च० अ०, पृ० २।

दक्षिनभूमिभयौ एक पण्डित।
भक्ति ज्ञान बिद्या गुणमण्डित॥

× × ×

कृष्णदास भट अस ता नामा॥

३. नानकदास, प्र० च० अ०, पृष्ठ १।

है और साथ ही उन्हे 'मिश्र' के स्थान पर 'भट्ट' की उपाधि से विभूषित किया है।

६. ब्रजवासी दास ने तो उन्हे केवल दक्षिण का निवासी मान कर ही सन्तोष कर लिया है, किन्तु मल्ह कवि और नानकदास, क्रमश: गगा सागर और अवन्ती नगरी का भी इस सम्बन्ध मे उल्लेख करना नही भूले। परन्तु विचार करने पर पता चलता है कि उक्त तीनो ही अनुवादको ने केवल अनुमान की शरण लेकर मिश्र जी को दक्षिण का निवासी माना है क्योकि आज तक ऐसा एक भी प्रमाण उपलब्ध नही हो सका जो मिश्र जी को दाक्षिणात्य सिद्ध करता—उसके विपरीत जैसा कि हम आगे देखेगे उनके उत्तर भारत का निवासी होने की अधिक सभावनाए हैं। प्रतीत होता है कि जिस किसी सूत्र से प्राप्त मिश्र जी को मिथ्या 'भट्ट' उपाधि के आधार पर उपरोक्त महानुभावो ने उन्हे दक्षिण का निवासी मान लिया।

७ प्र० च० के अग्रेजी अनुवादक जे० टेलर महोदय कृष्ण मिश्र को मगध के राजा कीर्तिवर्मा जो कि ईसा की ७वी शताब्दी मे वर्तमान था, का आश्रित राजकवि मानकर उन्हे मिथिला का निवासी मानने के पक्ष मे है।[1] परन्तु जैसा कि हम 'कृष्ण मिश्र का समय' शीर्षक मे देखेगे—जे० टेलर महोदय का कृष्ण मिश्र को मगध के कीर्तिवर्मा का आश्रित सिद्ध करना, उनकी भूल है, क्योकि इतिहास के पृष्ठो से यह तथ्य प्रमाणित हो चुका है कि कीर्तिवर्मा जिसके आश्रय मे कृष्ण मिश्र रहे—बुन्देलखण्ड का चन्देलवशी राजा था और उसका स्थिति काल ७वी शताब्दी न होकर ११वी ई० शताब्दी है। अत मगधराज के आश्रय मे रहने के कारण मिश्र जी मिथिला या मगध के थे—जे० टेलर महोदय का यह मत पुष्ट प्रमाणो के अभाव मे स्वत धराशायी हो जाता है।

८ जे० टेलर महोदय के ही आधार पर प्रस्तुत किया गया एक मत हिन्दी अनुवादक महेशचन्द्र प्रसाद का है जिसमे उन्होने मिश्र जी को 'मकवनो' स्थान का निवासी बतलाया है।[2] परन्तु टेलर महोदय के अग्रेजी अनुवाद की भूमिका को जो

दक्षण देश अवंती नगरी, जांकी प्रजा धरम रत सगरी ॥
तहाँ रहे कृष्णदास भट नाम, अति प्रवीन पडित गुन ग्राम ॥

१. Introduction, page 1

"——This work was written by Krishana Misra of Maithila, one of greatest scholars and philosophers of his time.. "

२. महेशचन्द्र प्रसाद—भूमिका, पृष्ठ २।

"टेलर साहब, जिन्होंने इसका अग्रेजी में अनुवाद किया है लिखते हैं कि ग्रन्थ-

प्रतिलिपि हमारे पास है उसमें कहीं भी 'मकवनी' स्थान का निर्देश उपलब्ध नहीं होता। सम्भव है, अपने अनुवाद में कहीं अन्यत्र उन्होंने इस सम्बन्ध में कुछ लिखा हो। परन्तु अनुवाद के अभाव में इस मत की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता।

९ ऊपर के ही मत से मिलता-जुलता एक दूसरा मत 'प्रबोधचन्द्रोदय' के हिन्दी अनुवादक श्री विजयानन्द जी त्रिपाठी का है। उनके मतानुसार मिश्र जी सरयूपार के 'मधुबनी' गाव के सरयूपारीण ब्राह्मण थे। 'चेतसिंह विलास' और 'तवारीख बनारस' नामक पुस्तकों के आधार पर उनका यह भी कहना है कि वे काशी के तत्कालीन राजा 'यवनारि' के यज्ञ में आहूत होकर आए थे और राजा के द्वारा 'दानपुर' नामक एक गाव, धोखे मे उन्हे देने पर, उन्होंने क्रुद्ध हो कर राजा को राज्यभ्रष्ट होने और भविष्य मे अपने वशधरो के द्वारा काशी के राज्य का उपभोग किये जाने का शाप दे दिया। इसके अनन्तर मिश्र जी दानपुर मे ही रहने लगे। उन्होंने आगे चलकर यह भी बताया है कि बनारस के वर्तमान महाराज मिश्र जी की पुत्री के वशज है।[1]

१० त्रिपाठी जी ने अपने मत के समर्थन मे 'चेतसिंह विलास' और 'तवारीख बनारस' नामक जिन पुस्तकों की चर्चा की है वे मुझे खोजने पर भी न मिल सकी। परन्तु त्रिपाठी जी द्वारा दिया गया उपर्युक्त वर्णन यदि उन्ही पुस्तकों के आधार पर दिया गया है तो यह निश्चय है कि पुस्तके अप्रामाणिक है। क्योंकि आज तक मुझे किसी भी प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थ मे उपरोक्त विवरण नही मिला है। इसलिये त्रिपाठी जी का मत अप्रामाणिक होने के कारण ग्राह्य नही है।

११ प० रामचन्द्र मिश्र ने 'प्रबोध चन्द्रोदय' की भूमिका मे इस सम्बन्ध मे अपना मत प्रस्तुत करते हुए उन्हे 'बिहार' का निवासी माना है। उनके विचार मे 'प्रबोधचन्द्रोदय' मे निर्दिष्ट अन्त साक्ष्य के आधार पर मिश्र जी का बिहार-वासी होना सिद्ध है।[2] रामचन्द्र जी का यह मत कुछ प्रामाणिकता की सीमा का स्पर्श करने के कारण विचारणीय है।

१२ जैसा कि हमने ऊपर के विवेचन मे देखा है, मिश्र जी के निवास-स्थान के सम्बन्ध मे जितने भी मत प्रतिपादित किये गये हैं, अधिकाश मे उनका आधार

कार का निवास सिर्हुत और हिन्दुस्तान को नेपाल से पृथक् करने वाली पर्वत-श्रेणी के मध्य-स्थित वर्तमान "मकवनी" नामक स्थान में था।"

१. विजयानन्द त्रिपाठी---प्र० च० अ० भूमिका, पृष्ठ ६।

२. रामचन्द्र मिश्र---प्रबोधचन्द्रोदय की भूमिका, पृष्ठ ३।

किंवदन्तियाँ और अनुमान ही रहे हैं। हमने यह भी देखा है कि उपरोक्त मतो से हम किसी निष्कर्ष पर नही पहुच सके। इस अवस्था मे हमे यदि कही से सहायता की आशा हो सकती है तो वह है प्रबोधचन्द्रोदय का अन्त साक्ष्य। वस्तुत प्रत्येक कवि अपने जीवन की परिस्थितियो और अपने चारो तरफ के वातावरण से प्रभावित होकर किसी न किसी रूप से उनका अकन अपनी कृति मे करता है। अत यदि मिश्र जी की निवास-भूमि के सम्बन्ध मे उनकी कृति के अन्त साक्ष्य मे कोई प्रकाश पडता है, तो कोई आश्चर्य नही।

१३ 'प्रबोधचन्द्रोदय' मे कृष्ण मिश्र ने राढा, गौड, काशी, उत्कल, गगातट का चक्रतीर्थ और मन्दार तथा शालिग्राम क्षेत्र आदि स्थलो का वर्णन किया है।[1] इन स्थानो मे प्रथम दो का सम्बन्ध आज के बगाल से, तीसरे का उत्तर प्रदेश मे, चौथे का उडीसा और पाचवे तथा छठे का सम्बन्ध बिहार से है। इन स्थानो के उल्लेख से यह स्पष्ट है कि कृष्ण मिश्र इन चारो प्रान्तो से परिचय रखते थे। इसके अतिरिक्त, जैसा कि हम इसी अध्याय के 'कृष्ण मिश्र का समय' शीर्षक के अन्तर्गत

---

१. (क) गौड़ और राढा--द्वितीय अक, श्लोक ७, पृष्ठ ५१।
अहंकार--गौड राष्ट्रमनुत्तम निरुपमा तत्रापि राढापुरी।
(ख) काशी--द्वितीय अक, श्लोक १२, पृष्ठ ५८।
दम्भ--विद्याप्रबोधोदयजन्मभूमिर्वाराणसी ब्रह्मपुरी निरत्यया।
(ग) उत्कलदेश--द्वितीय अक, गद्य पंक्तियाँ, पृष्ठ ७४।
पुरुष--अहमुत्कलदेशादागतोऽस्मि।
(घ) चक्रतीर्थ--चौथा अक, गद्य पक्तिया, पृष्ठ १३७-३८।
श्रद्धा--देव्या एतदेवमुक्तम्। अस्ति राढाभिधानो जनपद॰। तत्र भागीरथीपरिसरालंकारभूते चक्रतीर्थे मीमांसानुगतया।
(ङ) मन्दार--छठा अक, गद्य पंक्तियां, पृष्ठ २१५, २३१।
श्रद्धा--यथा मन्दाराभिधाने शैले विष्णोरायतने देव्यां गीतायां।
× × ×
उपनिषद्--ततो मन्दारशैलोपकल्पितस्य मधुसूदनायतनस्य नातिदूरे।
(च) शालिग्राम क्षेत्र--अक पांच, गद्य पंक्तियाँ, पृष्ठ १६८।
श्रद्धा--आदिष्टास्मि देव्या विष्णुभक्त्या। वत्से श्रद्धे, अहमत्र हिंसाप्रायसमरदर्शनपराङ्मुखी। तेन वाराणसीमुत्सृज्य शालिग्रामाभिधाने भगवतः क्षेत्रे कंचित्कालमतिपालयामि

देखेंगे, कृष्ण मिश्र का आश्रयदाता कीर्तिवर्मा का भी राज्य उत्तर भारत के बुन्देलखण्ड मे ही था। इसलिए यह बहुत ही सम्भव है कि कृष्ण मिश्र उत्तर भारत के बगाल, उडीसा, बिहार और उत्तर प्रदेश मे से किसी एक प्रान्त से सम्बन्धित रहे हों। परन्तु गौड और राढा (बगाल) के प्रति उनकी दुर्भावनाए[1] और बिहार—शालिग्राम क्षेत्र और मन्दार—के प्रति अधिक पक्षपात[2] से अधिक सभावना इसी बात की है कि शालिग्राम क्षेत्र—जो कि आज के मिथिला जनपद के अन्तर्गत गण्डकी नदी के तट पर है—के निवासी रहे हो।

कृष्ण मिश्र का समय

१४ 'प्रबोधचन्द्रोदय' के रचयिता श्री कृष्ण मिश्र ने अपने ज्ञाति-जनो तथा जन्म-काल के सम्बन्ध मे कही भी सकेत नही दिया है। उनकी कृति 'प्रबोधचन्द्रोदय' के कालान्तर मे किये गये अनुवादो एव उससे प्रभावित अन्य रचनाओ तक मे उनके समय के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का सकेत नही मिलता। कृष्ण मिश्र के समसामयिक उपलब्ध शिलालेखो तथा अन्य ऐतिहासिक विवरणो मे भी उनके जीवन का कोई विवरण उपलब्ध नही होता है। कृष्ण मिश्र विषयक सभी उल्लेखों मे केवल नाटककार का नाम देकर पुस्तक की प्रशसामात्र की गई है। इन प्रशसात्मक अल्प-सकेतो के द्वारा केवल उस शताब्दी का पता लग पाता है जिसमे कि कृष्ण मिश्र जीवित रहे होंगे। शेष सभी तथ्य अज्ञात ही रह जाते हैं। फिर भी 'प्रबोधचन्द्रोदय' के अन्त साक्ष्यो और शिलालेखो मे उपलब्ध विवरणो की समीक्षा से हम उनके जीवन-काल की सीमा निर्धारित करने मे समर्थ हो सकते है।

१५ कृष्ण मिश्र के जीवन-काल के सूचक जो भी सकेत आज तक उपलब्ध हो चुके है, उन्हे हम मुख्यत दो वर्गों म विभाजित कर सकते है—(क) अन्त -साक्ष्य और (ख) बहि साक्ष्य।

---

१. देखिये—प्रबोधचन्द्रोदय, अंक १, श्लोक ७, पृष्ठ ५१।

'गौड़ और राढा' के प्रति कृष्ण मिश्र की दुर्भावना का पता उनके उस वाक्य से लगता है जिसमें उन्होने गौड और राढा को अहंकार की जन्म-भूमि बतलाया है।

२. मिश्र जी ने शालिग्राम क्षेत्र मे विष्णु भक्ति के कुछ काल तक निवास करने और मन्दार पर्वत पर स्थित विष्णु-आयतन मे रहने वाली गीता देवी में उपनिषद देवी के आश्रय ग्रहण करने का वर्णन करने के कारण शालिग्राम क्षेत्र और मन्दार पर्वत के प्रति अपना आदर भाव प्रकट किया प्रतीत होता है।

—प्रबोधचन्द्रोदय, अंक चौथा, पृष्ठ १३८

तथा छठा अंक, पृष्ठ २१५, २३१।

१६ (क) **अन्तःसाक्ष्य**—के अन्तर्गत हम कृष्ण मिश्र की उपलब्ध एकमात्र कृति 'प्रबोधचन्द्रोदय' मे उपलब्ध सकेतो को ही लेते हैं। प्रस्तुत नाटक की प्रस्तावना में ही लेखक ने उस राजा का उल्लेख किया है जिसकी सभा मे नाटक का अभिनय किया गया था। इस ऐतिहासिक उल्लेख के आधार पर नाटक के रचना-काल और रचयिता के जीवन-काल के निर्णय की चेष्टा की गई है। यह उल्लेख है—राजा कीर्तिवर्मा का, उसके सहायक गोपाल का तथा उसके शत्रु चेदिपति कर्ण का। कीर्तिवर्मा का राज्य राजा कर्ण के द्वारा छीन लिया गया था, उसे ही गोपाल ने अपने बाहुबल से जीता और कीर्तिबर्मा को उसके राजा के रूप मे पुनः अभिषिक्त किया। 'येन भूयोऽभ्यषेचि' के 'भूय' पद से कीर्तिवर्मा के पुन. अभिषिक्त किये जाने और 'अभ्यषेचि' इस भूतकालीन क्रिया मे नाटक निर्माण के पूर्व ही उसके अभिषेक का बोध होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कीर्तिवर्मा के नये राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में ही गोपाल की आज्ञा से इस नाटक का प्रणयन और अभिनय हुआ होगा।[1] इसके अतिरिक्त कीर्तिवर्मा के पूर्वजो के लिये 'चन्द्रान्वय भूषणानाम्' और कर्ण के लिये 'चेदिपतिना' जैसे विशेषण भी इस नाटक मे प्रयुक्त हुए है—जिसके आधार पर जैसा कि हम आगे के पृष्ठों मे देखेगे–विद्वानो ने कीर्तिवर्मा को 'चन्देलवशी' और कर्ण को 'चेदिराज' माना है।

१७. (ख) **बहिःसाक्ष्य**—बहि साक्ष्य के अन्तर्गत हम उन प्रमाणों को लेते है जो शिला-लेखों और दान-पत्रो के रूप मे राजा कीर्तिवर्मा और कर्ण के युद्ध तथा उनके राज्य आदि के सम्बन्ध मे विवरण प्रस्तुत करते है। इनमे शिला-लेख तो कीर्तिवर्मा से सम्बन्ध रखते हैं और दानपत्र कर्ण से। इन उपलब्ध सभी शिला-लेखो और दानपत्रो का कालक्रमानुसार सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

१८ **कीर्तिवर्मा से सम्बन्धित शिला-लेख**—(१) कालिंजर के नीलकण्ठ मन्दिर मे उत्कीर्ण २० पक्तियो के शिला-लेख जो कि १०९० ई०

---

१. हमे गोपाल की आज्ञा से नाटक के अभिनय का संकेत नाटक की प्रस्तावना ही में मिलता है—यथा—आदिष्टोऽस्मि....श्रीमता गोपालेन।

......ततो यत्पूर्वमस्मद्गुरुभिस्तत्रभवद्भिः श्रीकृष्णमिश्रैः प्रबोधचन्द्रोदयं नाम नाटकं निर्माय भवतः समर्पितमासीत् तदद्य राज्ञः श्रीकीर्तिवर्मणः पुरस्तादभिनेतव्यं भवता।

—प्रबोधचन्द्रोदय, प्रथम अंक, पृष्ठ ४–७।

का है, की एक से सात तक की पंक्तियों में स्पष्ट रूप से कीर्तिवर्मा का उल्लेख मिलता है।[१]

(२) कीर्तिवर्मा का दूसरा शिला-लेख देवगढ़ में मिला है जो कि १०९८ ई० का है। इसके पाचवें श्लोक में कीर्तिवर्मा को चन्देलवंशी विद्याधर का पौता तथा विजयपाल का पुत्र बतलाया गया है। कीर्तिवर्मा के मंत्रियों में एक मुख्य मन्त्री वत्सराज था जिसने कीर्तिगिरि नामक किला और वत्सराज घाट का निर्माण कराया था। इसकी भी सूचना इसी शिला-लेख से मिलती है।[२]

(३) अजयगढ़ के वीरवर्मा सन् १२६१ ई० के शिला-लेख में भी कीर्तिवर्मा का उल्लेख पाया जाता है। इसमें कीर्तिवर्मा के सम्बन्ध में लिखा है कि उसने कर्ण को हराया था। परन्तु कीर्तिवर्मा के द्वारा कर्ण के हराये जाने की तिथि का कोई उल्लेख नहीं।[३]

(४) महोबे में कीर्तिवर्मा का बिना तिथि का शिला-लेख भी मिला है।[४] उसमें कीर्तिवर्मा के द्वारा कर्ण के हराये जाने का उल्लेख स्पष्ट रूप से अलंकारिक शैली में किया गया है।

(५) मदन वर्मा के मऊ वाले शिला-लेख में जो कि बिना तिथि का है, कीर्तिवर्मा के पश्चात् राज्य का अधिकारी होने का उल्लेख है।[५]

कर्ण से सम्बन्धित दो दानपत्र

१९. प्रथम दानपत्र १०४२ ई० का बनारस से मिला है, जिसमें अपने पिता के श्राद्ध के अवसर पर उसने प्रयाग में त्रिवेणी में स्नान कर काशी के आसपास की भूमि का दान किया—ऐसा उल्लेख है।[६] दूसरा दानपत्र जो कि कलचुरी वंश

---

१ Annual Report of the Archaeological Survey of India, page 93.

२. IA. Vol. XVIII, p. 238, Line 2-3.

३. EI, Vol. I, p. 327-29, Plate No. XXXVIII.

४. EI. Vol. I, p. 219-22.

५. EI. Vol. I, p 198, V. 7.

६. (a) BI., Vol. II, pp. 297 ff.

(b) Inscriptions of Kalachuris of Tripuri, p. 28-39, No. 48, Plate XXXVIII.

के यश कर्ण (कर्ण का पुत्र) का १०७२–७३ ई० का है। यह बतलाता है कि अपने पिता लक्ष्मी कर्ण की ही तरह यश कर्ण ने भी काशी मे दान दिया था।[१]

(२०) इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी प्रमाण उपलब्ध होते है जिनसे अन्य राजाओं के द्वारा कर्ण के हराये जाने का पता चलता है।[२] वे प्रमाण निम्नलिखित है—

(१) विल्हण के 'विक्रमाकदेव चरित' के सर्ग १, श्लोक १०२ से कल्याणी के प्रथम सोमेश्वर (१०४०–६९ ई०) के द्वारा हराये जाने का पता चलता है।[३]

(२) नागपुर प्रशस्ति के अनुसार भोज के उत्तराधिकारी (१०५९–८७ ई०) उदयादित्य परमार ने कर्ण को पराजित किया था।[४]

(३) वैयाकरण हेमचन्द्र ने लिखा है कि भीमदेव (प्रथम) चालुक्य (१०२१-६४ ई०) ने कर्ण को हराया था।[५]

(४) बगाल के विग्रहपाल (१०५५–८१ ई०) ने कर्ण को पराजित किया था।[६]

२१ इन चारो राजाओ के द्वारा कर्ण के पराम्त होने के प्रमाण के आधार पर चन्देल इतिहास मे कर्ण के पराजय का काल १०६० से १०६४ ई० के आसपास का स्वीकार किया गया है।[७]

२२ उपर्युक्त अन्त साक्ष्य और बहि साक्ष्य के प्रमाणो को आधार बनाकर विभिन्न विद्वानो एव ऐतिहासिक ग्रन्थो ने कीर्तिवर्मा और कर्ण के समय निर्णय के सम्बन्ध मे निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किये है—

(१) श्री आर० सी० मजूमदार के मत मे कीर्तिवर्मा के चन्देल राज्य का अधिकारी बनने का समय १०७३ ई० के कुछ पूर्व है।[८] कीर्तिवर्मा का शत्रु कलचूरि

---

१ (a) EI Vol. XII, p 205.

(b) Inscriptions of Kalachuris of Tripuri, p. 289, No. 56. Plate XIV

२. The Dynastic History of Northern India-H.C. Ray, p. 699.

३ Vikramanka-deva-carita I, 102-103

४ EI, Vol II, p 185-85, Vs. 32-34

५ EI. Vol. II, p. 303.

६. Ramacarita, MASB, Vol. III, p. 22.

७ History of Chandalla—N S Bose, p. 78.

८ The Struggle for Empire—R. C. Majumdar, Vol. V, p. 58.

राज्य का अधिकारी चेदिवंशी कर्ण था तथा इस पर विजय सामन्त गोपाल के पराक्रम से हुई थी।

(२) केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया मे चन्देल राजा कीर्तिवर्मा का राज्य १०४९ से ११०० ई० स्वीकार किया गया है।[१]

(३) श्री केशवचन्द्र मिश्र ने लिखा है कि कीर्तिवर्मा ने १०६० से ११०० ई० तक ४० वर्ष के लगभग राज्य किया था।[२] उसके समय के कई अभिलेख मिले हैं— एक तो सन् १०९८ ई० का है और दूसरे पर तिथि नहीं है।

(४) हिन्दी विश्वकोश मे श्री नगेन्द्रनाथ वसु लिखते हैं कि कीर्तिवर्मा ने १०५० ई० से १०९८ ई० तक राज्य किया था।[३] उसका अपना यह राज्य वार सामन्त गोपाल से मिला था।

(५) आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया के अनुसार १०६५ ई० मे कीर्तिवर्मा ने विजय महोत्सव आयोजित किया था, जिसमे कि 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक का अभिनय बडे उल्लास के साथ किया गया था।[४]

(६) डा० जयदेव ने प्रबोधचन्द्रोदय का रचनाकाल और श्री कृष्ण मिश्र का समय ग्यारहवी ई० श० उत्तरार्द्ध १०८० ई० स्वीकार किया है।[५]

(७) डा० कीथ महोदय ने कीर्तिवर्मा का राज्यकाल १०९८ ई० के लगभग बताया है।[६] क्योंकि कीर्तिवर्मा का एक शिला-लेख इस तिथि का प्राप्त होता है,

---

१ The Cambridge History of India, Vol. III, p. 510.
——Gangeyadeva Kalachuri of Chedi his son Karnadeva, . Some years later Karnadeva suffered several defeats at the hands of his enemies, the chief of whom were Kirtivarman Chandel, who reigned from 1049 to 1100

२. चन्देल और उनका राजत्व काल——श्री केशवचन्द्र मिश्र, पृष्ठ १०६।

३. हिन्दी विश्वकोश——श्री नगेन्द्रनाथ वसु, चतुर्थ भाग, पृष्ठ ७६१।

४ The Oxford History of India—Third Edition, Chapter 2, page 203.

५ Thesis of Dr Jai Dev, page 203.
"——The play commemorates the victory of Kirtivarman over Lakshmi Karna and must have been written immediately after that event. Therefore the date of composition of the play cannot be later than 1080. A D.

६. Sanskrit Drama—Keith, page 251.

इसके अतिरिक्त अन्य सूत्रों से यह भी ज्ञात होता है कि कीर्तिवर्मा का शत्रु चेदिराज कर्ण १०४२ ई० में जीवित था, उसने राज्य के प्रारम्भ काल में कीर्तिवर्मा को पराजित किया था। किन्तु कीर्तिवर्मा ने 'गोपाल' के पराक्रम से उसे पुन. प्राप्त कर लिया था।

(८) बलदेव उपाध्याय के मत मे कीर्तिवर्मा का शत्रु चेदिराज कर्ण १०४२ ई० मे जीवित था।[1] कीर्तिवर्मा ने सेनापति गोपाल की सहायता से कर्ण को पराजित किया था। अत ग्यारहवीं ई० श० नाटक का रचनाकाल सम्भव है।

(९) प्रबोधचन्द्रोदय के अंग्रेज़ी अनुवादक जे० टेलर महोदय ने कीर्तिवर्मा को मगध का राजा माना है। उनके मतानुसार उसके समय मे बुद्ध मत का पतन हो रहा था, जिसकी चर्चा प्रबोधचन्द्रोदय नाटक मे भी है। इस कीर्तिवर्मा का राज्य-काल ६४८ ई० मे था।[2]

(१०) हिन्दी अनुवादक विजयानन्द त्रिपाठी ने कीर्तिवर्मा को कालिंजराधिपति विजयपाल का पुत्र बताया है। यह कीर्तिवर्मा चन्देलवंशी था और उसके सेनापति का नाम गोपाल था। इसका राज्यकाल ११०७ वि० स० (सन् १०५०) के लगभग प्रारम्भ हुआ। यह वर्णन 'चेतसिंह विलास' और 'तवारीख बनारस' नामक पुस्तको के आधार पर है।[3]

(११) हिन्दी अनुवादक महेशचन्द्र प्रसाद ने मैकडोनल साहब के मतानुसार कीर्तिवर्मा का राज्यकाल १०५०–११६६ ई० माना है।[4]

(१२) 'हिन्दी नाटको का इतिहास' मे डा० दशरथ ओझा ने चन्देल राजा कीर्तिवर्मा का राजत्व काल, शिला-लेखो के आधार पर (स० ११०७)सन् १०५० से प्रारम्भ माना है। उन्होंने शिला-लेखो के सम्बन्ध मे विशेष उल्लेख किये बिना ही केवल जनश्रुति के आधार पर लिखा है कि कीर्तिवर्मा का सेनापति गोपाल था जिसने अपनी योग्यता से शत्रु चेदिराज कर्ण को पराजित किया था।[5] ओझा जी ने भ्रमवश कीर्तिवर्मा को कृष्ण वर्मा लिख दिया है।

(१३) बाबू ब्रजरत्नदास ने अपने इतिहास मे कालिंजराधिपति कीर्तिवर्मा को चन्देलराज स्वीकार किया है और कर्ण को चेदि नरेश। उन्होंने कीर्तिवर्मा के

---

१. सं० सा० का इतिहास—बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५५६।
२. अंग्रेज़ी अनुवाद की भूमिका, पृष्ठ १।
३. प्र० च० हिन्दी अनुवाद की भूमिका, पृष्ठ ११।
४. वही , पृष्ठ २।
५. हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास, पृष्ठ १४५।

सम्बन्ध में लिखा है कि वह अपने शत्रु कर्ण से राज्य के प्रारम्भ काल मे पराजित हुआ था। किन्तु कुछ दिनों पश्चात् उसके मित्र और सेनापति गोपाल ने कर्ण को परास्त कर कीर्तिवर्मा को पुन गद्दी पर बैठाया था। बाबू ब्रजरत्नदास ने कर्ण के दानपत्र सन् १०४२ (स० १०९९) के प्राप्त होने का उल्लेख भी किया है।[1]

(१४) डा० गोपीनाथ तिवारी ने कीथ के अनुसार प्रबोधचन्द्रोदय का रचनाकाल ग्यारहवीं ई० शताब्दी माना है।[2]

२३ इस प्रकार इन सभी इतिहासकारो और अनुवादको ने कीर्तिवर्मा, गोपाल और कर्ण के सम्बन्ध मे जो उल्लेख किये हैं उनका अध्ययन हम सक्षिप्त रूप से निम्नप्रकार के विभाजन द्वारा कर सकते है—

२४ (१) कीर्तिवर्मा और (२) कर्ण के सम्बन्ध मे मतो का सक्षिप्त विवरण देखिए—

१. कीर्तिवर्मा

(क) १. १०४९–५० से ११०० ई० राज्यकाल।
समर्थनकर्त्ता सख्या—२, ४, १०, ११, १३

२ १०७३ ई० से कुछ पूर्व राज्यकाल प्रारम्भ।
समर्थनकर्त्ता सख्या—१

३ १०६० स ११०० ई० राज्यकाल
समर्थनकर्त्ता सख्या—३।

४ १०६५ ई० विजय महोत्सव, कीर्तिवर्मा के राज्य मे आयोजित।
समर्थनकर्त्ता सख्या—५।

५ उपलब्ध शिला-लेख के आधार पर राज्य लगभग १०९८ ई०।
समर्थनकर्त्ता सख्या—७।

(ख) १ ६४८ ई० मगध के राजा कीर्तिवर्मा का राज्यकाल।
समर्थनकर्त्ता सख्या—९।

२. चेदिराज कर्ण

१. १०४२ ई० मे कर्ण जीवित था।
समर्थनकर्त्ता सख्या—२, ७, ८।

२. १०४२ ई० का कर्ण का दानपत्र प्राप्त।
समर्थनकर्त्ता सख्या—१४।

---

१. भारतेन्दु नाटकावली (द्वितीय भाग) भूमिका, पृष्ठ ५।

२. भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य, पृष्ठ ८।

२५ कीर्तिवर्मा और कर्ण से सम्बन्धित उपर्युक्त मतों का विवेचन निम्न-प्रकार से है —

१. कीर्तिवर्मा

(क) १ कीर्तिवर्मा के राज्यकाल के सम्बन्ध मे पहला मत १०४९-५० से ११०० ई० का है। इस मत के अनुसार कीर्तिवर्मा का राज्यकाल १०४९–५० ई० के लगभग प्रारम्भ हुआ था। कीर्तिवर्मा को अपने राज्य के प्रारम्भ काल मे ही चेदिनरेश कर्ण ने पराजित कर दिया था। कुछ वर्षों के पश्चात् पराक्रमी गोपाल ने कर्ण को पराजित करके कीर्तिवर्मा को पुनः राज्यासीन किया था। इसका सकेत नाटक प्रबोधचन्द्रोदय से भी प्राप्त होता है।[1] इससे अनुमान होता है कि १०५० ई० के लगभग कीर्तिवर्मा को राज्याधिकार मिला होगा। राज्य के प्रारम्भकाल सन् १०५० से सन् १०५५ ई० तक मे कर्ण ने उसे हरा दिया होगा। १०५५ ई० के कुछ वर्ष बाद (कीर्तिवर्मा के पराजय सम्बन्धी दुख को दूर करने के लिए) १०६० ई० के लगभग परम हितैषी गोपाल ने कर्ण से युद्ध प्रारम्भ किया होगा। १०६० ई० से युद्ध प्रारम्भ होने से कुछ वर्ष भीषण युद्ध[2] मे व्यतीत हुए होंगे और विजय के अनन्तर शान्ति स्थापित[3] की गई होगी। अतः १०६५ ई० के लगभग ही कीर्तिवर्मा का विजय महोत्सव आयोजित किया गया होगा। १०९८ ई० का एक शिला-लेख कीर्तिवर्मा के नामोल्लेख के साथ प्राप्त होता है। उसके अनुसार कीर्ति-वर्मा का राज्य सम्भवतः ११०० ई० तक अवश्य ही रहा होगा। अतः कीर्तिवर्मा के राज्यकाल का समय इस मान्यता (१०५०–११०० ई०) के अनुसार ५० वर्षों का एक लम्बा समय हो जाता है जिससे निश्चित रूप मे उसके राज्य की तिथि को मान्यता देते हुए कहा जा सकता है कि चन्देल राजा कीर्तिवर्मा का राज्य ग्यारहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध मे ही था, और इसके ही विजय महोत्सव के अवसर पर प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक का अभिनय हुआ था।

(२) दूसरे मत के अनुसार कीर्तिवर्मा का राज्य १०७३ ई० से कुछ पूर्व प्रारम्भ हुआ था। यद्यपि १०७३ ई० का समय १०५० ई० के समय से बहुत पीछे

---

१. प्रबोधचन्द्रोदय नाटक—प्रथम अंक—प्रस्तावना, श्लोक ४।

२. सं० प्र० चं०, पृष्ठ ९।

"....निरन्तरनिपततत्तीक्ष्णविशिखनिक्षिप्तमहास्त्रपर्यस्तोत्तुंगमातंगमहा-महोधरसहस्रम्, भ्रमद्भुजदण्डमन्दराभिघातघूर्णमानसकलपत्तिसलिलसघातम्..'

३. सं० प्र० चं०, पृष्ठ १०।

"....पृथिव्यामाधिपत्य स्थिरीकर्तुमयमस्य संरम्भः।"

का है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह मत प्रामाणिक रूप से ज्ञात कर्ण के राज्यावसान काल (१०७३ ई०) पर आश्रित है। इस मत मे कर्ण के साथ कीर्तिवर्मा के संघर्ष की घटना प्रसिद्ध होने के कारण मतदाता ने १०७३ ई० से कुछ पूर्व का कीर्तिवर्मा के राज्य की सम्भावना की है। इससे कर्ण पर विजय के पश्चात् कीर्तिवर्मा के पुन राज्यासीन होकर, विजय महोत्सव आयोजित करने के समय से ही, कीर्तिवर्मा के राज्यकाल का प्रारम्भ स्वीकार करते हुए, १०७३ ई० से कुछ पूर्व का समय स्वीकार किया गया है।

(३) तीसरे मत मे कीर्तिवर्मा का राज्यकाल १०६० ई० से ११०० ई० माना गया है। १०५० ई० से राज्य प्रारम्भ मानने के मत से इसका समय लगभग दस वर्ष पीछे है। इससे यह अनुमान होता है कि पूर्व पराजित कीर्तिवर्मा को पुन राज्यासीन करने के उद्देश्य से गोपाल के द्वारा युद्ध प्रारम्भ किये जाने के समय से ही कीर्तिवर्मा के राज्य का आरम्भकाल स्वीकार किया गया है।

(४) चौथे मत मे कीर्तिवर्मा के विजय महोत्सव का समय १०६५ ई० के लगभग स्वीकार किया गया है। पहली मान्यता के अनुसार राज्य के प्रारम्भकाल और विजय महोत्सव मे १५ वर्षो का अन्तर है। यह अन्तर अनुचित प्रतीत नही होता क्योकि उत्तराधिकार मिलने के बाद, कीर्तिवर्मा की कर्ण के द्वारा पराजय तत्पश्चात् पुन प्रयत्न, भीषण युद्ध, विजय, फिर शान्ति स्थापना के बाद विजय महोत्सव का आयोजन करने मे इतना समय लग जाना स्वाभाविक माना जा सकता है।

(५) पाचवे मत मे १०९८ ई० के शिला-लेख के आधार पर कीर्तिवर्मा के राज्यावसान का समय ११०० ई० तक स्वीकार किया गया है जिससे कीर्तिवर्मा का राज्यकाल १०५० ई० से ११०० ई० तक सिद्ध होता है।

(ख) १ कीर्तिवर्मा के सम्बन्धित मतों के (ख) खण्ड मे प्रो० जे० टेलर महोदय ने कृष्ण मिश्र के आश्रयदाता कीर्तिवर्मा को ६४८ ई० मे स्वीकार किया है। किन्तु उपलब्ध शिला-लेखो और ऐतिहासिक प्रमाणो (जिनकी हम चर्चा कर चुके है) के आधार पर टेलर महोदय का मत निर्मूल सिद्ध होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने कीर्तिवर्मा के विजय पराजय अर्थात् शत्रु कर्ण से सघर्ष की ऐतिहासिक घटना को, (कीर्तिवर्मा के समय निरधारण मे) महत्व नही दिया था। केवल बौद्ध मत के पतन के आधार पर युग विशेष का अनुमान कर लिया था, जिससे उनकी धारणा भ्रमपूर्ण ही रही। अत इस मत को प्रामाणिक नही कहा जा सकता है।

(२) कर्ण के सम्बन्ध मे जो दो मत है वे कर्ण के दानपत्र के समय १०४२ ई०

के आधार पर ही, उसकी स्थिति उस समय विशेष में सिद्ध करते हैं। शत्रु कर्ण की स्थिति इस समय होने से, कीर्तिवर्मा की स्थिति भी ग्यारहवीं ई० शताब्दी मे प्रामाणिक रूप से सिद्ध हो जाती है। कर्ण का राज्यकाल १०४२ ई० मे प्रारम्भ होने से कीर्तिवर्मा का राज्य उसके पश्चात का स्वयं ही नि:सन्दिग्ध हो जाता है, जिससे कीर्तिवर्मा से सम्बन्धित मतो के विवेचन से प्राप्त परिणाम की सत्यता मे सन्देह नही रह जाता है।

२६ इस प्रकार उपर्युक्त मतो का निष्कर्ष यह है कि राजा कीर्तिवर्मा प्रथम बार १०५० ई० के लगभग अभिषिक्त हुआ और इसके अनन्तर १०५५ ई० के लगभग चेदिपति कर्ण के द्वारा पराजित हुआ। कीर्तिवर्मा के कुछ वर्ष दुखी रहने के पश्चात् १०६० से उसके प्रधान सहायक गोपाल के द्वारा, राजा कर्ण के विरुद्ध युद्ध छेड़ा गया, जो लगभग १०६४ ई० तक समाप्त हुआ। १०६४ ई० के आसपास ही गोपाल ने कर्ण को पराजित करने के उपरान्त कीर्तिवर्मा का पुन राज्याभिषेक करने के लिए, (राज्य मे शान्ति स्थापित करने मे कुछ समय व्यतीत होने से) राज्याभिषेक का समारोह आयोजित किया। इसके पश्चात् उसने ११०० ई० तक राज्य किया था। अतएव कीर्तिवर्मा का राज्यकाल १०५० से प्रारम्भ होकर (१०६५ ई० मे विजय महोत्सव पुन आयोजित कर) ११०० ई० तक था।

२७ इधर हमे जो प्रमाण उपलब्ध होते हैं उनके आधार पर बिना किसी सकोच के हम कह सकते है कि राजा कीर्तिवर्मा के सम्बन्ध मे निर्णीत उपर्युक्त तथ्यो पर आसानी से पहुँचा जा सकता है। (जैसा कि हम ऊपर उल्लेख कर चुके है) राजा कीर्तिवर्मा के शत्रु राजा कर्ण का दानपत्र १०४२ ई० का और दूसरा उसके पुत्र यश कर्ण का—जो कि कर्ण के बाद ही उसके सिंहासन का अधिकारी हुआ होगा—१०७२-१०७३ ई० का मिलता है। इन दोनो दानपत्रो के आधार पर हम बिना किसी सन्देह के कह सकते है कि कर्ण का राज्य १०४२ से १०७२-७३ ई० के लगभग रहा होगा। उधर कर्ण को पराजित करने वाले राजाओ—चालुक्य सोमेश्वर (प्रथम) १०४०-१०६९, उदयादित्य परमार (१०५९-१०८७), चालुक्य भीमदेव प्रथम (१०२१-१०६४ ई०) और बगाल का पालवशी राजा विग्रहपाल (१०५५-१०८१) के काल पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि १०५९-१०६४ ई० तक का समय ऐसा है, जिसमे अथवा उसके पश्चात् चारो राजाओ ने कर्ण को पराजित किया होगा। अर्थात् १०५९-१०६४ ई० का समय कर्ण के पराजय काल का प्रारम्भ अवश्य रहा होगा। यह भी बहुत सम्भव है कि गोपाल न कर्ण को उसके इस पराजयकाल के प्रारम्भ मे पराजित किया हो। अतएव अब यह सिद्ध-सा हो गया कि कर्ण का पराजय काल १०६०-६४ ई० के लगभग ही रहा

होगा और गोपाल ने कर्ण को १०६५ ई० पूर्व पराजित किया होगा। इस प्रकार कीर्तिवर्मा के शत्रु कर्ण के राज्य का प्रारम्भकाल १०४२ ई० विजयकाल १०४२ ५९ ई० और पराजयकाल १०६० ६४ ई० से प्रारम्भ तथा राज्यावसान काल १०७२ ७३ ई० था। शत्रु कर्ण के राज्य के इस उपलब्ध प्रामाणिक विवरण के आधार पर निश्चित-सा मान सकते हैं कि कीर्तिवर्मा के राज्यकाल का प्रारम्भ १०५० ई० (प्रामाणिक इतिहासो मे मान्य) कीर्तिवर्मा की प्रथम पराजय का समय (१०५० ५५ ई०) के लगभग गोपाल की सहायता से पुन युद्ध तथा विजय प्राप्ति १०६० ६४ ई० तक और तदनन्तर सिंहासनोपलब्धि १०६५ ई० मे हुई होगी। कीर्तिवर्मा के राज्यकाल की अन्तिम सीमा निर्धारित करने के लिए हमे १०९० और १०९८ ई० के शिला लेख उपलब्ध होते हैं जिनसे सहज ही कीर्तिवर्मा के राज्यकाल की अंतिम सीमा ११०० ई० सिद्ध होती है।

२८ इस प्रकार कीर्तिवर्मा के राज्यकाल (१०५० ११०० ई०) मे १०६५ ई० मे विजय प्राप्ति पर पुन सिंहासनारूढ होने के उपलक्ष्य मे प्रबोधचन्द्रोदय नाटक का अभिनय किया गया होगा। यह प्रामाणिक प्रतीत होता है।

२९ प्रबोधचन्द्रोदय के इस अभिनय काल से इसके रचयिता कृष्ण मिश्र का समय ११वी ई० शताब्दी का मध्यकाल सिद्ध होता है।

कृष्ण मिश्र का समय

आश्रयदाता सम्राट् कीर्तिवर्मा के राज्यकाल के सम्बन्ध में प्राप्त प्रमाण एवं विभिन्न मत

सख्या एव प्रमाण के प्रकार	मतदाता	कीर्तिवर्मा के सबध मे उपलब्ध सकेत	देश	राज्य सकट एव शत्रु का विवरण	सम्राट् कीर्तिवर्मा का राज्यकाल
१ अत साक्ष्य	प्रबोध चन्द्रोदय नाटक रचयिता—कृष्ण मिश्र	कीर्तिवर्मा चन्देलवशी सम्राट् था उसका सहायक गोपाल और गुरु कृष्ण मिश्र थे।		कर्ण ने पहले कीर्तिवर्मा को पराजित किया था उसके पश्चात् फिर कीर्तिवर्मा का प्रतापी राजा चेदिपति कर्ण से सघर्ष हुआ और गोपाल की सहायता से उसने कर्ण को पराजित किया।	
२ बहिर्साक्ष्य (क) शिलालेख	१ एनअल रिपोर्ट आफ द आर्क्यालाजिकल सर्वे आफ इंडिया'—कलिंजर के नीलकण्ठ मन्दिर का एक अभिलेख।	सम्राट् कीर्तिवर्मा का स्पष्ट उल्लेख			१०९० ई०

२ इण्डियन एन्टिक्वेरी, भाग १८, पृष्ठ २३८ देवगढ का शिलालेख	चन्देल वंश के राजा कीर्तिवर्मा विजयपाल के पुत्र और विद्याधर के पोते थे। उनका एक मंत्री वत्सराज था जिसने कीर्तिगिरि नाम का किला बनवाया और अपने नाम से वत्सराज घाट बनवाया था।		१०९८ ई०
३ ई० आई०, भाग १ पृ० ३२७-२९ अजयगढ से प्राप्त वीरवर्मा का शिलालेख—१२६१ ई०	कीर्तिवर्मा, चंदेल सम्राट्	चन्देल कीर्तिवर्मा ने चेदि-नरेश, कर्ण को हराया था।	
४ ई० आई०, भाग १, पृ० २२०-२७, महोबा से प्राप्त बिना तिथि का शिलालेख।	चन्देल सम्राट् कीर्तिवर्मा पुरुषोत्तम भगवान् के समान था।	कीर्तिवर्मा ने चेदि कर्ण के सेना रूप समुद्र को मथकर विजयलक्ष्मी प्राप्त की थी।	
५ ई० आई०, भाग १ पृ० १९८ वी० ७ मऊ से प्राप्त मदनवर्मा का शिलालेख	कीर्तिवर्मा विजयपाल के पश्चात् राज्य का अधिकारी बना।		

सख्या एवं प्रमाण के प्रकार	मतदाता	कीर्तिवर्मा के सम्बन्ध मे उपलब्ध सकेत	देश	राज्य सकट एवं शत्रु सम्राट् का विवरण	कीर्तिवर्मा का राज्यकाल
(ख) दानपत्र	१ (अ) ई.आई भाग २, पृ० २९७ एफ एफ (ब) इसक्रिप्शन्स आफ द कलचूरीज आफ त्रिपुरी, पृ० २३६-३९, न० ४८ प्लेट ३८, बनारस का दानपत्र—१०४२ ई० २ (अ) ई.आई. भाग १२, पृ० २०५ (ब) इसक्रिप्शन्स आफ द कलचूरीज आफ त्रिपुरी पृ० २८९, न० ५६, प्लेट XLV दानपत्र १०७२-७३ ई०			**शत्रुकर्ण का विवरण** कलचूरि राज्य के अधिकारी चेदिवश के सम्राट् कर्ण ने बनारस मे अपने पिता के श्राद्ध के अवसर पर दान दिया था। चेदिनरेश कर्ण के पुत्र यश कर्ण ने पिता के श्राद्ध मे दान दिया था।	
(ग) अन्य प्रमाण	डाइनेस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दन इंडिया, पृ० ६९९ के अनुसार १ विक्रमाक देवचरित, सर्ग प्रथम, पृष्ठ १०२-१०३			शत्रु कर्ण को पराजित करने वाले अन्य सम्राटो के राज्यकाल का विवरण कल्याणी के चालुक्य सोमेश्वर सम्राट् (प्रथम) १०४० — ६९ ई० राज्यकाल	

	२. नागपुर प्रशस्ति के अनुसार ई.आई भाग, २ पृ० १८१, वीएस ३२-३४ ३ वैयाकरण हेमचन्द्र की प्रशसा ई.आई भाग २, पृ० ३०३ ४ रामचरित MASB Vol III P. 22			भोज के अधिकारी उदयादित्य परमार १०५९–१०८७ ई० राज्यकाल चालुक्य नरेश भीमदेव प्रथम १०२१–१०६४ ई० राज्यकाल बगाल का पाल राजा विग्रहपाल १०५५–१०८१ ई० राज्यकाल	
३. विभिन्न मत	१. आर० सी० मजूमदार	सम्राट कीर्तिवर्मा विजयपाल का पुत्र, देववर्मन का भाई।	चन्देल राज्य का अधिकारी	कलचुरि कर्ण ने कीर्तिवर्मा को हराया किन्तु कुछ दिनो बाद कीर्तिवर्मा ने गोपाल की सहायता से कर्ण को पराजित किया	राज्याधिकार १०७३ ई० कुछ पूर्व १०४९-११०० ई०
	२. केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इडिया	चन्देल राजा कीर्तिवर्मा			
	३ केशवचन्द्र मिश्र	राजा कीर्तिवर्मा देववर्मन का भाई, चन्देल राज्य की कीर्ति को पुन प्रतिष्ठित करने वाला सम्राट्।	चन्देल राज्य का अधिकारी	चेदिशासक कर्ण से सघर्ष	सन् १०६० से ११०० ई० तक राज्यकाल, अभिलेख सन् १०९८ ई०

संख्या एवं प्रमाण के प्रकार	मतदाता	कीर्तिवर्मा के सम्बन्ध मे उपलब्ध सकेत	देश	राज्य मकट एवं शत्रु सम्राट् का विवरण	कीर्तिवर्मा का राज्यकाल
	४ हिन्दी विश्व कोश डा० नगेन्द्रनाथ वसु	चन्देलवर्शीय कालजराधिप विजयपाल का पुत्र ओर देववर्मन का भाई	चन्देल राज्य-बुदेलखण्ड तथा महोबा।	प्रधान मेनापति गोपाल की सहायता से कीर्तिवर्मा ने चेदिराज कर्ण को हराया	१०५० ई० से १०९८ ई० चदेल राजाओ की शिलालिपि
	५ आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इडिया	'चन्देल सम्राट्' कीर्तिवर्मा	राज्य बुदेलखण्ड मे, जो जेजाकभुक्ति के नाम से प्रसिद्ध था।	चेदिनरेश कर्ण से सघर्ष	ग्यारहवी ई० श० उत्तरार्द्ध
	६ डा० जयदेव	'सम्राट्' कीर्तिवर्मा	चन्देल राज्य का अधिकारी	—	ग्यारहवी ई० श० उत्तरार्द्ध
	७. डा० कीथ	'सम्राट्' कीर्तिवर्मा	जेजाकभुक्ति के चदेल राज्य का अधिकारी शिलालेख १०९८ ई०	चेदिराज कर्ण को गोपाल की सहायता मे हराया। कर्ण की स्थिति १०४२ ई० मे थी।	—
	८. बलदेव उपाध्याय	कीर्तिवर्मा सम्राट् था	चदेल राज्य का अधिकारी	चेदिनरेश कर्ण को हराया कर्ण का दानपत्र १०४२ ई० का प्राप्त	

९. जे० टेलर	कीर्तिवर्मा सम्राट् था	मगध का राजा, उस काल मे बुद्ध-मत का पतन		६४८ ई०
१०. विजयानन्द त्रिपाठी	कालिजराधिप विजय-पाल का पुत्र चदेलवशी राजा, सहायक गोपाल	चदेल राज्य का अधिकारी		१०५० ई० के लगभग गद्दी पर बैठा
११. महेशचन्द्र प्रसाद	कीर्तिवर्मा राजा था		—	१०५०-१११६ई०
१२ डा० दशरथ ओझा	चन्देल राजा कीर्तिवर्मा	चदेल राज्य का अधिकारी	चेदिराज कर्ण से सघर्ष	१०५० से राज्य प्रारम्भ
१३. बाबू ब्रजरत्नदास	चन्देल राजा कीर्तिवर्मा	कालिजर मे राज्य था	चेदिनरेश कर्ण से सघर्ष	—
१४ डा० गोपीनाथ तिवारी				ग्यारहवी ई. श

कृष्ण मिश्र की रचनाएं

३० प्रबोधचन्द्रोदय कृष्ण मिश्र का एक प्रसिद्ध नाटक है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के अतिरिक्त कृष्ण मिश्र कृत किसी रचना का उल्लेख किसी ऐतिहासिक व साहित्यिक पुस्तक में नही मिलता है। मुझे अपने अनुसधान मे केवल दो स्थानो पर ही उनकी कतिपय रचनाओ का उल्लेख मिला है —

१ हिन्दी विश्व कोप।

२ सस्कृत प्रबोध चन्द्रोदय का हिन्दी अनुवाद विजयानन्द त्रिपाठी।

३१ डा० नगेन्द्रनाथ वसु के द्वारा सम्पादित हिन्दी विश्वकोप मे कृष्ण मिश्र के नाम से प्रबोध चन्द्रोदय के अतिरिक्त अन्य पाच रचनाओ का उल्लेख मिलता है। उनके मत मे कृष्ण मिश्र ने 'प्रायश्चित मनोहर', 'वीर विजय' नामक इहामृग, 'सर्वतो-भद्रचक्रावली' नामक ज्योतिष ग्रन्थ, 'चिन्तामणि' नामक न्याय ग्रन्थ का प्रणयन किया था। उन्होने 'कात्यायन श्राद्ध सूक्त, पर 'श्राद्ध काशिका' नामक भाष्य की भी रचना की थी[1]। इन ग्रन्थो के रचयिता श्रीकृष्ण मिश्र हमारे आलोच्य कृष्ण मिश्र से भिन्न थे या अभिन्न, इस विषय मे कोई प्रमाण उपलब्ध नही है।

३२ सस्कृत प्रबोध चन्द्रोदय के हिन्दी अनुवादक विजयानन्द त्रिपाठी 'प्रबोध चन्द्रोदय' के हिन्दी अनुवाद की भूमिका मे[2], कृष्ण मिश्र की कृतियो पर विचार करते हुए लिखते है—"प्रायश्चित मनोहर, वीर विजय, सर्वतोभद्रादिचक्रावली, चितामणि, और श्राद्धकाशिकादि अनेक ग्रन्थो का पता चलता है, जिनके रचयिता कृष्ण मिश्र है। परन्तु अनेक पुरुषो के एक नाम होने की सम्भावना मे बिना पुष्ट प्रमाणो के यह नही कहा जा सकता कि इन ग्रन्थो के रचयिता और प्रबोध-चन्द्रोदयकार एक व्यक्ति थे।"

३३ इस प्रकार कृष्ण मिश्र के कुछ ग्रन्थो का परिचय हिन्दी विश्व कोप और विजयानन्द त्रिपाठी के द्वारा ज्ञात होता है, किन्तु इन दोनो महानुभावो ने इन ग्रन्थो के प्राप्ति-स्थान वा सूचना स्थान के सम्बन्ध मे कोई विशेप विवरण नही दिया है। इसलिए अनुमानित सकेतो के आधार पर हम निश्चित मत देने मे असमर्थ है। केवल उपलब्ध नाटक प्रबोधचन्द्रोदय के आधार पर हम सम्भावना कर सकते हैं कि सम्भवत अगाध पाण्डित्यपूर्ण व्यक्तित्व से युक्त मिश्र जी द्वारा ही ये ग्रन्थ प्रणीत हुए हो, और कालान्तर मे किसी कारणवश प्रबोधचन्द्रोदय की भाति अधिक प्रसिद्ध एव सुरक्षित न रह सके हो। साथ ही यह भी सम्भव है कि इन ग्रन्थो की रचना

---

१. हिन्दी विश्व कोष, भाग ५, सम्पा० श्री नगेन्द्रनाथ वसु, पृष्ठ ३०१।
२. भूमिका, पृष्ठ ७।

प्र० च० के रचयिता कृष्ण मिश्र ने न की हो, अपितु कृष्ण मिश्र नाम के अन्य व्यक्ति (या व्यक्तियो) ने की हो। परन्तु प्रबोध चन्द्रोदय जैसी प्रौढ़ रचना के रचयिता के लिए, अन्य ग्रन्थो की रचना असम्भव नही कही जा सकती। अतएव जब तक हमे उपर्युक्त कृतियों के कर्तृत्व से कृष्ण मिश्र को वचित करने वाले कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नही होते तब तक हमे इन कृतियो को 'प्रबोध चन्द्रोदय' के रचयिता कृष्ण मिश्र की मानने मे कोई विशेष आपत्ति प्रतीत नही होती। इन कृतियो को प्रबोध चन्द्रोदयकार की मान लेने पर भी यह विवादास्पद विषय है और सदिग्धावस्था मे है। अत अन्त मे हम यह कह सकते हैं कि अन्य किसी कृति के कर्तृत्व का श्रेय मिश्र जी को मिले या न मिले उनकी एकमात्र उपलब्ध कृति प्रबोध चन्द्रोदय ही उन्हें सस्कृत साहित्य मे अमर कर देने के लिए पर्याप्त है।

द्वितीय अध्याय

संस्कृत साहित्य में 'रूपक' नाटक प्रबोधचन्द्रोदय का स्थान एवं उसकी परवर्ती परम्परा

प्रबोधचन्द्रोदय एक रूपक नाटक

३४ प्रबोधचन्द्रोदय नाटक शास्त्रीय परिभाषा की दृष्टि से किस कोटि मे आयेगा ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। विद्वानो के विचार से यह एक रूपक नाटक है। कीथ[1] मैकडोनल[2] और जे० टेलर[3] महोदय प्रबोधचन्द्रोदय को एलीगरिकल (Allegoiical) 'रूपक' नाटक मानते है। शोधकर्ता डा० जयदेव[4] ने भी प्रबोधचन्द्रोदय को एलीगरिकल 'रूपक' नाटक ही कहा है।

३५ संस्कृत साहित्य के इतिहास मे श्री हंसराज अग्रवाल[5] और प० चन्द्रशेखर पाण्डेय[6] ने प्रबोधचन्द्रोदय को 'रूपक' नाटक स्वीकार किया है। किन्तु बलदेव उपाध्याय[7] प्रबोधचन्द्रोदय को प्रतीक नाटक मानते हुए लिखते है—"यहा इस प्रकार के नाटको को हमने 'प्रतीक नाटक' (एलीगरिकल ड्रामा) कहा है।"

३६ डा० सोमनाथ गुप्त[8] ने हिन्दी नाटको के इतिहास मे प्रबोधचन्द्रोदय को साकेतिक और अन्योक्ति शैली की रचना कहा है। डा० दशरथ ओझा[9] ने इस नाटक को प्रतीकात्मक या भावात्मक नाटक (एलीगरिकल) माना है।

---

१. संस्कृत ड्रामा, पृष्ठ २५१।
२. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ३६७।
३. अनुवाद की भूमिका, पृष्ठ १।
४. प्रबोधचन्द्रोदय के टेक्स्ट का शोधकार्य, पृष्ठ ४५।
५. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ३१२।
६. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ० २१८।
७. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ५५५।
८. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, पृ० ५१।
९. हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास, पृ० २२२, २२३।

३७ इस प्रकार यह विदित होता है कि प्राय. प्रत्येक विद्वान् ने प्रबोधचन्द्रोदय के प्रकार को अंग्रेजी शब्द ऐलीगरी (Allegory) के द्वारा ग्रहण किया है। सभी ने उसे ऐलीगरी माना है, किन्तु हिन्दी मे ऐलीगरी के लिए जो शब्द इन विद्वानो ने दिये हैं वे अलग अलग हैं। एक ने 'रूपक' नाम दिया है, दूसरे ने उसे 'प्रतीक' नाटक कहा है। तीसरा साकेतिक और अन्योक्ति शैली का नाटक मानता है। यह स्पष्ट है कि ऐलीगरी के पर्याय के रूप मे यहा जो शब्द दिये गये हैं, वे हिन्दी सस्कृत मे एक ही अर्थ के द्योतक नही है। हमे जहाँ यह जानना आवश्यक है कि ऐलीगरी क्यो है, वहा यह भी निर्णय कर लेना अपेक्षित है कि हिन्दी मे प्रयुक्त कौन सा शब्द ऐलीगरी के पर्याय की दृष्टि से समीचीन है।

३८ **रूपक**--पहले रूपक शब्द को ही लेते है। इस शब्द के सम्बन्ध मे कुछ विद्वानो के विचार यहा दिये जाते है —

(१) रूप क्रियायाम्। रूपस्य दर्शन करण वा रूप क्रिया[1]।

(२) 'रूप्यते प्रत्यक्षीक्रियते योऽर्थ'[2]

(३) रूपक–(स० क्ली०) रूपयतीति रूपिण्वुल। मूर्तिप्रतिकृति। रूपक अलकार। निरपह्नव विषय मे जहाँ रूपित का आरोप होता है वहा यह अलकार हुआ करता है।[3]

(४) रूपक (पु० स०) (रूप का आरोप करना) एक अर्थालकार अभिनय दर्शन युक्त दृश्य काव्य।[4]

(५) रूपक–(स० पु०) प्रतिकृति, मूर्ति। दृश्य काव्य एक अर्थालकार[5]।

(६) "Rupaka—mim having form, figurative, metaphorical, illustrating by figurative language, form, figure, shape, appearance, image, likeness"[6]

(७) "सस्कृत साहित्य मे एक नये प्रकार के रूपक उपलब्ध होते हैं, जिसमे श्रद्धा, भक्ति आदि अमूर्त पदार्थों को नाटकीय पात्र बनाया गया है।

---

१. वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी, भट्टोजी दीक्षित, तृतीय भाग, पृष्ठ २८९।
२. अभिनव भारती, भाग दो, पृष्ठ ४०६।
३. हिन्दी विश्व कोष, सम्पा० श्री नगेन्द्र वसु, उनविंश भाग, पृष्ठ ६४३।
४. बृहत् हिन्दी कोष, सम्पा० श्री कालिकाप्रसाद, पृष्ठ १११।
५. राष्ट्रभाषा कोष, पं० ब्रजकिशोर मिश्र, पृष्ठ ९३८।
६ Sanskrit English Dictionary, Sir M. Monier Williams, New Ed , page 886

कहीं तो केवल अमूर्त पदार्थों की ही मूर्त कल्पना उपलब्ध होती है और कही पर मूर्त अमूर्त का मिश्रण है। साधारण नाटक के लक्षण से इसमे किसी प्रकार पार्थक्य नही मिलता। इसीलिए नाट्य के लक्षणकर्ताओ ने इसका पृथक् वर्गीकरण नही किया है। यहाँ इस प्रकार के नाटको को हमने 'प्रतीक नाटक' (Allegorical drama) कहा है। क्योंकि इनमे पात्र अमूर्त पदार्थों के प्रतीक मात्र होते है, उनकी भौतिक जगत मे स्वतत्र सत्ता नही होती।"[1]

(८) "भारत दुर्दशा" (१८८० ई०) यह ६ अक का नाटक है। इसमे भारत के प्राचीन गौरव की याद दिलाते हुए उसकी वर्तमान बुरी अवस्था बताकर भारत के उद्धार की प्रेरणा दी गई है। राजनीतिक वातावरण को नाटकीय रूप देने का यह प्रथम प्रयास है। भारत, भारत दुर्दैव, भारत दुर्दशा, सत्यानाश, निर्लज्जता, मदिरा, अन्धकार, रोग आदि इसके पात्र है।

वास्तव मे यह प्रबोधचन्द्रोदय वाली साकेतिक परम्परा का नाटक है जिसमे पात्रो का मानवीकरण (Personification) कर दिया गया है।"[2]

(९) "भारत दुर्दशा" एक प्रतीक नाटक (Allegorical Play) है। प्रतीकात्मक या भावात्मक नाटक की कई श्रेणिया होती है। उनमे तीन श्रेणिया मुख्य है। प्रथम श्रेणी मे नाटक की स्वाभाविक या प्रस्तुत कथा तो रसात्मक होती ही है, उस कथा मे नाम, रूप तथा गुण साम्य के द्वारा जो रहस्यमय अर्थ आद्योपान्त परिलक्षित होता है, वह भी चमत्कारपूर्ण होने से विज्ञजनो का आनन्दविधायक होता है। ऐसे नाटको मे स्थल-स्थल पर दूसरे रहस्यमय अर्थ की ओर सकेत-मात्र होता है, पक्ति-पक्ति मे उस अर्थ की ओर सगति खोजना ठीक नही। इस प्रकार का नाटक विद्यासुन्दर है, जिसमे हम दूसरे अर्थ की प्रतिध्वनि पाते है।

दूसरी कोटि मे वे नाटक आते है, जिनके प्रस्तुत और स्वाभाविक अर्थ मे इतना चमत्कार नही होता है। प्रबोधचन्द्रोदय ऐसा नाटक है। तीसरी श्रेणी मिश्र प्रतीकात्मक नाटको की है। इसमे कतिपय पात्र

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास, श्री बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५५५।
२. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, डा० सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ ५१।

मानवीय होते हैं, कतिपय मानवीकरण के रूप मे दृष्टिगत होते हैं। इस श्रेणी मे कभी अधिक सख्या मानवीपात्रो की होती है और कभी मानवीकरण द्वारा प्रदर्शित पात्रो की। 'चैतन्य चन्द्रोदय' इसी कोटि का नाटक है। भारतेन्दु जी का 'भारत दुर्दशा' नाटक इस तीसरी श्रेणी मे रखने योग्य है'।

(१०) "भारतीय साहित्य मे रूपकात्मक साहित्य एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमे अमूर्त भावो को मूर्त रूप मे उपस्थित किया जाता है। हृदय के सूक्ष्म अमूर्त भाव इन्द्रियों का विषय नही बन सकते। जब वही भाव उपमा या रूपक द्वारा स्थूल मूर्ति रूप ग्रहण कर लेते हैं तो वे इन्द्रियगोचर हो जाने से अधिक स्पष्ट और बोधगम्य बन जाते हैं। इन्द्रियो के द्वारा साक्षात रूप मे प्रत्यक्ष होने पर ये सूक्ष्मभाव सजीव रूप धारण कर लेते है और हृदय को अत्यधिक प्रभावित करने मे समर्थ होते है। इसी कारण काव्य मे अमूर्त का मूर्त रूप में अरूप का रूपाकार मे विधान प्रचलित हुआ।[२]

(११) 'रूपक' शब्द सस्कृत मे दो अर्थो मे प्रयुक्त होता है। एक तो साधारण रूप से नाट्य के अर्थ मे, दूसरे रूपक अलकार के अर्थ मे जिसमे उपमान का उपमेय पर अभेद आरोप होता है। पर इन दोनो के अतिरिक्त, रूपक का तीसरा प्रयोग आजकल एक विशिष्ट अर्थ मे किया जाता है। उस अर्थ मे जिसमे अग्रेजी का शब्द ऐलीगरी (Allegory) आता है। इस रूप मे भी रूपक का सम्बन्ध रूपक अलकार से ही है। रूपक अलकार की तरह ही इसका आधार भी साम्य ही है—अन्तर यह है कि अलकार मे यह साम्य क्षणिक और अस्थायी होता है, लेकिन 'रूपक' मे स्थायी और आरम्भ से अन्त तक रहने वाला। रूपकातिशयोक्ति को इन दोनो की मध्यवर्तिनी अवस्था समझिए। वहा वह अभेद साम्य वर्णन मे गुम्फित रहता है। 'रूपक' मे समस्त कथा के तन्तुओ मे परिभाषा की उलझन मे न पड कर मोटे रूप मे शायद हम कह सकते है कि 'रूपक' से तात्पर्य उस कथा से है जो किन्ही सिद्धान्त विशेष का माध्यम बन कर हमारे सम्मुख आती है। रूपक के अमूर्त सिद्धान्तो मे

---

१. हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा, पृष्ठ २२२, २२३।

२. 'अपभ्रंश साहित्य' डा० हरिवंश कोछड़, पृष्ठ ३३४.

और मूर्त कथावस्तु मे समानान्तर चलने वाली एक साम्य भावना होना अनिवार्य है। यह साम्य प्राय अत्यन्त स्पष्ट और कथा का आवरण इतना झीना होता है कि सिद्धान्त ही स्वय बोलते हुए सुनाई पडते है। रूपक के दो स्वरूप दृष्टिगोचर होते है, एक मे तो मनुष्य की अन्तर्वृत्तिया अथवा गुण-दोष सीधे-सादे मूर्त रूप धारण कर पात्ररूप मे हमारे सम्मुख आते है और दूसरे पात्र मे साधारण स्त्री-पुरुष होते है, लेकिन उनका स्वतन्त्र व्यक्तित्व नही होता, वे भावनाओ के प्रतीक-मात्र होते है। इनमे स्वभावत पहला स्वरूप अधिक स्थूल और अधिक सित है।"[१]

12. Allegory—"A figurative representation conveying a meaning other than and in addition to literal"[२]

13. Allegory—(from Greek allo, some thing else and agoreuein, to speak) a figurative representation in which the signs (words or forms) signify something besides their literal or direct meaning, each meaning being complete in itself[३]

14 Allegory—speaking otherwise than one seems to speak Description of a subject under the guise of some other subject of aptly suggestive resemblance[४]

३९ उपर्युक्त विचारो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सस्कृत मे रूपक शब्द दो विशेष अर्थो मे प्रयुक्त होता रहा है। रूपक मे आरोप के भाव से एक अर्थ नाटक है, नाटक मे अभिनेता मे ऐतिहासिक या कल्पित चरित्र आरोप द्वारा दृश्य होता है। दूसरा अर्थ भी इस आरोप के अर्थ से ही अर्थालकार विशेष है। अर्थालकार के अन्तर्गत रूपक अलकार मे आरोप्यमाण तद्रूप तथा अभेद से आरोप होता है। अग्रेजी शब्द 'मैटाफर" को रूपक के समकक्ष माना जा सकता है, पर एलिगरी स्पष्टत मैटाफर नही है।[५] यह तो कुछ अन्योक्ति के समकक्ष विदित होता है।

---

१ आधुनिक हिन्दी नाटक, डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ७३, ७४।

२ Encyclopaedia Brittanica, Vol I, page 645.

३ The Encyclopaedia Americana, Vol I, page 411.

४ The Oxford English Dictionary, Vol I

५ ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका मे अन्तर बताया गया है :—

"An allegory is distinguished from a metaphor by being longer sustained and more fully carried out in its details, and

४० रूपक का प्रयोग एक तीसरे अर्थ मे किया जा सकता है। रूपक का तीसरा अर्थ भी आरोप से ही सम्बन्धित है। यह (तीसरा) 'रूपक' विशिष्ट अमूर्त तत्वों की मूर्त कल्पना के आरोपण से रूपक होता है। इसमे अमूर्त (लोभ मोह) की मूर्त कल्पना करके पात्र मे आरोप किया जाता है। इस प्रकार तीसरे विशिष्ट अर्थ मे हम रूपक की परिभाषा मे कह सकते हैं कि अमूर्त तत्वो की मूर्त कल्पना का पात्रों मे आरोप होना 'रूपक' है। जिस साहित्य मे अमूर्ततत्व की मूर्त कल्पना का पात्रो मे आरोप हो, वह 'रूपक' साहित्य कहलाता है और उसके पात्र 'रूपक' पात्र होते है।

४१. रूपक का यह तीसरा अर्थ ऐलीगरी से भिन्न है। क्योकि 'रूपक' के तीसरे अर्थ मे अन्य अर्थों के द्योतन का प्रश्न नही उठता, जो कि ऐलीगरी के लिए अनिवार्य है। उसमे तत्व तो वही एक होता है केवल उसकी मूर्तकल्पना उसी नाम के पात्र मे उस तत्व के तादात्म्य से आरोपित करके दृश्य बना दी जाती है। अत. यह 'रूपक' अग्रेजी के ऐलीगरी से और सस्कृत के रूपक (नाटक) से तथा रूपक अर्थालकार से भिन्न है।

प्रतीक

४२ प्रतीक शब्द भी रूपक मे भिन्न अर्थ मे प्रयुक्त होता है। प्रतीक शब्द के अर्थ विद्वानो ने निम्न प्रकार से किये है —

(१) प्रतीक—"अग प्रतीकोऽवयवोऽपधनो'[1]

(२) प्रतीक—"अग, अवयव, अश, भाग"[2]

(३) प्रतीक—"म० पु० · प्रतिकन् निपातनात् दीर्घ । अवयवअग। पता, चिह्न निशान।"[3]

४ Symbol—the term given to a visible object representing to the mind the resemblance of something which is not shown but realized by association with it[4]

---

from an analogy by the fact that the one appeals to the imagination and the other to the reason."

—Encyclopaedia Brittanica, Vol I, page 645.

१. अथामरकोषः, श्रीमदमरसिंह विरचितः।

२. बृहत् हिन्दी कोष, कामता प्रसाद, पृष्ठ ८६५।

३. हिन्दी विश्वकोष, (चतुर्दश भाग) पृष्ठ ५४६।

४. Encyclopeadia Brittanica, Vol. 21, page 700.

५. Symbol—some thing that stands for, represents, or denotes some thing else (not by exact resemblance, but vague suggestion or by some accidental or conventional relation), esp a material object representing or taken to represent some thing immaterial or abstract, as a being, idea, quality or condition, a representative or typical figure, sign, or token, a type of some quality [१]

४३ उपर्युक्त विचारो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि 'परम्परा अथवा मान्यता से जब कोई सम्बद्ध या असम्बन्धित, अग या वस्तु किसी मूर्त या अमूर्त पूर्ण तथ्य का द्योतक बन जाता है तो वह वस्तु या अग प्रतीक कहलाता है। जैसे कमल सौन्दर्य का और त्रिशूल शिवजी का प्रतीक कहलाता है। इस प्रकार प्रतीक मे सपूर्ण की अप्रत्यक्ष अभिव्यक्ति निहित होती है।

४४ अतएव रूपक और प्रतीक की परिभाषा से स्पष्ट है कि रूपक मे अमूर्त को मूर्त एव साकार कर देने की विशेषता है, वह प्रतीक मे नही है। प्रतीक का मूर्त रूप, पूर्ण तथ्य का द्योतक मात्र होता है, उसमे पूर्ण तथ्य की मूर्त अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष नही होती अप्रत्यक्ष ही रहती है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक मे अमूर्त तत्व (लोभ, मोह, विवेक, श्रद्धा) की मूर्त कल्पना पात्रो मे आरोपित है जिससे अमूर्त भावनाए पात्र रूप मे मूर्त और प्रत्यक्ष हो गई है। कथा मे उनके मूर्त सम्बन्धो की कल्पना और नाटकीय योजना है। इसलिए प्रबोधचन्द्रोदय न सकेत, न अन्योक्ति और न प्रतीक शैली मे है वरन् अमूर्त तत्वो की मूर्त कल्पना का आरोप पात्रो मे होने से 'रूपक' शैली मे है। 'रूपक' शैली की नाटकीय योजना होने से यह एक 'रूपक' नाटक है।

प्रबोधचन्द्रोदय से पूर्ववर्ती रूपक शैली का विकास

४५ पचतत्वो से निर्मित बाह्य जगत् के अतिरिक्त मानव मे अन्त'जगत् भी है। यह उसका भावात्मक और आध्यात्मिक जगत् है। स्थूल बाह्य जगत् की अपेक्षा अन्तर का भाव जगत् सूक्ष्म और अदृश्य है। इस भाव जगत् मे आत्म और अनात्म भावो का अन्तर्द्वन्द्व है। बाह्य जगत् की अपेक्षा भाव जगत् के अन्तर्द्वन्द्व और समस्याएँ तथा अन्तर का आध्यात्मिक जगत् अधिक महत्वपूर्ण है। किन्तु अमूर्त होने के कारण स्थूल इन्द्रियो का विषय नही बन पाता है। किन्तु यही अमूर्त भावात्मक आध्यात्मिक जगत् 'रूपक' के द्वारा मूर्त होकर स्थूल इन्द्रियो के लिए गोचर हो जाता है। इन्द्रियगोचर होने से, भाव के लिए अधिक बोधगम्य एव प्रभावशाली हो

१ The Oxford English Dictionary, Vol 10.

जाता है। इसी अमूर्त को मूर्त रूप देने में रूपक काव्य की सृष्टि होती है। इस प्रकार 'रूपक' साहित्य की रचना भाव जगत् के मूर्त व्यक्तीकरण का परिणाम है। इसमे अमूर्त जगत् के परिष्कार और विकास की प्रेरणा, अमूर्त को मूर्त बनाकर दी जाती है।

४६. भारतीय प्रतिभाशाली कवि मनीषी सस्कृत भाषा मे रूपक साहित्य का सृजन प्र० च० से पूर्व प्राचीनकाल से करते रहे हैं। सस्कृत भाषा मे अमूर्त को मूर्त रूप देने की रूपक शैली का क्रमिक विकास निम्न प्रकार से हुआ —

(१) आलकारिक रूप मे— रूपक अलकार के माध्यम से वेदो मे अमूर्त को मूर्त रूप मे व्यक्त किया गया है।

(२) परस्पर सम्बन्धो की योजना—अमूर्त से मूर्त रूप मे परस्पर सबधो की योजना मे रूपक शैली का विस्तार ब्राह्मण ग्रन्थो और उपनिषदो मे भी मिलता है।

(३) दृष्टान्त-कथा-रूपक—अमूर्त को मूर्त रूपो से व्यक्त करने मे सबधो और कार्यकलापो की योजना प्रतीको मे होने से, अमूर्त जगत् के मूर्त रूपक दृष्टान्त-कथा-रूपक, का रूप धारण करने लगे। मानव का भावात्मक और आध्यात्मिक जगत् मूर्त जगत् के राजा और रानी की कथाओं के माध्यम से व्यक्त किया जाने लगा। इन कथाओ मे राजा और रानी भावात्मक का आध्यात्मिक पात्रो के प्रतीक मात्र होते है; अत उनकी कथा सकलित प्रतीको का एक विस्तृत रूपक बन जाती है। जिसका अभिप्राय कथा के अन्त मे स्पष्ट होता है। सम्भवत इस कारण से इन्हे "दृष्टान्त-कथा" माना गया और साथ ही रूपक होने से "दृष्टान्त-कथा-रूपक" नाम दिया गया। दृष्टान्त के अर्थ है. (दृष्ट + अन्त) अन्त मे दृष्टिगोचर होने वाला तथ्य। "इन कथाओ मे राजा और रानी की सम्पूर्ण कथा जान लेने के पश्चात् अन्त मे ज्ञात होता है कि राजा और रानी किन अमूर्त तत्वो के प्रतीक है। इन दृष्टान्त कथा-रूपको का प्रयोग उपनिषद् और भागवत आदि पुराण ग्रन्थो मे अधिकता से मिलता है।

(४) रूपक कथाएं—रूपक कथाओ मे अमूर्त पात्रो का स्वतत्र प्रयोग होता है। अमूर्त तत्व, अपने मूल रूप मे, मूर्त कल्पना से आरोपित मूर्त रूप धारण कर पात्र बन जाते है। इन रूपक कथाओ

का अभिप्राय प्रत्यक्ष और स्पष्ट होता है, प्रतीको के पीछे छुपा हुआ नही होता है।

४७ जैन धर्म मे प्राचीन काल से इन रूपक कथाओ का विशाल साहित्य उपलब्ध होता है। यह सस्कृत प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषो मे है और हिन्दी भाषा मे भी इसकी परम्परा पल्लवित एव विकसित हुई है¹।

४८ इस प्रकार प्रबोधचन्द्रोदय से पूर्व रूपक शैली का विकास, रूपक कथाओ तक ही हुआ था। इन रूपक कथाओ का प्रयोग नाटक की शैली मे नही हुआ था। अर्थात् रूपक शैली, रूपक कथाओ का रूप धारण करने के पश्चात् भी, प्रबोध-चन्द्रोदय से पूर्व, नाटकीय रूप मे विकसित नही हुई थी। रूपक शैली को नाटकीय रूप देने का श्रेय कृष्ण मिश्र को ही प्राप्त हुआ है। उनका प्रबोधचन्द्रोदय 'रूपक' शैली का प्रथम नाटक है।

४९ सस्कृत साहित्य मे रूपक शैली के विकास का अध्ययन करने पर हमे उसका विकास सर्वप्रथम आलकारिक रूप मे ही मिलता है।

आलकारिक रूप

५० मानव मे रूपकात्मक वर्णन की प्रवृत्ति पाई जाती है। रूपक शैली से वह अपने भावो को दूसरो को हृदयगम कराने मे सरलता से समर्थ होता है। रूपक शैली का आलकारिक रूप तो ससार के प्राचीनतम साहित्य-वेद सहिताओ म भी दीख पडता है। वहा सूक्ष्म-रहस्य को मूर्त रूपको के माध्यम से व्यक्त किया गया है :—

---

१. (अ) सस्कृत — १. 'उपमितिभव प्रपच कथा', सिद्धर्षि
२. 'मदनपराजय', नागदेव
३ 'मोहराज पराजय', यशपाल
(ब) प्राकृत — १. 'धर्मपरीक्षा', जयराम
२ 'कुमारपालप्रतिबोध', सोमप्रभाचार्य
(स) अपभ्रंश — १. 'मयण पराजय', हरदेव
२. 'धम्मपरिक्खा' हरिषेण
(द) हिन्दी — १. 'समयसार', कवि बनारसीदास
२. 'तेरहकाठिया', "
३. 'पंचेन्द्रियसंवाद', भैया भगवतीदास
४. मधुबिन्दुक चौपाई भगवतीदास

५१ सामवेद पूर्वार्चिक, आग्नेयकाण्ड, प्रथम प्रपाठक, नवमी दशति, नवम खण्ड के दशम मत्र मे मननशील आचार्य को उपासक का पिता और श्रद्धा को माता कहा गया है। (पितायत्कश्यपस्याग्नि श्रद्धामाता मनु कवि)। ऋग्वेद के सातवे मण्डल मे (७।१०४।२२) एक मत्र है जिसमे मोह व अज्ञान, क्रोध, मात्सर्य, काम, अभिमान व अहकार और लोभ इनको क्रमश उलूक, शुशलूक (भेडिया) कुत्ता, चिडा (पक्षी विशेष), गरुड और गृद्ध से उपमा दी गई है।[1] वेदो की आलकारिक रूपकात्मक शैली मे यम यमी सवाद आदि अनेक नाटकीय सवाद भी मिलते है। निरुक्त अध्याय २, खण्ड ४ मे विद्या ब्राह्मण से कहती है "हे ब्राह्मण तू मेरी रक्षा कर, मैं तेरी अक्षय निधि हू।"[2] यजुर्वेद मे मन की मूर्त्त व्यक्ति के रूप मे अनेक शक्तियों का वर्णन किया गया है।[3]

अमूर्त के मूर्त रूपक सम्बन्धो की योजना

५२ अमूर्त के मूर्त रूपको मे सम्बन्धो की योजना का विस्तार हुआ। यह रूपकात्मक शैली ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों मे भी मिलती है।

५३ शतपथ ब्राह्मण का, मनु, श्रद्धा व इडा का प्रसग रूपकात्मक शैली मे ही वर्णित है। मनु, श्रद्धा व इडा के सम्बन्धो और सम्बन्धित कार्यकलापो की उसमे विस्तृत योजना हे।[4] छान्दोग्य उपनिषद मे मानव की सद्-असद् प्रवृत्तियो का विरोध, देवो और असुरो के परस्पर शत्रु-सम्बन्ध मे व्यक्त किया गया है। देवासुर सग्राम के रूप मे ज्ञानेन्द्रियो का सद्-असद् सग्राम वर्णित हुआ

---

१. उलूक यातु शुशुलूकयातुजहिश्वयातुभुतकोकयातुम्।
सुपर्णायातुमुत गृधयातुं वृष देव प्रमृण रक्ष इन्द्र।

२. "विद्या हवै ब्राह्मणम आजगाम गोपायमा शेवधिष्टे"

३. सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीषुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठ यदजिर यविष्ठं तन्मेमनः शिवसकल्पमस्तु।
——यजुर्वेद, अध्याय ३४। मंत्र ६।

४. (अ) जल-प्लावन का वर्णन——शतपथ ब्राह्मण के प्रथम काण्ड के आठवें अध्याय मे मिलता है।

(ब) श्रद्धा के साथ मनु सृष्टि प्रारम्भ करने का प्रयत्न करते है: श्रद्धा देवो वै मनुः (का० १ प्र० १४ १५)।

(स) इडा की उत्पत्ति और मनु से वार्तालाप का प्रसंग शतपथ ब्राह्मण में (शतपथ ६, प्र० ३ ब्रा०) मिलता है।

है।[1] "परम आध्यात्मिक ज्ञान" की उपासना के अभाव मे, यदि मानव ज्ञानेन्द्रियों देव (सत्) को असुर (असत्) पर विजयी बनाना चाहता है तो असुर (असत्) उसे पाप से युक्त किये ही रहते है। किन्तु जब मानव ज्ञानेन्द्रियो के देवता (सत् प्रवृत्ति) से विशुद्ध ज्ञान रूप उद्गीथ की उपासना करने लगता है, तब असुरो का नाश स्वय हो जाता है।[2]

५४ महाभारत के आदि पर्व मे (६६, १४, १५) धर्म की दस पत्नियां मानी गई है। यह पत्नियां कल्पित और आलकारिक ही है। इनके नाम है—कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, मति आदि।[3] इसके अतिरिक्त इसी आलकारिक रूप मे धर्म के तीन पुत्रो और तीन पुत्रो की तीन वधुओ का सकेत है। धर्म के ये तीन पुत्र शम, काम, और हर्ष है, जो ससार को अपने प्रताप से धारण करते है।[4] काम की पत्नी रति है, शम की पत्नी प्राप्ति और हर्ष की पत्नी नन्दा है।[5] इस प्रकार इन ग्रन्थो मे पूर्ण और विस्तृत

---

१. छान्दोग्योपनिषद्--प्रथम अध्याय का द्वितीय खण्ड--

तेवासुर ह वै यत्र सपेतिर उभये प्राजापत्यास्तद्ध देवा उद्गीथमाजह्रुरने नैनानभिभविष्याम इति ॥१॥

तेहनासिक्य प्राणमुद्गीथमपासांचक्रिरेत हासुरा पाप्मना विविधुस्तस्मा-तेनोभयंजिघ्रतिसुरिभि च दुर्गन्धि च पाप्याना ह्येषा विद्धिः ॥२॥

अयहत्वाचमुद्गीथम् . वदति सत्य चानृत च पाप्मना ह्येषा विद्धः ॥३॥
वाणी . . . . ॥३॥ (सत्य, असत्य)।
चक्षु . . . . . ॥४॥ (दर्शनीय अदर्शनीय)।
श्रोत्र . . . . . ॥५॥ (श्रवणीय अश्रवणीय)।
मन . . . . . ॥६॥ (संकल्पनीय, असकल्पनीय)।

२. अथ ह एवाय मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथ मुपासाचक्रि रे तहासुरा ऋत्वा विदध्वसुर्य याश्मानमारवणभृत्वाविध्व सेत ॥७॥

३. कीर्तिर्लक्ष्मी धृतिर्मेधा, पुष्टिः श्रद्धा क्रिया तथा।
बुद्धिर्लज्जामतिश्चैव पत्नयो धर्मस्य ता दश।
द्वाराण्येतानि धर्मस्य, विहितानी स्वयम्भुवा। (६६.१४.१५)

४. त्रयस्तस्य वराः पुत्रा· सर्वभूत मनोहरा।
शम· कामश्चहर्षश्च तेजसा लोकधारिणाः ॥६६–३२॥

५ कामस्य तु रतिभार्या शमस्य प्राप्तिरगना।
नन्दा तु भार्या हर्षस्य यासुलोका प्रतिष्ठिता ॥६६–३३॥

आलकारिक रूप मे सम्बन्धो की योजना मिलती है, जिनमे काव्य सौष्ठव ही विशेष है।

दृष्टान्त कथा रूपक

५५ रूपकात्मक शैली का विकास दृष्टान्त-कथा-रूपक के रूप मे हुआ। इन दृष्टान्त-कथा-रूपको मे सूक्ष्म आध्यात्मिक तत्वो की व्याख्या अनेक प्रकार से होने लगी। उपनिषद् और भागवतादि पुराण ग्रन्थो मे अनेक दृष्टान्त-कथा-रूपक मिलते है।

५६ छान्दोग्य उपनिषद् के षष्ठ प्रपाठक[1] के तेरहवें और चौदहवे खण्ड मे श्वेतकेतु अपने पिता से कहते है कि आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध मे मुझे और अधिक स्पष्ट करके समझाइये। तब उनके पिता एक राजा के बालक की कथा सुनाकर, सूक्ष्म आध्यात्मिक तत्व की व्याख्या करते हैं। इस कथा मे एक राजा के बालक को चोर पकड कर वन मे ले जाते है। उसके वस्त्राभूषण सब उससे छीन लेते है और आखो पर पट्टी तथा शरीर को रज्जु मे बाध कर चले जाते हैं। भयकर वन मे अकेला बालक दु खी होता, रोता और भटकता है। ऐसे समय मे उसे एक साधु सहायता करता और मार्ग बताता है। उस मार्ग का अनुसरण करने से वह बालक क्रमश अपने गन्तव्य स्थल पर पहुच जाता है। प्रस्तुत कथा मे सत् चैतन्यदेव राजा है, चिदाभास जीव बालक है। सस्कार और अभ्यास रूप दो तस्कर है। अज्ञान रूप पट्टी है, तृष्णा रूप रज्जु है। वन ससार है।

५७ श्रीमद्भागवत पुराण मे (चौथे स्कन्ध के २५ से २९वें अध्याय मे) वर्णित राजा पुरजन की प्रसिद्ध कथा है। उसमे जीव और परमात्मा के सूक्ष्म आध्यात्मिक व्याख्या है। यह कथा एक राजा की कथा है। प्राचीन काल मे एक राजा वर्हिष थे, जो यज्ञादि कर्मकाण्ड मे फसे रहते उनका ध्यान भक्ति मे नही लगता

---

१. छान्दोग्य षष्ठ प्रपाठक---तेरहवां खण्ड

सय एषोऽणिमैतदात्म्यमिद सर्वं तत्सत्य स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एवं मा भगवन् विज्ञापयात्विति तथा सौम्येति होवाच ॥३॥
छान्दोग्य षष्ठ प्रपाठक में चतुर्दशः खण्ड।

यथा सौम्य पुरुषं गन्धारेभ्योऽभिनद्धाक्षमनीय तं ततोऽति जने विसृजेत्स यथा तत्र प्राङ्वा उदङ्वाऽधराङ्वाप्रत्यङ्वाप्रध्मायीताभिनद्धाक्ष आनीतोऽभिनद्धाक्षो विसृष्टः ॥१॥

तस्य यथा अभिहतं प्रमुच्य---सम्यत्स्य इति ॥२॥

था। नारद जी ने दया करके राजा को उद्धार का उपाय बताया।[1] उद्धार का उपाय समझाने के लिए अनेक दृष्टान्त दिये है। इन दृष्टान्तो मे, दृष्टान्त-कथा-रूपक राजा पुरञ्जन की कहानी है। राजा पुरञ्जन-जीव का रूप है और उसका मित्र अविज्ञात ईश्वर का रूप है।[2] राजा अपने मित्र से पृथक् होकर भटकता है। मोह मे पडा हुआ, वह दुख भोगता है। उसके भटकने और दुख भोगने की एक लम्बी कहानी है, जिसमे उसके विवाह, राज्यशासन आदि का वर्णन भी है। अन्त मे उसका मित्र अज्ञात ही भक्ति के उपाय से उसे मोक्ष के मार्ग पर अग्रसर कर देता है।[3] इस कथा का अभिप्राय है कि जीवात्मा ईश्वर से अलग होकर, शरीर मे अपने स्वरूप को भूली हुई रहती है, अनेक दुख उठाती है। अन्त मे ईश्वर की भक्ति उपासना से ही उसका मोक्ष होता है।

५८ इस प्रकार दृष्टान्त-कथा-रूपको मे रूपक शैली का विकास हुआ। प्रतीको की सहायता से दृष्टान्त-कथा-रूपक मे सूक्ष्म अदृश्य जगत् की अप्रत्यक्ष व्याख्या विस्तार मे होने लगी।

रूपक कथा

५९ रूपक शैली का पूर्ण विकास रूपक कथाओ के रूप मे हुआ। प्रथम दो प्रकारो मे रूपक शैली का सक्षिप्त रूप था। तृतीय प्रकार मे प्रतीक और अभिप्राय की, कथा के अन्त मे होने वाली व्यजना किन्ही अशो मे बाधक ही थी, क्योकि इस व्यजना को स्पष्ट करने की आवश्यकता बनी रहती थी। अत सक्षिप्तता और अस्पष्टता को छोडकर रूपक कथाओ के रूप मे रूपक शैली पूर्ण रूप मे विकसित हुई। सूक्ष्म आध्यात्मिक जगत् के उपकरण को ही मूर्त रूप देकर रूपक कथा की सृष्टि होने लगी, जिससे न तो सक्षिप्तता रही, न अस्पष्टता ही रही।

---

१. प्राचीन बर्हिष क्षत्र. कर्म स्वासक्तमानसम्।
नारदोऽध्यात्मतत्त्वज्ञ. कृपालु प्रत्यबोधयन्॥३॥

२. आसीत्पुरजनो नाम राजा राजन् बृहच्छवा:।
तस्याविज्ञातनामाऽऽसीत्सखाविज्ञातचेष्टित.॥१०॥
——श्रीमद्‌भागवत——चतुर्थस्कन्ध पचविंशोअध्याय:।

३. पुरुषं पुरजन विद्याद् व्यनकत्यात्मन पुरम्।
एकद्वित्रिचतुष्पाद बहुपादमपादकम्॥२॥
योऽविज्ञाताहृतस्तस्य पुरुषस्य सखेश्वर:।
यन्न विज्ञायते पुम्भिर्नामभिर्वा क्रिया गुणे.॥३॥
——श्रीमद्‌भागवत——चतुर्थस्कन्ध एकोनत्रिंशोऽध्याय:।

६० बौद्ध धर्म[1] और जैन धर्म मे रूपक कथाओं का विशाल साहित्य उपलब्ध होता है। दसवी और ग्यारहवी शताब्दी के लगभग जैन साहित्य मे कुछ रचनाओ के नाम मिलते हैं—सन् ९०५ ई० (स० ९६२) मे श्रीयुत सिद्धर्षि सूरि की 'उपमिति भव प्रपच कथा' नामक सस्कृत रचना[2] और स० १०४४ के पूर्व कविवर जयराम की प्राकृत रचना 'धम्म परिक्खा' उपलब्ध होती है।[3]

६१ 'उपमिति भव प्रपच कथा' रूपक शैली मे लिखा गया एक वृहत् काव्य ग्रन्थ है जिसे काव्यात्मक उपन्यास कहा जा सकता है। इस वृहत् काव्य रचना मे अनेक भावात्मक रूपक कथाये है। इन रूपक कथाओ के काव्यात्मक वर्णनो मे कही-कही नाटकीयता मिलती है, किन्तु इससे उसे नाटक नही कहा जा सकता। वह एक वृहत् वर्णनात्मक काव्य ग्रन्थ है। इसमे जीव के ससार परिभ्रमण और कष्ट सहन का वर्णन रूपक कथाओ के द्वारा किया गया है। लेखक ने ग्रन्थ की भूमिका मे ही, ग्रन्थ के ज्ञानोपदेश को बहुमूल्य भेषज, ग्रन्थ की कथा को साधारण कठौती से उपमा देकर रूपक शैली मे नाटकीय ढग से कहा है—"सब लोग इन औषधियो को ग्रहण करने लगे, इसका अब एक ही सर्वोत्तम उपाय है। वह यह कि लोगो मे खचाखच भरे हुए इस राजा के आगन मे इन तीनो भेषजो को एक बडी भारी कठौती मे (लकडी के पात्र मे) रखकर तुझे एक ओर विश्वास करके बैठ जाना चाहिए, ऐसा करने स जो लोग तेरी दरिद्रता का स्मरण करके तेरे पास से औषधिया नही लेने है, परन्तु यथार्थ मे उन्हे चाहते है, वे शून्य स्थान देखकर स्वय ले लेवेगे।[4]

---

१. जातक कथाओ का सकेत--
अपभ्रश साहित्य, हरिवंश कोछड, पृष्ठ ३३४।
मदनपराजय की भूमिका--'रूपक कथा साहित्य'।

२ BIBLIOTHECA INDICA A Collection of Oriental Works Published by the Asiatic Society of Bengal New Series No 1089, originally Edited by the Late Peter Peterson, M A and continued by Professor Dr. Hermann Jacobi Published in 1904.

३. 'अनेकान्त' पत्रिका का लेख--'रूपक काव्य परम्परा'--परमानन्द शास्त्री अप्रैल १९५७ का अंक, वीर सेवा मन्दिर, देहली।

४. (अ) 'उपमिति भवप्रपंच कथा' का हिन्दी अनुवाद, प्रथम प्रस्ताव--नाथूराम प्रेमी, पृ० ४९–५०।

६२ जैन सिद्धान्त के अनुसार सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र से ही सांसारिक प्रपचो मे फसे हुए जीव का मोक्ष सम्भव है। इन तीनो रत्नो से युक्त कथा को लेखक ने जीव उद्धार के लिए लिखकर राजा रूपी ईश्वर के आंगन रूप संसार मे रख दिया है। 'उपमिति भव प्रपच कथा' के नाम से स्पष्ट है, कि इस कथा मे भव-ससार के प्रपचों का उपमाओ के द्वारा वर्णन है।

६३ जैन श्वेताम्बर मतानुयायी सिद्धर्षि मुनि ने यह छन्दोबद्ध काव्य ग्रन्थ आठ प्रस्तावो मे लिखा है। प्रथम प्रस्ताव मे रचना का उद्देश्य वर्णित है और अन्य प्रस्तावो मे जैन सिद्धान्त को हृदयगम कराने के हेतु अनेक रूपक कथाये हैं। द्वितीय प्रस्ताव मे रूपक बाधते हुए कवि ने लिखा है—"ससार नाटक मे राग और द्वेष नाम के दो मृदग है और दृष्टाभिसन्धि (बुरे परिणाम) नाम का पुरुष उनको बजाता है। क्रोध, मान आदि सुन्दर कण्ठ के गवैये है। महामोह सूत्रधार नाटक का प्रवर्तक है, रागाभिलाष नान्दी मगल का पढने वाला है, काम नामक विदूषक है, जो अनेक प्रकार की, हावभाव कटाक्षादि युक्त चेष्टाएँ करता है— कृष्ण, नील, कपोत, पीत, पद्म और शुक्ल, लेश्या नाम के रग-विरगे शृगार है जिनसे पात्र सजाये जाते है। सचित्र शीतादि योनिया नाटक मे प्रवेश करने वाले पात्रो की नेपथ्य भूमिया (सजकर आने का स्थान) है। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह सज्ञा नामक काशिका (झाझि) है, लोकाकाश नाम की विशाल रगभूमि है, और पुद्गल स्कन्ध नाम की शेष सामग्रिया (दीगर चीजे) है। इस तरह इस सारी सामग्रियो से परिपूर्ण नाटकगृह मे वह कर्मपरिणाम राजा नाना प्रकार के पात्र सजाता है। उन्हे बार-बार लौटता पलटता है, किसी को कुछ

(ब) अथ निश्चित्य गर्भार्थं कार्यस्येत्यमभाषत।
एक एवात्र हेतु. स्याद् ग्राहणे सर्वसश्रय.॥५२॥
राजाजिरे विधायेदं काष्ठापात्र्यां जनाकुले।
वस्तुत्रयं विशालायां तिष्ठ विश्रब्धमानसः॥५३॥
स्वयमेव ग्रहीष्यन्ति शून्य दृष्ट्वा तदर्थिनः।
स्मरन्तो रोरभावं हि त्वत्कारात्ते न गृह्णते॥५४॥
आवद्यात् कश्चिदेकोऽपि यदि तत्सगुणो नरः।
तेन स्यात्तारितो मन्ये यत एतदुदाहृतम्॥५५॥
किंचिज्ज्ञानमयं पात्रं किंचित्पात्रं तपोमयम।
आगमिष्यति तत्पात्रं यत्पात्रं तारयिष्यति॥५६॥

बनाता है, किसी को कुछ। और यो उन सबको हैरान करके आप मुदित होता है।'

६४. इस प्रकार 'उपमिति भवप्रपच कथा' वर्णनात्मक और औपन्यासिक ही है। कथा मे रूपकतत्व पात्रो मे भावात्मकता और प्रतीकात्मकता है।' इससे

---

१. (अ) 'उपमिति भव प्रपंच कथा' का हिन्दी अनुवाद—द्वितीय प्रस्ताव नाथूराम प्रेमी, पृष्ठ ७–८।

(ब) 'उपमिति भवप्रपंच कथा' के द्वितीय प्रस्ताव पृष्ठ १५१

संसारनाटकं चित्रं नाटयत्येष लीलया।।
रागद्वेषाभिधानौ द्वौ मुरजौ तत्र नाटके।
दुष्टाभिसन्धिनामा तु तयोरास्फालको मतः।।
मानक्रोधादिनामानो गायनाः कलकण्ठकाः।।
महामोहाभिधानस्तु सूत्रधारप्रवर्तकः।।
भोगाभिलाषसञ्ज्ञोऽत्र नान्दीमंगलपाठकः।
अनेकविब्बोककर· कामनामा विदूषकः।।
कृष्णादिलेश्यानामानो वर्णकाः पात्रमण्डनाः।
योनिः प्रविश्यत्पात्राणा नेपय्य व्यवधायकम्।।
भयादिसंज्ञा विज्ञेयाः कंशिकास्तत्र नाटके।
लोकाकाशोदरा नाम विशाला रंगभूमिका।।
पुद्गलस्कन्धनामान. शेषोपस्करसंचयाः।
इत्थं समग्रसामग्रीयुक्ते नाटकपेटके।।
नानापात्रपरावृत्त्या सर्वलोकविडम्बनाम्।
अपरापररूपेण कुर्वाणोऽसौ प्रमोदते।।

२. (क) 'उपमितिभव प्रपंच कथा' के तृतीय प्रस्ताव—पृ० २१० शुभ परिणाम नाम के राजा के राज्य का वर्णन—

रागद्वेषमहामोहक्रोधलोभमदभ्रमाः।
कामेर्ष्याशोकदैन्याद्या ये चान्ये दुःखहेतवः।।
+ + +
तेषामुद्दलनं राजा स कुर्वन्नवतिष्ठते।।
ज्ञानवैराग्यसंतोषत्यागसौजन्यलक्षणाः।
+ + +
तेषां स राजा सततं परिपालनतत्परः।

ज्ञात होता है कि संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय से पूर्व जो रूपक शैली अलकार की शैली मात्र मे व्यवहृत थी, वही आवश्यकतानुसार दृष्टान्त-कथा-रूपको और विस्तृत

धीधृतिस्मृतिसवेगशमाद्यैः परिपूर्यते।
भाण्डागार यतस्तस्य गुणरत्नैः प्रतिक्षणम्॥

अर्थात् राग, द्वेष, महा, मोह, क्रोध, लोभ, मद, भ्रम, काम, ईर्ष्या, शोक और दैन्य आदि तथा दूसरे जो दुख के कारण है उनका विनाश करता हुआ वह शुभपरिणाम राजा अवस्थित रहता है।. . ज्ञान, वैराग्य, सन्तोष, त्याग और सौजन्य आदि, जो सुख के कारण हैं, उनकी रक्षा वह राजा सदा किया करता है। . . .बुद्धि, धैर्य, स्मृति, संवेग और शम आदि गुण रत्नो से उसका भाण्डागार सर्वंव पूर्ण रहता है।

(ख) 'उपमिति भव प्रपच कथा' के तृतीय प्रस्ताव मे पृ० २२९ सम्राट् महामोह का वर्णन है--

. . . .यतोऽस्य देवस्य रागकेसरिणो बालाबलादीनामपि सुप्रतीतोऽनेकाद्भुतकर्मा भुवनत्रयप्रकटिताभिधानो महामोहो जनकः। तथाहि--

महामोहो जगत्सर्वं भ्रामयत्येष लीलया।
शक्रादयो जगन्नाथा यस्य किकरता गताः॥
+ + +
रागकेसरिणो दत्वा तता राज्य विचक्षणः।
महामोहोऽधुना सोऽयशेते निश्चिन्तता गत.॥
तथापीव जगत्सर्वं प्रभावेण महात्मनः।
तस्यैव वर्ततेऽन्न कोऽन्य स्यादस्य पालक.॥
तदेषोऽद्भुतकर्तव्य प्रसिद्धोऽपि जगत्रये।
महामोहनरेन्द्रस्ते कथ प्रष्टव्यता गत॥

अर्थात् राग केसरी का जनक महामोह बच्चो और स्त्रियो तक मे प्रसिद्ध तथा अनेक आश्चर्यजनक कार्यों का सम्पादक है उसका नाम त्रिलोकी मे प्रसिद्ध है। वह लीला-पूर्वक तीनो लोको मे भ्रमण करता है। इन्द्रादि लोकपाल भी इसके सेवक हैं। . . . .यद्यपि वह मेधावी महामोह सम्प्रति अपने पुत्र राग को राज्य देकर निश्चिन्त हो सो रहा है, फिर भी उसी के प्रभाव से इस जगत का व्यवहार चल रहा है। उसे छोड़ कर इस ससार का स्वामी और कौन है। अतः तुमने अद्भुत कर्मा नरेन्द्र महामोह से प्रश्न कैसे किया?

रूपक कथाओ के रूप मे विकसित हुई। किन्तु नाटकीय रूप मे इसका प्रथम प्रयोग कृष्ण मिश्र के नाटक सस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय मे ही मिलता है। अत कहा जा सकता है कि रूपक शैली का नाटकीय प्रयोग कृष्ण मिश्र की मौलिक उद्भावना है।

प्रबोधचन्द्रोदय की पूर्ववर्ती नाटक प्रणाली का स्वरूप

६५ प्रबोधचन्द्रोदय की रचना रूपक शैली मे ईसा की ग्यारहवी शताब्दी मे हुई। इससे पूर्व सस्कृत भाषा मे नाटक साहित्य का विकास हो चुका था। भास, कालिदास और अश्वघोष की अमर रचनाए नाटक साहित्य को समृद्ध कर चुकी थी। इस पूर्ववर्ती समृद्ध नाटक साहित्य मे रूपक शैली के प्रयोग का क्या स्वरूप था, उसका परिचय प्रबोधचन्द्रोदय की पूर्ववर्ती नाटक प्रणाली के अध्ययन मे ही ज्ञात हो सकता है।

६६ सस्कृत का प्रथम नाटककार कौन था? भास या अश्वघोष? इस प्रश्न के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद मिलता है। किन्तु भास प्रामाणिक अनुसधान के आधार पर, अब ईसा पूर्व की पाचवी शताब्दी के सिद्ध हो चुके है,[1] अत भास

---

१. विद्वानो का एक दल अश्वघोष, भास और कालिदास के नाटकों की प्राकृत-भाषा की तुलना कर समय की दृष्टि से अश्वघोष को प्रथम, भास को द्वितीय तथा कालिदास को तृतीय स्थान देता है। (कीथ--हिस्ट्री आफ सस्कृत लिट० पृ० ८० सस्कृत ड्रामा--पृ० ९४) इसके अतिरिक्त ये विद्वान कालिदास (चौथी ई० श०) और भास की प्राकृत मे अत्यधिक साम्य और कालिदास के द्वारा भास का उल्लेख किये जाने के कारण, भास को कालिदास का निकट पूर्ववर्ती--और भास के ग्रन्थो में अश्वघोष के ग्रन्थो की अपेक्षा अत्यन्त अर्वाचीन प्राकृत शब्दों के रूप पाये जाने के कारण (कीथ--हिस्ट्री आफ सं० लि०--पृ० ८२) भास को अश्वघोष का दूरतर पश्चात्वर्ती (कीथ--संस्कृत ड्रामा, पृ० ९३) स्वीकार करते हैं। किन्तु प्रामाणिक अनुसंधानो के आधार पर कालीदास ई० पूर्व की प्रथम शताब्दी के सिद्ध हो चुके हैं (देखिए--काल निर्णय कालीदास)। कालिदास ने अपने नाटक 'मालविकाग्निमित्र' की प्रस्तावना मे भास की प्रशंसा सफल नाटककार के रूप में की है। जिससे भास ई० पू० के सिद्ध होते है। इस मत के समर्थक विद्वानों का दल अनेक प्रमाणों जैसे कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायण के एक श्लोक के उल्लेख पाये जाने के आधार पर, भास को कौटिल्य से पूर्ववर्ती अर्थात् ई० पू० पांचवी शताब्दी का मानता है। (बलदेव उपाध्याय स० सा० का इतिहास,

को ही सस्कृत नाटक साहित्य का प्रथम उपलब्ध नाटककार मानना उचित प्रतीत होता है । भास के नाटक 'प्रतिज्ञायोगन्धरायण', 'स्वप्नवासवदत्तम्', 'उरुभग', 'बालचरित्र', 'दूतघटोत्कच', 'दूतवाक्य', 'कर्णभार', 'मध्यामव्यायोग', 'पचरात्र', 'अभिषेक नाटक', 'प्रतिमानाटक', 'अविमारक' और 'चारुदत्त' आदि हैं। इन नाटको का सम्बन्ध इतिहास-प्रसिद्ध उदयन, महाभारत और रामायण तथा सुप्रसिद्ध किवदन्तियो से है । भास के 'बालचरित' नाटक मे हमे कुछ रूपकात्मकता का आभास मिलता है।[1] इसमे जब यमुना पार ले जाकर, वसुदेव बालकृष्ण को, नन्द को सौपते है, तब वह बालक इतना भारी हो जाता है, कि उसे लेकर नन्द को आगे चलना कठिन लगता है। उस समय कृष्ण के दिव्य अस्त्र तथा वाहन मानव रूप मे उपस्थित होते है। किन्तु ऐसे स्थल पर, रूपकात्मकता नही मानी जा सकती। हम यहा दिव्य तत्वो के बीच है और दिव्य तत्वो की दिव्यता ही है कि वे चाहे जिस रूप मे प्रस्तुत हो सकते है, जहा कवि द्वारा रूपक कल्पित हुआ हो, रूपक वही हो सकता है ।

६७ 'बालचरित' के द्वितीय अक मे कस की दशा का वर्णन है । इस वर्णन मे भी रूपकात्मकता है । इसमे 'शाप' तथा 'राज्यश्री' स्वय पात्र रूप मे प्रवेश करते है। ये पात्र ठीक वैसे ही है जैसे प्रबोधचन्द्रोदय के विवेक और मोह आदि। इनका प्रसग यो है कि कस के पास जाने के हेतु, 'शाप' चाण्डाल के वेष मे मुण्डो की माला पहने हुए, महल मे प्रवेश करना चाहता है । महल का दरबान मधूक उसे द्वार पर ही रोकता है। चाण्डाल वेषी 'शाप' अपनी शक्ति से, उसे बलपूर्वक हटा कर, महल के मध्य मे पहुच जाता है। उसी समय कस के विशाल राज्य वैभव की प्रतीक 'राज्यश्री' स्त्री पात्र के रूपक मे उपस्थित होकर उसे रोकती है। चाण्डाल उससे कहता है कि मुझे क्यो रोकती हो मैं विष्णु की अनुमति से ही जाना चाहता हूँ। इस उत्तर से राज्यश्री स्वय हट जाती है और उसे जाने देती है। चाण्डाल रूप मे शाप कस के पास जाकर उसमे प्रवेश कर जाता है। जिसके प्रभाव से कस की व्याकुलता बढने लगती है ।

६८ प्रस्तुत वर्णन मे 'शाप' और 'राज्यश्री' आदि अमूर्त तत्वो का पात्र रूप मे उपस्थित होना, रूपक शैली का नाटकीय प्रयोग है । इस प्रकार भास के 'बालचरित' नाटक मे कतिपय पात्र ही रूपक पात्र है। सम्पूर्ण नाटक रूपक

पृ० ४३९ पर निर्दिष्ट टी० गणपति शास्त्री का मत) यही मान्यता हमें भी उचित प्रतीत होती है।

१. कीथ--सस्कृत ड्रामा, पृष्ठ ९८, ९९।

नहीं है। अतएव प्रबोधचन्द्रोदय से पूर्व रूपक शैली मे कतिपय भावतात्विक पात्रों का नाटकीय प्रयोग ही मिलता है। इसे प्रबोधचन्द्रोदय की शैली का बीज माना जा सकता है। पर इसकी सीधी परम्परा स्थापित नही हुई, अत यह निश्चित-पूर्वक नही कहा जा सकता कि यही बीज प्रबोधचन्द्रोदय मे पल्लवित हुआ। भास के सम्बन्ध मे कितने ही विद्वानो ने कितने ही प्रकार के सन्देह किये है। इस ऐतिहासिक दृष्टि से भी इस प्रसग से भास के नाटको का विशेष महत्व नही है।

६९ भास के उपरान्त कालिदास आते है। कालिदास मे सस्कृत नाटक का चरम विकास हुआ है। कालिदास[1] का समय ई० पू० प्रथम शताब्दी के लगभग का माना गया है।[2] कालिदास के नाटक 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय', 'अभिज्ञान शाकुन्तल' आदि है। 'मालविकाग्निमित्र' नाटक मे—सम्राट अग्निमित्र और मालविका की—, 'विक्रमोर्वशीय' नाटक मे उर्वशी और सम्राट विक्रम की, 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' नाटक मे—सम्राट दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रणय कथा है। तीनों नाटकों मे भावतात्विक रूपक शैली के पात्रो का प्रयोग नही है। शकुन्तला नाटक के चतुर्थ अक मे रूपकात्मक का कुछ आभास अवश्य मिलता है। शकुन्तला की विदा की तैयारिया होती है, उस समय वन के वृक्षो मे मे किसी ने चन्द्रमा के सदृश्य शुभ्र क्षोभ (रेशमी वस्त्र), किसी ने लाक्षारस और किसी

---

१. कालिदास के सम्बन्ध मे बहुत मतभेद मिलते है। कुछ विद्वान तो काव्य रचयिता और नाटक रचयिता कालिदास को एक नहीं मानते। इसी कारण कालिदास के काल-निर्णय करने मे भी बहुत विवाद और भ्रम मिलता है। अब तक वीर विक्रमादित्य के अस्तित्व में भी सन्देह किया जाता था (कीथ––हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर, पृ० ७४–८२, मैकडोनल–हिस्ट्री आ० सं० लि०, पृ० ३२५) अब स्थित सुधरी है। अब इतिहासकार ई० पू० प्रथम शती में विक्रम का अस्तित्व मानने लगे है और कालिदास को भी उनका राज्य कवि माना जाने लगा है। (स० सा० इति० बलदेव उपा० पृ० १४४, डा० राजबलि पाण्डेय)। अश्वघोष को कालिदास का ऋणी सिद्ध कर दिया गया है। (डेट आफ कालिदास'––क्षेत्रेश-चन्द्र चट्टोपाध्याय, रीप्रिन्ट फ्राम द इलाहाबाद यूनी०, स्टडीज भाग २) १९२६ (पृ० ८२–१०६) कालीदास से संबधित, ई० पू० प्रथम शती० का, प्रयाग मे भीटा नामक स्थान पर एक पदक प्राप्त हुआ है। (सन् १९०९–१० ई० के भारतवर्ष के पुरातत्व विभाग सबधी अनुसंधान के वार्षिक विवरण के पृष्ठ ४०, ४१ पर प्रकाशित (अत:) हम भी इसी परम्परा को मान्यता देते है।

२. बलदेव उपाध्याय––संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० १४६।

ने (कोमल किसलय रूपी वन देवता के करतलो के द्वारा) आभूषणो का दान दिया है। जब शकुन्तला वन-वृक्षों से अनुमति लेकर चलना चाहती है, तब कोकिल के शब्दो मे वन-वृक्ष उसे अनुमति देते हैं। उसके पश्चात् आकाशवाणी के रूप मे वन देवता का आशीर्वाद शकुन्तला को मिलता है। लतायें पीले पत्तो के रूप मे आसू बहाती है। किन्तु यह रूपकात्मकता नही है। वृक्षादि, वृक्ष रूप मे ही ये व्यापार करते है। इसमे अमूर्त एव भावतात्विक पात्र रूपक शैली मे प्रयुक्त नही हुए है।

७० कालिदास के अनन्तर सस्कृत साहित्य मे जिन नाटककारो की नाट्य-कृतिया हमे आज उपलब्ध है, उनमे शारिपुत्र प्रकरण (शारद्वावपुत्र प्रकरण) के रचयिता महाकवि अश्वघोष ईसा की प्रथम शताब्दी मे थे, यह पुष्ट प्रमाणो[1] के आधार पर सिद्ध हो चुका है। यद्यपि कुछ विद्वानो ने कालिदास को गुप्तयुगीन और भास को उनके निकट पूर्ववर्ती मानकर अश्वघोष को सस्कृत साहित्य के प्रथम

---

१. (क) विद्वानो ने अश्वघोष को कनिष्क (ई० की प्रथम शताब्दी का समकालीन माना है। (कीथ के इतिहास पृ० ५५ पर निर्दिष्ट -Cf Smith, EHI pp 272ff, Foucher L'Art Greco-Bouddhique, ii 484ff 506 ff जो कनिष्क का समय लगभग ८१ ई० मानते हुए, शक सवत् को मौर्य सम्वत् की पाचवी शताब्दी का प्रारम्भ मात्र समझते है। Cf D R Sahni, JRAS 1924 pp 399ff

(ख) प्रो० ल्यूडर्स ने तुरफान से शारिपुत्र प्रकरण की प्रति को प्राप्त किया था (कीथ-सस्कृत ड्रामा, पृ० ८०, ८१ पर निर्दिष्ट --For the Fragments see Luders, Bruchstucke buddhistischer Dramen (1911)
प्रो० ल्यूडर्स मे प्राप्त प्रति की रचना को कनिष्क या हुविष्क के समय की स्वीकार किया है। (डा० व्यास--सस्कृत कविदर्शन पृ० ४२ पर निर्दिष्ट)

(ग) डा० कीथ ने एक कवि मातृचेट को अश्वघोष से प्रभावित सिद्ध किया है--(कीथ--संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ६४ पर निर्दिष्ट--Cf Thomas, ERE Viii 495, इसके अतिरिक्त पृ० ६६ पर निर्दिष्ट --Gawronski, Studies about the Sansk Buddh Lit, pp 49ff मातृचेट कवि कनिष्क के समय मे वर्तमान थे) बलदेव उपाध्याय का इतिहास पृ० १७९ पर निर्दिष्ट-इण्डियन एण्टिक्वेरी मे भाग ३२, १९०३, पृ० ३४५।

नाटककार होने के गौरव से मण्डित करने का प्रयास किया है।[1] किन्तु इनसे पूर्व भास (ई० पू० ५वी शती० मे) और कालिदास (ई० पू० प्रथम शती) की स्थिति अनुसंधान के पुष्ट प्रमाणो के आधार पर निश्चित हो चुकी है।[2] इसलिए अश्वघोष को संस्कृत साहित्य का तीसरा नाटककार मानना हमे उचित प्रतीत होता है। इनका एक नाटक शारिपुत्र प्रकरण (शारिद्वाव पुत्र प्रकरण) नाम से मिलता है। इस नाटक मे शारिपुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय कुमार महात्मा बुद्ध से शिक्षा ग्रहण करता है। इस नाटक की तुरफान से प्राप्त हस्तलिखित प्रति मे भावतात्विक रूपक शैली मे लिखे हुए चार पृष्ठो की एक खण्डित प्रति उपलब्ध होती है। उस प्रति मे धृति, दया, क्षमा आदि रूपक पात्र के रूप मे उपस्थित होकर परस्पर वार्तालाप करती है। रूपकात्मक भावतात्विक पात्रो के प्रयोग की यह शैली प्रबोधचन्द्रोदय से समता रखती है। इस खण्डित प्रति से रचना के पूर्ण स्वरूप का, लेखक के रचनाकाल आदि का पता नही लगता है। डा० कीथ आदि विद्वानो ने अध्ययन के आधार पर खण्डित प्रति को अश्वघोषकृत स्वीकार किया है।[3] और डा० जान्सटन ने बुद्धचरित के अंग्रजी अनुवाद की भूमिका मे इस प्रति को अश्वघोषकृत ही सिद्ध किया है।[4]

७१ इस प्रकार भास और अश्वघोष की रचनाओ मे कतिपय रूपक पात्रो का प्रयोग किया गया है। दोनो की रचनाओ मे रूपक शैली के पात्रो का प्रयोग

---

१. कीथ--संस्कृत ड्रामा (अ) पृ० ९३, ९४।

(ब) नाटककारों का क्रम अश्वघोष, पृ० ८०, भास पृ० ९१, कालिदास, पृ० १४३।

२. देखिये कालनिर्णय--भास, कालिदास।

३. कीथ--संस्कृत ड्रामा, पृ० ८३

There is no evidence of their authorship, other than the fact that they appear in the same manuscript as the work of Acvaghose, and that they display the same general appearance as the work of that writer That they are Acvaghosa's is much more probable than that they are the work of some unknown contemporary.

४. कीथ--संस्कृत ड्रामा, पृ० ८४

"but the fragments are too short to give us any real information on the general trend of the play"

मिलने से अनुमान होता है कि रूपक शैली के नाटकीय प्रयोग की कोई पूर्ववर्ती परम्परा रही होगी। किन्तु पुष्ट प्रमाणो का अभाव होने से इस पूर्ववर्ती परम्परा का कोई स्वरूप स्थिर करना सम्भव नही है।

७२ अश्वघोष की रचनाओ के पश्चात् सस्कृत नाटक साहित्य मे शूद्रक कृत 'मृच्छकटिक' नामक एक प्रसिद्ध सामाजिक नाटक मिलता है। इसके रचयिता (शूद्रक) के सम्बन्ध मे सन्देह होने मे[1] कीथ महोदय ने अपने अनुमान द्वारा मृच्छकटिक को भास के पश्चात् और कालिदास के पूर्व का सिद्ध किया है। उन्होने कालिदास को चौथी शताब्दी का स्वीकार करके, कालिदास द्वारा उल्लिखित रौमिल्ल सौमिल्ल से मृच्छकटिक के रचयिता का सम्बन्ध जोडने की कल्पना की है। किन्तु कालिदास की स्थिति चौथी शताब्दी मे मानना निर्मूल सिद्ध हो चुकी है और मृच्छकटिक ईसा की पाचवी शताब्दी उत्तरार्द्ध या छठी शताब्दी पूर्वार्द्ध मे निर्मित[2] माना जाता है।

---

१. मृच्छकटिक नाटक की प्रस्तावना मे शूद्रक की मृत्यु का संकेत होने के कारण (मृच्छकटिक प्रथम अक, पद्य ३, ४, ५) शूद्रक को रचयिता मानने के सम्बन्ध में विद्वानो मे मतभेद है। (कीथ--सस्कृत ड्रामा--पृ० १२८, १३१), (मैकडोनल-सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ३६१) ये विद्वान प्रसिद्ध नाटककारोसे मृच्छकटिक के रचयिता का सम्बन्ध जोडते है। किन्तु पुष्ट प्रमाणो के अभाव मे किये गये अनुमानो की मान्यता की अपेक्षा *यही सम्भव प्रतीत होता है कि* लोक-प्रिय सामाजिक नाटक होने से (शूद्रक द्वारा) रचना के पश्चात् किसी प्रतिलिपि-कार के द्वारा प्रमादवश अथवा अभिनयकर्ता के द्वारा दर्शको के सूचनार्थ, शूद्रक की मृत्यु के श्लोक मृच्छकटिक की प्रस्तावना मे सम्मिलित कर दिये गये हैं।

२. (क) मैकडोनल ने सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ३६१ पर छठीं ई० श० रचनाकाल स्वीकार किया है।

(ख) 'मृच्छकटिक' निश्चय ही भास के 'दरिद्रचारुदत्त' का उपबृंहित सस्करण है (कीथ-सस्कृत ड्रामा, पृ० १२८) अतः भास के समय ई० पू० पांचवीं शताब्दी के अनन्तर ही इसकी रचना हुई होगी यह असन्दिग्ध है। इधर ईसा की आठवीं शताब्दी मे उत्पन्न वामन के द्वारा शूद्रक का मृच्छकटिक के लेखक के रूप में उल्लेख इस बात का साक्ष्य है कि इसकी रचना ८वीं ई० श० पूर्व हो चुकी थी। (कीथ---संस्कृत ड्रामा--पृ० १२८)। इसके अतिरिक्त 'मृच्छकटिक' के लेखक ने नवम अंक मे बृहस्पति को 'अंगार कविरुद्धस्य' (मृच्छकटिक ९।३३) कहा है, जो कि वराहमिहिर के पूर्व का मान्य सिद्धान्त था। वराहमिहिर की मृत्यु ५८९ ई०

अतः पांचवी ई० उत्तरार्द्ध (या छठी पूर्वार्द्ध) के मृच्छकटिक का सम्बन्ध, ई० पू० प्रथम शताब्दी मे स्थित कालिदास के उल्लेख से स्वीकार करना सम्भव नही है। जिससे मृच्छकटिक का स्थान संस्कृत नाटक साहित्य मे कालक्रमानुसार भास, कालिदास और अश्वघोष के पश्चात् स्वीकार करना ही न्याय-सगत है। मृच्छकटिक नाटक मे ब्राह्मण चारुदत्त और गणिका वसन्तसेना के प्रणय की कथा है। इसमे भाव-तात्विक रूपक शैली के पात्रो का प्रयोग नही है।

७३ सामाजिक नाटक मृच्छकटिक की रचना के अनन्तर संस्कृत नाटक साहित्य मे एकमात्र प्रसिद्ध राजनैतिक नाटक 'मुद्राराक्षस' का प्रणयन हुआ। विशाखदत्त ने इसकी रचना ई० की छठी शताब्दी मे की थी।[1] नाटक की कथा कूट-

---

मे हुई थी। (बलदेव उपाध्याय, पृ० ४६१) अतः मृच्छकटिक का रचनाकाल उसके भी पूर्व सिद्ध होता है। इस नाटक मे चित्रित सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियो के आधार पर भी विद्वानो ने (डा० व्यास—संस्कृत कवि दर्शन, पृ० २८१) इसे पाचवीं श० उत्तरार्द्ध और छठी शताब्दी पूर्वार्द्ध की रचना माना है। अन्तरग और बहिरंग प्रमाणों के आधार पर यही मान्यता उचित है।

१. 'मुद्राराक्षस' के रचनाकाल के सम्बन्ध मे विद्वानों मे मतभेद है। इस सम्बन्ध मे ईसा की चौथी शताब्दी से पाचवी, छठी या नवीं ई० शताब्दी तक विचार किया गया है। किन्तु अधिकांश विद्वानो ने अनेक प्रमाण देते हुए ईसा की छठी शताब्दी को इसका रचनाकाल स्वीकार किया है। इस मतभेद का आधार मुद्राराक्षस के अन्तिम श्लोक के 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः' पार्थिवोदन्तिवर्मा, पार्थिवोऽवन्तिवर्मा आदि पाठ भेद है। तेलग (तेलग्स इन्ट्रोडक्शन टू हिज एडीशन आफ मुद्राराक्षस) ने तीसरे पाठभेद को प्रामाणिक मानते हुए अवन्ति वर्मा को राजा हर्ष (६०६–६४८ ई०) के बहनोई ग्रहवर्मा का पिता बताया है। जिससे ग्रहवर्मा के पिता का समय छठी ई० शताब्दी उत्तरार्द्ध होने से रचनाकाल भी छठी ई० शता० का उत्तरार्द्ध ही हुआ। मैकडानल SKT Lit p 365) तथा रैप्सन (JRAS. 1900 p. 535) भी यह मत स्वीकार करते है। इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध इतिहासकार विन्टरनिट्ज़ ने विशाखदत्त की दूसरी रचना 'देवीचन्द्र गुप्तम्, के आधार पर उनका समय छठी ई० शता० माना है। (Winternits) ('Historical Dramas in Sanskrit Lit Krishnaswamy Aiyangar com Vol. p 360) द्रष्टव्य संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ० १९०-१९१। इस प्रकार अनेक प्रमाणों के आधार पर विशाखदत्त का रचनाकाल ईसा की छठी शता० मानना उचित

नीतिज्ञ आचार्य चाणक्य के महान् राजनैतिक कार्यो से सम्बन्धित है। विशाखदत्त की दूसरी रचना 'देवीचन्द्रगुप्तम्' चन्द्रगुप्त द्वितीय के जीवन से सम्बन्धित है। दोनो नाटको मे भावतात्विक रूपकात्मक शैली के पात्रो का प्रयोग नही है।

७४ मृच्छकटिक के पश्चात् हर्षवर्धन की महत्वपूर्ण नाट्य कृतिया सस्कृत-नाटक-साहित्य के क्षेत्र मे अवतीर्ण होती है। हर्षवर्द्धन का समय सातवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना गया है।[1] रत्नावली की प्रियदर्शिका और नागानन्द इनकी ये तीन रचनाये है।[2] 'रत्नावली' मे—उदयन और रत्नावली की, 'प्रियदर्शिका' मे—उदयन और प्रियदर्शिका की प्रणय कथा है। नागानन्द एक बौद्ध आख्यान है। इन तीनो मे रूपक-शैली के पात्रो का प्रयोग नही मिलता है।

७५ हर्षवर्द्धन के कुछ काल पश्चात् आठवी शताब्दी पूर्वार्द्ध मे आविर्भूत

प्रतीत होता है। डा० कीथ ने रत्नाकर (नवीं ई० शता०) द्वारा किये गये उल्लेख के आधार पर विशाखदत्त के रचनाकाल की अन्तिम तिथि नवीं ई० श० स्वीकार (कीथ–संस्कृत ड्रामा २०४) करते हुए भी, उसके इससे पूर्व की रचना होने की संभावना को स्वीकार किया है।

१. हर्षवर्धन कन्नौज और स्थानेश्वर का सम्राट था। इसका राज्यकाल विद्वानो ने निश्चित रूप से ६०६ से ६४८ ई० माना है। (कीथ––संस्कृत ड्रामा, पृ० १७० पर निर्दिष्ट––M Ettinghausen Harsa Vardhana. Louvain, 1905, S P Pandit, Gandavaho, pp cvii ff, K M. Panikkar Shri Harsha of Kanauj, Bombay, 1922.
अत हर्षवर्धन का रचनाकाल भी सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही मानना न्याय-युक्त है।

२ कुछ विद्वान् हर्ष की कृतियो को उनके स्वय की रचना मानने में शंका करते है। (कीथ––सस्कृत ड्रामा, पृ० १७१, मैकडोनल––सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ३६२) उनकी शका का आधार मम्मट के द्वारा काव्य प्रयोजन प्रतिपादक कारिका के अर्थ कृते प्रत्येक की वृत्ति मे उल्लिखित 'श्री हर्षादेर्धावकादीनामिवधनम्' यह वाक्य ही है। जिसका कि वास्तविक अर्थ हर्ष के द्वारा धावक आदि कवियो को धन की प्राप्ति होना है। इस वास्तविक अर्थ में कल्पना-मात्र के द्वारा सन्देह करके कि हर्ष ने धन देकर धावक से रचनाए करवायी थीं––हर्ष को कृतित्व के अधिकार से वचित करना, उनके दान मे स्वार्थ की शंका करना, अनुचित है। प्रामाणिक विरोध के अभाव मे हमे हर्ष की कृतियो को उनकी ही रचना स्वीकार करना मान्य प्रतीत होता है।

महाकवि भवभूति ने तीन नाटको – 'मालतीमाधव', 'महावीर चरित' और 'उत्तर रामचरित' का प्रणयन किया है।[1] 'मालतीमाधव, मे मालती और माधव की प्रणय कथा है। 'महावीर चरित' मे रावण राम के नाश का उपक्रम करता है। 'उत्तररामचरित' मे सीता के द्वितीय बार वन जाने की कथा है। इस नाटक मे कुछ रूपक पात्रो का प्रयोग है, जैसे तमसा और मुरला नदिया पृथ्वी वनदेवता, वासन्ती (बनदेवी) आदि है। किन्तु ये रूपक पात्र प्रबोधचन्द्रोदय के रूपक पात्रो से भिन्न है। इनमे मूर्त जड पदार्थों की मानवीय कल्पना का पात्रो मे आरोप है। प्र० च० की भाति अमूर्त तत्व की मूर्त कल्पना पात्रो मे आरोपित नही है। इससे कहा जा सकता है कि प्र० च० की यह भावतात्विक रूपक शैली का प्रयोग नही है। प्रसगवश प्रकृति के उपकरणो का रूपक शैली के पात्रो के रूप मे प्रयोग किया गया है।

७६ आठवी ई० शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे 'उत्तर रामचरित' के रचयिता भवभूति के अनन्तर, आठवी शता० के पूर्वार्द्ध मे भट्टनारायण ने 'वेणी सहार' नाटक

---

१. (क) मैकडोनल-इतिहास, पृष्ठ ३६३।

(ख) कल्हण की राजतरंगिणी के सर्ग ४, श्लोक १४४ से पता चलता है कि भवभूति और वाक्पति राजा यशोवर्मा के राज्याश्रय प्राप्त कवि थे तथा काश्मीर के राजा ललितादित्य ने यशोवर्मा को ७३६ ई० के लगभग परास्त किया था (कीथ-सस्कृत ड्रामा, पृ० १८६) इस मान्यता का आधार सूर्यग्रहण की घटना है। वाक्पति राज ने अपने गौड़वाहो की ८२९वीं गाथा मे सूर्यग्रहण का उल्लेख किया है। जो कि याकोबी के मतानुसार १४ अगस्त ७३३ मे हुआ था। (बलदेव उपाध्याय, इतिहास, पृ० ५०४) गौडवाहो मे ललितादित्य के द्वारा यशोवर्मा के परास्त किये जाने की घटना का वर्णन नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि यशोवर्मा ७३३ ई० के पश्चात् ७३६ ई० के लगभग परास्त हुआ होगा औ उसका राज्य-काल ७३६ ई० तक रहा होगा। इसी से वाक्पतिराज के गौड़वाहो का रचनाकाल ७३३ के निकट पश्चात का निश्चित हो जाता है। वाक्पतिराज ने इसी गौड़वाहों के पांचवें सर्ग की ७९९ की गाथा में भवभूति की प्रशंसा (भवभूति जलनिधि-निर्गतकाव्यामृतरसकण) की हैं। (कीथ, पृ० १८७, बलदेव उपाध्याय, पृ० ५०६) जिससे भवभूति का आठवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में होना पुष्ट प्रमाणो के आधार पर मान्य है। किन्तु डा० कीथ ने यशोवर्मा का राज्यकाल ७३६ ई० तक स्वीकार करते हुए भी उसके राजाश्रय में वर्तमान साहित्यिक भवभूति को ७००वीं ई० श० का सिद्ध किया है, यह मान्य प्रतीत नहीं होता है।

की रचना की।[1] 'वेणी सहार' नाटक महाभारत की कथा से सम्बन्धित है। भट्टनारायण ने अपने इस नाटक मे भावनात्विक रूपक शैली के पात्रों का प्रयोग नही किया है।

७७ ईमा की नवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे मुरारि ने 'अनर्घराघव' नाटक का प्रणयन किया।[2] इसमे रामायण की कथा है और भावतात्विक रूपक शैली के पात्रा का प्रयोग नही है।

७८ नवी शताब्दी*तक अनेक नाटककारों की रचनाओं से सस्कृत साहित्य

---

१. (क) नवी शताब्दी मे वर्तमान आचार्य आनन्दवर्द्धन ने अपने ध्वन्यालोक में वेणीसंहार' के 'कर्ता द्यूतच्छलानाम्' पद्य को ध्वनि के उदाहरणार्थ उद्धृत किया है। (बलदेव उपाध्याय इतिहास, पृ० ४८८; कीथ–सस्कृत ड्रामा, पृ० २१२ पर एडीशन, के० एम, पृ० ८०, १५०)। वामन, पजिनका समय ८वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध प्रमाण सिद्ध हे, ने भी अपने काव्यालंकार मे 'बेणीसहार' के 'पतित बेत्स्यसि क्षितौ' वाक्य को उद्धृत कर 'बेत्स्यसि' पद पर विचार किया है। (बलदेव उपाध्याय-इतिहास, पृ० ४८८; कीथ--सस्कृत ड्रामा, पृ० २१२ पर निर्दिष्ट–वामन, चतुर्थ, ३ २८। अतः भट्टनारायण का समय ८वीं ई० शता० के निकट पूर्व या पूर्वार्द्ध का स्वीकार करना न्याय-सगत है।

(ख) कीथ महोदय ने (सस्कृत ड्रामा मे पृ० २१२ पर) भट्टनारायण का समय आठवी से पूर्व और मेकडानल ने ताम्रपत्र के आधार पर ८४० ई० अर्थात् आठवी शताब्दी पूर्वार्द्ध (इतिहास पृ० ३६६) स्वीकार किया है।

२ महाकवि रत्नाकर ने (कीथ--संस्कृत ड्रामा पृ० २२५ पर निर्दिष्ट)--
XXXVIII 68 For his date of Buhler Kashmir Report, p. 42.
See Bhattanathe Svamin, IA xli 141 Levi, TI i 277

अपने 'हर विजय' महाकाव्य के सर्ग ३८ के श्लोक ६७ में बलदेव उपाध्याय, पृ० ५२५) श्लेषालकार के द्वारा मुरारि का उल्लेख एक नाटककार के रूप मे किया है। रत्नाकर का समय नवीं शताब्दी मध्यकाल था। (कीथ---संस्कृत ड्रामा---२२५) अत मुरारि का रत्नाकर से पूर्ववर्ती मानना अर्थात् नवीं ई० शता० पूर्वार्द्ध का स्वीकार करना समीचीन है।

*टिप्पणी--प्राकृत भाषा मे रूपक नाटक--'आगमाडम्बर' जयन्तभट्ट ने ९वीं ई० शताब्दी मे लिखा था--

--Dr. Sita Bhatt Thesis Introduction---

There is another allegorical play called Agamadambara

के समृद्ध हो जाने के पश्चात् दसवी ई० शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे राजशेखर[1] ने अपनी नाटक रचनाओ से संस्कृत भारती की शोभा को बढाया। राजशेखर के चार नाटक 'बालभारत', 'बालरामायण', 'विद्धशालभंजिका', 'कर्पूरमंजरी', आदि हैं। 'बालभारत' मे द्रौपदी का विवाह द्यूतसभा और द्रौपदी अपमान की कथा है। बालरामायण मे रामायण की कथा है। 'विद्धशालभंजिका' मे विद्याधर और मृगांकवती की तथा 'कर्पूरमंजरी' मे राजा चण्डपाल और कुन्तल कुमारी कर्पूरमंजरी की प्रणय कथा है। नाटकों मे भावनात्विक रूपक शैली के पात्रो का प्रयोग नही है।

७९ रूपक शैली के पात्रों के प्रयोग से रहित दिङ्नाग की रचना भी दसवी शताब्दी मे मिलती है।[2] इस रचना 'कुन्दमाला' मे सीता बनवास की कथा है।

८० इस प्रकार ईसा पूर्व की पाचवी शताब्दी से लेकर ईसा की दसवी शताब्दी

---

by Jayanta, which is still in manuscript If this Jayanta is identical with author of the Nyayamanjari then this play belongs to the 9th C A D

१ 'बालरामायण' की प्रस्तावना श्लोक १८ (बल्देव उपाध्याय, पृ० ५२८) से यह विदित होता है कि राजशेखर कन्नौज के प्रतिहार वंशी राजा महेन्द्रपाल के आश्रित कवि थे। महेन्द्रपाल के समय के दो संकेत मिलते है--एक सन् ८९३ ई० और दूसरा ९०७ ई० का है। (कीथ--संस्कृत ड्रामा, पृ० २३२) कुछ दिनों तक अन्य राजा के आश्रित रहने के बाद पुनः महेन्द्रपाल के पुत्र महीपाल के सभासद हुए। जिसका वर्णन सन् ९१४ ई० से मिलता है। (कीथ--संस्कृत ड्रामा, पृ० २३२) इस आधार पर राजशेखर की रचना का समय दसवी ई० शताब्दी पूर्वार्द्ध का सिद्ध होता है। किन्तु निश्चित ज्ञात न होने के कारण हम नवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध से दसवीं ई० शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक का मान सकते हैं।

२. डा० वेदव्यास ने और भनौत ने (इन्ट्रोडक्शन टू कुन्दमाला एडिटेड वेदव्यास और भनौत, लाहोर १९३१) कुन्दमाला के रचयिता दिङ्नाग को प्रसिद्ध बौद्धाचार्य दिङ्नाग से अभिन्न मानकर 'कुन्दमाला' की रचना ५वीं शताब्दी मे माना है। उनका यह भी कहना है कि भवभूति (८वीं शताब्दी) उत्तररामचरित में कुन्दमाला से प्रभावित हुए हैं। परन्तु के० ए० सुब्रह्मण्य अय्यर ने (कुन्दमाला और उत्तररामचरित--के० ए० सुब्रह्मण्य अय्यर Pro. of Conf १९३३, पृष्ठ ९१-९७ (इस आधार पर उपयुक्त मत को निराधार घोषित किया है कि कुन्दमाला मे वैदिक धर्म और दर्शन का प्रभाव दृष्टिगत होने से वह बौद्धाचार्य

तक के नाटको मे, प्र० च० की पूर्ववर्ती नाटक प्रणाली के सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि रूपक पात्रो के प्रयोग से युक्त, कोई पूर्ण नाटक इससे पूर्व उपलब्ध नही है।[1]

८१ भास के नाटक बालचरित मे कतिपय पात्र-रूपक शैली के है किन्तु पूर्ण नाटक रूपक शैली का नही है। कालिदास के नाटको मे भी रूपक शैली है, परन्तु भावतात्विक पात्रा का प्रयोग नही है। अश्वघोष के शारिपुत्र प्रकरण नाटक के साथ तुरफान मे खण्डित रूप मे किसी अन्य नाटक के चार पृष्ठ मिले हैं। जिनमे, बुद्धि, धृति जैसे रूपक पात्रो का प्रयोग है। ये अश्वघोष के लिखे भी हो सकते है। यह भी सम्भव है कि किसी अन्य नाटककार के हो। फिर भी सब कुछ देखकर यह तो कहा ही जा सकता है कि ये प्रबोधचन्द्रोदय से पूर्व के अवश्य है। इससे यही कहा जा सकता है कि कुछ प्रयोग उस काल मे भी हुआ, पर परिपाटी नही बन सकी।

८२ अश्वघोष के पश्चात् भवभूति की रचना उत्तररामचरित मे रूपक पात्रो का प्रयोग तो हुआ, है पर ये रूपक पात्र गगा, तमसा तथा मुरला नदिया है। जिन्हे नदी होते हुए भी मानव रूप मे प्रस्तुत होते देख रूपकत्व माना जा सकता है, पर यदि गगा की भाति तमसा और मुरला को भी देवी मान लिया जाय तो रूपक का आरोप नही हो सकेगा। पृथ्वी और गगा की भाति वे देवी रूप मे दिव्य मानव शरीर धारण कर दृष्टिगोचर हो सकती है। साथ ही ये पात्र प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के भावात्मक रूपकात्मक पात्रो के समान नही है। इसी प्रकार सस्कृत के अन्य नाटककारो ने भी (प्रबोधचन्द्रोदय नाटक की रचना के पूर्व) भावतात्विक रूपक पात्रो के प्रयोग का पूर्ण नाटक, या कतिपय भावतात्विक रूपक पात्रो का प्रयोग नाटक मे नही किया है। अत सस्कृत नाटक साहित्य मे रूपक नाटको की परम्परा प्रबोधचन्द्रोदय से पूर्व नही चली। प्रबोधचन्द्रोदय भावतात्विक, आध्यात्मिक और रूपकात्मक शैली का सर्वप्रथम नाटक है।

दिङनाग की कृति नहीं हो सकती। वास्तव में इसका रचयिता कोई और ही विङनाग या धीरनाग है।

इस नाटक के उद्धरण सर्वप्रथम भोजदेव (१०१८ से १०६०) ने और उसके बाद रामचन्द्र-गुणचन्द्र (११०० ई०) ने नाट्य दर्पण मे उद्धृत किये हैं। अतः भोजदेव के पूर्व अर्थात् १०वीं शताब्दी के अन्तिम भाग मे इसकी रचना हुई थी। वह निश्चित है। (चन्द्रशेखर पाण्डेय--सस्कृत साहित्य की रूपरेखा, (पृष्ठ २१५, २१६)।

१. प्राकृत भाषा के रूपक नाटक 'आगमाडम्बर' का भी निश्चित समय ज्ञात नहीं है।

प्रबोधचन्द्रोदय से पूर्ववर्ती नाटक-प्रणाली

संख्या	समय	नाटककार	नाटक	अमूर्त तथा अमानवी भाव तत्वों का मूर्तिकरण तथा मानवीकरण
१	२	३	४	५
१	ई० पू० ५वी शताब्दी	भास	बालचरित पञ्चरात्र, अभिषेक नाटक, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, उरुभग, स्वप्नवासवदत्तम, दूतघटोत्कच, कर्णभार, मध्यम, व्यायोग, प्रतिमा आदि।	१. शाप (चाडाल के रूप मे) २ राजश्री
२	ई० पू० प्रथम शताब्दी	कालिदास	अभिज्ञान शाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय	वन वृक्ष, वनदेवता
३	ईसा की प्रथम शताब्दी	अश्वघोष	शारिपुत्र प्रकरण—खण्डित प्रति	धृति, दया, क्षमा
४	५वी या छठी ई०शताब्दी	शूद्रक	मृच्छकटिक	—
५	छठी ईसवी शताब्दी	विशाखदत्त	मुद्राराक्षस	—
६	७वी ईसवी शताब्दी	हर्षवर्द्धन	रत्नावली, प्रियदर्शिका, नागानद	—
७	८वी ई० श० पूर्वार्द्ध	भवभूति	उत्तररामचरित, मालतीमाधव, महावीरचरित	तमसा, मुरला नदिया, पृथ्वी। वनदेवता, वासती
८	" " "	भट्टनारायण	वेणीसहार	—
९	९वी ई० श० पूर्वार्द्ध	मुरारि	अनर्घराघव	—
१०	१०वी ईसवी शताब्दी	राजशेखर	बालभारत, बालरामायण, विद्धशालभजिका, कर्पूरमजरी	—
११	" " "	दिङ्नाग	कुन्दमाला	—

संस्कृत नाटक साहित्य में प्रबोधचन्द्रोदय का स्थान

८३ पूर्ववर्ती नाटक साहित्य में सर्वप्रथम भास के नाटक 'बालचरित' में 'शाप' और 'राज्यश्री' आदि रूपक पात्रों का प्रयोग मिलता है। कालिदास के शकुन्तला नाटक में और भवभूति के 'उत्तररामचरित' में रूपक-शैली का प्रयोग है किन्तु रूपक शैली के भावात्मक पात्रों का प्रयोग नहीं है। अश्वघोष के नाटकों के साथ कुछ पन्ने रूपक नाटक शैली के है। अभी तक उन कुछ पन्नों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि इस शैली का क्या रूप उस समय स्थिर हुआ था। कुछ विद्वानों का मत है कि प्रबोधचन्द्रोदय से पूर्ववर्ती, इस प्रकार की कोई साहित्यिक परम्परा रही होगी, जिसका अनुकरण कृष्ण मिश्र ने किया। किन्तु अश्वघोष के पश्चात् रूपक-शैली के भावात्मक पात्रों का प्रयोग सस्कृत नाटकों में न मिलने से, वे विद्वान दूसरी सम्भावना यह करते है कि सम्भवत अश्वघोष के पश्चात् वह परम्परा लुप्त हो गई हो और कृष्ण मिश्र ने मौलिक कृति की सृष्टि करके उसे पुनरुज्जीवित किया हो।[1] फिर भी उन्हे पूर्व परम्परा का होना अधिक सम्भव प्रतीत होता है। किन्तु पुष्ट प्रमाणों के अभाव मे विद्वानो ने परम्परा के विषय का सदिग्ध ही छोड दिया है। इस सदिग्ध स्थिति मे भी उनका मत प्रबोधचन्द्रोदय की मौलिकता स्वीकार करने के पक्ष मे अधिक है।[2]

८४ वास्तव मे कृष्ण मिश्र ने आध्यात्मिक दृष्टि से अमूर्त भावो की रूपक रचना से युक्त नाटक मौलिक रूप मे प्रस्तुत किया है। इस रूपक नाटक मे गभीर दार्शनिक ज्ञान जनसुलभ हो गया है। उसमे मोक्ष की गहन समस्या वैसे ही मूर्त, स्पष्ट और सर्वसुलभ हो गई है, जैसे निर्गुण ब्रह्म साकार सगुण रूप मे जनसाधारण के लिए अनुभव गम्य हो जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि भावात्मक रूपक पात्रों

---

१. अश्वघोष--कीथ, पृष्ठ ८४।

"It must remain uncertain whether there was a train of tradition leading from Acvaghosa to Krishnamisra or whether the latter created a type of drama afresh, the former theory is more likely."

2 Keith—page 251

"We can not say whether Krishnamisra's Prabodhacandrodaya was a revival of a form of drama, which had been practised ragularly if on a small scale since. Acvaghosa or whether it was a new creation as may easily have been the case."

को लेकर पूर्ण परिपाक से लिखी इस कृति से समस्त सस्कृत साहित्य की नाटक परम्परा मे नाट्यशिल्प नाटक चरित्र-चित्रण, नाटक मे अभिप्राय गुम्फन सभी मे एक क्रान्ति दिखाई दी, यह एक अनोखी किन्तु सफल प्रयत्न था।

८५ इस प्रकार हम कह सकते है कि प्रबोधचन्द्रोदय से पूर्ववर्ती सस्कृत नाटक साहित्य मे प्रबोधचन्द्रोदय की शैली के सूत्र ही मिलते है, रूप (रूपक नाटक) नही मिलता है, किन्तु कथा काव्यों मे रूपक-शैली के भावतात्विक पात्रो का प्रयोग किया गया है। दसवी ई० शताब्दी का सिद्धर्षि कृत ग्रन्थ 'उपमिति भवप्रपच कथा' रूपक शैली के भावतात्विक पात्रो के प्रयाग से युक्त है। इसका परिचय रूपक शैली के विकास मे दिया जा चुका है। डॉ० जयदेव ने प्रबोधचन्द्रोदय को इसी रूपक कथा-काव्य का अनुकरण माना है।[1] किन्तु प्रबोधचन्द्रोदय को केवल इस रूपक कथा-काव्य मात्र का अनुकरण मानना, इस मौलिक नाटक के साथ अन्याय सा प्रतीत होता हे। इतना ही तथ्य मान्य प्रतीत होता है कि 'उपमितिभवप्रपच कथा' के रूपक शैली के विकसित रूप ने कृष्ण मिश्र को प्रभावित किया था।[2] उन्हे रूपक शैली के प्रयोग की प्रेरणा दी थी। इस रूपक कथा काव्य मे अनेक रूपक कथाए भरी पड़ी है। जो कथाए वर्णनात्मक, विस्तृत और उलझी हुई है। इन रूपक काव्यात्मक कथाओं को सक्षिप्त स्पष्ट नाटकीय रूप देना, भावात्मक पात्रो के मूर्त-चरित्रो मे नाटकीय विशिष्टता ला देना, रूपक-शैली के नाटकीय रूप मे ही अध्यात्मिक, सैद्धान्तिक एव सामयिक धर्मदर्शन को समन्वित कर देना, सरस साहित्यिक छन्दो का प्रयोग, कृष्ण मिश्र की अपनी मौलिकता है। इसमे कृष्ण मिश्र को अनुकरण कर्ता न कहकर, मौलिक रचना के प्रणयनकर्त्ता का श्रेय देना उचित ही प्रतीत होता है।

८६ प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के अध्ययन से भी यही ज्ञात होता है कि किसी एक चली आती हुई परम्परा का अनुकरण कृष्ण मिश्र ने नही किया था। ये वेद, उपनिषद, षटदर्शन पुराण आदि ग्रन्थो के प्रकाण्ड पण्डित थे। इसी विद्वता के प्रमाण

---

1 "There existed however another work (upmiti) which appears to me to have served as a perfect model for this drama"

2. "This first fully fledged allegorical novel of sidharsi, though essentially different in character from Prabodhachandrodaya ...may well have suggested or been a source of inspiration for the latter"

Thesis part ii, Chapter iii,—Dr. Jai Dev.

स्वरूप वे कीर्तिवर्मा के राज्यसभा में गुरु के सम्मान से समादृत थे। उन्होंने अपने अध्ययन एव मनन से पूर्ववर्ती साहित्य को आत्मसात कर लिया था। आत्मसात ज्ञान को युग परिस्थिति के कल्याणार्थ, मौलिकता प्रदान करने की अद्भुत प्रतिभा कृष्ण मिश्र मे थी। इसी मौलिक प्रतिभा से कृष्ण मिश्र ने प्रबोधचन्द्रोदय का प्रणयन किया। मौलिकता से समन्वित होने के कारण ही प्रबोधचन्द्रोदय शैली मे लिखे हुए, प्रथम नाटक के रूप मे आज भी अपनी कीर्ति बनाये हुए है।[1] युगो से परिवर्तित परिस्थितिया उसे खण्डित नही कर सकी है। अनेक भाषाओ के अनुवादको द्वारा यह अनूदित भी हो चुका है।

प्रबोधचन्द्रोदय की परवर्ती संस्कृत परम्परा

८७ प्रबोधचन्द्रोदय ने नाटक क्षेत्र मे एक नयी शैली की स्थापना की, यह नयी शैली बाद के नाटक कर्त्ताओ को अनुकरण करने योग्य प्रतीत हुई। अत उसके अनुकरण पर अनेक नाटको की रचनाए हुई है। सस्कृत साहित्य मे प्रबोधचन्द्रोदय की इस परवर्ती परम्परा का प्रारम्भ १३वी ई० श० मे यशपाल के 'मोहराजपराजय'[2] नामक नाटक से हुआ प्रतीत होता है। यह आरम्भ, इस प्रकार मूल से लगभग दो शताब्दियो के उपरान्त हुआ।

८८ १३वी ई० श० मे 'मोहराजपराजय' नाटक की रचना (रूपक शैली मे) जैन धर्म के प्रचार के उद्देश्य से यशपाल[3] ने की। इस नाटक मे यह दिखाया गया है कि किस प्रकार प्रसिद्ध जैन गुरु हेमचन्द्र की कृपा से राजा कुमारपाल ने जैन धर्म का पालन किया और (हिसा, जुआ, आदि की प्रथा को हटाते हुए) मोहराज

---

१. मैकडोनल के विचार--

"One of the most remarkable product piece of theologico-philosophical purport in which practically only abstract notions and symbolic figures act as persons, it is remarkable for dramatic life and vigour "

---History of Sanskrit Literature—A. A. Macdonell, London 1905, page 367

२. 'मोहराजपराजय'--यशपाल, गायकवाडा सीरीज, नं० ९

३. यशपाल--चक्रवर्ती अजयदेव (१२२९-१२३२ ई०) के विशेष कृपापात्र थे। नाटक का अभिनय भी उनके ही राजत्व काल मे यात्रा महोत्सव के अवसर पर हुआ था। ---प्रथम अंक, पृष्ठ ३

को जीत लिया। यह वर्णन रूपक नाटक शैली में हुआ है। इस नाटक में कुमारपाल और हेमचन्द्र आचार्यादि मानव-पात्रो के साथ भावतात्त्विक रूपक पात्रों को भी प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार इसमे मिश्र शैली का उपयोग है। कथानक में दो पक्षो का सघर्ष दिखाया गया है। एक ओर राजा कुमारपाल हैं, उनके सहायक हैं ज्ञानदर्पण विवेकचन्द्र आदि भावतत्वी पात्र तथा राजा को हेमचन्द्र से योग रूपी कवच मिला हुआ है।[1] दूसरी ओर है इनका प्रतिपक्षी महामोह अपने दलबल सहित। कुमारपाल इन्हे पराजित करने मे सफल होता है। कुमारपाल की विजय व्यवस्था प्रस्तुत करते हुए तत्कालीन जैन धर्म का वर्णन किया गया है। नाटकीय गुणो की दृष्टि से नाटक मे सरसता और सरलता है। भावतात्विक[2] पात्रो की कथा मे सजीवता है एव प्रभावशाली गति है। इस नाटक के कतिपय स्थलो मे प्रबोधचन्द्रोदय के कितने ही भावो का अपूर्व साम्य पाया जाता है।[3]

८९. सस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय की परवर्ती परम्परा मे दूसरी महत्वपूर्ण कृति

---

१ अमात्यः--देव! प्रसादनाम्नो राजपुरुषस्य हस्ते प्रहितमिदं गुरुणा श्री-हेमचन्द्रेण भवतो युद्धश्रद्धालुमनसो योगशास्त्रं नाम वज्रकवचम्। अमुना हि संवृतसर्वांगो न म्रियते रिपुप्रहरणपरंपराभिः।

(अंक ५, पृ० १२३)

२. मोहराजपराजय--भावतात्विक रूपक शैली के उदाहरण--अंक, ५, पृ० १३१-३२ "मोहराजः--(सविलक्षं) कुमार रागकेसरिन्। वत्सद्वेषगजेन्द्र। राजन्मदनदेव। अमात्य पापकेतो। भद्रा कलिकन्दलादयः। मोहमहाराजः खल्वहं न शत्रुपक्षभक्षनयित्वा शस्त्रं प्रतिसंहरामि।"

३. प्रबोधचन्द्रोदय से भाव साम्य--

(क) मोहराजपराजय--अर्द्धांगे गिरिजां बिभर्ति गिरिशो विष्णुर्वहत्यन्वहं
शस्त्रश्रेणिमथाक्षसूत्रवलयधत्ते च पद्मासनः।
--अंक ५, श्लोक ५६।

प्रबोधचन्द्रोदय, प्रथम अंक, श्लोक २८

(ख) मोहराजपराजय--किंचित्कुन्दप्रसवधवलं किंचिदुन्मेषधीरं
किंचिल्लोलभ्रमरमधुरं किंचिदाकुंचिताक्षम्।
किंचिद्भावालसमसरलं प्रेक्षितं कामिनीनां
शस्त्रं दृष्ट्वा मम रणमुखे वैरिणो विद्रवन्ति ॥६०॥
--पृष्ठ १३१

प्रबोधचन्द्रोदय, प्रथम अंक, श्लोक १२।

'संकल्प सूर्योदय' के रूप मे उपलब्ध होती है। 'संकल्प सूर्योदय' रामानुज सम्प्रदाय के प्रकाण्ड पण्डित कवितार्किक चक्रवर्ती, महाकवि वेंकटनाथ[1] का प्रतिष्ठित रूपकात्मक नाटक है। इसमे रामानुज के मान्य सिद्धान्त 'विशिष्टाद्वैत-वाद, का प्रतिपादन 'प्रबोधचन्द्रोदय' की शैली मे बडे ही सरम्भ के साथ किया गया है। महाकवि के प्रस्तावनान्तर्गत कथन से इस नाटक का उद्देश्य, नाटक के व्याज से 'संकल्प सूर्योदय' के द्वारा अज्ञानान्धकार से जगत् की रक्षा करना ही प्रतीत होता है।[2]

९०. यह नाटक विशालकाय दस अंकों मे विभक्त है, जिसे संस्कृत नाट्य-शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार यह 'महानाटक' पद का भागी है। प्राय सम्पूर्ण नाटक मे ही प्रौढ पाण्डित्य और विकट दार्शनिक विवेचन का प्राधान्य इसमे दिखाई पडता है, इसके कारण कथा प्रवाह मे अति नहीं रह गई है। कवि के दार्शनिक पाण्डित्य ने नाटकीयता को दबा दिया प्रतीत होता है। वर्णना का आधिक्य और विस्तार इतना है कि पाठक ऊब-सा लगता है। इतना होने पर भी अपने कुछ उदात्त गुणो के कारण यह नाटक संस्कृत के रूपक नाटकों की परम्परा मे महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी माना जाता है।

९१ इसके कथानक का घटना-चक्र लगभग 'प्रबोधचन्द्रोदय' जैसा ही है, कुछ को छोड कर सामान्यत प्रबोधचन्द्रोदय के पात्र भी यहां गृहीत है। जहां तक

---

१. महाकवि वेंकटनाथ का समय १२६९ से १३७९ ई० तक का है (बल्देव उपाध्याय भारतीय दर्शन, पृ० ४९१)। संकल्प सूर्योदय जैसी प्रौढ़ रचना कवि ने अपने जीवन के उत्तरार्द्ध मे, जब उसकी रचना शैली मे परिपक्वता, भाषा मे प्रौढता और विचारो मे गाम्भीर्य आ गया होगा—की होगी, यह निर्विवाद है। यह इसलिए भी असन्दिग्ध है, क्योकि कवि ने प्रस्तुत कृति मे 'वेदान्ताचार्य' और 'कवितार्किक सिंह' जैसी उपाधियो को प्राप्त करने तथा छात्रो के द्वारा दिग्-दिगन्त में अपने यश की पताका के फहराये जाने का उल्लेख किया है, जोकि उसके जीवन के पूर्वार्द्ध मे असभव है। अत: यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि 'संकल्प सूर्योदय' १४वीं ई० शताब्दी की रचना है।

२. अपदिश्य किमप्यशेषगुप्त्यै
निगमान्तेषु निरूढगौरवेण।
प्रविभक्तहिताहितः प्रयोगः
कविना कारुणिकेन कल्पितोऽसौ ॥११॥

—संकल्प सूर्योदय, प्रथम अंक, पृष्ठ ३।

विषय का सम्बन्ध है, वह भी 'प्रबोधचन्द्रोदय' के विवेक और महामोह के संघर्ष जैसा ही है। यदि अन्तर है तो केवल फल के स्वरूप मे—प्रबोधचन्द्रोदय मे विवेक के द्वारा महामोह के पराजित कर दिये जाने पर, मन के विलय के साथ पुरुष को आत्मसाक्षात्कार रूप ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है, अर्थात् वह ब्रह्माकार हो जाता है, परन्तु संकल्प सूर्योदय' मे जब विवेक महामोह को पराजित कर उसकी सम्पूर्ण सेना को नष्ट कर देता है, तो पुरुष का श्रद्धा के साथ समागम होता है और उसके अनन्तर उसको भगवान विष्णु का सारूप्य पद प्राप्त हो जाता है, जोकि भक्ति को प्रधान स्थान देने वाले 'विशिष्टाद्वैत' सिद्धान्त के लिये उपयुक्त ही है।

९२ इसके कई पद्यो मे प्रबोधचन्द्रोदय की स्पष्ट झलक दिखाई पडती है।[1]

९३ इस परम्परा का तीसरा ग्रन्थ 'चैतन्य चन्द्रोदय'[2] है। प्रबोधचन्द्रोदय की रूपक शैली से प्रभावित होकर कवि कर्णपूर ने सन् १५७९ ई० मे इस नाटक का प्रणयन किया था। इस नाटक मे दस अक है। श्री महाप्रभु चैतन्यदेव का जीवन वृतान्त नाटक का विषय है। कथानक मे मूर्त और अमूर्त दोनों प्रकार के पात्रों का मिश्रण है। अमूर्त पात्रों मे भक्ति, विराग, कलि, अधर्म आदि हैं। मूर्त पात्रों मे चैतन्य तथा उनके शिष्य ही प्रधान है। भाषा शैली सरल एव प्रसाद गुण सम्पन्न है। इस नाटक के कतिपय स्थलो पर 'प्रबोधचन्द्रोदय' मे भावसाम्य पाया जाता है।[3]

---

१. लोभ—

लब्धं न मुचति विलक्षमतिर्न भुक्ते वसे पुनः पुनरसौ महतीं धनायाम्।
निद्रारस न लभते महतां निधीनां रक्षापिशाच इव संप्रति राजराजः॥५०॥
—संकल्प सूर्योदय, अंक ४, पृष्ठ ४८।

—प्रबोधचन्द्रोदय, अंक २, श्लोक ३०। पृष्ठ ८०।

२. चैतन्यचन्द्रोदयम्—कविकर्णपूरविरचितम्। (काव्यमाला ८७) द्वितीय संस्करण।

३. अधर्म (क) सखे (कलि) इयमपिमवस्यरीतिः

मूकी करोत्यलममूकमहो अनन्ध-
मन्धीकरोत्यबधिरं बधिरी करोति।
यो यं बली सुमनसं विमनी करोति
स श्रीमदोवदनकस्य महोपहत्ये॥३४॥
—चैतन्यचन्द्रोदय, अक प्रथम, पृष्ठ १५।
—प्रबोधचन्द्रोदय, द्वितीय अंक, श्लोक २९।

९४. चैतन्य चन्द्रोदय के पश्चात इस शैली के 'ज्ञान सूर्योदय'[1] नाटक की रचना हुई। यह जैन मत से सम्बन्धित है। वादिचन्द्रसूरि ने (वि० स० १६४८) सन् १५९१ ई० मे इसका प्रणयन किया था। प्रस्तुत नाटक मे चार अक हैं। प्रथम अक मे प्रस्तावना के पश्चात् विवेक और मति का, काम और रति के साथ सघर्ष है। द्वितीय अक मे मिथ्या मतमतान्तरो एव बाह्याडम्बरो की आलोचना है। तृतीय अक मे विवेक की विजय है। चतुर्थ अक मे नायक पुरुष को 'प्रबोध' हुआ है। प्रस्तुत नाटक मे प्रबोधचन्द्रोदय की भाँति आरम्भ मे मोह और विवेक का विरोध दिखलाया गया है। इस विरोध के प्रसग के मध्य मे मतमतान्तरो की आलोचना की गई है और विवेक की विजय दिखाई गई है। विजय के अनन्तर वाग्देवी प्रबोध-चन्द्रोदय की विष्णुभक्ति के समान आविर्भूत होकर पुरुष के लिये प्रबोधोदय की योजना करती हैं। अष्टशती, प्रबोधचन्द्रोदय की उपनिषद् की भाँति अद्वैत के स्थान पर अर्हन्त का उपदेश देती है, जिससे प्रबोधोदय होता है।[2] ज्ञान सूर्योदय की दया पात्री प्रबोधचन्द्रोदय की श्रद्धा के समान है। पात्रों की समता के साथ ही

(ख) चैतन्यचन्द्रोदय--अंक ५, श्लोक २४, पृष्ठ ९६
'उत्तीर्णोऽद्यभवाब्धिरथापिहितंद्वारयमस्यापि च।'
प्रबोधचन्द्रोदय, अक ६, श्लोक ८।

१. 'ज्ञानसूर्योदय'--हिन्दी अनुवाद--नाथूराम प्रेमी; प्राप्तिस्थान--जैन साहित्य सदन, चांदनी चौक, देहली, पु० न० १५१०।

'बहुत प्रयास करने पर भी ज्ञान सूर्योदय' की मूल-सस्कृत' प्रति उपलब्ध न हो सकी। इस नाटक के हिन्दी अनुवादकार श्री नाथूराम प्रेमी से भी पत्र-व्यवहार करने पर, पता चला था कि उनके पास न केवल मूल प्रति अपितु उनके द्वारा किया हुआ हिन्दी रूपान्तर भी उपलब्ध नहीं है। अतः जैन साहित्य सदन दिल्ली से प्राप्त इसके हिन्दी रूपान्तर से ही काम चलाना पड़ा है।

२ ज्ञान सूर्योदय--तृतीय अक, पृष्ठ १०१।

पुरुष--भगवती ! मै नहीं जानता हूँ कि वे अरहत कौन है, जिनका अभी तुमने नाम लिया है।

अष्टशती--(किंचित् कोपित मुद्रासे) क्या आप अरहंत को नहीं जानते हैं ?
पुरुष--(आनन्दित होकर) तो क्या मै ही अरहत हूँ ?
--प्रबोधचन्द्रोदय, छटा अक, गद्यवार्ता, पृष्ठ २३३।

दोनो की शैली में भी समता है । यत्र-तत्र थोडे परिवर्तन से श्लोको और गद्य वाक्यो मे भी समता मिलती है ।[1]

९५ आध्यात्मिक दृष्टि से ज्ञान सर्योदय मे प्रबोधचन्द्रोदय के अद्वैत के स्थान पर दिगम्बर जैन मत का प्रतिपादन है किन्तु अन्य मतो की समीक्षा कुछ थोडे परिवर्तन से प्रबोधचन्द्रोदय की शैली के अनुकरण पर ही है । यह किंचित परिवतन स्वमत प्रतिपादन के कारण तथा प्रबोधचन्द्रोदय के उपरान्त की शताब्दियो मे उदित तथा इसके सममामयिक मतमतान्तरो के समावेश के कारण किया गया है । जैसे द्वितीय अक मे प्रबोधचन्द्रोदय के दिगम्बर मतानुयायी क्षपणक के स्थान पर श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के सितपटयति[2] की आलोचना है । अन्य मतो मे

---

१ ज्ञान सूर्योदय नाटक--(अनुवाद), तृतीय अक, पृष्ठ ४९।

शान्ति--(स्वगत) जान पडता है यह भय से कांपती हुई मेरी बडी बहिन दया आ रही है। इसलिये चलू और सम्मुख जाकर उसे नमस्कार करू। (चलती है, क्षमा भी उसके साथ जाती है)

क्षमा--बेटी दये ! ऐसी शून्य हृदय कैसे हो गई, जो अपनी माताको और बहिन को भी नहीं पहिचान सकती है ?

दया --(देखकर और उच्छवास खींचकर) हाय ! यह तो मेरी प्राणवल्लभा माता है। माता ! यह तेरी बेटी कराल हिंसा की विकट दाढ़ से बच के आई है और तुझ तथा बहिन को देख रह है। सो दोनो मुझे एक बार हृदय से तो लगा लो।

प्रबोधचन्द्रोदय, चतुर्थ अक, पृष्ठ १३२, १३३।

२ श्वेताम्बर सितपटयति--पृ० ३९-४१।

यति--(गृहस्थ की स्त्री से) धर्मलाभ हो।

श्राविका--(उठकर) महाराज ! अन्न तो नहीं है।

यति--तो जो कुछ प्रासुक वस्तु हो, वही मुनि को देना चाहिये। अन्नही का अन्वेषण क्या करती है ?

श्राविका एक दिन और एक रात पहले का पडा हुआ नवनीत (मक्खन) अवश्य ही रक्खा है।

यति--तो वही लाकर दे दो। भूख की ज्वाला पेट को जला रही है।

श्राविका--महाराज ! क्या मक्खन भी यतियो के ग्रहण करने योग्य होता है ? श्रीभगवतीसूत्र मे तो इसका निषेध किया है।

बुद्धागम,[1] याज्ञिक,[2] ब्रह्माद्वैतवादी,[3] वैष्णव[4] आदि वाह्याडम्बरों की आलोचना है। सितपट यति की आलोचना क्षपणक (प्रबोधचन्द्रोदय) के समान है,

---

यति--इसीलिये तो कहते है कि, स्त्रियो को सिद्धान्त वचन नहीं पढ़ाना चाहिये। इस विषय मे तू क्या विचार करती है? सुन,--

श्रीशांतिनाथ तीर्थंकर ने पूर्व भव मे सम्यग्दृष्टि होकर भी कबूतर के शरीर के बराबर अपने देह का मांस काटकर गृद्ध पक्षी को दिया था। सो हे उपासिके! हम गृद्ध से भी निकृष्ट नहीं है।. ..

श्राविका--तो भगवन्! क्या गुरु के लिये हिंसा करना चाहिये?

यति--करना चाहिये, क्या इसमे तुझे कुछ सन्देह है?....

शान्ति--माता! इनमें भी मुझे दया नहीं दिखती है।

१. बौद्धागम--पृष्ठ २६-२७।

शान्ति--(विस्मित होकर) मा! यह इन्द्रजालिया सा कौन आ रहा है?

× × ×

बुद्धागम--....अतएव प्यारे शिष्यो! जीवसमूह का घात करनेवाले को, मांस भक्षण करनेवाले को, स्त्रियों के साथ स्वेच्छाचारपूर्वक रमण करनेवाले को कोई पाप नहीं लगता।

२. याज्ञिक, पृ० ३०, ३१।

शान्ति--माता! यह स्नान किये हुए कौन आया? क्या बगुला है?

क्षमा--नही प्यारी! यह 'राम राम' जपने वाला है।

शान्ति--तो क्या तोता है?

क्षमा--नहीं, मनुष्याकार है। सारे शरीर में तिलक-छापे लगाये है। हाथ मे दर्भ के (दूबा के) अकुर लिये है। और कठ में डोरा (यज्ञोपवीत) डाले हुए है।

शान्ति--तो क्या दभ है?

क्षमा--नहीं, दंभ नहीं है, *किन्तु उसके आश्रय से संसार को ठगनेवाला* याज्ञिक ब्राह्मण है।

याज्ञिक--(यज्ञभक्तो को उपदेश देता है) मनु महाराज ने कहा है कि,--विधाता ने पशुओं को स्वयं ही यज्ञ के लिये बनाया है।

३. ब्रह्माद्वैत, पृष्ठ ३७-३८।

ब्रह्माद्वैत--(अपने शिष्यों को पढ़ाता है):--

बुद्धागम की आलोचना कृष्ण मिश्र कृत बौद्धागम के समान ही है। अन्य मतावलम्बियो की आलोचना सामयिक परिस्थितयो के अनुकूल और साधारण है। सामयिक मतो की इस आलोचना पर भी मिश्र जी की समीक्षा शैली का प्रभाव है। जैसे वादिचन्द सूरि ने अपने सामयिक वैष्णव मतानुयायी राम-भक्तो की जो आलोचना की है, यह कृष्ण मिश्र के दम्भी ब्राह्मणो की कटु समीक्षा से अधिक कठोर नही है। यह आलोचना प्रबोधचन्द्रोदय से प्रभावित प्रतीत होती है।[1]

९६ इसी परम्परा मे आगे चलकर १६ वी शताब्दी मे श्री भूदेव शुक्ल ने

जितने पदार्थ हैं, वे सब ब्रह्म स्वरूप हैं। ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इस संसार में एक अद्वितीय ब्रह्म ही है।....जो भेद है, सो अनादि अविद्याजन्य संकल्प से है, मिथ्या है, यथार्थ में नहीं है।....

शान्ति. ..हे माता ! अब यहां से भी चलो। यह मत भी सारभूत नहीं है। जिसमे दया-दान-पूजन-पठन-तीर्थयात्रादि व्यवहारों को सर्वथा जलांजलि दे डाली है, भला उसमे अपना मनोरथ कैसे सिद्ध हो सकता है ?

४. वैष्णवो का प्रवेश, पृष्ठ ४६।

'क्षमा---तोते के समान जप तो राम राम का किया करते हैं, परन्तु वैसा मनोज्ञ आचरण नहीं करते हैं। मुखसे राम राम का गान करते हैं, और नेत्रों से मनोहर रामाका (स्त्रीका) पवित्र दर्शन करते हैं।....

हरिजन निशदिन मौज उड़ावें॥
मलय मनोहर केशर लेकर,
सीस कपोल भुजा लिपटावें।
कर्णकुहर कस्तूरीपूरित,
हृदय गुलाल लाल बिखरावें॥१॥

१. ज्ञान सूर्योदय के वैष्णवों की आलोचना---

संचच्चन्दनकेशरांकितभुजाशीर्षप्रगण्डस्थलाः ।
संराजन्मृगनाभिकर्णकुहरा हृद्योच्छलच्चूर्णकाः॥
प्रेखत्पर्णसुरंगरागवदना नीत्वार्द्धरात्रं पुनः ।
शेषार्द्धं गमयन्ति वैष्णवजना दारैर्मुदा गेहिनाम् ।।

प्रबोधचन्द्रोदय के दम्भी ब्राह्मणो की आलोचना–द्वितीय अंक, श्लोक १ और ६ में द्रष्टव्य।

'धर्मविजय' नाटक की रचना की।[1] यह परवर्ती परम्परा का पाचवाँ ग्रन्थ है। प्रबोधचन्द्रोदय के अनुकरण पर इसमे अपने समय की धार्मिक परिस्थितियो का चित्रण और शिव भक्ति का प्रतिपादन किया है। प्रबोधचन्द्रोदय की कथा का आधार लेकर, नवीन पात्रो की योजना से अपने उद्देश्यो की पूर्ति की गई है। नाटक मे पांच अक है। धर्मराज और अधर्मराज दो परस्पर विरोधी प्रतिपक्षी है। धर्मराज अपनी पत्नी उर्ध्वगति के साथ अपनी विजय की योजना बनाते हैं। इनके सैनिक अहिंसा, सत्य, अस्तेय शौच, दान, दम, दया, शान्ति आदि है। अधर्म का पुत्र वर्णसकर और पुत्रवधू नीचसगति है।

९७ प्रथम अक के विष्कम्भक मे प्रबोधचन्द्रोदय के काम और रति ने जो कार्य किया, है इस नाटक मे प्रथम अक के विष्कम्भक मे वर्णसकर और नीचसगति वही कार्य करती हैं। उसके पश्चात् विवेक और मति ने जो योजना बनाई है उसी प्रकार धर्मराज और उर्ध्वगति नामक पात्रो ने किया है। प्रबोधचन्द्रोदय के द्वितीय अक मे जिस पाखड की चर्चा दम्भ और अहकार ने की है, वही अनाचार और व्यभिचार नामक पात्रो ने इस नाटक मे की है। इस नाटक मे पौराणिक मत की आलोचना है। विष्कम्भक के पश्चात् प्रबोधचन्द्रोदय के महामोह के प्रवेश के स्थान पर अधर्म-राज ने प्रवेश किया है। प्रबोधचन्द्रोदय के तृतीय अक मे शान्ति और करुणा श्रद्धा की खोज मे निकलती हैं। उसी प्रकार इस नाटक मे प० सगति और परीक्षा, वेदान्त विद्या की खोज मे निकलती है। प्रबोधचन्द्रोदय की श्रद्धा के वियोग मे व्याकुल शान्ति के समान, प० सगति विद्या के वियोग मे मरण स्वीकार करती है। प्रबोधचन्द्रोदय की करुणा के समान, परीक्षा भी प० सगति की रक्षा करके उसे (प्रबोधचन्द्रोदय के जैन बौद्ध-दर्शन के स्थान पर) वैद्य, गणव और स्मार्त के पास ले जाती है। जहा पर कि शास्त्रो के अध्ययन के अभाव मे तीनो मूर्ख और पाखण्डी सिद्ध होते है। चतुर्थ अक मे न्यायालय के दृश्य मे न्यायाधीशो का अन्याय दिखाया गया है। इसके अतिरिक्त धर्मराज अपनी सेना सुसज्जित करके (प्रबोधचन्द्रोदय के विवेक के समान) शत्रु मे युद्ध करने को काशी की ओर प्रस्थान करते है। पाचवे अक मे धर्मराज की विजय का प्रबोधचन्द्रोदय के विवेक की विजय के समान वृतान्त सुनाया गया है। छठे अक मे प्राकृत नाम की पात्री विद्या को ढूंढकर लाती है (प्रबोधचन्द्रोदय मे जैसे शान्ति उपनिषद को)। विद्या (प्रबोध-चन्द्रोदय की 'उपनिषद' के समान) राजा को उपदेश देती है। अन्त मे नेपथ्य से

१. श्रीमद् भूदेव शुक्ल विरचितं धर्मविजयनाटकम्
—चिरजीव पुस्तकालय, पुस्तक नं० ७००१।

शिवभक्ति की आज्ञा सुनाई देती है जिससे सब प्रसन्न होते हैं। राजा शिवपूजन करता है और विद्या ही आशीर्वादात्मक वाक्य कहती है। तदनन्तर नाटक समाप्त हो जाता है।

९८. प्रस्तुत नाटक मे प्रबोधचन्द्रोदय के अनुकरण पर अपने युग की परिस्थितियो का चित्रण है। जिनमे विद्या का अभाव और पाखण्ड का प्रचार था। शैली प्रसादगुण पूर्ण है। नाटकीयता साधारण कोटि की है। इसमें प्रबोधचन्द्रोदय से भाव साम्य के स्थल भी दृष्टव्य हैं।[1]

९९ १८ वी ई० शताब्दी मे भी श्री कृष्णदत्त मैथिल ने 'पुरजन चरितम'[2] नामक रूपक शैली का नाटक लिखकर 'प्रबोधचन्द्रोदय' की परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखा। विष्णुभक्ति के प्रचार के उद्देश्य से नाटक की रचना की गई है। इसका कथानक भागवत के चतुर्थ स्कन्ध की पुरजन की कथा से सम्बद्ध है। इसमे विष्णुभक्ति की यात्रा तथा महत्व प्रबोधचन्द्रोदय की रूपक नाटकीय शैली मे वर्णित है। नवधाभक्ति (ससार मे) भटकते हुए नायक[3] को ईश्वर का साक्षात्कार करा देती है। नाटक की भाषा मे भावो की गति और प्रभाव है। श्लोको मे गीतगोविन्द का-सा माधुर्य है। इस प्रकार पुरजन की पौराणिक कथा के रगमचीय प्रयोग मे प्रबोधचन्द्रोदय की ही प्रेरणा प्रतीत होती है।

१. प्रबोधचन्द्रोदय, प्रथम अंक, पृष्ठ २०, २१ पर काम और रति के वार्तालाप से धर्मविजय नाटक के प्रथम अंक पृष्ठ ७ के नीचसंगति और वर्णसंकर के वार्तालाप में साम्य —

नीचसगति—श्रुतं मया धर्मप्रमुखा अपि युष्माकमेव कुले प्रसूता इति।

वर्णसकर—आः किमुच्यते, अस्मत्कुलप्रसूता इति। असत्चतुर्थः कर्तृपुरुषः सर्वेषां मूलपुरुषः।

नीचसंगति—तद्विस्तरेण कथयस्वार्यः।

वर्णसंकर—अयमनादिनिधनो भगवान् कर्ता, तस्य च विहितक्रियायांश्च धर्मप्रधानोऽवायः समजनि।

नीचसंगति—तत्किमिति युष्माकमेतावृशो विद्वेषः।

वर्णसंकर—धर्मस्यैवापराधेन।

२. 'पुरंजन चरितम्'—श्री कृष्णदत्त मैथिल प्रणीतम्

सम्पादिका कु० नीलम सोलंकी, प्रथम संस्करण—१९५५।

३. पात्र—नायक—पुरंजन, प्रतिनायक—गन्धर्वराज चण्डवेग, अन्यपात्र विष्णुभक्ति, सितपक्ष, कालकन्यका' (जरा राक्षसी) नवलक्षण (भक्ति), अविज्ञात लक्षण आदि।

१०० १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे आनन्दराय मखी[1] के द्वारा लिखित दो नाटको ने प्रबोधचन्द्रोदय की उत्तरवर्ती परम्परा मे एक कडी और जोड दी। इनमे पहला रूपक नाटक है 'विद्या परिणय'।[2] इस नाटक की प्रस्तावना मे नाटककार ने पूर्ववर्ती तीन रूपक नाटको की ओर भी सकेत किया है। सम्भवतः ये नाटक नाटककार के प्रेरणा स्रोत रहे है। इस नाटक मे शिवभक्ति के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति दिखायी गयी है। साथ ही इसमे अद्वैत वेदान्त का प्रतिपादन भी किया गया है। जैनमत, सोम सिद्धान्त, चार्वाक, सौगत आदि पात्रो का समावेश नाटक मे हुआ है। जिनकी चर्चा प्रबोधचन्द्रोदय की शैली मे की गई है। भाषा सरल एव अभिनयानुकूल है।

१०१. आनदराय मखी का दूसरा ग्रन्थ 'जीवानन्दनम्' आयुर्वेदिक सिद्धान्तो और नियमो का साहित्यिक अभिव्यक्तिकरण है। आयुर्वेद के सिद्धान्तो के सरस शैली मे अभिव्यक्त करने के हेतु प्रबोधचन्द्रोदय की शैली का आश्रय लिया गया है।

---

१. (क) १८वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध (बलदेव उपाध्याय––सं० साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ५५९।

(ख) आनन्दराय मखी ने १७२५ ई० में अपने युद्ध कौशल से मथुरा और पुदुकोटा राज्य की सम्मिलित सेनाओ को पराजित किया था। किन्तु अपने 'जीवानन्दनम्' की रचना उन्होंने अपने आश्रयदाता 'सहाजिराज' जिसका कि राजत्वकाल १६८४ ई० से १७१० ई० तक माना जाता है' के समय मे ही अर्थात् १७१० के पूर्व ही की थी, ऐसा विद्वानों का अनुमान है।

––जीवानन्दनम्––भूमिका, सं० मे० दुरैस्वामी अय्यगार, पृ० ११-१२।

२. (क) 'विद्यापरिणय' की रचना आनन्दराय मखी ने जीवानन्दनम् की रचना के पहले ही की होगी––ऐसा अनुमान विद्यापरिणय की प्रस्तावना को देखने से होता है। ––जीवानन्दनम् ––भूमिका, पृष्ठ ३०।

(ख) 'कृष्णमिश्रप्रभृतिभिरत्न प्रबोधचन्द्रोदयम्, संकल्पसूर्योदयम्, भावना पुरुषोत्तम इति न्यबन्धिनाम बहुधाप्राचीनैः।'

––जीवानन्दनम्, भूमिका, पृष्ठ २९।

यहां जिन नाटकों का उल्लेख हुआ है उनमे से दो का परिचय तो दिया जा चुका है। भावना पुरुषोत्तम एक तीसरा नाटक भी इनका पूर्ववर्ती रहा होगा, पर वह हमें मिला नहीं। विदित होता है कि समय की बाढ़ में यह लुप्त हो गया है, पर इसमें सन्देह नहीं कि आनन्दराय के समय में यह अवश्य लोकप्रिय रहा होगा। यह भी प्रबोधचन्द्रोदय की ही शैली का ही नाटक होगा।

कथानक में विज्ञान शर्मा और रोगराज यक्ष्मा नामक दो परस्पर प्रतिपक्षियों का विरोध है। विज्ञान का पक्ष आयुर्वेद के स्वास्थ्य के नियमो से सम्बधित है, अतः प्रधान पक्ष है। यह पक्ष शिवभक्ति की कृपा से विजयी होता है। प्रतिपक्षी रोगराज यक्ष्मा, मानव शरीर के रोगो का राजा है। यह अन्त मे पराजित होता है। उसके साथ ही विषूची, पाण्डु, सन्निपात, गलगण्ड, कुष्ठ, गुल्म आदि सहयोगियो का भी नाश हो जाता है। नाटक मे प्रत्येक रोग की उत्पत्ति और शमन का उपाय रूपक शैली के उपयोग के द्वारा बताया गया है। इसमे यथास्थान नवो रसो का वर्णन किया गया है, फिर भी इसमे शान्तरस ही प्रधान है। प्रबोधचन्द्रोदय के विवेक और मोह प्रस्तुत नाटक के विज्ञान शर्मा और रोगराज है। रोगराज, मोहराज के समान पराजित हो जाता है। विज्ञान शर्मा (विवेक के समान) विजयी होता है। और प्रबोधचन्द्रोदय के पुरुष को (प्रबोधोदय की प्राप्ति के समान) जीवराज को अन्त मे शिव-पार्वती के दर्शन मिलते है तथा उनसे वरदान मे पारद भी प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त प्रबोधचन्द्रोदय के श्लोको से भी इसमे यत्र-तत्र अपूर्व साम्य है।[1]

१०२ नाटककार ने जीवराज पात्र के चरित्र के उदाहरण से यह सन्देश देने की चेष्टा की है कि भक्त-आत्माएं ज्ञान साधना के हेतु शारीरिक स्वास्थ्य के नियमो की अवहेलना न करे, क्योंकि ईश्वर प्राप्ति के हेतु शरीर विषयक स्वास्थ्य के नियमो का पालन आवश्यक है।[2]

१०३ आनन्दराय मखी के ग्रन्थो के अतिरिक्त सामयिक धार्मिक अवस्था के

---

१. जीवानन्दनम् का भरत वाक्य—
पर्जन्यः समयेऽभिवर्षतु फलं वांच्छानुरूपं महीं
प्रौयामात्यानिरूपिते पथि महीपालाः पर्वतन्वताम्।
कर्णालंकृतयेभवन्तु विदुषां कान्ता, कवीनां गिरो
भूयादस्य कवेश्चिरायुररुजो भक्तिश्च शैवी दृढ़ा॥३५॥
—अंक ७, पृष्ठ ४८२।

प्रबोधचन्द्रोदय, अंक ६, श्लोक ३३।

२. परमेश्वर—(जीवराज से)
शश्वद्ज्ञानादभिन्नः सन् विज्ञानमपिमान्य।
एवं सति घटेयातां मुक्ति भुक्ति करेतव॥२९॥
—अंक ७, पृ० ४७४, ४७५।

चित्रण को आधार बनाकर रविदास द्वारा प्रणीत 'मिथ्या ज्ञान विडम्बनम्'[1] नाटक प्रबोधचन्द्रोदय की परम्परा मे, एक बहुत ही साधारण नाटक के रूप मे मिलता है। इस ग्रन्थ की लघुकाय भूमिका को देखने से विदित होता है कि रविदास के इस अधूरे ग्रन्थ की पूर्ति किन्ही गोकुलचन्द शर्मा ने की थी। नाटक मे दो अक हैं। प्रथम अक मे वेद, वाग्देवी, करुणा, विष्णुभक्ति, न्यायवेदान्त आदि रूपक पात्र, सरस्वती के सम्मुख क्रमश प्रवेश करते है। देवी उनसे धर्म दशा सुधारने को कहती है। किन्तु वे सभी अपनी पतितावस्था के कारण, असमर्थता व्यक्त करके चले जाते है। दूसरे अक मे विटावतसी स्वामी, विटोपदेशा, अधौतगुदा आदि के व्यभिचार का वर्णन है। सामयिक युग परिस्थिति के साधारण चित्रण के अतिरिक्त इसमे कोई नाटकीय सौन्दर्य नही है। डॉ० दशरथ ओझा[2] ने कुछ और नाटको का उल्लेख किया है। उनमे से एक 'अमृतोदय' है। इस नाटक मे 'सृष्टि से सहार तक जीव की अध्यात्मिक उन्नति का क्रम दिखाया गया है।'[3] यह नाटक पाच अको का है और इसके रचयिता मैथिल गोकुलनाथ (सवत् १६७२ के लगभग) श्रीनगर मे राजकवि थे। इसके अतिरिक्त श्री सामराज कवि ने 'श्रीदामाचरितनाटक' की रचना विक्रम सम्वत् १७३८ मे की थी। 'इस नाटक मे चैतन्य चन्द्रोदय' के समान कृष्ण सखा श्री दामा के चरित और अध्यात्मिक चिन्तन दोनो का सम्मिलन पाया जाता है'।[4] यतिराज नामक रूपक नाटक मे वरदाचार्य ने रामानुजस्वामी की विजय दिखाई है।

१०४ इस प्रकार सस्कृत भाषा मे प्रबोधचन्द्रोदय की शैली के अनुकरण पर अनेक नाटको की रचना हुई। इनमे विभिन्न उद्देश्यो की पूर्ति के हेतु रूपक शैली का अनुकरण किया गया। किन्तु ये परवर्ती नाटककार प्रबोधचन्द्रोदय की सरस साहित्यिक शैली, भावतात्विक और आध्यात्मिक व्यथा का रचना सगठन, आलोचना और दार्शनिक सिद्धान्तो के समन्वय का एक साथ अनुकरण इतनी उत्कृष्टता से नही कर सके है।[5] 'मोहराजपराजय' नाटक को कुछ सफलता अवश्य मिली है किन्तु अन्य नाटको मे ऐसा प्रभाव नही आ सका है।

---

१. मिथ्याज्ञानविडम्बनम्—रविदास कृत—प्रकाशन-सन् १८९४ ई०
२. हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास—पृ० १५०-१५१
३. वही
४. वही
५ Keith—Krishnamisra's example has caused the pro-

१०५ 'सकल्प सूर्योदय' पाण्डित्य प्रधान शुष्क शैली[1] मे लिखा हुआ नाटक है। 'चैतन्यचन्द्रोदय' मे शैली सरल अवश्य है किन्तु उसमे चैतन्य का चरित्र वर्णन मात्र है, सैद्धान्तिक विशेषता नही है। 'ज्ञानसूर्योदय' प्रबोधचन्द्रोदय का जैन धर्मानुकूल एक रूपान्तर मात्र प्रतीत होता है। क्योकि उसमे थोडे अन्तर से अधिकाश समता मिलती है। 'पुरजन चरित्र' मे शैली सरस और साहित्यिक है। उसमे भागवत् की अध्यात्मिक कथा को रूपक नाटक का रूप दे दिया गया है और भावात्मक पात्रो की विशेष योजना नही है। सामयिक व्यभिचार के चित्रण से युक्त 'धर्मविजय नाटक' साधारण कोटि का है। 'जीवानन्दन' नाटक मे लेखक ने आयुर्वेद के नियमो को रूपक शैली मे नाटकीय रूप दे दिया है जिससे यह साहित्यिक नाटक की अपेक्षा आयुर्वेद का रोचक ग्रन्थ मात्र होकर रह गया है। इस कारण प्रबोधचन्द्रोदय का स्थान अपने आप मे अद्वितीय बना हुआ है।

---

duction of numerous dramas of the same type, but of much less value ——The Sanskrit Drama page 253

१ Keith——"The Sankalpasuryodaya of Venkatanatha of the fourteenth century is excessively dreary."

——The Sanskrit Drama. page 253.

प्रबोधचन्द्रोदय की परवर्ती संस्कृत परंपरा

समय	नाटक	नायक		अन्य पात्र	विशेष
		नायक	प्रतिनायक		
१३वी ई० श० पूर्वार्द्ध	मोहराज पराजय —यशपाल	राजा कुमारपाल	मोहराज	१ विवेकानन्द २ ज्ञानदर्पण ३ द्यूतकुमार ४ मदनदेव	जैन धर्म के प्रचार का उद्देश्य
१४वी ई० शताब्दी	सकल्प सूर्योदय —वेंकटनाथ	विवेक	महामोह	१ श्रद्धा २. सुमति ३. विचारण ४ कामदेव '१ रति ६ क्रोध ७ लोभ	विशिष्टाद्वैतवाद के प्रतिपादनार्थ
१५७९ ई०	चैतन्य चन्द्रोदय —कर्णपूर	चैतन्य	कलियुग	१ भगवान अद्वैत २ विराग ३ मैत्री ४. अधर्म ५ प्रेमभक्ति	महाप्रभु चैतन्य का जीवन वृत्तान्त
१५९१ ई०	ज्ञान सूर्योदय —वादिचन्द्र सूरि	विवेक	मोह	१ दया २ अष्टशती ३ मनि ४ काम ५ रति	जैनमत के दिगबर सम्प्रदाय का सम्पादन
१६वी ई० शताब्दी	धर्मविजय नाटक —भूदेव शुक्ल	धर्मराज	अधर्मराज	१ उर्ध्वगीत २ अस्तेय ३ शौच ४ दान ५. वर्णसकर ६ नीचसगति	पाखण्डरहित होकर शिव पूजन करने का सन्देश
१८वी ई० शताब्दी	पुरजनचरितम —कृष्णदत्त मैथिल	पुरजन	गधर्वराज चडवेग प्रतापी	१ विष्णुभक्ति २ सितपक्ष ३ कालकन्यका ४ नवलक्षणा	विष्णुभक्ति का प्रचार
१८वी ई० शताब्दी पूर्वार्द्ध	१ विद्यापरिणय	—	—	— —	शिवभक्ति का प्रतिपादन
	२ जीवानन्दन —आनदराय मखी	विज्ञानशर्मा	रोगराज	१ विपूची २ पाण्डु ३ सन्निपात ४ कुष्ठ ५ गुल्म	आयुर्वेद के स्वास्थ्य नियमो का प्रतिपादन
१८९४ ई०	मिथ्याज्ञान विडम्बना —रविदास	सरस्वती	—	१ करुणा २ विष्णुभक्ति ३ न्यायवेदान ४ विटोपदेश ५ अधीतगुदा	पाखण्डपूर्ण धार्मिक परिस्थितियो का चित्रण

तृतीय अध्याय

संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय का अध्ययन

१०६. सस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय की रचना प्राचीन नाट्य शास्त्रके अनुकूल हुई है। प्राचीन नाट्यशास्त्र मे नाटक मे प्रधान रूप मे तीन तत्व[1]—कथा, नायक और रस माने गये है। किन्तु आधुनिक काल मे नाटक के छ तत्व[2] माने जाते है—कथा, पात्र कथनोपकथन, वातावरण, भाषा-शैली और उद्देश्य। 'प्रबोधचन्द्रोदय' के प्राचीन नाटक होने के कारण इसका अध्ययन प्राचीन विधि-विधान (टेकनीक) की दृष्टि से भी करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त प्रबोधचन्द्रोदय एक आध्यात्मिक नाटक है। अत प्रबोधचन्द्रोदय की आध्यात्मिक भाव-सम्पत्ति का भी अध्ययन करना उचित होगा। अतएव प्रबोधचन्द्रोदय का अध्ययन हम निम्न प्रकार से करेगे —

१ कथा	६ देशकाल
२ पात्र	७ प्राचीन टेकनीक
३ कथनोपकथन	८ आध्यात्मिक भाव सम्पत्ति
४ भाषा शैली	९ उद्देश्य
५ रस	१० उपसहार

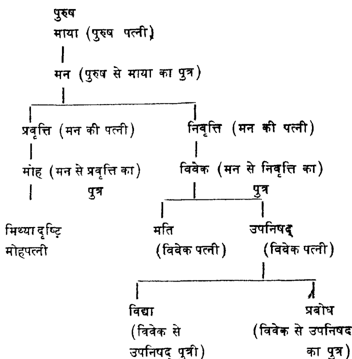
प्रबोधचन्द्रोदय की कथा और उसकी समीक्षा

१०७. कथावस्तु—प्रबोधचन्द्रोदय नाटक की कथावस्तु मे मन के अन्तर्द्वन्द्वो को आध्यात्मिकता के प्रकाश मे अभिव्यक्त किया गया है। निम्न रेखाचित्र द्वारा इस कथा के पात्रो का परस्पर सम्बन्ध सुगमता से समझा जा सकता है —

---

१. दशरूपक—"वस्तुनेतारसस्तेषामेदकः" कारिका ११. प्रथम प्रकाश।

२. साहित्यालोचन, पृष्ठ १३८।



प्रथम अक मे मन की प्रवृत्ति और निवृत्ति नामक दो पत्नियों से क्रमश उत्पन्न मोह और विवेक एक दूसरे के विरोधी हो जाते है। विवेक के पक्ष मे शान्ति और श्रद्धा आदि तथा मोह के पक्ष मे काम, क्रोध, लोभ, तृष्णा तथा हिंसा आदि है। काम और रति का रगमच पर प्रवेश होता है। रति काम से कहती है कि मोह का प्रतिपक्षी विवेक मोह के लिए एक आफत बन गया है। काम रति को समझाता है कि वह स्त्री होने के कारण डर रही है, अन्यथा विवेक की कोई हस्ती नही है। विवेक के मन्त्री यम-नियमादि के लिये तो हमारा चित्तविकार ही पर्याप्त है। रति के यह पूछने पर कि क्या आपलोगो और विवेक आदि का वश एक ही है, काम उसे बताता है कि न केवल वश ही अपितु हम सबके पिता भी एक ही है। पिता का प्रेमपात्र होने के कारण मैंने उसके द्वारा अर्जित ससार पर अपना अधिकार जमा लिया, अतएव विवेक हमे और पिताजी को उन्मूलित कर देना चाहता है। रति के यह प्रश्न करने पर कि इतना बडा पाप क्या मात्र विद्वेष से किया जा रहा है? काम ने उसे बताया कि उसके वश मे विद्या नामक राक्षसी उत्पन्न होने वाली है। राक्षसी का नाम सुनते ही रति भयभीत हो काम से लिपट जाती

है। काम उसे आश्वासन देता है कि उसके जीते जी विद्या की उत्पत्ति न हो सकेगी, अतः उसे (रति को) डरने की कोई आवश्यकता नही। इस पर रति के यह प्रश्न करने पर कि जो विवेक आदि विद्या की उत्पत्ति की कामना कर रहे हैं, क्या वह उनका विनाश न कर देगी? काम ने 'हाँ' मे उत्तर दिया। उधर विवेक मति से कहता है कि—प्रिये, सुना तुमने, यह काम हम लोगो को पापी और स्वयं को पुण्यात्मा बतला रहा है, जब कि नित्य-शुद्ध-बुद्ध पुरुष को बन्धन मे डाल रखने के कारण यह स्वय पापी है। मति के यह पूछने पर कि स्वाभाविक आनन्दमय पुरुष इन लोगो के द्वारा क्योकर आबद्ध हो सकता है? विवेक ने उसे बताया कि चतुर व्यक्ति भी स्त्रियों के द्वारा प्रतारित होकर बन्धन मे पड जाते है। पुरुष भी माया के द्वारा ही बन्धन मे डाला गया है। मति के द्वारा पुरुष के उद्धार का उपाय पूछने पर विवेक ने उसे बताया कि उपनिषद् के साथ उसका सम्बन्ध होने पर प्रबोध की उत्पत्ति होगी, तभी यह बन्धन छूट सकता है, मति ने इसमे कोई आपत्ति नही की।

१०८. दूसरे अक के प्रारम्भ मे मोह ने दम्भ को बुलाकर कहा कि विवेक ने प्रबोधोदय की प्रतिज्ञा की है और तीर्थों मे शम, दम आदि को भेज दिया है। यह हमारे कुल के विनाश का समय आ गया है। अत आप लोग जैसे भी हो, इसका प्रतिकार करे। ससार के सबसे बडे मुक्ति-क्षेत्र काशी मे जाकर चारो आश्रमो को भ्रष्ट करे। यहा पर तो मैंने अपना आधिपत्य पूर्ण रूप से जमा लिया है। ठीक इसी समय दक्षिण राढा से आकर, अहकार कहने लगा कि यहा के लोग बिलकुल मूर्ख हैं, फिर भी इन्हे पाण्डित्य का गर्व है। यहा के लोग मूड मुडा लेने भर से वेदान्ती होने का दावा करने लग जाते हैं। इतना कह कर वह दम्भ के खूब सजे हुए आश्रम मे पहुँच कर, उसे अपना रहने का आश्रयस्थल चुनता है। उसे वहा आते देखकर दम्भ के शिष्य बटु ने उससे कहा कि बिना पद-प्रक्षालन किए आप यहा न आये। बटु के कथनानुसार वह अपने पैर को पखार कर वहा जाना चाहता है, पर दम्भ की मौन चेष्टा से बटु उसे फिर रोकता है। अहकार को उसके विचित्र ब्राह्मणत्व पर आश्चर्य होता है और इसी सिलसिले में वह अपनी प्रशंसा करता है, जिससे दम्भ उसे पहचान जाता है तथा उसे पितामह कह कर उसके चरणो मे प्रणाम कर, अपना परिचय देता है। अहकार ने दम्भ से कहा कि उसने उसे द्वापर के अन्त मे शिशु के रूप मे देखा था, परन्तु उसके आज बडे हो जाने और अपनी वृद्धावस्था के कारण, उसे पहचान नही सका। अनन्तर, दम्भ के यह कहने पर कि वे लोग भी यही हैं, अहकार ने मोह के प्रति विवेक के द्वारा उपस्थित भय के बारे मे पूछा। दम्भ ने उत्तर मे कहा कि महाराज मोह इन्द्रलोक से आ रहे हैं और उन्होने काशी

को अपनी राजधानी बनाना निश्चय कर लिया है। अहकार के द्वारा यह जिज्ञासा करने पर कि मोह काशी मे ही क्यो रहना चाहते है, दम्भ ने उसे बताया कि इसका कारण विवेकोपरोध ही है। यह सुनकर अहकार के मन मे कुछ आशका हुई। दम्भ ने मोह के स्वागत मे नगर परिष्कार की आज्ञा प्रचारित की। ठीक समय पर चार्वाक के साथ महाराज मोह का आगमन हुआ और चार्वाक ने अपने सिद्धान्तो का प्रचार किया। चार्वाकीय सिद्धान्तो का श्रवण करने के उपरान्त प्रसन्न मोह ने चार्वाक की कुशल पूछी। 'सब कुशल है। कहकर चार्वाक ने यह बताया कि कलि के द्वारा प्रचार के रोक दिये जाने पर, विष्णुभक्ति नामक एक योगिनी का प्रभाव इतना अधिक बढ गया है कि उसकी ओर ताकने तक का साहस किसी को नही होता। इसी समय मान का पत्र लेकर, पुरी से एक पुरुष आता है जिससे ज्ञात होता है कि शान्ति अपनी माता श्रद्धा के साथ विवेक को उपनिषद् के साथ मिलाने के लिये अहर्निश उपनिषद् को समझाती रहती है, कि काम सहचर होकर भी धर्म और वैराग्य के द्वारा फोड लिया गया है। अत आप लोग इसका प्रतिकार करे। इस पर मोह ने कहा कि काम आदि विपक्ष मे रहते, शान्ति कुछ नही कर सकती। तुम मदमान स मेरा यह सन्देश कह देना कि वह धर्म को बाँध कर रखा करे। इसी समय क्रोध और लोभ अपने गुण प्रकट करते हुए प्रवेश करते है। महामोह ने शान्ति को वश मे करने के लिये, उसकी माता श्रद्धा को मिथ्या दृष्टि के द्वारा ग्रस्त कराने का विचार किया, ताकि वह मा के दुख मे निकम्मी बन जाय। इसके लिये उसने मिथ्यादृष्टि को आदेश दिया और उसकी सफलता की कामना की।

१०९. तृतीय अक मे मिथ्यादृष्टि के द्वारा श्रद्धा तिरोहित कर दी जाती है। वन, पर्वत आदि मे शान्ति उसे ढूढती फिरती है। करुणा के कथनानुसार वह श्रद्धा को पाखण्डालयों मे भी ढूढने चलती है। वह वहा दिगम्बर जैन साधुओ को देखती है, जो अपने मत की श्रेष्ठता बताते घूमते रहते है। वही उसे तामसी श्रद्धा के दर्शन होते है। इसी सिलसिले मे उसे बौद्ध भिक्षु और उसके यहा की तामसी श्रद्धा का साक्षात्कार होता है। अपने अपने मत को श्रेष्ठ बतलाने के लिए बौद्ध और जैन भिक्षुओ मे शास्त्रार्थ होता है। शान्ति को आगे बढने पर सोम-सिद्धान्त दिखाई दिया, जिससे जैनी साधु ने उसके दर्शन के सम्बन्ध मे प्रश्न किया। उसने नारी और मदिरा के प्रलोभन से भिक्षु और क्षपणक दोनो को आकृष्ट कर लिया और कापालिकी के वेष धारण करनेवाली श्रद्धा ने उस दोनों का आलिंगन कर मदिरा पिलाई। नामसाम्य से शान्ति को उसके ऊपर अपनी माता का भ्रम हुआ, परन्तु करुणा के यह बतलाने पर कि उसकी माता विष्णु भक्ति के पास है, उसको सन्तोष हुआ। जैन भिक्षु के ज्योतिष के आधार पर धर्म और श्रद्धा को विष्णु-

भक्ति के आश्रय मे बतलाने पर कापालिका ने अपनी विद्या से उन दोनो का आकर्षण करना चाहा।

११०. चतुर्थ अक के प्रारम्भ मे मैत्री श्रद्धा से कहती है कि मैंने सुना है कि विष्णु भक्ति ने तुम्हे महाभैरवी के चगुल से बचाया है। अत. मैं तुम्हे देखने आई हूँ। श्रद्धा ने महाभैरवी वाली घटना कह सुनाई। मैत्री ने भी अपनी कथा श्रद्धा से कही कि हम चारो बहने महात्माओ के हृदयो मे रहती है। विष्णुभक्ति की आज्ञा से विवेक ने वस्तुविचार को बुला भेजा है। विवेक ने उससे कहा कि मोह के साथ हम लोगो का सग्राम छिड गया है, इसलिये मैंने आपको अपना मुख्य सेनापति चुना है। वस्तुविचार के यह कहने पर कि काम को जीत लेना कौन बहुत बडा काम है, क्षमा ने कहा कि वह क्रोध को जीत लेगी और फिर क्रमश. हिंसा और मद आदि स्वय परास्त हो जायेगे। इसके बाद लोभ के विजेता सन्तोष को बुलाया जाता है और वह वाराणसी पर अभियान करने का परामर्श देता है। राजा भी उसका समर्थन करता है।

१११. पचम अक मे विवेक की सेना के द्वारा मोहपक्ष का जब सहार हो जाता है तब श्रद्धा इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि स्वजनो का विरोध कुल को नष्ट करने वाला होता है। विष्णुभक्ति और शान्ति श्रद्धा से मिलती हैं। विष्णुभक्ति के श्रद्धा को मुनियो के हृदयो मे रहने का वरदान देने और यह पूछने पर कि युद्ध का क्या समाचार है, श्रद्धा ने उसे सम्पूर्ण समाचार सुनाया। उसने यह बताया कि दोनो पक्ष की सेनाए आमने-सामने खडी देखकर विवेक ने न्याय के लिए मोह के पास दूत भेज कर यह कहलवाया कि मोह देवस्थान को छोड कर चला जाय, अन्यथा उसका नाश कर दिया जायगा। इस सम्वाद को सुनकर मोह अतीव क्रुद्ध हुआ। इसी समय हमारी सेना के आगे सरस्वती प्रकट हुई। बडा घोर सग्राम हुआ, और सभी मोह पक्ष के मारे गये। मोह स्वय कही जाकर छिप गया। जब मन ने यह समाचार सुना तो उसे बडा दु ख हुआ। उसी समय उसके पास वैयासकी सरस्वती ने पहुचकर उसके मन ससार की वास्तविकता से परिचय कर वैराग्य की ओर झुकाया और निवृत्ति को पत्नी के पद पर अभिषिक्त किया जो कि प्रवृत्ति के नष्ट हो जाने के बाद रिक्त हो गया था। इसके बाद मन शान्त हो जाता है।

११२. षष्ठ अक मे, शान्ति ने श्रद्धा से राजकुल का सभी सामाचार पूछा और श्रद्धा ने विस्तार के साथ उसे बताया। श्रद्धा की बात मे उसे पता चला कि मन ने माया के सम्बन्ध का परित्याग कर दिया है, तथा नित्यानित्य विचारना को प्रणयिनी, मुमुक्षा को सहचरी, वैराग्य को मित्र, शम दम आदि को सहायक तथा मैत्री आदि को परिचारिकाओ के रूप मे अपना लिया है। उसे श्रद्धा के द्वारा इस

बात का भी पता चला कि मोह ने इस स्थिति मे भी अपनी दुष्टता का परित्याग नही किया है और उसने मन को फुसलाने के लिए 'मधुमती' को नियुक्त किया है। मधुमती और उसके साथियो ने मन को अपनी ओर आकृष्ट करने, का सफल प्रयास किया, मन आकृष्ट हो गया, परन्तु पार्श्ववर्ती तर्क ने समय पर सबको आडे हाथो लिया। उसने सम्पूर्ण मायाजाल का पर्दा फाड कर मन को सचेत कर दिया। तदनन्तर पुरुष ने विवेक को देखना चाहा और उपनिषद् को भी बुला भेजा। उपनिषद्-विवेक से मिलने मे आनाकानी करती रही, परन्तु शान्ति के समझाने पर वह विवेक से मिली। पुरुष के यह प्रश्न करने पर कि उसने इतने दिन कहा बिताये उपनिषद् ने मठो आदि मे अपना रहना, बताया। उसने यह भी बताया कि जब वह जाती हुई यज्ञविद्या के पास आश्रय के लिए गई तब उसने उसके कार्य के सम्बन्ध मे प्रश्न किया और उसने अपना कार्य ब्रह्म-ज्ञान बतलाया। इस पर यज्ञ-विद्या ने कहा कि ऐसे अकर्ता पुरुष की मुझे कोई आवश्यकता नही। इसके बाद मीमासा और तर्क की शरण मे गई, किन्तु किसी ने भी उसे नही अपनाया। अनन्तर जब वह दण्डक वन मे गई तो गदापाणि पुरुषो ने पीछा करने वाले तर्कों को भगा दिया। बाद मे उपनिषद् ने आज्ञा का स्वरूप बतलाया और इसी समय निदिध्यासन प्रकट हुआ। उसने आकर पुरुष के समक्ष ही उपनिषद् मे निवेदन किया कि आपके गर्भ से विद्या और प्रबोधोदय नाम की दो सन्तानें होगी, उनमे विद्या को सकर्षन शक्ति द्वारा मन मे सक्रात करा दें और प्रबोधचन्द्र को पुरुष के हाथो सौप कर विवेक के साथ उपनिषद् विष्णुभक्ति के पास चली जाय। वैसा ही हुआ, प्रबोधोदय होनेसे सबका अज्ञानान्धकार दूर हो गया और पुरुष को विष्णुभक्ति के प्रसाद से मुक्ति मिली।

११३. **कथावस्तु की विशेषता**––उपरोक्त कथावस्तु के ज्ञात हो जाने के उपरान्त उसकी कुछ विशेषताए अभिव्यक्त होती हैं। प्रथम विशेषता, जिसे कि हम मुख्य विशेषता भी कह सकते है, इसकी कथावस्तु के प्रतिपाद्य विषय का मानसिक एव आध्यात्मिक होना है। इसमे किसी पौराणिक देवता या मानव-विशेष के सुख-दु ख की लौकिक कथा का अकन मात्र न होकर (समस्त) मानवमात्र के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का रूपक कथा के माध्यम से स्पष्ट एव भव्य चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस रूपक-कथा मे धर्म, दर्शन एव आत्मा के मोक्ष की गहन समस्या का यथातथ्य चित्र चित्रित कर, उसका सफल समाधान देने का प्रयास अन्तर्निहित है। यद्यपि शुष्क दार्शनिक तथ्यो से ही इसके कलेवर का निर्माण हुआ है। तथापि सरस लौकिक कथा की तरह पाठक को आवर्जित करने की विचित्र शक्ति का अस्तित्व जो कि इसमे 'पदे पदे' उपलब्ध होता है, इसकी अपनी अनन्य सामान्य विशेषता है।

११४. इसकी दूसरी विशेषता अमूर्त को मूर्त रूप देना है, अर्थात् अमूर्त भावनाओ की कथा मूर्त जगत के सम्बन्धो पर आरोपित करके लिखी गई है। भावनाओ की मूर्त कल्पना का पात्रो पर आरोप होने से कथानक ने भावतात्विक रूपकात्मकता का स्वय मे समाहार कर लिया है। अमूर्त भावनाओ के जन्म की, उनके माता-पिता, पुत्र, पत्नी तथा भगिनी के सम्बन्ध की, उनकी पारस्परिक शत्रुता और मित्रता की योजना, अतीव हृदयगम शैली मे, इस कथानक मे उपनिबद्ध होकर हठात् सहृदयो के हृदय को अपनी ओर आवर्जित कर लेती है।

११५. 'विवेक और महामोह जैसे विरोधी अमूर्त भावो के सघर्ष का मनोवैज्ञानिक चित्रण भी इस कथानक की प्रमुख विशेषताओ मे अन्यतम है। साधारण, मानव-जीवन मे हमे यदि कभी 'सत्' भावना की विजय होती दिखाई देती है, तो कभी 'असत्' भावना का प्राबल्य दृष्टिगत होता है। इन्ही 'सत्' और 'असत्' भावनाओ के तुमुल सघर्ष की पृष्ठभूमि मे, जिस अन्तर्द्वन्द्व का मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म चित्र अकित किया है, वह लेखक की विश्लेषण शक्ति का नितान्त परिचायक है। यह सघर्ष नाटक के अन्त मे आनन्दमय मोक्ष के प्रसग तक पहुँचने के पूर्व (सत् की विजय के रूप मे) समाप्त हो जाता है।

११६. प्रस्तुत मे अप्रस्तुत की झलक इस कथानक की चौथी विशेषता कही जा सकती है। कृष्ण मिश्र ने जिस राजा के आश्रय मे रह कर प्रस्तुत नाटक की रचना की तथा जिसकी राज्य सभा मे इसका अभिनय हुआ, उसके युद्ध करने और उसमे विजय प्राप्त करने के प्रसग का अप्रस्तुत वर्णन नाटक की प्रस्तावना मे अभिव्यक्त किया गया है।[1] राजा कीर्तिवर्मा अपने परम हितैषी मत्री गोपाल के सहयोग से शत्रु कर्ण को परास्त कर विजयी होता है। ठीक इसी आशय के अप्रस्तुत राजा और राज्य की सुख तथा शान्ति की कामना—की व्यजना हमे नाटक के अन्त के भरत-वाक्य मे उपलब्ध होती है।[2] स्पष्ट है कि (प्रस्तुत) नाटक के 'पुरुष' पात्र के चरित्र का ही आरोप—अप्रस्तुत राजा कीर्तिवर्मा के चरित्र पर नाटककार ने किया है। इसी प्रकार अप्रस्तुत मत्री गोपाल के चरित्र मे प्रस्तुत विवेक के चरित्र का तथा अप्रस्तुत शत्रु कर्ण के चरित्र मे प्रस्तुत महामोह के चरित्र की स्पष्ट झाकी हम पाते है। मत्री गोपाल ने कर्ण राजा को पराजित कर कीर्तिवर्मा को राज्यसिहासन पर प्रतिष्ठित किया—इस अप्रस्तुत वर्णन ने विवेक के द्वारा महामोहादि शत्रुओ का

---

१. द्रष्टव्य—प्रबोधचन्द्रोदय, प्रस्तावना के चतुर्थ और नवम् श्लोक।

२. प्रबोधचन्द्रोदय, षष्ठ अंक, भरत वाक्य—राजानः क्ष्मां गलितविविधोपप्लवाः पालयन्तु—आदि।

विनाश कर पुरुष (जीवात्मा) का स्वराज्य (प्रबोधरूप ब्रह्मा कार वृत्ति) मे स्थापित किया जाना रूप अप्रस्तुत अर्थ स्पष्ट रूप से व्यजित हो रहा है।

११७. इस प्रकार हम देखते है कि 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक के इस कथानक मे हमे कुछ ऐसी विशेषताए उपलब्ध होती है जिनकी सत्ता सस्कृत साहित्य के प्रबोधचन्द्रोदय के पूर्ववर्ती नाटको मे तो एकान्त असभव ही है। उसके परवर्ती रूपकात्मक शैली को आधार बनाकर लिखे गये कुछ नाटको मे यदि मिलती भी है, तो ठीक उसी रूप मे—कुछ परिवर्तन और परिवर्द्धन के साथ–जैसी कि प्रबोधचन्द्रोदय मे उपलब्ध है। इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि इस कथा-वस्तु का सस्कृत नाटक साहित्य के कथानक के इतिहास मे एक असाधारण महत्व का स्थान है। 'प्रबोधचन्द्रोदय' को गौरवमण्डित पद पर आरूढ करने मे उसके कथानक की इन विशेषताओ का मुख्य स्थान है यह नि सन्देह कहा जा सकता है।

११८. **कथावस्तु की नाट्यशास्त्र की दृष्टि से समीक्षा**—जैसा कि हम अभी देख चुके है—प्रबोधचन्द्रोदय की कथावस्तु मे कुछ असाधारण विशेषताए हैं, परन्तु एक नाटक की कथावस्तु के लिए इन विशेषताओ का मूल्य उस अवस्था मे बिलकुल नगण्य ठहरता है, जब उसमे नाटकीयता का अभाव हा। किन्तु हमे यह देखकर कि दार्शनिकता और आध्यात्मिकता की दृढ आधार भूमि पर कथा-वस्तु के भव्य मन्दिर को प्रतिष्ठित कर कृष्ण मिश्र ने उसमे नाटकीयता की प्राणप्रतिष्ठा भी की है, हमे निराश नही होना पडता। अधिकतर यह देखा गया है कि प्रबोधचन्द्रोदय की शैली के नाटको की कथावस्तु मे नाटकीय-गति-प्रवाह या तो बिलकुल पाया ही नही जाता या पाया भी जाता है तो बहुत कम। उदाहरण के लिए हम वेकटनाथ के 'सकल्प सूर्योदय' को जो एक प्रसिद्ध रूपकात्मक नाटक है—ले सकते हैं। इसकी कथावस्तु अत्यन्त शिथिल है। दार्शनिक पाण्डित्य के प्रवाह मे कितने ही नाटकीय गुणों को बह जाना पडा है। सन्तोष की बात है कि कृष्ण मिश्र ने अपने समक्ष अपने मुख्य ध्येय को रखते हुए अपनी कृति मे उपरोक्त दोषो को नही आने दिया है। वास्तविकता यह है कि अपनी इस कृति को एक अभिनेय नाटक का रूप देने के लिए उन्होंने स्तुत्य प्रयास किया है। और उसमे वे सफल भी हुए है। प्रस्तुत कृति के कथानक मे उन्होने भरत के नाट्यशास्त्रोक्त अवस्थाओ, सन्धियो और अर्थ प्रकृतियो का यथास्थान समुचित विन्यास किया है। अत यह आवश्यक है कि 'प्रबोधचन्द्रोदय' के कथानक की समीक्षा भरत के प्राचीन नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तो की पृष्ठभूमि पर ही की जाय।

११९. **वस्तु का द्वैविध्य**—नाट्यशास्त्र के दृष्टिकोण से कथावस्तु के प्रधान

रूप से दो भेद होते हैं[1]—प्रथम आधिकारिक और द्वितीय प्रासगिक। आधिकारिक वस्तु से तात्पर्य नाटक की मुख्य वस्तु से तथा प्रासंगिक से तात्पर्य गौण कथा-वस्तु से है।[2]

१२०. **प्रबोधचन्द्रोदय** की कथावस्तु मे राजा विवेक की कथा आधिकारिक कथा है। राजा विवेक ही प्रधान नायक है जो प्रतिपक्ष मोह से सघर्ष करता और सहयोगियो के सहयोग से उस पर विजय प्राप्त करता है। विवेक की विजय के परिणामस्वरूप 'प्रबोधोदय' रूप फल प्राप्त होता है। इसी फल-प्राप्ति के अधिकार से राजा विवेक अधिकारी है और उससे सम्बन्धित कथा आधिकारिक है।[3]

१२१. प्रासगिक कथावस्तु के दो भेद किये गये हैं—पताका तथा प्रकरी। जो कथावस्तु, नाटक या काव्य मे बराबर चलती रहती है, उसे 'पताका'[4] कहते है। जो कथाकाव्य या रूपक मे कुछ काल तक चलकर रुक जाती है, उस कथा वस्तु को 'प्रकरी'[5] नाम से अभिहित किया जाता है।

१२२. 'प्रबोधचन्द्रोदय' की कथावस्तु मे विष्णुभक्ति की कथा 'पाताका' है। विष्णुभक्ति विवेक की रक्षा के लिये अनेक यत्न करती है। विवेक के सहायको को शत्रुपक्ष के चगुल से बचाकर विवेक की रक्षा के निमित्त नियोजित कर देती है।

१२३ वैयासकी सरस्वती की कथा प्रकरी है, क्योकि वैयासकी सरस्वती पाचवे अक के प्रवेशाक के पश्चात् रगमच पर मन को शान्त करने के हेतु प्रविष्ट होती है। और मन को शान्त करके, उसे 'प्रबोधोदय' की ओर अग्रसर करके, पाचवे अक के अन्त मे प्रस्थान कर जाती है। इस प्रकार उसका अल्पस्थायित्व सिद्ध होता है। मन मे वैराग्य उत्पन्न कर विवेक की उपकारिणी भी यह है। अतएव वैयासकी प्रकरी का यह प्रसग सफल एव सार्थक है।

---

१. (क) इतिवृत्तं द्विधा चैव बुधस्तु परिकल्पयेत।
आधिकारिकमेकं स्यात् प्रासंगिकमथापरम्॥
ना० शा०, अ० १९, श्लोक २।

(ख) वस्तु च द्विधा......। दश रूपक, प्र० प्र०, कारिका ११।

२. तत्राधिकारिकं मुख्यमगं प्रासंगिक विदुः। द० रु० प्र० प्र० का० ११।

३. अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
तन्निवृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम्। द० रु० प्र० प्र० का० १२।

४. सानुबन्धं पताकाख्यम्—द० रु० प्र० प्र० का० १३।

५. प्रकरी च प्रदेशभाक्, वही।

वस्तु की नाटकीय योजना : वस्तु योजना

१२४. भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार वस्तु योजना मे अर्थ प्रकृति, अवस्था और इनके सयोग से निर्मित सन्धियो का विचार किया जाता है। अर्थ-प्रवृत्तिया वस्तु के तत्वो से अवस्थाए कार्य व्यापार से और सन्धिया रूपक—रचना के विभागों मे सम्बन्ध रखती है।[1] इन तीनो के पाच-पाच भेद होते हैं, जो परस्पर एक दूसरे के सहायक और अनुकूल होते है।

१२५. 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक की कथावस्तु-योजना नाट्यशास्त्र के अनुकूल हुई है। अवस्था, अर्थ प्रकृति और सन्धिया सफलता के साथ इसमे सयोजित हैं।

१२६. **अवस्था**--'प्रबोधचन्द्रोदय' की कथावस्तु मे पाचो अवस्थाए—प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम[2]—है, जिनका अब हम विवेचन करेंगे।

१२७. किसी भी फल की प्राप्ति के लिये उत्सुकता-मात्र को नाट्यशास्त्रीय परिभाषा मे 'आरम्भ' कहते है।[3] यह 'आरम्भ' नामक अवस्था प्रस्तुत नाटक के प्रथम अक मे मति के 'एव दीर्घतर निद्रा विद्रावित प्रबोध परमेश्वरे कथ प्रबोधोत्पत्तिर्भविष्यति'—अर्थात् प्रबोध का उदय कैसे होगा" इस वाक्य मे है, क्योकि इससे 'नाटक' के फल 'प्रबोधोदय' के प्रति नायिका मति की उत्सुकता की प्रतीति होती है।

१२८. प्रारम्भ के पश्चात् 'प्रयत्न' नामक अवस्था आती है। फल की प्राप्ति न होने पर, उसकी प्राप्ति के लिये किये गये त्वरान्वित व्यापार को 'प्रयत्न' कहा जाता है।[4] यह अवस्था प्रस्तुत नाटक के तृतीय अक मे शान्ति के द्वारा की गई श्रद्धा

---

१. श्याम सुन्दर दास--'साहित्यालोचन', पृष्ठ १६८।

२. (क) अवस्थाः पञ्चकार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभि.।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमः।
द० रु० प्र० प० का० १९।

(ख) यही परिभषा साहित्य दर्पण षष्ठ परिच्छेद—का ७० और ७१ मे है

३. (क) भवेदारम्भ औत्सुक्य यन्मुख्य फलसिद्धये। सा० द० प्र० प० का० ७१

(ख) औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे।
द० रु० प्र० प्र० का० २०२।

४ (क) प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः।
द० रु० प्र० प्र० का० २०३।

की खोज मे है। क्योंकि प्रबल शत्रु मोह को पराजित कर 'प्रबोध' फल की प्राप्ति के लिये नायक के पक्ष से उपरोक्त-व्यापार को 'त्वरा' के साथ सम्पादित किया गया है।

१२९. उपाय और विघ्न की आशका से फल प्राप्ति का निश्चित न होना 'प्राप्त्याशा' अवस्था कहलाती है।[1] तात्पर्य यह है कि जब उपाय के द्वारा फल प्राप्ति की सभावना और साथ ही विघ्न की आशका से फल प्राप्ति का निश्चय न हो तो उस अवस्था को 'प्राप्त्याशा' कहते है। कापालिक के द्वारा विष्णुभक्ति को फल का साधन बतलाना, विष्णुभक्ति के द्वारा श्रद्धा की रक्षा तथा विष्णुभक्ति की आज्ञा से विवेक के अपने सैनिको को सुसज्जित कर वाराणसी मे पहुच जाने के बाद मे, विवेक के सम्बन्ध मे (विष्णुभक्ति के द्वारा) पराजय और अनिष्ट की आशका आदि का होना 'प्राप्त्याशा' अवस्था है।

१३०. जब विघ्न के अभाव के कारण फल की प्राप्ति हो जाती है तो उसे नियताप्ति नामक अवस्था कहते हैं।[2] प्रस्तुत नाटक के विवेक का महामोह से युद्ध, विवेक की विजय के पश्चात् सरस्वती के उपदेश के द्वारा मन का वैरागी हो जाना आदि 'नियताप्ति' की अवस्था है, क्योकि इन व्यापारो के द्वारा नायक विवेक को उसके 'फल', 'प्रबोधोदय' की प्राप्ति निश्चित सी हो जाती है।

१३१. पाचवी अवस्था 'फलागम' कहलाती है।[3] नाट्यशास्त्र के अनुसार

(ख) प्रयत्नस्तु फलावाप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः।
सा० द० ष० प० का० ७१।

१. (क) उपायापाय शंकाभ्या प्राप्त्याशा प्राप्तिसंभवः।
द० रू० प्र० प्र० का० २१।

(ख) ईषत् प्राप्तिर्यदा काचित् फलस्य परिकल्प्यते।
भावमात्रेण तं प्राहुर्विधिज्ञाः प्राप्ति सभवम्।
ना० शा० अ० १९, श्लोक ७३।

२. (क) नियतां तु फल प्राप्तिं यदा भावेन परिपश्यति।
नियतां तां फल प्राप्तिं सगुणां परिचक्षते।।
ना० शा० अ० १९, श्लोक ७४।

(ख) अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता।
द० रू० प्र० प्र० का० २१३।

३. (क) समग्र फल सम्पत्तिः फलयोगो यथोदितः।
द० रू० प्र० प्र० का० २२।

सम्पूर्ण फलों की उपलब्धि को फल-योजना या फलागम कहते हैं। मन के निर्विषय हो जाने पर पुरुष को ब्रह्मस्वरूप का ज्ञान अर्थात् प्रकृष्ट बोध-प्रबोध का उदय होना ही फलागम है। क्योकि इस 'प्रबोधोदय' मे सभी फलो का समाहार पाया जाता है।

१३२. इस प्रकार हमने ऊपर के विवेचन के अनुसार देखा कि प्रस्तुत कृति में नाटककार के द्वारा अतीव सुन्दरता के साथ पाचो अवस्थाओ का यथास्थल निवेश किया गया है।

१३३. जैसा कि पहले कहा गया है कि अर्थ प्रकृतिया वस्तुतत्व से सम्बन्ध रखती है। इनकी सख्या पाच है—बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य। प्रस्तुत नाटक के कथानक मे यथास्थान इनका समावेश है।

१३४. नाटक के प्रारम्भ मे उद्दिष्ट नाटक के फल के कारण तथा कथानक मे अनेक रूप से पल्लवित तत्व को 'बीज'[१] कहते है। यह 'बीज' अर्थ प्रकृति-प्रस्तुत नाटक के प्रथम अक के उस स्थल से प्रारम्भ होती है, जहा काम अपनी पत्नी रति से कहता है कि विवेक और उपनिषद् देवी के सगम से 'प्रबोधचन्द्र' के साथ विद्या का जन्म होगा। वस्तुत विद्या की उत्पत्ति का कथन ही इस कथा का बीजतत्व है। इस तत्व से ही समस्त कथानक का विकास सम्पन्न हुआ है। विवेक–प्रबोध और विद्या के उदय के लिये प्रयत्न करता है। इस प्रयत्न मे काम और मोहादि विरोध करते है। विरोध और द्वन्द्व से समन्वित समस्त कथानक इसी 'बीज' तत्व से विस्तार पाता है।

१३५. किसी दूसरी कथा से विच्छिन्न हो जाने पर कथानक को जोडने और आगे बढाने के लिये जो कारण होता है, उसे 'बिन्दु'[२] कहते है। प्रस्तुत नाटक के

(ख) अभिप्रेतं समग्र च प्रतिरूपं क्रियाफलम्।
इतिवृत्ते भवेद्यस्मिन् फलयोगः प्रकीर्तितः।।
ना० शा० अ० १९, श्लोक १३।

१. (क) स्वल्पमात्रं समुत्सृष्टं बहुधा यद्विसर्पति।
फलावसानं यच्चैव बीजं तत्परिकीर्तितम्।
ना० शा० अ० १९, श्लोक २२।

२. (क) अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्।
सा० द० ष० प० का ६६।

(ख) प्रयोजनानां विच्छेदे यदविच्छेद कारणम्।
यावत्समाप्तिर्बन्धस्य स बिन्दुः परिकीर्तितः।।
ना० शा० अ० १९, श्लोक २३।

द्वितीय अक मे प्रविष्ट होकर दम्भ और अहकार महामोह के प्रबल प्रभाव की वार्त्ता करते हैं। इससे कथा के बीज का विच्छेद हो जाता है। किन्तु जब अहकार भयभीत होकर दम्भ से कहता है कि विवेक से महामोह को महाभय उपस्थित है—यह बीज का अविच्छेदक कारण ही बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति है। क्योकि इस कथन से प्रधान कार्य की पुष्टि होती है।

१३६. 'पताका' नामक अर्थ-प्रकृति की परिभाषा कथानक के अन्तर्गत दी जा चुकी है। यह प्रासगिक कथानक का ही एक भेद है। प्रस्तुत नाटक की 'विष्णु-भक्ति' की कथा 'पाताका' अर्थ प्रकृति है।

१३७. 'प्रकरी' नामक अर्थ प्रकृति भी प्रासगिक इतिवृत्त का ही एक भेद है, जैसा कि पहले ही स्पष्ट प्रतिपादित किया गया है। प्रस्तुत नाटक की वैयासिकी सरस्वती का प्रसग प्रकरी नामक अर्थ प्रकृति है।

१३८. पाचवी 'अर्थप्रकृति कार्य है।'[1] कार्य से तात्पर्य उस घटना से है जिसके लिए सब उपायो का आरम्भ किया जाय और जिसकी सिद्धि के लिये सामग्री इकट्ठी की गई है। प्रकृत नाटक के छठे अक मे पुरुष को प्रबोध का उदय और परम ज्ञान की सिद्धि होती है। पुरुष स्वयम्भू मुनि होने तथा सदानन्द पद पर प्रतिष्ठित होने का अनुभव करता है। यही कार्य' अर्थ प्रकृति है।

१३९. इस प्रकार विवेचन से स्पष्ट है कि पाचो अर्थ प्रकृतियो का यथास्थान रुचिर निवेश इस नाटक मे हुआ है।

१४०. जिस प्रकार अवस्थाए व्यापार-शृखला की तत्तत् स्थितियो की द्योतक है और अर्थ प्रकृतिया कथावस्तु से सम्बन्ध रखती हैं, उसी प्रकार सधियाँ नाटक-रचना के विभागो की निर्देशिका है। किसी एक प्रयोजन से परस्पर सम्बन्धित कथाशो को जब किसी दूसरे एक प्रयोजन से समन्वित किया जाता है, तो उस सम्बन्ध को सन्धि[2] कहते हैं। इनके पाच भेद किये गये है—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण।[3]

---

१. (क) अपेक्षितं तु यत्साध्यमारम्भो यन्निबन्धनः।
समापन्नन्तु यत्सिद्धयै तत्कार्यमिति सम्मतम्।
सा० द० ष० प० का० ६९-७०।

(ख) यदाधिकारिकं वस्तु सम्यक प्राज्ञैः प्रयुज्यते।
तदर्थो यः समारम्भस्तत्कार्यं परिकीर्तितम्॥
ना० शा० अ० १९, श्लोक २६।

२. अन्तरैकार्थ सम्बन्धः सन्धिरेकान्वयेसति।

३. मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः।

१४१. प्रकृत नाटक के तत्तत् स्थलों पर इन पाचो सन्धियों का सुभग सन्निवेश हुआ है।

१४२. प्रारम्भ नामक अवस्था से युक्त, नाना प्रकार के अर्थों और रसों को उत्पन्न करने वाली बीज की समुत्पत्ति को 'मुख' सन्धि कहते हैं।[1] प्रस्तुत नाटक के प्रथम अंक मे मतिके कथन—प्रबोधोत्पत्तिर्भविष्यति"—अर्थात् प्रबोध की उत्पत्ति कैसे होगी। इस वाक्य से सूचित 'आरम्भ' अवस्था और काम के 'अस्माक कुले काल रात्रिकल्पा विद्या नाम राक्षसी समुत्पत्स्यसे' अर्थात् हमारे इस कुल मे काल-रात्रि के सदृश विद्या नाम की राक्षसी उत्पन्न होगी। इस वाक्य से व्यक्त बीज के मेल से 'मुख' सन्धि का निर्माण हुआ है।

१४३. उपरोक्त 'बीज' का कुछ-कुछ दिखाई देना और कुछ-कुछ न दिखाई देना—इस लक्ष्यालक्ष्य के रूप मे बीज का उद्भिन्न होना 'प्रतिमुख' सन्धि कहलाती है।[2] यह प्रयत्न और 'विन्दु' के साथ-साथ रहती है। 'प्रबोधचन्द्रोदय' के द्वितीय और तृतीय अक मे 'प्रतिमुख' सन्धि का ही विस्तार है। इन अको मे कही तो मोह, अहकारादि विरोधियो के प्रभाव का वर्णन है और कही विरोधियो के लिये नायक की ओर से किये गये प्रयत्नो से भय और पराजय की शका भी उपस्थित की गई है, जिससे 'प्रबोधोदय' रूप फल कही गुप्त और कही स्पष्ट हो जाने से प्रतिमुख सन्धि का निर्माण हुआ है।

१४४. बीज के दृष्ट होने के बाद पुन. नष्ट होने पर बार-बार उसका अन्वेषण

---

१ (क) यत्र बीज समत्पत्तिर्नानार्थ रस सम्भवा।
प्रारम्भेण समायुक्ता तन्मुख परिकीर्तितम् ॥
सा० द० प० प० का० ७६, ७७।

(ख) यत्र बीज समुत्पत्तिर्नानार्थं रससम्भवा।
काव्य शरीरानुगता तन्मुखं परिकीर्तितम् ॥
ना० शा० अ० १९, श्लोक १९।

२ (क) लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेवस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्।
द० रु० प्र० प्र० का० ३०।

(ख) बीजस्योद्घाटनं यत्र दृष्ट नष्टमिव क्वचित्।
मखन्यस्तस्य सर्वत्र तद्वै प्रतिमुखं स्मृतम् ॥
ना० शा० अ० १९, श्लोक ४०।

किया जाना 'गर्भ सन्धि' कहलाती है।[1] इसमे पताका नामक अर्थ प्रकृति और प्राप्त्याशा नामक अवस्था का मिश्रण पाया जाता है। परन्तु पताका का होना बहुत अनिवार्य नही है। तृतीय अक के अन्त मे विष्णुभक्ति का 'पताका' रूप वृत्तान्त प्रारम्भ होने से गर्भसन्धि प्रारम्भ हो जाती है। चतुर्थ अक मे विष्णुभक्ति की प्रेरणा से विवेक अपने सैनिको को नियुक्त और युद्ध करने प्रारम्भ करने का प्रयत्न करता है, जिससे प्राप्त्याशा की स्थिति पाचवे अक के प्रारम्भ तक चलती है। अत 'गर्भसन्धि' की योजना तृतीय अक से प्रारम्भ होकर पाचवे अक के प्रारभ तक है।

१४५. चौथी 'सन्धि' अवमर्श या विमर्श है। क्रोध, व्यवसन या लोभ से जहा फलोपलब्धि के विषय मे विमर्श किया जाय तथा जिसके बीज को 'गर्भसन्धि' के द्वारा प्रकट किया गया हो उसे 'विमर्श'[2] सन्धि कहते है। इसमें प्रकरी अर्थप्रकृति और नियताप्ति अवस्था की योजना रहती है। प्रस्तुत नाटक मे श्रद्धा के द्वारा विष्णु-भक्ति को युद्ध का यह प्रसग सुनाना कि मोह ने विवेक का सन्देश सुनने के अनन्तर क्रुद्ध हो युद्ध छोड दिया तथा युद्ध मे कामादिको के विनाश हो जाने के पश्चात् विवेक की विजय हो जाने पर भी, मोहादि के कारण मन दु खी रह गया है तथा मोह कही छिप गया है। यह और विष्णुभक्ति के द्वारा प्रेषित सरस्वती के उपदेश से मोह का नाश होकर मन का निवृत्ति की ओर उन्मुख होना फल की उपलब्धि के नियत हो जाने से 'नियताप्ति' अवस्था के अन्तर्गत आते है। सरस्वती के उपदेश से मन का सहजानन्द सान्द्रत्व का अनुभव करना गर्भसन्धि के द्वारा बीज का प्रकट

---

१. (क) गर्भस्तु नष्टद्रष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः।
. . . पताका स्यान्नवा स्यात्प्राप्तिसंभवः।।
द० रु० प्र० प्र० का० ३६।

(ख) उद्भेदस्तस्य बीजस्य प्राप्तिरप्राप्तिरेव वा।
पुनश्चान्वेषणं यत्र स गर्भ इति स्मृतः।।
ना० शा व० १९, श्लोक ४१।

२. (क) क्रोधेनावमृशेयत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।
गर्भनिर्भिन्न बीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः।।
द० रु० प्र० प्र० का० ४३।

(ख) गर्भनिर्भिन्न बीजार्थो विलोभनकृतोऽथवा।
क्रोधव्यसनयो वापि सविमर्श इति स्मृतः।।
ना० शा० अ० १९, श्लोक ४२

होता है। इसके अतिरिक्त सरस्वती का प्रसग जो कि प्रकरी है—का मेल भी है। अत 'विमर्श सन्धि' है।

१४६. पाचवी सन्धि 'निर्वहण' है। जहा बिखरे हुए, बीज के सहित मुख आदि अर्थ, एक अर्थ मे एकत्रित कर दिये जाते है, उसे 'निर्वहण'[1] सन्धि कहते हैं। इसमे 'फलागम' अवस्था और 'कार्य' अर्थप्रकृति की योजना रहती है। छठे अक मे विवेक की विजय और विषयादि शत्रुओ का नाश होने की शुभसूचना से लेकर 'प्रबोधोदय' रूप कार्य की सिद्धि पर्यन्त 'निर्वहण' सन्धि का विस्तार है। इसका अन्त शुभसूचक भरतवाक्य से होता है। इस प्रकार नाटक के छठे अक मे 'निर्वहण' सन्धि का सफल सगठन हुआ है।

१४७. इस प्रकार ऊपर किये गये विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कृष्ण मिश्र ने अवस्था, अर्थप्रकृति और सन्धियो का अपने इस नाटक मे जो सन्निवेश किया है, वह किसी भी प्रकार नाटक की कथावस्तु को विश्रृंखल नही होने देता, अपितु उसके कारण नाटक मे एक गति आ गई है।

२. प्रबोधचन्द्रोदय के पात्र--उनका चरित्र चित्रण

पात्र तालिका

पुरुष पात्र	
१ सूत्रधार	८ पारिपार्श्वक, पुरुष, सारथी प्रतिहारिण
२ विवेक	९ महामोह
३ वस्तुबिचार	१० चार्वाक
४ सन्तोष	११ काम, क्रोध, लोभ, दम्भाहकारा
५ पुरुष	१२ मन
६ प्रबोधोदय	१३ क्षपणक, भिक्षु, कापालिक
७ वैराग्य, निदिध्यासन सकल्प	१४ बटु, शिष्य, पुरुष, दौवारिक

१ (क) बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णायथायथम्।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहण हितत्॥
द० रु० प्र० प्र० का० ४८-४९।।

(ख) समानयनमर्थानां मुखाधानां सबीजिनाम्।
नानाभावान्तराणां यद्भवेन्निर्वहण तु तत्॥
ना० शा० अ० १९, श्लोक ४३।

स्त्री पात्र

१—नटी	८—सरस्वती
२—मति	९—क्षमा
३—श्रद्धा	१०—मिथ्या दृष्टि
४—शान्ति	११—विभ्रमावती
५—करुणा	१२—रति
६—मैत्री	१३—हिंसा
७—उपनिषद्	१४—तृष्णा

१४८. प्रस्तुत नाटक के कथानक और उसके अर्थप्रकृति अवस्था और सन्धियो से सचलित स्वरूप का ऊपर विवेचन कर लेने के उपरान्त, अब इसके 'पात्रो' का नाटकीय दृष्टि से अध्ययन करना क्रम प्राप्त है। इसके पात्र भावतात्विक और अमूर्त होते हुए भी सजीव और मूर्त जैसे प्रतीत होते है मानव की भाति वे परस्पर सबद्ध है। भावतात्विक पात्रो के अतिरिक्त सैद्धान्तिक एव मतमतान्तरो से सम्बन्धित पात्रा का भी स्वरूप मनोवैज्ञानिक और पर्याप्त रोचक है। नाटक की सकुचित सीमा मे भी अनेक भावतात्विक एव सैद्धान्तिक पात्रो का सफलतापूर्वक निवेश कर नाटककार ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इन्ही पात्रो का अध्ययन हम निम्न प्रकार से करेगे —

(१) नायक-नायिका निर्णय
(२) पात्रो के प्रकार
(३) पात्रो का चरित्र-चित्रण एव उनकी मनोवैज्ञानिकता

१. नायक-नायिका निर्णय

१४९. 'प्रबोधचन्द्रोदय' मे नाटककार ने नायक और नायिका का चित्रण प्रतिनायक के विरोधी चरित्र के साथ नाटकीय ढग से ही किया है।

१५० **नाटक का नायक**—प्राचीन नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक का नायक वही माना जाता है, जिसे उद्देश्य एव फल की प्राप्ति हो अथवा जो फल प्राप्ति के हेतु प्रारम्भ से अन्त तक प्रयत्नशील रहे। 'प्रबोधचन्द्रोदय' मे राजा विवेक ही प्रारम्भ से अन्त तक फल-प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील है। उसे ही प्रारभ से मोहादि के द्वारा 'ब्रह्म' को दीनदशा प्राप्त करा देने का क्षोभ होता है। और उसके निरन्तर किये गये शुभ प्रयत्नो से प्रबोध का उदय सम्भव होता है। अपनी पत्नी मति से शुभ परामर्श करके प्रबोधोदय के हेतु स्वीकृति प्राप्त कर लेता है तथा शमदमादि को नियुक्त कर देता है। महामोह जब अपना विस्तार अधिक कर देता है तब विवेक, वस्तु विचार

और सन्तोष आदि अपने सैनिकों को विशेष रूप से सतर्क कर देता है। विशेष वीर सैनिको की सेना सुसज्जित करके वाराणसी मे पडाव डाल देता है। सभी विपक्षी उसमे हार जाते है और वह विजयी होता है। मन के वैरागी हो जाने के पश्चात् जब उपनिषद् देवी पुरुष को तत्वज्ञान का उपदेश देती है तब वह 'तत्वमसि' महावाक्य को पुरुष को समझा कर 'प्रबोधोदय' के योग्य बना देती है। इस प्रकार शत्रुओ को पराजित करना और ब्रह्म तथा आत्मा के तत्वज्ञान को विशेष स्पष्ट करके ग्राह्य बना देता है। विवेक का कार्य आदि से अन्त तक महत्वपूर्ण है। 'प्रबोधोदय' रूप फल-प्राप्ति के समय अपना कार्य सम्पन्न करके यद्यपि विवेक रगमच से विदा होता है और केवल पुरुष ही 'प्रबोधोदय' के प्रकाश का अनुभव करता है। किन्तु इससे विवेक के नायकत्व का महत्व कम नही होता, अपितु, उसकी महत्ता और अधिक बढ जाती है क्योकि शुभसाधना करने के पश्चात् वह पुरुष को फल-प्राप्ति का अवसर देकर स्वय विदा हो जाता है। उसकी विदा का कार्य भी 'पुरुष के प्रबोधोदय मे सहयोग देता है।

१५१ विवेक ने 'ब्रह्म' को दीन दशा से मुक्त करने का जो कार्य आरम्भ किया उसको उसने पूर्णता की स्थिति तक पहुँचा दिया। अत 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक के 'नायकत्व' का श्रेय विवेक को ही प्राप्त है।

१५२. शृगार की दृष्टि से विवेक को दक्षिण नायक की पदवी प्रदान की जा सकती है। दक्षिण नायक के एक से अधिक पत्निया होती है और वह सब मे समान भाव से प्रेम रखता है। नायक विवेक भी अपनी महिषी मति से स्वीकृति लेकर उपनिषद् के साथ सयोग की आकाक्षा व्यक्त करता है। दोनो ही पत्नियो मे समान स्नेह एव आदर की भावना है। मति के यह पूछने पर कि प्रबोध का उदय कैसे सम्भव है, वह सकोच के कारण निरुत्तर हो जाता है। मति के विशेष आग्रह पर वह उसे बताता है कि चिरवियोगिनी उपनिषद् देवी से सयोग, तुम्हारे शात रहने से ही सम्भव है। उसके इस सकोचपूर्ण उत्तर से मति प्रभावित हो जाती है और प्रसन्नता के साथ उसे उपनिषद् से मिलने की आज्ञा दे देती है। इस प्रकार दोनो पत्नियो को समान रूप मे प्रसन्न रखने की योग्यता विवेक के चरित्र की विशेषता है, जो उसे गुणवान और दक्षिण नायक बनाने मे समर्थ है।

१५३. एक 'धीरोदात्त' नायक के चरित्र मे जिन विशेष गुणो का होना नाट्य शास्त्रकारो की दृष्टि मे आवश्यक है, विवेक का चरित्र उन सभी गुणो से परिपूर्ण है। वह 'धीरोदात्त' नायक है, अतएव उन सभी गुणो का वह आकर है, जिनकी विद्यमानता 'धीरोदात्त' नायक मे रहा करती है। धीर और साहसी है। वह स्वात्माभिमानी है किन्तु आत्मश्लाघी नही। विजयी होने पर भी, नम्रतापूर्वक अपने कार्य मे रत रहना उसकी अपनी विशेषता है। वह ज्ञानी और पुरुष को 'प्रबोधोदय'

कराने मे समर्थ है। सम्राट् होने पर भी उसमे आज्ञाकारिता है जिसका साक्षात्कार हमे उसके विष्णुभक्ति की आज्ञा शिरोधार्य कर, कार्य करने मे होता है।

१५४. निष्कर्ष यह है कि विवेक 'प्रबोधचन्द्रोदय' का धीरोदात्त, दक्षिण नायक है।

१५५ **नाटक का प्रतिनायक**[1]--फल प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने वाले प्रधान नायक का विरोधी पात्र 'प्रतिनायक' कहलाता है। प्रतिनायक नायक के मार्ग मे निरन्तर बाधाए और कठिनाइयां उपस्थित करके सघर्ष को बढावा देता है।

१५६. 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक मे नायक विवेक प्रबोध की उत्पत्ति के हेतु प्रयत्न करता है किन्तु महामोह उसके इस पावन कार्य मे बाधक बन जाता है। वह अपने पक्ष के व्यक्तियो को विवेक को पराजित करने के निमित्त प्रेरित एव नियोजित करता है। वह काम, क्रोध आदि और विभिन्न मतमतान्तरो को अधिक से अधिक अपने विस्तार के लिये सतत प्रयत्नशील रहने को कहता है। ताकि विवेक का प्रभाव न बढने पाये। जब उसे यह ज्ञात होता है कि श्रद्धा विवेक के कार्य मे सहायता कर रही है तब उसे पकडवाने का प्रयास करता है। युद्ध मे भी वह अपने योद्धाओ के साथ विवेक से युद्ध करता है। किन्तु जब उसके सभी योद्धा पराजित हो जाते है तो वह भाग कर छिप जाता है। विवेक की विजय के अनन्तर जब विष्णुभक्ति सरस्वती को भेज कर शोक से दु.खी मन को अपने पक्ष में करके वैराग्य से निवृत्ति की ओर उन्मुख करने की चेष्टा करती है, तो छिपा हुआ पराजित मोह बाधा डालने का प्रयास करता है। वह मधुमती विद्या को मन के आकर्षण के हेतु इसलिए भेजता है कि मन निवृत्ति की ओर उन्मुख न होकर मधुमती के द्वारा आकर्षित हो जाय ताकि विवेक का प्रभाव न बढे और वह पुन बाधाओ मे फँस जाय किन्तु उसका यह प्रयास भी विवेक के सहायक तर्क शास्त्र की सतर्कता से निष्फल सिद्ध हो जाता है। अन्त मे महामोह को हार खानी पडती है। यह पराजित महामोह ही नाटक का प्रतिनायक है जो विवेक को सफल न होने देने के हेतु, प्रारम्भ से अन्तिम समय तक प्रयत्न करता रहता है। इस प्रकार प्रतिनायक के रूप मे महामोह एक सफल पात्र है।

१५७. **नाटक की नायिका**--नायक की पत्नी अथवा प्रधान कार्यों की सम्पादिका नायिका होती है। 'प्रबोधचन्द्रोदय' के स्त्री पात्रो मे मति, उपनिषद् देवी और विष्णुभक्ति ही प्रधान हैं। जिन्होने कि 'प्रबोधोदय' की उत्पत्ति मे सहयोग दिया

---

१. प्रतिनायक का ही दूसरा नाम 'खल नायक' भी है, जिसे अंग्रेजी में 'विलियन' Villain **कहते हैं।**

है। इनमें विष्णुभक्ति तो रगमच से दूर रह कर, स्वतन्त्र रूप से आज्ञा प्रेषित कर, क्रियात्मक प्रेरणा द्वारा कार्य का सचालन करती है। महाभैरवी विद्या की समाप्ति, श्रद्धा की रक्षा, विवेक को युद्ध प्रारम्भ करने की आज्ञा मन के वैराग्य के हेतु सरस्वती की योजना आदि उनके ही सचालन-सूत्र के अग है। श्रद्धा और शान्ति उनकी आज्ञा को प्रेषित करती है और आज्ञा प्राप्त व्यक्ति उसका पालन करते है। विष्णुभक्ति स्वय रगमंच पर आकर क्रियात्मक कार्य नही करती है। इस प्रकार विष्णुभक्ति रगमच से दूर ही रहती है। केवल फल-प्राप्ति के पश्चात् शुभाशीर्वाद के हेतु वह एक बार रगमच पर आती है। अत विष्णुभक्ति के प्रसग को स्वतन्त्र पताका रूप मे सहयोगी कथानक मानना ही उपयुक्त है। और इसीलिए विष्णुभक्ति नाटक की नायिका नही कही जा सकती।

१५८. अब शेष रह जाती है नायक विवेक की दो पत्नियां—मति और उपनिषद् जिनमे से प्रत्येक नायक की पत्नी होने के कारण नायिका-पद की अधिकारिणी हो सकती है। परन्तु इन दोनो मे वास्तविक नायिका कौन है ? यह एक विचारणीय प्रश्न है। परन्तु विचार करने पर प्रधान नायिका का गौरवपूर्ण पद मति को ही मिलता दीखता है। हम देखते है कि प्रथम अक मे मति विवेक के साथ रगमच पर उपस्थित होती है। उस समय वह विवेक से ब्रह्म को दीन दशा से मुक्त करने का उपाय पूछती है। विवेक के निरुत्तर हो जाने पर एक सती-साध्वी प्रतिप्राणा पत्नी की भाति प्रत्येक प्रकार के कष्ट सहन करने का आश्वासन देती हुई आग्रह करती है कि विवेक उसे 'प्रबोधोदय' का पता दे। विवेक से यह ज्ञात होने पर कि 'उपनिषद् का सगम होने पर ही 'प्रबोधोदय' संभव है और उसके विलग होने की सम्भावना है, मति सपत्नी के प्रति ईर्ष्यालु न होकर प्रसन्नता से कल्याणार्थ, उपनिषद् की खोज और मिलन की आज्ञा दे देती है। इस प्रकार मति प्रधान नायक को आज्ञा प्रदान करने का कार्य सम्पादित करके विदा हो जाती है। विवेक प्रसन्न होकर उपनिषद् की खोज मे सलग्न होता है। इस प्रकार नायक को फल-सिद्धि की ओर प्रेरित करना रूपी महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करने के कारण मति ही प्रस्तुत नाटक की प्रधान नायिका सिद्ध होती है।

१५९. उधर यदि हम उपनिषद् देवी की ओर अपना दृष्टिपात करते हैं तो देखते हैं कि उपनिषद् देवी ने भी विवेक को 'प्रबोधोदय' प्राप्ति के हेतु अपना क्रियात्मक सहयोग प्रदान किया है। संकर्षण विद्या द्वारा मन मे विद्या का प्रवेश और पुरुष मे प्रबोध का प्रवेश करा कर, वह प्रस्थान कर जाती है। इसके अनन्तर निदिध्यासन की अवस्था में 'प्रबोधोदय' होता है। किन्तु यह सारा कार्य उसने नाटक के छठे अक मे प्रवेशक के बाद मे रगमच पर आकर सम्पन्न किया है। इसलिये भारतीय नाट्य-

शास्त्र के अनुसार उसे नायक की पत्नी होने के कारण इस नायक की नायिका होना चाहिये, परन्तु मति की सपत्नी होने और विवेक के द्वारा केवल कार्यनिर्वाहिका के रूप में आहूत होने के कारण, उसे नायिका का गौरवमय पद नही मिल सकता। हाँ, पाश्चात्य मत के अनुसार जिसमे नायिका के लिये नायक की पत्नी होने की अपेक्षा नाटकीय कथा-प्रवाह मे प्रमुख भाग लेना ही उसकी असाधारण विशेषता मानी गई है—उपनिषद् नायिका अवश्य कही जा सकती है—क्योकि मति की अपेक्षा-जैसा कि हमने देखा है, उपनिषद् ने कथा-प्रवाह मे अधिक प्रधान भाग ग्रहण किया है।

१६०. निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि भारतीय मत मे नायक की महिषी होने के कारण मति प्रधान नायिका और कनिष्ठ पत्नी होने के कारण उपनिषद् द्वितीय नायिका है, इसके विपरीत पाश्चात्य मत के अनुसार फलोद्गम मे सहायक होने के कारण उपनिषद् प्रधान नायिका और मति कार्य करने के लिये विवेक को केवल आज्ञा देने के कारण द्वितीय नायिका है।

१६१. **प्रासंगिक कथा की नायिका**—'प्रबोधचन्द्रोदय' का प्रासगिक कथानक नायिका-प्रधान है। प्रासगिक कथानक की पताका और प्रकरी दोनो अको मे नायिकाओ की प्रधानता है। पताका की नायिका विष्णुभक्ति है और प्रकरी की नायिका है वैयासिकी सरस्वती। नायिका के रूप मे दोनो ने ही अपने कार्य का सफल सम्पादन किया है। विष्णुभक्ति ने नायक विवेक के कार्य की योजना बनाने का कार्य अप्रत्यक्ष रूप से किया जिससे फल-प्राप्ति सभव हो सकी। विष्णुभक्ति की यह योजना कल्याणकारी और निरन्तर सफलता की ओर अग्रसर करने वाली ही रही। फल-प्राप्ति के पश्चात् जब विष्णुभक्ति रगमच पर आकर 'प्रबोधोदय, प्राप्त पुरुष से सहायता की आवश्यकता के सम्बन्ध मे प्रश्न करती है, कृतज्ञता व्यक्त करते हुए पुरुष की, 'स्वस्ति' कामना विष्णुभक्ति करती है।

१६२. मन मे वैराग्य उत्पन्न करने के हेतु प्रकरी की नायिका के रूप मे वैयासिकी सरस्वती रगमच पर प्रकट होती है। अपने सान्त्वनाप्रद ज्ञानोपदेश से मन मे वैराग्य-भावना उत्पन्न कर निवृत्ति से सम्बद्ध कर देती है। इस प्रकार प्रकरी की नायिका के रूप मे, नाटक के फल की प्राप्ति मे सफल सहयोग प्रदान कर विदा हो जाती है।

१६३. विवेक के साथ युद्ध मे मोहादिको के नष्ट हो जाने के पश्चात् उनके लिये दुखी और व्यथित मन को प्रवृत्ति से विरक्त करके निवृत्ति की ओर उन्मुख करने के हेतु सरस्वती ने जिस तत्परता से काम किया है, वह मा की ममता, बुद्धिमत्ता, कल्याणकारी हितोपदेश, दयालुता, सहानुभूति और सत्प्रयत्न का परिचायक है। इसी से कठिन से कठिन कार्य करने मे वह सफल होती है। सरस्वती मन मे मोहादिको के प्रति वैराग्य उत्पन्न करने के हेतु उसे समझाती है कि पचतत्व

का यह शरीर समुद्र के फेन के समान क्षणिक है। इसके पचतत्व में मिल जाने से फिर दुःख क्यो ? अनन्तर अनेक उपदेशो को सुनकर जब मन विरक्त होना चाहता है तब आग्रहपूर्वक सरस्वती ने उसको वैसा करने से मना कर, निवृत्ति के साथ उसका विवाह करा, विवेक और मैत्री आदि को भी उससे सम्बद्ध कर दिया। ज्ञानमयी सरस्वती के वात्सल्यपूर्ण व्यवहार से मुग्ध-मन का कल्याण हो जाता है। सरस्वती अपनी दक्षता और परिश्रम से विष्णुभक्ति के विश्वास को सार्थक कर देती है।

२. पात्रो के प्रकार

१६४. 'प्रबोधचन्द्रोदय' की कथा भावात्मक एव आध्यात्मिक है। अतएव उसके पात्र भी भावतात्विक, आध्यात्मिक एव विभिन्न मत सम्बन्धी है। दूसरे अध्याय मे की गई 'रूपक' शब्द की परिभाषा के अनुसार, इस नाटक के जिन पात्रो मे अमूर्त भावनाओ एव आध्यात्मिक सिद्धान्तो की मूर्त कल्पना आरोपित की गई है वे पात्र 'रूपक' पात्र कहे जायेंगे। रूपक पात्रो के अतिरिक्त इस नाटक के कुछ पात्र विभिन्न मत सम्बन्धी है जो अपने मत या वर्ग विशेष की विशेषता को लेकर, उन मतो या वर्ग विशेषो के प्ररूप (Typical) पात्र के रूप मे आये हैं। इन पात्रो मे तत्तत् मतो एव वर्ग विशेषो की सभी विशेषताए प्रतिबिंबित हैं।

१६५. किसी वर्ग विशेष की विशेषता से युक्त चरित्र या पात्र प्ररूप (Typical) कहे जाते हैं (Typical) शब्द की परिभाषा आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित द एडवानस्ड लर्नर्स डिसनरी आफ करेन्ट इगलिश मे इस प्रकार की गई है[1]-किसी श्रेणी अथवा वर्ग की विशेषता के उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत व्यक्ति या वस्तु को (Typical) कहते है '' इसी प्रकार प० रामचन्द्र शुक्ल ने 'जायसी

---

1. Type—(taip) n. (i) (c) a person; thing, event, etc. considered as an example of a class, group or quality; a characteristic specimen Abraham Lincoln was a fine type of American patriotism (of the American patriot). 2. (c) a class or group having common characteristiecs, as men of the Nordictype A cowardly buldog is not true to type. Typical—(tipikal) adj. Serving as a type characteristic. Abraham Lincoln was a typical American patriot.

—By A. S. Hornby & E. V. Gatenty & H. Wakefield.

ग्रन्थावली ' की भूमिका मे कैकेयी और मन्थरा के चरित्रो को वर्गगत विशेषता वाले चरित्र बताया है।[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी वर्ग विशेष की विशेषता से युक्त पात्र प्रथम पात्र कहे जा सकते हैं। रूपक और प्ररूप पात्रो के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी साधारण पात्र प्रस्तुत नाटक मे है जो कथानक की नाटकीय योजना मे सहयोग देते पाये जाते हैं।

१६६. उपर्युक्त विवेचन के आधार पर 'प्रबोधचन्द्रोदय' के पात्रो को तीन प्रकार के पात्रो मे विभाजित किया जा सकता है .—

(क) रूपक पात्र, (ख) प्ररूप पात्र, (ग) साधारण पात्र

(क) 'रूपक' पात्रो के अन्तर्गत 'प्रबोधचन्द्रोदय' केनिम्न पात्र आते है —विवेक वस्तुविचार, क्षमा, सन्तोष, श्रद्धा, शान्ति, मति करुणा, मैत्री, पुरुष, महामोह, काम क्रोध, लोभ, हिंसा, तृष्णा, दम्भ, अहकार, रति मिथ्यादृष्टि, विभ्रमावती, मन, विष्णुभक्ति, सरस्वती, उपनिषद् सकल्प, वैराग्य, निदिध्यासन और प्रबोध।

(ख) 'प्ररूप' पात्रा मे निम्नलिखित पात्र आते है — चार्वाक, भिक्षु क्षपणक कापालिक और वट तथा शिष्य ।

(ग) 'साधारण' पात्र-इस वर्ग मे सूत्रधार, परिपार्श्वक, सारथि प्रतिहारी और दौवारिक आदि है।

१६७ अब हम क्रमसे इन पात्रो के चरित्र-चित्रण और मनोवैज्ञानिक विशेषताओ का अध्ययन करेगे।

३. पात्रो का चरित्र-चित्रण और उनकी मनोवैज्ञानिकता

१६८. 'प्रबोधचन्द्रोदय' के पात्र भावतात्विक और रूपकात्मक होते हुए, देश विशेष के प्रतिनिधि भी है। उनके कार्य-कलाप और परस्पर-सम्बन्ध की योजना मे हमे मनोवैज्ञानिकता के दर्शन होते हैं। अब हम प्रबोधचन्द्रोदय के प्रथम प्रकार के रूपक पात्रो का चरित्र-चित्रण करेगे।

(क) रूपक पात्र

१६९. विवेक—सम्राट् विवेक का पिता मन और माता निवृत्ति है। मति उसकी प्रधान पत्नी है तथा उपनिषद् द्वितीय पत्नी है। महामोह उसका सौतेला भाई

---

१. राम, लक्ष्मण, भरत और परशुराम आदि के चरित्रो मे जैसी व्यक्तिगत विशेषताएं तथा कैकेयी, कौशल्या और मथरा आदि के व्यवहारो मे जैसी वर्गगत विशेषताए, गोस्वामी तुलसीदास जी हमारे सामने रखते हैं, वैसी विभिन्न विशेषताए जायसी अपने पात्रों द्वारा सामने नहीं लाते।

—जायसी ग्रन्थावली (भूमिका)—रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १२०.

है। जिसने उसके राज्य का भी अपहरण कर लिया है। महामोह के असत् साम्राज्य से ब्रह्म दीन दशा को प्राप्त हो गये। अत विवेक को अपने राज्य की उतनी चिन्ता नही होती, जितनी कि मोह के असत् साम्राज्य से ब्रह्म की दीन दशा का अनुभव करके दुख होता है। उसे चिन्ता है कि ब्रह्म को किस प्रकार दीन दशा से मुक्त किया जाय। विवेक अनन्त ब्रह्म की शक्ति और स्वरूप से परिचित है। इससे काम का नीचतापूर्ण आक्षेप उसे सहन नही होता है। वह रगमच पर प्रवेश करता हुआ मति से कहता है कि काम और अहकार आदि दुर्जनो ने आनन्द रूप निर्मल निरजन परमेश्वर को दैन्यावस्था मे पहुँचा दिया। हम परब्रह्म को दीनता से बन्धन-मुक्त करने का प्रयत्न कर रहे है, तो यह हमे पापी कहकर, नीचतापूर्ण आक्षेप कर रहा है।

१७०. विवेक कामादि की दुष्ट प्रवृत्ति से परिचित है, जिसके प्रभाव से शुद्धान्तःकरण वाले विद्वान् भी सहज धैर्य छोडकर अधीर हो जाते है। विवेक माया का विशेषण भी सूक्ष्मरूप से करता है कि माया स्वभाव से ही अनिष्टकारिणी होती है। वह अपने पुत्र मन को पुराण पुरुष के पद पर प्रतिष्ठित करना चाहती है। विवेक अपने पिता मन की चारित्रिक विशेषताओ एव प्रभाव को भी जानता है। उसे ज्ञात है कि मन अपनी माता माया के स्वभाव वाला है। मन का कर्तृत्व, भोक्तृत्व धर्म आत्मा मे प्रतिभासित होता है। मन का ज्येष्ठ पौत्र अहकार है। जिसके प्रभाव से जीव मेरा जन्म, मेरा जनक मेरी माता और मेरा शत्रु मानता है। और ब्रह्मस्वरूप आत्मा को भूल कर शरीर को ही आत्मा मानने लगता है। विवेक अपनी पत्नी का उचित आदर करता है। वह स्त्रियो के ईर्ष्यालु मनोवैज्ञानिक तथ्य को समझता है। पत्नी की स्वीकृति से वह प्रसन्न होता और अपनी विजय को निश्चित मानता है। पत्नी की प्रेरणा से उत्साहित होकर कार्य प्रारम्भ करता है। विवेक विष्णुभक्ति का आज्ञाकारी है। उनके अनुशासन मे ही अपने कार्यों का सचालन करता है। उनकी अनुमति से ही युद्ध के हेतु सैनिको को सुसज्जित कर काशी की ओर प्रस्थान करता है।

१७१. विवेक विचारशील होने पर भी श्रद्धालु और आस्तिक भी है। पूर्ण निष्ठा से विष्णु मन्दिर मे विष्णु की वन्दना एव स्तुति करने के पश्चात, युद्ध भूमि की ओर गमन करता है। वहा वीरतापूर्वक शत्रु का नाश करके विजयी होता है। विजयी विवेक उन्मत्त नही होता है। ब्रह्म को दीन दशा से मुक्त करने का उपाय निरन्तर प्रारम्भ रखता है। वह विजयी होकर उपनिषद् को आमन्त्रित करता है। उपनिषद् की ज्ञानवार्ता पुरुष (पात्र) समझने मे असमर्थ होता है, तब वह सावधानी से तात्पर्य स्पष्ट कर देता है। तदनन्तर पुरुष मे, उपनिषद् के सहयोग से प्रबोधोदय की योजना सम्पन्न कर, रगमच से विदा होता है। इस प्रकार

विवेक ने जिस उद्देश्य को लेकर कार्य प्रारम्भ किया, उसमे अनेक बाधाएँ आने पर भी प्रयत्न, साहस, धैर्य और ज्ञान से सफलता प्राप्त कर लेता है। मानव की विवेक भावना मे जो उचित अनुचित के विचार का विधान होता है, वही विधान विवेक के प्रस्तुत चरित्र मे भी है। विवेक का वार्तालाप, कार्यकलाप, धैर्य और गम्भीरता विवेक की मनोवैज्ञानिक भावना के अनुकूल ही है।

१७२. **वस्तुविचार**--वस्तुविचार सम्राट् विवेक का योग्य कर्मचारी है। उसके सम्मुख काम का प्रभाव क्षीण हो जाता है। सम्राट् विवेक ने वस्तुविचार को इसी कारण काम को पराजित करने के हेतु नियोजित किया है। वस्तुविचार स्त्री की मूर्ति को अपवित्र मानता है। वह नारी शरीर की वास्तविक वीभत्सता के वर्णन से विरक्ति उत्पन्न कर, काम पर विजय प्राप्त करने मे समर्थ होता है। उसका विचार है---नारी मास से लिपटी हुई हड्डी रूप मे, दुर्गन्धिमय वीभत्स होती है। विचित्र वेषभूषा, आभूषण आदि के द्वारा, अन्य गुणो का आरोप कर मानव मदोन्मत्त होता है और सोचता है कि नारी मुझे देखती, प्रेम करती है।

१७३. वस्तुविचार नारी के स्मरण रूप द्वार को भी बन्द करके, कुशलता से काम को पराजित करने का उपाय करता है। मानव आत्मा को काम विमुख करने के हेतु वह वन, नदी, पर्वत, उपवन, वसन्तोदय और घनगर्जन युक्त दिवसो से प्राप्त सात्विक आनन्द का वर्णन करता है। युद्ध क्षेत्र मे अपने इन्ही उपायो द्वारा काम को पराजित करके उसी प्रकार विजयी होता है जैसे अर्जुन जयद्रथ को मारने मे सफल हुआ था। विवेक की प्रेरणा से उचित अनुचित का तात्विक विवेचन और अन्य उपायो की सहायता से, वस्तुविचार की कामोन्मूलन की योजना पूर्णतया मनोवैज्ञानिक है।

१७४. **क्षमा**--क्षमा मे क्रोध को पराजित करने की शक्ति है। वह बिना परिश्रम के, अनायास ही क्रोध की भीषण ज्वालाओ को शान्त कर देती है। उसकी इस विशेष प्रतिभा के कारण सम्राट् विवेक क्रोध को पराजित करने के लिए उसे नियुक्त करता है।

१७५ धीर वीर मनुष्य, क्षमा की शक्ति से क्रोध की कटूक्तियो की चोट को सहन कर जाते हैं। उसकी सहायता से धैर्यशालियो को तनिक भी कष्ट नही होता है। न उनको चिन्ता होती है न शारीरिक पीडा होती है। वे सुगमता से सफल होते है। क्षमा मे साहस भी है। वह क्रोध को उसी प्रकार नष्ट करती है जैसे कात्यायिनी ने महिषासुर का वध किया था। इसने क्रोध पर विजय प्राप्त करने का जो उपाय बताया है वह पूर्ण मनोवैज्ञानिक एव कल्याणकारी है। वह कहती है मधुर मुस्कान से क्रोध की उपेक्षा कर देनी चाहिए। क्रोधी के आवेश मे

आने पर-प्रसन्न होने की प्रार्थना करना, गालिया या अपशब्द कहना प्रारम्भ करने पर कुशलता पूछना, यदि वह मारे-तो यह समझना कि पाप कट रहे हैं, इससे क्रोध का नाश हो जाता है। इस प्रकार क्षमा दुर्जेय शत्रु क्रोध को पराजित करने वाली, परम हितैषिणी नारी है। इस प्रकार क्षमा के द्वारा आयोजित उपायो का वर्णन पूर्ण मनोवैज्ञानिक है।

१७६. संतोष—सन्तोष विवेक का शक्तिशाली सैनिक है। उसमे लोभ को वश में करने की शक्ति है। सम्राट् विवेक सन्तोष को लोभ को परास्त करने के हेतु नियुक्त करता है। उसके सम्मुख लोभ असमर्थ होकर भाग जाता है। इससे सन्तोष शत्रु पर विजयी होता है।

१७७. सन्तोष लोभियो का निन्दक है। उसका विचार है कि बनो में मीठे फल, नदियो मे शीतल जल, पल्लव निर्मित शैय्या सहज सुलभ है। कृपण जन व्यर्थ मे ही धनवानो का अपमान सहन करते है। धन से तृप्ति की आशा मृगतृष्णा के समान है। लोभान्धकार से आवृत मनुष्य को आशा राक्षसी ग्रसित कर लेती है। जिसके कारण वह अपना अनिष्ट नही देखता है। लोभ ग्रसित मानवो के प्रति सन्तोष के हृदय मे दया और सहानुभूति है। वह उन्हे अपने सद् उपदेश से अमृत सागर के अलौकिक आनन्द का अनुभव कराना चाहता है। वह साहस के साथ लोभ को उसी प्रकार पराजित कर देता है जैसे राम ने रावण का नाश कर दिया है। सन्तोष का चरित्र भी पूर्ण मनोवैज्ञानिक है। सन्तोष की भावना से मनुष्य लोभ पर विजय प्राप्त करने मे समर्थ होता है।[1] सन्तोष मे अधिकाधिक प्राप्ति की इच्छा नही होती है। अनिवार्य आवश्यकता पूर्ति से ही उसमे तुष्टि और पुष्टि का अनुभव होता है।

१७८. श्रद्धा—सात्विकी श्रद्धा विष्णुभक्ति की सखी और शान्ति की माता है। श्रद्धा को शान्ति बहुत प्रिय है। तृतीय अक मे शान्ति कहती है, "श्रद्धा मेरे ही साथ रहती, स्नान करती और खाती थी। मेरे बिना वह जीवन धारण में असमर्थ थी।" श्रद्धा के सम्बन्ध मे करुणा की धारणा भी श्रेष्ठ है। उसका

---

१. वस्तुविचार, क्षमा और सन्तोष के उपायों के सम्बन्ध में शंका की जा सकती है कि इन उपायों का सहयोग साधारण जीवन में दुर्लभ है, किन्तु यह बात नहीं है। यह उपाय उनके हृदय मे शीघ्र समाविष्ट हो जाते हैं, जिनके हृदय को मुदिता, करुणा, मैत्री और उपेक्षा आदि अपने निवेश से पवित्र कर चुकी हैं। ऐसे स्तर के मानसिक व्यक्तियों के लिए यह उपाय पूर्ण मनोवैज्ञानिक एवं सार्थक है। नाटक के चतुर्थ अंक के प्रवेशक में इसका संकेत मिलता है।

विचार है कि श्रद्धा जैसी पुण्यमयी नारी की पाखण्डालयों मे दुर्गति असम्भव है। वह विपत्ति मे नही पड सकती है।

१७९. श्रद्धा मे नारी सुलभ भीरुता भी है। महाभैरवी के द्वारा पकड़ जाने की घटना से वह अधिक भयभीत हो उठती है। इस व्याकुलता मे वह अपनी सखी मैत्री को भी नही देख पाती है। उसकी सखी ही उसे बुलाकर सान्त्वना देती है, तब उसे कुछ धीरज होता है। श्रद्धा विष्णुभक्ति की आज्ञाकारिणी सखी है। वह विष्णुभक्ति द्वारा प्रेषित विश्वसनीय सन्देशो को यथास्थान पहुँचा देती है। श्रद्धा द्वारा प्रेषित युद्ध के सन्देश को विवेक के पास पहुँचा देती है। रगमच से वर्जित घटित घटनाओ को भी, रगमंच पर प्रत्यक्ष घटित होने वाली घटनाओ से सम्बन्धित करके, घटना प्रवाह मे एव कथा को अग्रसर करने मे महत्व-पूर्ण सहयोग देती है। वाराणसी मे घटित विवेक के युद्ध और विजय के वृत्तान्त को श्रद्धा, शालिग्राम मे प्रतीक्षा करती हुई विष्णुभक्ति के सन्निकट पहुँचकर सुना देती है। उस वृत्तान्त को सुनकर विष्णुभक्ति सरस्वती को मन के शान्त करने के हेतु भेजने की योजना करती है। श्रद्धा के द्वारा ही विष्णुभक्ति रगमच से अप्रत्यक्ष रहकर अपने अनुशासन मे सफल होती है। 'पुरुष' की आज्ञा का पालन भी श्रद्धा ने तत्परता से किया है। तत्वबोध की इच्छा से जब पुरुष विवेक को बुलाना चाहता है, तब श्रद्धा ही इस कार्य को सम्पन्न करती है। इस प्रकार यह सात्विकी श्रद्धा विष्णुभक्ति और प्रबोधोदय की सफल सहयोगिनी के रूप मे नाटक मे अवतरित हुई है। नाटक मे सात्विक श्रद्धा के अतिरिक्त तामसी और राजसी श्रद्धा का भी प्रवेश हुआ है। तामसी श्रद्धा जैन और बौद्ध धर्म की सहयोगिनी के रूप मे तथा राजसी श्रद्धा कापालिक-सोममतानुयायी की सहायिका के रूप मे उपस्थित हुई है। इन दोनो के कृत्य भी सात्विकी श्रद्धा से पृथक और अपने अपने गुणो के अनुकूल पूर्ण मनोवैज्ञानिक है।

१८०. **शान्ति**—शान्ति श्रद्धा की पुत्री है। अपनी माँ श्रद्धा के प्रति शान्ति के हृदय मे अगाध स्नेह है। श्रद्धा माँ के अन्वेषण मे निराश होने से चिता मे जलने को तत्पर हो जाती है। करुणा (पात्र) की सान्त्वना से आश्वस्त होकर वह पाखण्डालयो मे माँ की खोज करती है। शान्ति को अपने समय के साधुओं की वेषभूषा और मतों का ज्ञान भी है। पाखण्डालयों में उसे जो साधु मिलते हैं, वह पहचान लेती है कि अमुक दिगम्बर मतानुयायी है या बुद्धागम है। माँ श्रद्धा का अन्वेषण शान्ति ने सतर्कता और सावधानी से किया है। जब क्षपणक गणित की गणना करके श्रद्धा के निवास स्थान का परिचय देता है, उस परिचय को उत्सुकता से सुनकर विष्णुभक्ति तक सब वृत्तान्त पहुँचा देती है।

१८१. शान्ति सहृदया और कार्य सम्पादन मे चतुर नारी है। विष्णुभक्ति को चिन्तित देखकर उन्हे सान्त्वना देती है। विवेक का आवश्यकतानुसार कार्य सतर्कता से सम्पादित करती है। अपनी दुर्दशा से दुखी उपनिषद् को सुयोग्य परामर्श देकर ज्ञानोपदेश के हेतु तत्पर कर देती है। इस प्रकार शान्ति मातृभक्त और पर हितैषिणी नारी है। शान्ति के इस चरित्र मे मनुष्य की शान्ति की भावना का मनोवैज्ञानिक चित्रण है।

१८२. **मति**--कथानायक सम्राट् विवेक, जो धैर्यवान और ज्ञानमय है, प्रधान महिषी मति है। प्रस्तुत कथानक की यही नायिका है। प्रारम्भ मे विवेक के साथ ही विचार विमर्श करती हुई, रगमचपर प्रवेश करती है। यह विचार-शालिनी नायिका है। पति के द्वारा की गई शत्रु निन्दा पर भी वह विश्वास नही करती है। जिज्ञासापूण प्रश्न करके सप्रमाण समाधान से ही सन्तुष्ट होती है। यह पतिपरायणा नारी है। माया के ठगने से ब्रह्म की दीनता के कारण पति को चिन्तित देखकर, उसकी दीन दशा दूर करने के हेतु आतुर हो उठती है। वह उन स्त्रियो मे नही है जो पति के सुप्रयत्न मे सपत्नी ईर्ष्या के कारण बाधा डालती है। पति को सत्कार्य सम्पन्न करने की आज्ञा सहर्ष प्रदान करती है। उसकी प्रसन्नता से प्रसन्न एव सन्तुष्ट हो जाती है।

१८३. **करुणा**--करुणा, मुदिता और मैत्री आदि की बहिन है। वह प्रकृति से दयालु और सहानुभूतिपूर्ण है। शान्ति के दुख मे वह दुखी एव सवेदित होती है। शान्ति के प्रति सवेदना व्यक्त कर चिता मे मृत्य से उसकी रक्षा करती है। पाखण्डा-लयो मे मा की खोज मे सहयोग देकर, पुत्री को मा से मिलने मे सफल बना देती है। पुण्य कर्मो के सुफल पर करुणा को पूर्ण विश्वास है। उसका विचार है कि पुण्य कर्म करने वाली, नारी को कष्ट और पीडा से व्यथित नही होना पडता है। इस प्रकार सुविचारो वाली करुणा, कष्ट एव वेदनामय परिस्थिति मे, सवेदना व्यक्त करने वाली सहृदया, हितैषिणी सहायिका सिद्ध होती है।

१८४. **मैत्री**--मैत्री, मुदिता उपेक्षा आदि की बहिन है। विष्णुभक्ति के प्रति निष्ठामयी और आज्ञाकारिणी है। वह अपनी बहिनो मुदिता, करुणा और उपेक्षा आदि के साथ महामोह के नाश के हेतु सज्जनो के हृदय मे जाकर निवास करती है। श्रद्धा के प्रति भी उसके हृदय मे स्नेह एव ममता है। विष्णुभक्ति के द्वारा श्रद्धा की रक्षा का समाचार उसे हार्दिक प्रसन्नता प्रदान करता है। मैत्री श्रद्धा के प्रति सवेदना व्यक्त करती है, उससे श्रद्धा आश्वस्त हो जाती और कार्य सम्पादन मे सलग्न हो जाती है।

१८५. **पुरुष**--पुरुष, आत्मा का रूपक पात्र है। मन के निवृत्ति की ओर

उन्मुख हो जाने के पश्चात् ही इसका प्रयत्न प्रारम्भ होता है। इसकी तत्वज्ञान प्राप्ति की इच्छा मे विवेक और उपनिषद् सहायक सिद्ध होते है। पुरुष मे आदर, सम्मान की भावना है। उपनिषद् का मा के सम्बोधन तथा चरण स्पर्श से सम्मान करता है। उपनिषद की कुशलता पूछकर, उसकी कष्टप्रद यात्रा के प्रति सवेदना व्यक्त करता है। वह परम ज्ञान के प्रति जिज्ञासु है। उपनिषद् मे 'तत्वमसि' के उपदेश को वह सहज ही नही ग्रहण कर पाता। विवेक उसकी सहायता कर, ज्ञान को ग्राह्य बना देता है। तत्व ज्ञान से युक्त पुरुष मे निदिध्यासन की सहायता से, विद्या और प्रबोध का उदय होता है। जिससे पुरुष को परम ज्ञानमय प्रकाश और स्वरूपानन्द का अनुभव होता है। पुरुष कृतज्ञता को व्यक्त करना भी जानता है। विष्णुभक्ति जब उसे प्रबोधोदय के पश्चात् साक्षात् दर्शन देती है, तब वह उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए, उनके चरण स्पर्श करता है। इस प्रकार पुरुष अपनी तत्परता मे प्रबोधोदय रूप मोक्ष को प्राप्त करने मे समर्थ होता है।

१८६. **महामोह**--महामोह मन का परम प्रिय पुत्र है। वह विस्तृत साम्राज्य का सम्राट् है, कथानायक विवेक का प्रतिपक्षी अर्थात् कथा का प्रतिनायक है। यह आस्तिका का निन्दक और नास्तिक विचारधारा का प्रशसक और अनुयायी है। आत्मा और परलोक मे विश्वास करने वालो की आशा को आकाश कुसुमवत् व्यर्थ समझता है। महामोह जाति पाति मे विश्वास नही करता है। स्त्री और धन सम्पत्ति के भेदभाव को भी नही मानता है। हिंसा और पर स्त्रीगमन को वह दोष नही समझता है। इसको दोष मानने वालो को वह निष्पौरुष मानता है। महामोह के लिए प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। केवल अर्थ और काम पुरुषार्थ है। पचभूत ही चैतन्य है। ससार के अतिरिक्त स्वर्ग नही है। मृत्यु ही अपवर्ग वा मोक्ष है। बृहस्पति शास्त्र को अपनी रुचि के अनुकूल मानता है। चार्वाक् के मिलने पर मित्र-वत् उसका सहर्ष स्वागत करता है। और कुशल मगल पूंछता है।

१८७. वह राजनीतिकुशल सम्राट् की भाँति राज्य सम्बन्धी समाचारो के प्रति सतर्क रहता है। कलि की कार्य प्रगति पूछकर, उसके सुप्रयत्न के प्रति साधुवाद भी देता है। कर्मचारियो का कायरता पूर्ण सन्देश उसे सहन नही होता है। कर्म-चारियो पर क्रोधित होकर, भय के कारण को दूर करने की प्रेरणा और सतर्क रहने की आज्ञा देता है। राज्य के भय के कारण को दूर करने के लिए योग्य कर्मचारियो को नियुक्त करता है। उसके राज्य मे नारिया भी निडर वीरो की भाति राजशत्रु के नाश मे तत्पर रहती है। महामोह सपरिवार दुश्चरित्र और विलासी हैं। विभ्रमावती और मिथ्या दृष्टि की वार्ता से उसके परिवार का दुराचार व्यक्त होता है। मिथ्या दृष्टि के प्रति उसके विलासपूर्ण शृगारिक व्यवहार से महामोह

की विलासिता प्रकट होती है। इस प्रकार महामोह का राज्य असत्य और अज्ञान का राज्य है। महामोह दुश्चरित्र राजा है। काशी मे विवेक के द्वारा पराजित हो जाता है। पराजित होकर भी छिप जाता है। और छलकपट से मन को वश मे कर, पुन शक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। किन्तु अन्त मे विवेक के सहायक से उसे अपमानित होकर भागना पडता है।

१८८. **काम**--काम पात्र महामोह के पक्ष का प्रधान है। विवेक का विरोध करता हुआ रगमच पर प्रविष्ट होता है। काम की पत्नी रति है। रति के साथ वार्तालाप एव व्यवहार मे उसकी चारित्रिक विशेषतायें स्पष्ट हो जाती है। यह शृगारप्रिय, अभिमानी साहसी, प्रभावशाली, पत्नी के प्रति उदार, विरोध होने पर भी श्रेष्ठ-भ्राता के प्रति पूज्य भावना वाला है। शृगार प्रियता के कारण पत्नी के साथ आलिगन किये हुए, रगमच पर प्रवेश करता है। उसके नेत्रो मे मदोन्मत्तता एव चचलता है। (प्रस्तावना श्लोक १०)। अभिमानी होने के कारण शत्रु की प्रशसा उसे असहनीय है। वह अपने अमोघ शस्त्रो के रहते हुए विवेक और प्रबोध का उदय असम्भव समझता है। उसके अमोघ शस्त्र है—नील, कमल के तुल्य नेत्रवाली नायिकाए। उसे गर्व है कि यद्यपि उसके बाण कुसुममय है किन्तु सुर असुर भी उससे प्रभावित है। इन्द्र, ब्रह्मा, चन्द्रमा आदि उससे सभी मोहित और उन्मत्त हो चुके है।

१८९. काम स्वामीभक्त भी है। स्वामी महामोह की प्रशसा करता है और विवेक पर आक्षेप करता है। विवेक को वह वक्रगति वाले धूल के समान स्वजनक का नाश करने वाला कहता है। विवेक के साथ सघर्ष और वैमनस्य होने पर भी विवेक के सम्मुख आने पर ज्येष्ठ भ्राता के प्रति आदर की भावना से, उसके स्वाभाविक गुणो की प्रशसा करता हुआ, उसके लिए स्थान छोड कर चला जाता है। उसके सम्मुख काम की निडरता और गर्व लुप्त हो जाते है। विवेक के ज्येष्ठ मानने के कारण, शिष्टाचार पूर्ण व्यवहार करने को बाध्य होता है। इस प्रकार मनुष्य की कामवासना का चित्रण पूर्ण मनोवैज्ञानिक रूप से ही किया गया है।

१९०. **क्रोध**--क्रोध महामोह का योग्य कर्मचारी है। उसमे अहम् भाव अधिक है। वह अपनी शक्ति से ससार को ऐसा अन्धा और बहरा बना देता है कि विद्वान और महान् व्यक्ति भी उचित अनुचित के विचार से रहित हो जाते हैं। वे अधीर और मूर्ख हो जाते हैं। परिश्रम और साधना से अधीत विद्या भी उन्हे विस्मृत हो जाती है। कितने ही ऋषि और देवता क्रोध से अनेको का वध और नाश कर चुके है।

१९१. क्रोध की प्रभावशालिनी पत्नी हिंसा है। पत्नी के सहयोग से क्रोध के

लिए, माता-पिता और सहोदर भ्राता का वध भी कठिन कार्य नही रह जाता। उसके प्रभाव से सांसारिक जनो को अपने सम्बन्धियो का व्यवहार छलकपट पूर्ण प्रतिभासित होता है। और सर्वनाश करके ही वे शान्त होते हैं। इसी योग्यता के कारण सम्राट् उसे शत्रुपक्ष की भक्ति को पकड लाने का कार्य समर्पित कर गौरवान्वित करता है। क्रोध के कारण मनुष्य की जो विचित्र दशा हो जाती है, उसका मनोवैज्ञानिक चित्रण है।

१९२. **लोभ**--क्रोध के समान ही लोभ भी महामोह के विशेष कर्मचारियो मे से है। यह सन्तोष का शत्रु है। उसके प्रभाव से सासारिक जन मनोरथो और इच्छाओ के कठोर बन्धन मे पड जाते है। जिससे अनेक कष्टो से पीड़ित होने पर भी वे नही छूट पाते है। वे इसी चिन्ता मे रहने लगते हैं कि यह मतवाले हाथी, शीघ्रगामी घोडे मेरे है, अभी और अधिक मुझे मिलेगे। लोभ की पत्नी तृष्णा है। जो पतिव्रतानारी के समान उसकी सहायिका सिद्ध होती है। लोभ का प्रभाव उसकी सहायता से अधिकाधिक विस्तृत एव दृढ हो जाता है। सामाजिक धन-लिप्सा मे आसक्त होकर विपत्तिया उठाते रहते है। सम्राट् की आज्ञा से क्रोध के साथ ही वह कार्य योजना मे नियुक्त होता है। लोभ से प्रभावित मनुष्य के विचित्र आकर्षणो का मनोवैज्ञानिक चित्रण है।

१९३. **हिंसा और तृष्णा**--हिसा क्रोध की पत्नी और तृष्णा लोभ की पत्नी है। दोनो अपने पतियो की आज्ञाकारिणी नारिया हैं। पति के कार्य मे तत्परता से सहयोग देती है। जिससे कि वे कार्य अधिक सफलता से सम्पन्न हो सके। हिंसा तृष्णा की भावनाओ का जिन भावनाओ को पत्निया कहा है, यह भी पूर्ण मनोवैज्ञानिक है।

१९४. **दम्भ**--आडम्बर पूर्ण दम्भ मोह का दास है। इसकी माता तृष्णा और पिता लोभ है। इसके पुत्र का नाम अनृत है। दम्भ अपने स्वामी महामोह की आज्ञा से काशी के धार्मिको को वाह्याडम्बर पूर्ण बना देता है। वहा के धार्मिक उसके प्रभाव से वेश्यागमन सुरापानादि दुर्व्यसनो मे फसे होने पर भी दीक्षित, अग्निहोत्री, ब्रह्मज्ञ और तपस्वी बनने की घोषणा करते है। ये बृहस्पति, कुमारिल, शालिक मिश्र आदि को नही पढते है किन्तु फिर भी जनता उनके अद्भुत प्रभाव से प्रभावित होकर ध्यान से उपदेशो को सुनती है। सन्यासी, मस्तक घुटाकर भीख मागने को, सन्यास धारण करते हैं। काशी मे दम्भ अपने आश्रम को सजाये रखता है। उसके आश्रम मे कृष्णाजिन, प्रस्तर खण्ड, समिधा, चषाल, ऊखल, मूसल आदि रखे रहते हैं। होम के धुए से उसका आश्रम सुगधित रहता है। अहकार पात्र उसके आश्रम को गृहमेधी का पवित्र स्थान समझकर निवास स्थान की खोज मे

जाता है। दम्भ अपने माथे भुजाओ पेट कमर पीठ कपोल आदि सभी अगो पर चन्द्राकार चन्दन लगाता है। यह शिखा कान और हाथ मे कुश लगाये रहता है।

१९५ अहकार जब उसके आश्रम मे प्रवेश करने लगता है तो उसे बिना पैर धोये कुल परिचय बिना दिये प्रवेश प्राप्त नही होता है। दम्भ छुआछूत को भी मानता है। पसीने की बूँद हवा मे उड आने के कारण शिष्य को दात पीसकर क्रोधित होकर देखता है। उसके आसन पर किसी अन्य व्यक्ति को बैठने की आज्ञा नही है। शिष्य पर उसका पूण प्रभाव है। सम्राट भी अपने शीश किरीटो से उसकी देहली को प्रणाम करते हैं। दम्भ अहकारी भी है। अपनी अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशसा करता है। वह कहता है कि जब वह ब्रह्मा के घर गया तो ऋषि मुनियो ने भी अपना आसन छोड दिया। इस प्रकार दम्भ के चरित्र मे बाह्याडम्बर प्रधान है। उन्ही बाह्याडम्बरो का मनोवैज्ञानिक वणन है।

१९६ **अहकार**--अहकार राढापुरी का निवासी है। जिससे अहकार पात्र गौड देश की राढापुरी का प्रतिनिधित्व भी करता है। इस प्रकार प्रबोधचन्द्रोदय के भावतात्त्विक रूपक पात्र प्रसगवश देश विशेष के प्रतिनिधि के रूप म भी चित्रित कर दिये गये है।[1] अहकार पात्र महामोह का दास है। उसमे तीनो लोको का ग्रस लेने वाला अभिमान है। वह दप और अभिमान से युक्त है। वह वाक्पटु भी है और अपने वाग्जाल से समस्त ससार को तिरस्कृत कर देता है। उसे अपनी बुद्धिमत्ता पर गव है।

१९७ अहकार मे आलोचनात्मक प्रवृत्ति भी है। वह काशी मे आकर वहा के निवासियो के आडम्बर पूर्ण व्यवहार की आलोचना करता है। उसे देश विदेशो के आचार व्यवहार का ज्ञान भी है। दम्भ के आश्रम मे जब उसे घसने की आज्ञा नही मिलती उससे कुल परिचय देन एव पैर धोने को कहा जाता है तब वह आक्षप करता है कि क्या मैं तुरको के देश मे हूँ जहा पर श्रोत्रियो और अतिथियो को आसन देकर सत्कार नही किया जाता है। अहकार अभिमानी होने पर भी स्वामि भक्त है। दम्भ से परिचय होते ही स्वामी महामोह की आपत्ति की चिन्ता करता है। अहकार के रूप आकार और व्यवहार वार्तालाप मे पूण मनोवैज्ञानिकता है।

१९८ **रति**--रति काम की पत्नी है। वह शृगार प्रिय मदोन्मत्त पति के साथ रगमच पर प्रविष्ट होती है। यह चपल नेत्रवाली सुन्दरी नारी है। उसके नेत्रो ककण शोभित उसकी भुजाओ और उच्च स्तनो मे सम्मोहन है। रति

---

१ मद और मान नामक पात्रों को उत्कल देश का निवासी बताया गया है। पृष्ठ ७४।

शुभ परामर्शदात्री है। घमण्ड मे भूले अपने पति को परामर्श देती है कि विवेक और उसके मत्री आदि बलवान प्रतीत होते हैं, उनसे विरोध उचित नही है। सघर्ष से कुलनाश की वार्ता सुनकर वह शान्तम् पापम् कह उठती है।

१९९. वह भयभीत हृदया है। राक्षसी विद्या उत्पन्न होकर पितामहित दोनो कुलो का नाश करेगी। इस बात को सुनने से भयभीत हो जाती है। पति की सान्त्वना से उसका डर दूर होता है। यह जिज्ञासु प्रवृत्ति की भी है। जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण वह अपने पति से, उसका वश परिचय, विरोध का कारण, वश नाश के सम्बन्ध मे प्रसिद्ध किंवदन्ती, विवेक का अपने ही वश नाश का कारण पूछ लेती है। रति अपने पति की आज्ञापालिका और कल्याणकारिणी नारी है।

२०० **मिथ्यादृष्टि**––मिथ्यादृष्टि महामोह के परिवार की एक प्रभावशालिनी नारी है। महामोह और उसके परिवार का पुरुष वर्ग उस पर आकर्षित है। मिथ्यादृष्टि विलास प्रिय एव मिथ्या कार्यो मे चतुर नारी है। वह सौभाग्यशालिनी भी है क्योकि उसकी सपत्निया भी उससे सन्तुष्ट रहती है। इसीलिए महामोह मिथ्याजाल मे निपुण मिथ्यादृष्टि को शत्रुपक्ष की शान्ति और श्रद्धा को पकड लाने का कार्य भार सौप देता है। उसके अदभुत गुणो से प्रभावित महामोह उसे क्रीडा पुत्तलिका के समान हृदय मे अवस्थित कर लेना चाहता है।

२०१ **विभ्रमावती**––विभ्रमावती, महामोह के राज्य की सेविका है। अपने कर्तव्यो को तत्परता से सम्पादित करती है। नारी प्रकृति स्वभाव एव चारित्रिक विशेषताओ से परिचित है। मिथ्यादृष्टि से वार्तालाप करके उसके कार्यव्यापारो को पूछती एव योग्यतापूर्वक आलोचना भी करती है। महाराज की मनोदशा का भी उसे पूर्ण ज्ञान है। महाराज महामोह के निमत्रण को सुनकर जब मिथ्यादृष्टि कुछ सकुचित एव भयभीत होती है, तब उसे विभ्रमावती (महाराज की विशेषता बताते हुए) सान्त्वना देती है कि ––"महाराज आपको देखकर मोहित हो अपनी सुधबुध भूल जायेगे।"

२०२ **मन**––मन माया का पुत्र है। मन की दो पत्निया है। एक प्रवृत्ति दूसरी निवृत्ति है। उसके दो पुत्र भी है। मोह प्रवृत्ति का पुत्र है और विवेक निवृत्ति से उत्पन्न है। मन को अपने मोह नामक पुत्र से अपेक्षाकृत अधिक स्नेह है। अपना अधिकाश साम्राज्य वह मोह को ही समर्पित करता है। विवेक के साथ सघर्ष मे महामोह के पलायन के कारण शोकाकुल एव व्यथित होता है। उसके वियोग मे पश्चात्ताप करता है और मूर्च्छित हो जाता है। सकल्प के आश्वासन से जब उसका धैर्य नही बंधता तभी उसे सरस्वती देवी तथा पुत्र वैराग्य के अमृतोपम

उपदेशो से सच्ची शान्ति मिलती है। वह कष्ट और व्यथा से मुक्त होकर निवृत्ति की ओर सहज ही उन्मुख हो जाता है।

२०३. **विष्णु भक्ति**--विष्णुभक्ति प्रासगिक कथा की नायिका है। नायक विवेक की हितैषिणी है। रगमच से अप्रत्यक्ष रहकर भी विवेक के सहायक कार्यों की योजना करती है। अपनी सखी श्रद्धा को, वह विवेक की सहायता मे नियोजित कर देती है। किन्तु जब श्रद्धा और धर्म शत्रुपक्ष की महाभैरवी विद्या द्वारा पकडे जाते हैं, तब महाभैरवी का नाश कर, दोनो की रक्षा करती है। विवेक को युद्ध की प्रेरणा देती है। विवेक के विजयी हो जाने के पश्चात भी उसके पिता मन की अनिश्चित परिस्थिति के कारण, पुन महामोह के विस्तार की आशका होती है। उस समय भी यह सरस्वती को आदेश भेजकर विवेक के कल्याण मे नियोजित कर देती है। उसी प्रकार उपनिषद्, निदिध्यासन आदि को नियुक्त कर उन्हे उपाय आदि से विदित कर, प्रबोधोदय के कार्य को सम्पन्न कर सन्तुष्ट होती है। कार्य सम्पादन के पश्चात् अन्त मे पुरुष को दर्शन देकर शेष कल्याण कामना का भी पूर्ण होने का शुभाशीर्वाद देती है। पुरुष इसीलिए उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हुआ कार्य सम्पादन का समस्त श्रेय उन्हे ही समर्पित करता है।

२०४. **वैयासिकी सरस्वती**--वैयासिकी सरस्वती विष्णुभक्ति के आदेश का पालन निष्ठा पूर्वक सम्पन्न करती है। मन की अनिश्चित अवस्था मे सहायिका सिद्ध होती है। अपने पुत्र कलत्र आदि के शोक मे व्यथित मन को, शान्त बना देती है। उसे ससार की नश्वर और क्षणिक अवस्था का ज्ञान कराती है। उसे सावधान करती है कि ससार के सभी सम्बन्धी यात्री के समान है। इनमे राग ही कष्टो का मूल है। अत विष्णु उपासना से ही अलौकिक आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। उसके इस प्रभावशाली कल्याणकारी अमृतोपम उपदेश से मन प्रवृत्ति के प्रति आसक्ति छोडकर निवृत्ति की ओर उन्मुख हो जाता है। सरस्वती, ज्ञानवती, दुर्जेय मन पर विजय प्राप्त कराने वाली निष्ठापूर्वक कर्त्तव्यपालिका, ममतामयी और वात्सल्यमयी नारी है।

२०५. **उपनिषद्**--उपनिषद् विवेक की पत्नी है। इसका स्थान मति के पश्चात् द्वितीय पत्नी के रूप मे है। मति की अनुमति लेकर ही विवेक, वियोग मे पीडित उपनिषद् को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। उपनिषद् दर्शनो की ज्ञाता ज्ञानमयी पतिव्रता नारी है। पति वियोग मे अनेक स्थानो पर भटकती है किन्तु अपनी रक्षा करती हुई सिद्धान्त से विचलित नही होती है। इसकी पुत्री गीता है। तर्कविद्या मीमासा आदि के पास जब उसे आश्रय नही मिलता, तब मन्दार पर्वत पर मधुसूदन मन्दिर मे निवास करती हुई गीता, तथा विष्णु के द्वारा उसकी रक्षा

होती है। अपने पति विवेक द्वारा, अपनी उचित सुरक्षा न किये जाने का उसे क्षोभ होता है। किन्तु जब क्षुभित उपनिषद् को उसके पति की विवशता ज्ञात होती है तब वह अधिक पश्चात्ताप किये बिना ही शीघ्र रक्षा मे तत्पर हो जाती है। पुरुष को तत्वज्ञान का उपदेश योग्यता पूर्वक देती है। अपनी सकर्षण शक्ति से, विद्या को मन मे, प्रबोध को पुरुष मे समर्पित करके, पति के मनोवाञ्छित उद्देश्य को सम्पन्न कर देती है। विभिन्न दर्शनो की ज्ञाता, तत्वज्ञान की उपदेशिका, उपनिषद् सती नारी के रूप मे उपस्थित हुई है।

२०६. **संकल्प**--सकल्प सम्बन्धियो के वियोग मे मूर्च्छित मन को सात्वना देता है। पश्चात्ताप से व्याकुल मन से चिता तैयार करने की आज्ञा पाकर भी, वह उसे धीरज बँधाता है और सरस्वती देवी के आने तक, मन को सहानुभूति पूर्ण वार्ता द्वारा सन्तुष्ट करने की चेष्टा करता है।

२०७. **वैराग्य**--वैराग्य, सरस्वती के उपदेशों द्वारा मन मे उत्पन्न होने के कारण, मन का पुत्र है। सरस्वती की प्रेरणा से मन को वैराग्य से मिलने पर बहुत प्रसन्नता होती है। वैराग्य को वह बडे प्रेम से गले लगाता है। इस प्रकार अपने पिता मे समादृत वैराग्य उसके दु ख को दूर करने के लिए ससार की नश्वरता का उपदेश देता है। उसका उपदेश मन को वैरागी बताने मे बडा प्रभावशाली एव कल्याणकारी सिद्ध होता है।

२०८. **निदिध्यासन**--निदिध्यासन, विष्णुभक्ति का आज्ञाकारी और प्रबोधोदय का सहायक है। प्रबोध के उदय के हेतु विष्णुभक्ति की आज्ञा को उपनिषद् देवी को सुना देता है। उनके द्वारा आज्ञा सम्पादित किये जाने के पश्चात्, स्वय भी पुरुष मे प्रवेश कर जाता है। निदिध्यासन द्वारा सावधानी सतर्कता एव निष्ठा से कर्तव्य पालन किये जाने के कारण ही, विद्या और प्रबोध का जन्म होकर, पुरुष का सच्चा कल्याण होता है और साथ ही नाटक की फलसिद्धि भी पूर्ण हो जाती है।

२०९. **प्रबोध**--प्रबोध प्रकाश रूप और परम ज्ञानमय है। निदिध्यासन की मुद्रा मे बैठे पुरुष के अज्ञान और मोह को लेकर विद्या चली जाती है, तदनन्तर प्रबोध का जन्म होता है। प्रबोध के जन्म से शकाओ एव अज्ञान का अन्धकार शेष नही रह जाता। प्रबोध से ही आत्म साक्षात्कार एव ब्रह्मानन्द का अनुभव होता है।

२१०. इस प्रकार प्रबोधचन्द्रोदय के रूपक पात्रोमे भावतात्विक तथा सैद्धान्तिक दोनों ही प्रकार के पात्र उपलब्ध होते हैं। भावतात्विक पात्रो का चरित्र चित्रण मानव के मनोभावो के अनुकूल ही है। सैद्धान्तिक पात्र, उपनिषद्, सरस्वती और

विष्णुभक्ति आदि अपने सिद्धान्त के अनुकूल ही व्यवहार करते और उपदेश देते हैं।

(ख) प्ररूप पात्र

२११ जैसा कि पूव विवेचन मे कहा गया है प्रबोधचन्द्रादय के कतिपय पात्र किन्ही वग विशेष या मत विशेष के टिपिकल (प्ररूप) पात्र के रूप मे रगमच पर अवतीर्ण होते है। इन्हे ही हमने प्ररूप पात्र कहा है।

२१२ **चार्वाक**--चार्वाक गुरु बृहस्पति का शिष्य और लोकायत मत का विचारक है। अपने सिद्धान्ता का प्रचार वह प्रभावशाली ढग से निपुणता पूवक करता है। अपने शिष्य की शकाआ का समाधान सप्रमाण करता है। यह महामोह का मित्र है। अपनी कुशलवार्ता मे उसे प्रसन्न करता है। उसका व्यवहार शिष्टाचारपूण है। मोह महाराज की जय करने के पश्चात कलि की ओर से साष्टाग प्रणाम करता है। कुशलता पूछ जाने पर वह धन्यवाद करना भी जानता है। महामोह के सम्मख चार्वाक आत्मप्रशसा नही करता है। वह नम्रतापूवक सफलता का श्रय मोह का ही देता है। चावाक राज्य व्यवस्था आर राज्य की दशा स परिचित है। उस ज्ञात है कि उत्तर पश्चिम क व्यक्ति वेदो के प्रति आस्था रहित है। वेद जीविका साधन मात्र क हेतु शेष है और तीर्थो म ज्ञानोदय असम्भव है। निर्भीक और आलोचनापटु चार्वाक विष्णभक्ति से भयभीत हा और आतकित है। इसके सम्बन्ध म महामाह को भी सावधान एव सतक कर देता है। चार्वाक नीतिकुशल भी है। विष्णुभक्ति से भयभीत होते हुए भी उसके प्रति महामोह का कूटनीति पूण व्यवहार के लिए प्ररित कर देता है।

२१३ **क्षपणक**--दिगम्बर जैन मत का अनुयायी साधु क्षपणक है। व्यक्ति गत रूप से क्षपणक दुश्चरित्र और मूख है। वह ससार की विषयवासना म लिप्त लोभी तथा कामी है। अन्य मतावलम्बियो का विरोध और आलोचना करना उसका सहज स्वभाव है। क्षपणक को अपन शिष्या को स्वार्थी और वासनाजनित उपदेश देने मे सकाच नही है। श्रावको को स्त्रियो से विहार करने देने का नीचतापूण उपदेश निलज्जता से देता है। तामसी श्रद्धा उसे प्रिय है। अत अपने श्रावक परिवारो को भी उसी से सम्बन्धित रखता है।

२१४ क्षपणक अहिंसक होने क साथ ही भीरु और विवादी भी है। कापालिक की आलोचना के कारण जब उसे तलवार से मारने की तत्परता दिखाई जाती है ता रक्षा क हेतु भिक्षु की गाद मे छिपता है। क्षपणक की अपने धम मे दृढ आस्था नही है। लौकिक विषय-वासनाए उसे शीघ्र ही विचलित कर देती है। कापालिक जब राजसी श्रद्धा को क्षपणक को आकर्षित करने के हेतु नियुक्त कर देता है तो थोडी ही आनाकानी के पश्चात वह राजसी श्रद्धा के मोह मे पड जाता है।

और कापालिक मत को स्वीकार करने के प्रति उत्सुकता और आग्रह व्यक्त करता है। चरित्रहीन क्षपणक गणित शास्त्र मे निपुण है। जब उसके साथी महामोह की सहायता मे तत्पर होकर श्रद्धा का पता लगाने के हेतु प्रयत्नशील होते है तब क्षपणक ही सहायक सिद्ध होता है। वह गणित से गणना करके बता देता है कि श्रद्धा–जल, स्थल, कन्दरा, पाताल आदि मे नही वरन् विष्णुभक्ति के साथ महात्माओ के हृदय मे वास करती है।

२१५. **भिक्षु**––भिक्षु बौद्धमतानुयायी है। बौद्धमत की पुस्तक हाथ मे लिए हुए रगमच पर प्रविष्ट हुआ है। तरुणताल वृक्ष के समान लम्बा है। लटकता हुआ केसरिया वस्त्र पहने, शिखा समेत सिर घुटाये रहता है। यह अन्य मतो को न तो जानने की जिज्ञासा व्यक्त करता है, न उनकी आलोचना करता है और न उनसे दुराग्रह। किन्ही अशो मे हम भिक्षु को सहिष्णु कह सकते है। भिक्षु को तामसी श्रद्धा अधिक प्रिय है। उसमे व्यक्तिगत रूप से परस्त्रीगमन दोष भी है। अत शिष्या को दिया गया बौद्ध विज्ञानवाद का उपदेश भी इस दोष से मिश्रित होता है। भिक्षु अहिंसक है। वह रक्षा मे तत्पर और उदार भी है। क्षपणक की भाति अधिक वाचाल नही है। किन्तु अपने चारित्रिक दोष के कारण कापालिक की राजसी श्रद्धा के वासनामय आकर्षण से अभिभूत हो, कापालिक मत स्वीकार करने को तत्पर हो जाता है।

२१६. **कापालिक**––सोममतानुयायी कापालिक अपने मत मे दृढ आस्थावान है। अपने मत के अतिरिक्त अन्य मतावलम्बी होना उसे स्वीकार नही है। सोम-मत के विधिविधान और सिद्धियो के प्रति उसके मन मे गौरव है। वह हिंसक और साहसी भी है। अन्य मतावलम्बियो के द्वारा अपने मत की आलोचना उसे असहनीय है। क्षपणक के आलोचना का साहस करने पर वह तलवार खीच कर उसे मारने को तत्पर हो जाता है। अतएव कापालिक अन्य मतावलम्बियो–– बौद्ध और जैन आदि को सोममतानुयायी बनाने मे अपेक्षाकृत अधिक समर्थ है। उसे सोममत की सभी सिद्धिया प्राप्त हैं। वह अपने विद्याबल से जिसे चाहे पकड कर ला सकता है।

२१७. **बटु**––बटु दम्भ के आश्रम का निवासी और उसका शिष्य है। वह आश्रम मे आने वाले नवागन्तुको को गुरु की धारणाओ, नियमो और विशेषताओ से परिचित कराता है। वह गुरु की आज्ञाओ का पालन निष्ठापूर्वक करता है। कुशाग्र और निपुण शिष्य की भाति गुरु दम्भ की हुकार का तात्पर्य और दृष्टि सकेत से मन के भावो को समझने मे देर नही लगाता है। जैसे दम्भ जब क्रोध से दात पीस कर बटु की ओर देखता है, तब बटु जान लेता है कि आगन्तुक के पसीने

की बूँदों के हवा मे उडकर पास आने से गुरु क्रोधित है और नवागन्तुक को गुरु के समीप जाने से वर्जित कर देता है। गुरु के प्रति दृढ आस्थावान है। आगन्तुको के द्वारा की गई गुरु की कटु आलोचना से भी उसके मन मे अन्तर नही आता है। वह अपने गुरु दम्भ की, गौरव और सम्मानपूर्वक अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशसा करता है। इस प्रकार बटु सेवा मे तत्पर एक सच्चा गुरु-भक्त है।

२१८. **शिष्य**--चार्वाक् के साथ प्रविष्ट होने वाला शिष्य वैदिक मत का पक्षपाती एव चार्वाक् मत के प्रति शकालु प्रतीत होता है। चार्वाक् जब वेद, स्वर्ग, यज्ञ तथा श्राद्ध की निन्दा करता है। तब शिष्य वैदिक एव पौराणिक व्रतो तथा नियमो का पक्ष लेकर उनके सम्बन्ध मे प्रश्न और जिज्ञासाये सम्मुख रखता है।

'प्रबोधचन्द्रोदय' के इन प्ररूप पात्रो मे पर्याप्त सजीवता है।

(ग) अन्य साधारण पात्र

२१९. 'प्रबोधचन्द्रोदय' के रचयिता ने कुछ ऐसे पात्रो का भी नाटकीय प्रयोग किया है। जिनका कथा के साथ कोई विशेष सम्बन्ध न होते हुए भी, नाटकीय इतिवृत्त को अग्रसर करने, कथा-प्रवाह को गति देने और कथासूत्र को सयोजित करने के कारण नाटक के कथानक मे महत्वपूर्ण स्थान है।

२२०. ऐसे पात्रो मे हमारे समक्ष सबसे पहले सूत्रधार आता है। नान्दी के अनन्तर यह रगमच पर अवतीर्ण होकर अपनी पत्नी नटी के साथ राजाज्ञा, राज्य-व्यवस्था, नाटककार का नाम, और नाटक का उद्देश्य आदि के सम्बन्ध मे वार्तालाप करता है। इसके अनन्तर सामाजिको के हाथ मे कथा का सूत्र देकर, स्वय प्रस्थान कर जाता है। इसका अभिनय कौशल प्रदर्शनीय कहा जा सकता है।

२२१. दौवारिक महामोह का द्वारपाल है। द्वारपाल के लिए आज्ञाकारिता और क्षिप्रकारिता आदि जिन गुणो की आवश्यकता होती है उनका पूर्ण सद्भाव इसमें पाया जाता है। उदाहरण के लिए महामोह की आज्ञा पाकर क्रोधादि को तुरन्त बुला कर आदेश का पालन करता है।

२२२. राजा विवेक की आज्ञाकारिणी द्वारपालिका प्रतिहारी है। वेदवती नाम की यह स्त्री पात्र विवेक के राज्य की शोभा बढाती है। सम्राट् के द्वारा आहूत व्यक्तियो को ससम्मान उनके समक्ष उपस्थित कर राजाज्ञा का पालन करती है।

२२३. पारिपार्श्वक सम्राट् विवेक का हितैषी अंगरक्षक है। यह युद्ध मे प्रस्थान के हेतु सुसज्जित रथ के साथ सारथी को सम्राट् के निकट बुला देता है। यही सारथी राजा विवेक को काशी के युद्धस्थल मे पहुंचा देता है।

२२४. उपरोक्त सभी पात्र जिस विशेष प्रयोजन से नाटक मे प्रयुक्त हुए हैं वह सुविधापूर्वक सम्पन्न हो गया है। दूसरी ओर इन पात्रो ने तत्कालीन राज्य परम्परा के अनुसार, वातावरण को बनाये रखा है।

उपसंहार

२२५. इस नाटक मे रूपक और प्ररूप पात्रो की योजना नाटक के उद्देश्य की सिद्धि को सम्पन्न करती है। नाटक के नायक और प्रतिनायक का सघर्ष मानसिक (सत् ÷ असत्) अन्तर्द्वन्द्व है। अत मानसिक पात्रो को सत् और असत् दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है।

सत्पक्ष के पात्र		असत्पक्ष के पात्र	
१ विवेक	६ शान्ति	१ महामोह	६ अहकार
२ वस्तुविचार	७ मति	२ काम	७ रति
३ क्षमा	८ करुणा	३. क्रोध-हिंसा	८ मिथ्यादृष्टि
४. सन्तोष	९ मैत्री	४ लोभ-तृष्णा	९. विभ्रमावती
५ श्रद्धा	१० पुरुष	५ दम्भ	१० मन

२२६. भावतात्विक पात्रो के सत्, असत् पक्ष का सघर्ष दिखाने के साथ ही नाटककार ने सैद्धान्तिक रूपक पात्रो मे भी यह सघर्ष दिखाया है। उसने अपने अभीष्ट सिद्धान्तो को विजयी चित्रित किया है। इन मतो को सात्विक और श्रेष्ठ बताया है। जिन मतो का वह निराकरण करना चाहता था, उन्हे महामोह के असत् पक्ष से सम्बन्धित वर्णित किया है। इस प्रकार बिना ही शुष्क आलोचना किये हुए सहज ही उनका निराकरण करने मे तथा स्वमत प्रतिपादन करने मे वह समर्थ हो सका है।

सत्पक्ष (नायक विवेक)	असत् पक्ष (प्रतिनायक महामोह)
१. विष्णुभक्ति	१ चार्वाक
२. सरस्वती	२. भिक्षु
३. उपनिषद	३ क्षपणक
४. सकल्प	४ कापालिक
५. वैराग्य	
६. निदिध्यासन	
७. प्रबोध	

२२७ भावतात्विक रूपक पात्रो के अन्तर्गत प्रत्येक पक्ष की सूक्ष्म भावनाओं की विजय-पराजय पर ही मोह और विवेक की विजय-पराजय निर्भर है। अतः नाटककार ने सूक्ष्म भावनाओ मे से असद् भावनाए सद्भावनाओ को किस प्रकार बहिष्कृत करके अपना प्रभाव विस्तार कर लेती है'[१] तथा सद्पक्ष की भावनाए किन उपायों से विरोधी भावनाओ का निराकरण करती है इसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी किया है। भावनाओ के सघर्ष के इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की श्रेष्ठता ने ही हिन्दी मे 'मोह विवेक युद्ध' नामक रचनाओ की प्रेरणा दी। जिनमे केवल इस मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का ही सविस्तार वर्णन किया गया है।

२२८. भावतात्विक रूपक पात्रो के स्थान विशेष से सम्बन्धित प्रतिनिधि के रूप मे होने का भी सकेत मिलता है। अहकार गाढापुरी का, मद और मान उत्कल के तथा दम्भ काशी का निवासी है। जिससे मनोवैज्ञानिकता के साथ ही नाटककार के समाज की विशेषताओ के वेत्ता होने का भी परिचय मिलता है। सैद्धान्तिक रूपक पात्रो का चरित्र भी नाटकीय ही है। वे पात्र सिद्धान्त विशेष के प्रतिपादक निर्जीव (स्कैल्टन) नही है! मत विशेष के प्ररूप पात्र भी अपने तत्कालीन गुण दोषो से युक्त, कार्यशक्ति और प्रभाव से सम्पन्न, सजीव व्यक्ति है।

२२९ नाटक के इन पात्रों की इस विशेष योजना से प्रभावित होकर ही हिन्दी मे एक विस्तृत परम्परा का निर्माण हुआ। जिस प्रभाव का अध्ययन हम आगे के अध्यायों मे करेगे।

शास्त्रीय निर्णय के अनुसार सम्बन्ध व्यक्त करने वाली पात्र-तालिका

१	सूत्रधार	—नाटक प्रयोग का प्रबन्धकर्ता	
२	नटी	—सूत्रधार की स्त्री	
३	विवेक	—प्रधान नायक	(आधिकारिक कथा का)
४	मति	—विवेक की स्त्री	दोनो नायिकाये
५	उपनिषद्	—मति की सपत्नी	

१. क्रोध—अन्धीकरोमि भुवन बधिरीकरोमि
धीर सचेतनमचेतनतां नयामि।
कृत्यं न पश्यति न येन हित श्रृणोति
धीमानधीतमपि न प्रतिसंदधाति॥२९॥
—द्वितीय अंक, पृष्ठ ७९।

६	वस्तुविचार	—विवेकभृत्य (काम विजेता)
७	सन्तोष	— ,, (लोभ विजेता)
८.	क्षमा	—विवेक की दासी (क्रोध को वशीभूत करनेवाली)
९.	विष्णुभक्ति	—प्रासगिक कथा (पताका) नायिका–विवेक की शुभचिन्तिका।
१०	श्रद्धा	—विष्णुभक्ति की सखी
११.	शान्ति	—श्रद्धा की पुत्री
१२	करुणा	—शान्ति की सखी
१३	मैत्री	—श्रद्धा की सखी
१४	सरस्वती	—प्रासगिक कथा (प्रकरी) नायिका (विष्णु-भक्ति की सखी)
१५	पुरुष	—पूर्वज पुरुष श्रेष्ठ
१६	प्रबोध	—उपनिषद् का पुत्र
१७–१८	सकल्प, वैराग्य	—मन के पुत्र
१९	निदिध्यासन	
२०–२३	प्रारिपार्श्वक, पुरुष सारथी, प्रतिहारी	— अन्यपात्र
२४	महामोह	—प्रतिनायक
२५	मिथ्यादृष्टि	—मोहजाया (प्रतिनायिका)
२६	विभ्रमावती	—मिथ्यादृष्टि की सखी
२७	चार्वाक	—मोह का मित्र
२८	काम	—मोह का आमात्य
२९.	क्रोध	— ,
३०	लोभ	— ,
३१	दम्भ	— ,,
३२	अहकार	— ,
३३	रति	—काम की पत्नी
३४	हिंसा	—क्रोध की पत्नी
३५	तृष्णा	—लोभ की पत्नी
३६–३८	क्षपणक, भिक्षु कापालिक	—महामोह के किंकर, जैन, बौद्ध और सोममत के प्रवर्तक
३९–४२	बटु, शिष्य, पुरुष दौवारिक	—अन्य पात्र

३. कथोपकथन

२३०. पाश्चात्य नाट्य शास्त्री नाटक के छ तत्वो मे कथोपकथन को एक पृथक् किन्तु महत्वपूर्ण मानते है। परन्तु भारत के प्राचीन नाट्य शास्त्रियो ने ऐसा नहीं किया है। उनके मतानुसार कथोपकथन नाटक की कथावस्तु के ही अन्तर्गत है। इसका पता हमे उनके द्वारा किये गये वस्तु के विभाजन से चलता है। उनके विचार मे वस्तु तीन प्रकार की होती है—(१) सर्वश्राव्य, (२) अश्राव्य तथा (३) नियत श्राव्य। वस्तु के ये तीनो प्रकार आधुनिक दृष्टि मे कथोपकथन के ही भेद हैं। एक चौथे प्रकार के भी कथोपकथन का उल्लेख नाट्य शास्त्रीय ग्रन्थो मे पाया जाता है, जिसे आकाश भाषित कहते है। किन्तु प्रबोधचन्द्रोदय मे इनमे से केवल दो प्रकार के कथोपकथन—सर्वश्राव्य और अश्राव्य मिलते हैं। नीचे हम प्रबोध-चन्द्रोदय गत इन्ही दोनो कथोपकथनो की समीक्षा करेंगे।

'सर्वश्राव्य' कथोपकथन

२३१. 'सर्वश्राव्य' कथोपकथन से तात्पर्य उस कथोपकथन से होता है जिसे अभिनेता रगमच पर स्थित सभी व्यक्तियो को सुनाना चाहता है। इसी कथोप-कथन का एक दूसरा नाम 'प्रकाश' भी है।[१] 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक मे सर्वश्राव्य कथोपकथन को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। पात्रो के परस्पर वार्तालाप से कथा-वस्तु का विकास और पात्रो के चरित्र-चित्रण की रूपरेखाओ का निर्माण हुआ है। नाटककार ने अपने विचारो, सिद्धान्तो, आदर्शों तथा सामाजिक अवस्था को कथोपकथन के माध्यम से ही व्यक्त किया है।

२३२. कथावस्तु को अग्रसर करने वाले कथोपकथन—पात्रो के स्वाभाविक कथोपकथनो के मध्य कथा-सूत्र के सकेत मिलते है, जिनके सहयोग से नाटककार ने कथानक को गति दी है। प्रथम अक मे काम और रति के वार्तालाप मे महामोह और विवेक के विरोध[२] तथा 'विद्या' और 'प्रबोध' के उदय[३] का सकेत हमे प्राप्त होता है। तृतीय अक मे कापालिक श्रद्धा को पकडने के हेतु महाभैरवी विद्या को भेजने का निश्चय करता है[४] जिससे विरोध को अधिक विकास प्राप्त होता है और कथा

---

१. सर्वश्राव्य प्रकाश स्यात्। द० रू० प्र० प्र० का० ६४।
२. पृष्ठ २२।
३. पृष्ठ २६।
४. पृष्ठ १३०।

अग्रसर होती है। इसी प्रकार चतुर्थ अंक मे[1] विष्णुभक्ति का यह आदेश कि विवेक से कहो कि युद्ध प्रारम्भ करे, कथानक को अधिक विस्तार देता है।

२३३. चरित्र-चित्रण सम्बन्धी कथोपकथन—कथोपकथन के माध्यम से 'प्रबोधचन्द्रोदय, मे पात्रो के चरित्र की विशेषताओ की रेखाए स्पष्टता और कलात्मकता से चित्रित हुई हैं। भावात्मक और आध्यात्मिक पात्र अपने विशेष आकार प्रकार के साथ मूर्तिमान हो उठे हैं। प्रस्तावना मे सूत्रधार ने काम और रति की उन्मत्तता, मादकता, चचलता का जो वर्णन[2] किया है उससे काम और रति के चरित्र की विशेषताए साकार हो उठी हैं। रगमच पर प्रवेश करते हुए चिन्तित विवेक को देखकर काम के द्वारा रति से की गई इस वार्ता मे कि यह हमारे कुल मे श्रेष्ठ, विवेक मतिदेवी के साथ आ रहे है तथा ये दु ख और विपत्ति के कारण कुहरे से घिरे चन्द्र के समान प्रतीत हो रहे है। विवेक का दु ख पूर्ण रूप से व्यक्त हो जाता है। द्वितीय अक मे चार्वाक विष्णुभक्ति के सम्बन्ध मे कहता है कि विष्णुभक्ति महाप्रभावशालिनी योगिनी है। उसके कारण कलियुग का प्रचार बहुत कम हो गया है[3]। इससे विष्णुभक्ति की सच्चरित्रता, सत्य वादिता और दृढता का विशेष परिचय मिलता है। तृतीय अंक के जैन, बौद्ध और कापालिक के पारस्परिक वार्तालाप मे एक दूसरे पर आक्षेप करते हुए उन लोगो ने जिन विशेषणो का प्रयोग किया है, उनसे उनकी चारित्रिक विशेषताएँ रेखांकित हो उठती हैं[4]।

२३४. विचारो और सिद्धान्तो के व्यंजक कथोपकथन—नाटककार ने पात्र रूप मे रगमच पर उपस्थित मतो और सिद्धान्तो का वार्तालाप करवाया है। इन पात्रो के परस्पर वार्तालाप मे सरल और स्पष्ट रूप मे मतो और सिद्धान्तों का प्रतिपादन हो गया है। इस नाटकीय वार्तालाप के शुष्क आलोचना की कटुता से नाटक की रक्षा की है। परस्पर विरोधी मतो के द्वारा आलोचना और आक्षेप में एक अद्भुत प्रभाव आ गया है। जैन क्षपणक सौमसिद्धान्ती कापालिक से पूछता है कि तुम्हरा कैसा धर्म और कैसा मोक्ष है।[5] कापालिक ने उत्तर में कापालिक धर्म

---

१. पृष्ठ १३६।

२. श्लोक १०।

३. पृष्ठ ७२।

४. "आः पाप पिशाच मलपंकधर"—क्षपणक
"अरे विहारवासी भुजंग दुष्ट परिव्राजक"॥ पृष्ठ १०८, १०९।

५. क्षपणक—क एव कापालिकं व्रतं पुरुषो धारयति। तदेनमपि पृच्छामि।

की साधनाविधि और अर्चनीय का वर्णन किया है। अक ३ पृ० १०७ पर क्षपणक ने बौद्धधर्म के क्षणिकत्व और विज्ञानवाद की कथा बौद्ध भिक्षु ने पृ० ११० श्लोक ११ परआत्मा की आलोचना पारस्परिक वार्तालाप मे की है। पृ० ११२, ११३ पर जब कापालिक अपनी साधना सम्बन्धी हिंसक प्रक्रियाओ का वर्णन करता है तब भिक्षु और क्षपणक के सक्षिप्त कथोपकथन से सौम सिद्धान्त की आलोचना का कार्यसपन्न हो गया है।[1] इसी प्रकार छठे अक मे उपनिषद् और पुरुष के वार्तालाप मे भिन्न दर्शनों की आलोचना और उपनिषद् के वेदान्त-दर्शन के सिद्धान्तो का प्रतिपादन हमें मिलता है।

२३५. सामाजिक अवस्था सम्बन्धी कथोपकथन—प्रथम अंक की प्रस्तावना में सूत्रधार के वार्तालाप से तत्कालीन राजनैतिक अवस्था की झलक मिलती है। द्वितीय अक मे दम्भ और अहकार की वार्ता से तत्कालीन समाज के बाह्याडम्बर तथा पाखण्डो का वर्णन मिलता है। तृतीय अक मे शान्ति और करुणा की वार्ता से तात्कालिक समाज मे सात्विकी श्रद्धा का अभाव तथा राजसी एव तामसी श्रद्धा का प्रचार प्रतिध्वनित होता है। क्षपणक भिक्षु और कापालिक की वार्ता से उनके विशेष मतो की तत्कालीन धार्मिक अवस्था का वर्णन मिलता है।

अश्राव्य कथोपकथन

२३६. श्राव्य के पश्चात्, अश्राव्य कथोपकथन की हम समीक्षा करेगे। अश्राव्य कथोपकथन से हमारा अभिप्राय उस कथोपथन से है जिसे अभिनेता अपने हृदयोद्गारो को दूसरो को न सुनने देने की इच्छा से अपने मन मे ही कहा करता है। इस कथोपकथन का ही दूसरा नाम 'स्वगत' या 'आत्मगत' भी है।[2] इस अश्राव्य या स्वगत कथोपकथन का प्रयोग 'प्रबोधचन्द्रोदय' मे प्राचीन नाट्य परम्परा को देखते हुए ही किया गया है। यद्यपि आजकल कथोपकथन की इस 'आत्मगत' या 'स्वगत' प्रणाली को अस्वाभाविक कहा जाने लगा है क्योंकि रगमच पर स्थित वक्ता के अतिरिक्त दूसरे पात्र भी श्रोताओ के साथ उस स्वगत को सुन लेते हैं।

(उपसृत्य:) अरेरे कापालिक, नरास्थिमुण्डमालाधारक,कीदृशस्तव धर्मः को दृशस्तव मोक्षः ॥१॥—पृ० ११२।

१. भिक्षु—(कर्णापिधाय) बुद्ध-बुद्ध, अहो दारुण धर्मचर्या।
क्षपणक—अर्हन्, अर्हन्, घोर पाप कारिणा के नापि विप्रलब्धो वराकः॥
पृष्ठ ११२-१३।

२. अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगत मतम्। सा० द० प० ६ का० १३७।

किन्तु इस अस्वाभाविकता के होते हुए भी प्राचीन काल से अद्यावधि नाटको मे स्वगत-कथन का प्रयोग अविच्छिन्न रूपसे होता आ रहा है। रगमच की दृष्टि पथ मे रख कर नाटको का प्रणयन करने वाले जयशकर प्रसाद, रामकुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ 'अश्क और लक्ष्मीनारायण मिश्र जैसे आधुनिक नाटककारो की रचनाओ मे भी स्वगत-कथन का थोडा बहुत प्रयोग मिलता ही है। इससे स्पष्ट है कि सैद्धान्तिक दृष्टि मे स्वगत-कथनो को कितना ही अस्वाभाविक क्या न कह ले किन्तु नाटककारो की व्यावहारिक सुविधा को ध्यान मे रखते हुए वह एक आवश्यक तत्व सा प्रतीत होता है। सस्कृत के नाटको मे तो स्वगत कथनो का प्रयोग होता ही रहा है। अत 'प्रबोधचन्द्रोदय' के स्वगत-कथनो को भी हम अस्वाभाविक नही कह सकते।

२३७ 'प्रबोधचन्द्रोदय' मे स्वगत-कथन का प्रयोग मनोवैज्ञानिक और सार्थक है। आवश्यकता से अधिक लम्बे भावुकता के प्रलापमात्र स्वगत-कथन इसमे कही भी नही आए है। प्रस्तुत नाटक म पात्रो ने स्वगत कथन का अवलम्बन निम्नलिखित कार्यों के लिये किया है —

(१) वासना-जनित विषयानन्द का अनुभव का वर्णन करने के लिये —पृ० २५।

(२) अन्य पात्रो को दूर से पहचानने के लिये—पृ० ५३ ५५, १३२।

(३) उपायो पर विचार करने के लिये —पृ० ५२ ७८, ११७।

(४) भय व्यक्त करने के लिय—पृ० ७२, ७५।

२३८ इस नाटक म प्रयुक्त स्वगत कथनो की यही सबसे बडी विशेषता है कि वे सप्रयोजन और सक्षिप्त है। जैसे—महामोह—(स्वगतम्) कार्यमत्याहित भविष्यति। पुरुष नामक पात्र के पत्र लाने पर मन मे महामोह विचार कर रहा है कि अवश्य ही कोई बुरा काम हुआ होगा। ऐसे ही सक्षिप्त और अपने स्वल्प कलेवर मे विशाल अर्थ को छिपाये हुए अनेक स्वगत-कथनो का प्रयोग 'प्रबोधचन्द्रोदय' के कितने ही स्थलो पर हुआ है।[१]

---

१. स्वगत-कथनो के प्रयोगो की सूची—
- (क) अक प्रथम काम पृष्ठ २५ श्लोक २०
- (ख) अक द्वितीय अहकार पृष्ठ ५२ गद्य
- (ग) अक द्वितीय अहकार पृष्ठ ५३ गद्य
- (घ) अक द्वितीय अहकार पृष्ठ ५५ गद्य
- (ङ) अक द्वितीय महामोह पृष्ठ ७२ गद्य
- (च) अक द्वितीय महामोह पृष्ठ ७५ गद्य

२३९. 'प्रबोधचन्द्रोदय' के कथोपकथन पात्र और परिस्थिति के अनुकूल सरल, स्पष्ट और ओजपूर्ण भाषा मे है, कथोपकथन को रोचक और मनोवैज्ञानिक बनाने मे नाटककार सफल हुआ है। भाषा मार्मिक, सयत और भाव व्यजक है। भाषा की व्यजना शक्ति ने ही प्रस्तुत नाटक के कथोपकथनो मे अर्थगाम्भीर्य ला दिया है। इनमे अप्रत्यक्ष रूप से अनेक अर्थ ध्वनित होते हैं।

२४०. नाटककार ने (प्राचीन परिपाटी के अनुसार) कथोपकथनो मे पद्यों का प्रयोग भी किया है। श्लोको की विशेष लय, गति, प्रवाह एव साहित्यिक भाषा ने इसमे सरसता और रोचकता का सचार किया है। श्लोको के प्रयोग से–अपने मनोनीत आलोचनात्मक, सैद्धान्तिक दृष्टिकोण को थोडे शब्दो मे विशेष ध्वन्यात्मक सौन्दर्य से व्यक्त करने मे नाटककार समर्थ हुआ है। इन श्लोको का भाव यदि गद्य मे रखकर, नाटक से हटाया जाय तो नाटक प्राणहीन सा प्रतीत होगा। श्लोको का प्रयोग विशेष भाव के व्यक्तीकरण के हेतु ही है, व्यर्थ तुकबन्दी के हेतु अथवा परम्परानुकरण मात्र के लिए नही है।

२४१. कथोपकथन मे पात्रानुकूल सस्कृत तथा प्राकृत दोनों भाषाओं का प्रयोग किया गया है। प्राकृत भाषा का प्रयोग स्त्रियो ने तथा साधारण अज्ञानी पुरुष पात्रो ने ही किया है। इसका प्रयोग केवल गद्य मे ही नही पद्य मे भी है। इसके श्लोक भी सौष्ठव से युक्त और सफल हैं।

२४२. इस प्रकार नाटक के प्रमुख अग कथोपकथन की योजना कृष्णमिश्र ने पूर्ण कौशल से की है।

४ संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय की भाषा शैली

२४३. **भाषा** प्रबोधचन्द्रोदय की भाषा सरल एव भावपूर्ण है। डा० श्यामसुन्दर दास ने भाषा की परिभाषा करते हुए लिखा है–'भाषा ऐसे सार्थक शब्द समूहो का नाम है, जो एक विशेष क्रम से व्यवस्थित होकर, हमारे मन की बात दूसरे के मन तक पहुँचाने और उसके द्वारा उसे प्रभावित करने मे समर्थ होते हैं'।— प्रबोधचन्द्रोदय की भाषा के सम्बन्ध मे यह कथन अक्षरश सार्थक प्रतीत होता है।

(छ) अंक द्वितीय महामोह पृष्ठ ७८ गद्य
(ज) अंक तृतीय कापालिक पृष्ठ ११७ गद्य
(झ) अंक तृतीय क्षपणक पृष्ठ १२० गद्य
(ञ) अक चतुर्थ मैत्री पृष्ठ १३२ गद्य

१. साहित्यालोचन, पृष्ठ ३०१, ३०२।

नाटककार का सस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार था। अतएव वह अपने आध्यात्मिक मन्तव्य को विषयानुकूल भाषा के माध्यम से व्यक्त करने मे समर्थ हो सका है। प्रस्तुत नाटक की भाषा मे कही भी जटिलता एवं अस्पष्टता नही है। सर्वत्र ही भाषा सरस, प्रवाहयुक्त और प्रभावपूर्ण है। भाषा मे प्रसाद गुण की प्रधानता है। वह सरल और स्पष्ट होते हुए भी भावव्यजक है[1]। उसमे प्रसाद और माधुर्य गुण का बाहुल्य है। ओज[2] गुण का पुट भाषा की गौरववृद्धि के रूप मे है। भाषा मे वैदर्भी रीति और कही-कही गौडी रीति का प्रयोग भी है।

२४४. धर्म दर्शन के सिद्धान्तो का वर्णन भी सरल और स्पष्ट भाषा मे है।[3] पात्रो के परस्पर कथोपकथन की भाषा सरल और व्यजना से पूर्ण है। भाषा अधिक शुष्क, जटिल व पाण्डित्य प्रदर्शन मात्र के रूप मे नही है। उसमे कृत्रिमता

---

१. ज्ञातुं वपु. परमितः क्षमते त्रिलोकीं जीवः कथं कथय संगतिमन्तरेण।
शक्नोति कुम्भनिहितः सुशिखोऽपि दीपो भावान्प्रकाशयितुमप्युदरे गृहस्य ॥११॥

—अंक तीसरा, पृष्ठ ११०।

वैदर्भी रीति मे रचित यह सरल एवं सरस पद्य कितना अधिक भावपूर्ण है।

२. अद्याप्युन्मयातुधानतरुणीचञ्चत्करास्फालन-
व्यावल्गन्नृकपालतालरणितैर्नृत्यत्पिशाचांगनाः।
उद्गायन्ति यशांसि यस्य विततैर्नादैः प्रचण्डानिल-
प्रक्षुभ्यत्करिकुम्भकूटकुहरव्यक्तं रणक्षोणयः ॥५॥ अंक १, पृ० ८

इस पद्य के प्रत्येक पद से व्यंग्यमान ओजगुण द्रष्टव्य है।

३. द्रष्टव्य—लोकायतमत का सिद्धान्त—

(अ) आत्मास्ति देहव्यतिरिक्तमूर्तिर्भोक्ता स लोकान्तरितः फलानाम्।
आशेयमाकाशतरोः प्रसूनात्प्रथीयसः स्वादुफलप्रसूतो ॥१६॥

—प्र० च० अंक २, श्लोक १६, पृष्ठ ६१।

(ब) भिक्षुः—विज्ञानवाद—(बौद्धमत)
सर्वे क्षणक्षयिण एव निरात्मकाश्च
यत्रार्पिता बहिरिव प्रतिभान्ति भावाः।
सैवाधुना विगलिताखिलवासनत्वा-
द्धीसन्ततिः स्फुरति निर्विषयोपरागा ॥८॥

—प्र० च० अंक ३, श्लोक ८, पृष्ठ १०४।

की अपेक्षा व्यावहारिकता अधिक है।[1] नाटक मे केवल कुछ स्थानो पर समास शैली का प्रयोग मिलता है। परन्तु भाषा की यह सामासिकता अधिक दुरूह नही है। जिस प्रसग मे इसका प्रयोग किया गया है। उस प्रसग मे इसके प्रयोग से विशेष साहित्य सौन्दर्य का सचार हुआ है। जैसे नटी के द्वारा किया गया गोपाल की विजय का वर्णन —'नटी–(सविस्मयम्) आर्यपुत्र, आश्चर्यमाश्चर्यम्। येन तथा-विधनिजभुजबलविक्रमैकनिर्भर्त्सितसकलराजमण्डलेन आकर्णाकृष्टकठिनकोदण्ड-दण्डबहुलवर्षच्छरनिकरजर्जरिततुरगतरगभालम्,निरन्तरनिपतत्तीक्ष्णविशिखनिक्षि-प्तमहास्त्रपर्यस्तोतुगमातगमहामहीधरसहस्रम्, भ्रमद्भुज-दण्डमन्दराभिघातघूर्ण मानसकलपत्तिसलिलसघातम्, कर्णमेनासागर निर्मथ्य मधुमथनेनैव क्षीरसमुद्रमासा-दिता समरविजयलक्ष्मी[2]।" इस स्थल पर यदि नाटककार ने विकटबन्धवाली गौड़ी रीति और समासिकता का सहारा न लिया होता तो गोपाल के पराक्रम का ध्वनन असम्भव ही था।

२४५. नाटक मे प्रसगानुसार प्राकृत भाषा का भी प्रयोग किया गया है। प्राकृत का प्रयोग केवल गद्य मे ही नही वरन् पद्य मे भी उत्तमता के साथ करना नाटककार की प्राकृतज्ञता का परिचायक है[3]। पात्रो के द्वारा भी योग्यतानुसार सस्कृत और प्राकृत भाषा का प्रयोग किया गया है। योग्य, ज्ञानवान एव सुसस्कृत पात्रो (स्त्री , पुरुष) ने सस्कृत भाषा का और साधारण कोटि के पात्रो ने प्राकृत भाषा का प्रयोग किया है।

२४६. पात्रो के चरित्र एव मतमतान्तर सम्बन्धी विशेषता के अनुकूल शब्दो के प्रयोग ने भाषा मे सजीवता एव चित्रात्मकता ला दी है। उदाहरण

---

१. द्रष्टव्य––महामोह –– साधु सपादितम्। महत्खलु तत्तीर्थं व्यर्थीकृतम्।
चार्वाक –– देव, अन्यच्च विज्ञाप्यमस्ति।
महामोह –– कि तत्।
चार्वाक –– अस्ति विष्णुभक्तिर्नाम महाप्रभावा योगिनी।. . .
––प्रबोधचन्द्रोदय––अंक, २, पृष्ठ ७२।

२. प्रबोधचन्द्रोदय, प्रथम अंक, पृष्ठ ९, १०।

३. द्रष्टव्य––करुणा––
विप्फुट्टणीलुप्पललोललोअणा णरत्थिमालाकिदचालुभूषणा।
णिअम्बपीणत्थणभालमन्थला विहादि पूर्णेन्दुमुही विलासिणी।।१७।।
––प्र० च०, अंक ३, श्लोक १७, पृ० ११८।

के लिए क्षपणक के सम्बन्ध मे शान्ति और करुणा का वार्तालाप कहा जा सकता है[1]।

२४७. इस प्रकार कृष्ण मिश्र ने भाषा की रगमचीय योग्यता प्रदान करके नाटक को विशेष रूप से सफल बना दिया है। काव्य एव गद्य साहित्य की भाषा मे साहित्यकार मनमानी जटिलता एव चमत्कार ला कर पाठको को चमत्कृत कर सकता है। किन्तु नाटककार के द्वारा यही प्रयत्न उसका सबसे बडा दोष माना जायगा। उसकी योग्यता इसमे है कि वह भाषा को (दर्शको के हेतु) सहज सुलभ कर दे। सरल शब्दो से ही अपने गम्भीरतम भावो को सर्वग्राही बना दे। इस दृष्टिकोण से नाटककार विशेष रूप से सिद्धहस्त कहा जा सकता है।

शैली

२४८. भाषा के अतिरिक्त शैली मे भी अनेक विशेषताए है। जो इन रूपो मे मिलती है। —

(१) अलकारा के कलात्मक प्रयोग के रूप मे।

(२) अन्त कथाओ के रोचक सकेत के रूप मे।

(३) सूक्ष्म-भाव-गाम्भीर्य से युक्त सूक्तियो के प्रयोग के रूप मे।

(४) विशेष छन्दो के प्रयोग के रूप मे।

२४९ प्रबोधचन्द्रोदय मे अलकारो के कलात्मक प्रयोग ने भाषा के उत्कर्ष को बढाया और रस-भाव को प्रभावात्मकता प्रदान की है। उपमा, रूपक, अपह्नुति, अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त, काव्यलिग, विशेषोक्ति, समासोक्ति और दीपकालकार आदि अनेक अलकारो का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए ध्वन्यात्मक सौन्दर्य के साथ, दीपकालकार का प्रयोग लिया जा सकता

---

१. प्र० च० तृतीय अक, पृ० ९९ (गद्य वार्ता)

शान्ति — सखि, नाय राक्षसः। नीर्वीर्यः खल्वयम्।

करुणा — तर्हि क एष भविष्यति।

शान्ति — सखि, पिशाच इति शके।

करुणा — सखि, प्रस्फुरन्महामयूखमालोद्भासितभुवनान्तरे—कथ पिशाचानामवकाशः ?

शान्ति — तर्हि अनन्तरमेव नरकविवरादुत्तीर्णः कोऽपि नारकी भविष्यति। (विलोक्य विचिन्त्य च) आः, ज्ञातम। महामोहप्रवर्तितोऽयं दिगम्बरसिद्धान्तः।

है।[1] जिससे भाव और भाषा सौन्दर्य मे वृद्धि हुई है। महामोह की वार्ता मे उपमालकार का उत्तम उदाहरण मिलता है —

स्मर्यते सा हि वामोरु या भवेद्धृदयाद्बहिः।
मच्चित्तभित्तौ भवती शालभजीव राजते ॥३७॥

महामोह, मिथ्यादृष्टि को चित्र चित्रित पुतलिका के समान अपने हृदय मे सुशोभित करना चाहता है। इस प्रकार नाटकार की शैली आलकारिक सौन्दर्य से विभूषित है।

२५०. अन्त कथाओ के रोचक सकेत—अलकारो के अतिरिक्त अन्त कथाओ के रोचक सकेतो ने विषय प्रतिपादन को अधिक स्पष्ट और प्राभावपूर्ण बना दिया है। इन अन्त कथाओ के सकेत-प्रशमात्मक वर्णन, शक्तिवर्णन, सान्त्वना और समता के उद्देश्य मे दिये गये है।[2] प्रथम अक की प्रस्तावना मे नटी सूत्रधार से पूछती है कि भीषण ुद्ध करने वाले राजा कीर्तिवर्मा का शान्तरस की इच्छा करना कैसे सम्भव है? नटी की इस जिज्ञासा के समाधान के लिए, सूत्रधार ने परशुराम के इक्कीस बार युद्ध करने के पश्चात् शान्त हो जाने की कथा का प्रशसात्मक वर्णन किया है। इस प्रकार प्रबोधचन्द्रोदय की अन्त कथाओ ने विषय-सम्पादन मे रोचकता का सचार किया है।

---

१. प्रबोधचन्द्रोदय, प्रथम अक, इलोक २७, पृष्ठ ३४-३५।
संमोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति
निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति।
एताः प्रविश्य सदय हृदयं नराणाम्
किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ॥२७॥

२. प्र० च० मे प्रयुक्त अन्तःकथाओ की सूची :—

अन्तःकथा	पात्र	
परशुराम की कथा	सूत्रधार	प्रथम अंक, इलो० ७,८, पृ० १२ ।
अहिल्या, ब्रह्मा, चन्द्रमा काम		प्रथम अंक, इलो० १४, पृ० १७ ।
पाण्डवों का संघर्ष	काम	प्रथम अंक, इलो० १८, पृ० २१ ।
इन्द्र, ब्रह्मा	अहंकार	द्वि० अंक, इलो० ११, पृ० ५५ ।
मदालसा	शान्ति	तृती० अंक, इलो० ४, पृ० ९७,९८।
जयद्रथ, अर्जुन	वस्तुविचार	चतु० अक, इलो० १४, पृ० १४८ ।
राम, रावण	संतोष	चतु० अंक, इलो० २४, पृ० १५६ ।

२५१. सूक्ष्म भाव गाम्भीर्य से युक्त सूक्तियो का प्रयोग—लोकचित्ताकर्षक सूक्ष्म-गाम्भीर्य से युक्तसूक्तियों ने भाषा सौन्दर्य और कला सौष्ठव की वृद्धि की है। पाचवे अक में श्रद्धा ने विष्णुभक्ति को युद्ध का वृत्तान्त सुनाते हुए, दो कुलो के नाश के सम्बन्ध मे कहा कि परस्पर वैर से कुलो का नाश वैसे ही होता है जैसे वृक्ष की दो शाखाओ के घर्षण से अग्नि द्वारा सम्पूर्ण वन भस्मसात् हो जाता है।—

निर्वहति कुलविशेषं ज्ञातीनां वैरसंभवः क्रोधः।
वनमिव घनपवनाहततरुवरसंघट्टसंभवोदहनः॥१॥

प्र० च०, अंक ५।

एक अन्य सूक्ति मे विष्णुभक्ति ने विवेक के शत्रुओ के सम्बन्ध मे उचित परामर्श देते हुए कहा है कि वैभव चाहने वाले को अपना छोटा शत्रु भी जैसे अग्नि और ऋण को शेष नही रहने देना चाहिए।

२५२. इन सूक्ष्म और गम्भीर भावो को अनेक सूक्तियों में[1] व्यक्त करके, पाठक के मन को नाटककार ने अभिभूत कर दिया है। इससे नाटककार की बहुलता और भाषा पर अधिकार भी व्यक्त होता है।

२५३. विशेष छन्दो का प्रयोग—प्राचीन परम्परा के अनुसार नाटककार ने छन्दो का प्रचुर प्रयोग किया है। ये छन्द विशेष प्रसग के उपयुक्त प्रयोग मे लाए गये है। इन छन्दो का सगीत मधुर, कोमल और आल्हादकारी है। इससे प्रतीत होता है नाटककार पिंगल शास्त्र के विशेष ज्ञाता थे।

प्र० च० में प्रयुक्त सूक्तियों का भाव	पात्र	अंक इलोक	पृष्ठ
१. मर्यादा	सूत्रधार	प्रथम अंक, इलोक ६,	पृष्ठ ११।
वंशविरोध	काम	प्रथम अंक, इलोक १८,	पृष्ठ २१।
नारी प्रभाव	विवेक	प्रथम अंक, इलोक २५,	पृष्ठ ३२।
शत्रुनाश	चार्वाक	द्वि० अंक, इलोक २७,	पृष्ठ ७३।
सच्चाप्रेम	मिथ्यादृष्टि	द्वि० अंक, गद्य,	पृष्ठ ९१।
वैर	श्रद्धा	पां० अंक, इलोक १,	पृष्ठ १६६।
हितैषी की अनिष्ट शंका	विष्णुभक्ति	पां० अंक, इलोक ४,	पृष्ठ १६९।
एक ही वंशजों मे मित्रता	श्रद्धा	पां० अंक, इलोक ८,	पृष्ठ १७४।
शत्रुनाश से स्थायी महानता	विष्णुभक्ति	पां० अंक, इलोक ११,	पृष्ठ १७९।

२५४. नाटककार ने शार्दूल विक्रीडित छन्द[1] का प्रयोग विशेष रुचि से किया है। इसके अतिरिक्त मन्दाक्रान्ता वसन्ततिलका, शिखरिणी, वशस्थ, हिरिणी, अनुष्टुप, मालिनी, इन्द्रवज्रा आदि का भी कलापूर्ण प्रयोग मिलता है।[2] अत इस सम्बन्ध मे कृष्ण मिश्र का ज्ञान पूर्ण और मार्मिक था।

२५५. इस प्रकार भाषाशैली के विवेचन से स्पष्ट है कि नाटककार ने अपनी इस कृति मे भाषा को प्रवाहपूर्ण गम्भीर, सरल और सरस रखते हुए भी उसे प्रसग के अनुकूल बनाकर नाटक की अभिनेयता को अक्षुण्ण रखा है। वस्तुत. प्रवोध-चन्द्रोदय की भाषा, उसमे व्यक्त विचारो के सर्वथा अनुकूल, अतएव युक्तियुक्त है।

२५६. जहाँ तक नाटक की शैली का प्रश्न है उसके सम्बन्ध मे इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि धर्म और दर्शन जैसे शुष्क एव जटिल विषय को सरस, रोचक और हृदयगम बनाने का यदि किसी तत्व को श्रेय दिया जा सकता है तो केवल नाटककार की अपनी अनूठी शैली को। छोटे छोटे किन्तु गम्भीरतावाही शब्दो का प्रयोग, स्थान-स्थान पर भव्य सूक्तियो का विन्यास, भावो को स्पष्ट करने वाली अत कथाओ का स्थापन, भावानुकूल कुछ विशिष्ट छन्दो का चयन तथा कतिपय स्थलो पर हास्य रस का पुट, इस नाटक की शैली की अपनी असाधारण विशेषताएँ है। तात्पर्य यह कि भाषा और शैली की दृष्टि से प्रबोधचन्द्रोदय नाटक पूर्ण सफल है।

---

१. शार्दूल विक्रीड़ित छन्द का प्रयोग--

(क) मध्याह्न मरीचिकासु...। अंक १, श्लोक १, प्र० च०, पृष्ठ १।

(ख) रम्यं हर्म्यतलं नवाः सुनयना गुंजद्द्विरेफा लताः
प्रोन्मीलन्नवमल्लिकासुरभयो वाताः सचन्द्राः क्षपाः।
यद्येतानि जयन्ति हन्त परितः शस्त्राण्यमोघानि मे
तद्भोः कीदृगसौ विवेकविभवः कीदृक्प्रबोधोदयः॥१२॥

--प्र० च०, प्रथम अंक।

(ग) केवल प्रथम अंक में ८ शार्दूलविक्रीड़ित छन्दों का पाया जाना कवि की उसके प्रति विशेष रुचि सूचित होती है।

२. द्रष्टव्य--छन्दों की सूची--

(अधिक विस्तार मे न जाकर केवल एक अंक के वृत्तों की सूची आगे दी गई है)।

प्रथम अंक -- छंद तालिका

छन्द क्रम संख्या	छन्दनाम
१	शार्दूलविक्रीडित
२.	मन्दाक्रान्ता
३	वसन्ततिलका
४	शार्दूलविक्रीडित
५	,,
६	अनुष्टुप
७.	स्रग्धरा
८	इन्द्रवज्रा
९	अनुष्टुप
१०	वसन्ततिलका
११	आर्यावृत्तम
१२	शार्दूलविक्रीडित
१३	पुष्पिताग्रा
१४	शिखरिणी
१५	अनुष्टुप
१६	आर्या
१७	उपजाति
१८	वसन्ततिलका
१९	शार्दूलविक्रीडित
२०	शिखरिणी
२१	पुष्पिताग्रा
२२	अनुष्टुप
२३	वसन्ततिलका
२४	वशस्थ
२५	हरिणी
२६	,,
२७.	वसन्ततिलका
२८.	अनुष्टुप
२९,३०–३१	शार्दूलविक्रीडित

५. प्रबोधचन्द्रोदय में रस

२५७. रस निरूपण की दृष्टि से भी प्रस्तुत नाटक का भाव पक्ष अत्यन्त सफल एव पूर्ण कहा जा सकता है। नाटककार ने अपनी इस कृति मे नवो रसो की सरस योजना की है। विषय के धर्म और दर्शन से सम्बन्धित होने के कारण प्रस्तुत नाटक एक आध्यात्मिक नाटक है, अतएव आध्यात्मिक विषय का प्रतिपादन करने के कारण इसमे शान्तरस की अवतारणा प्रमुख रूप से हो सकी है। इसलिए प्रबोधचन्द्रोदय शान्तरस प्रधान नाटक कहा जा सकता है।

२५८. **शान्तरस**--जैसा कि ऊपर कहा गया है, प्रस्तुत कृति के शान्त-रस प्रधान होने के कारण इसमें आदि से अन्त तक शान्त रस का ही साम्राज्य वर्तमान है। नाटक के आदि से शान्तरस का प्रारम्भ होकर अन्त तक इसका चरम उत्कर्ष दिखाई पडता है। शास्त्रीय दृष्टि से शान्तरस का स्थायी भाव शम या निर्वेद है।[१] ससार की अनित्यता तथा दु खमयता के कारण उसकी असा-रता का ज्ञान अथवा परमात्मा का स्वरूप इसके आलम्बन विभाव है। पवित्र आश्रम, तीर्थ, एकान्तवन तथा महात्माओ की सगति आदि इसके उद्दीपन विभाव तथा रोमाचादि अनुभाव और हर्ष, स्मरण, दया आदि सचारी भाव है।[२]

२५९. प्रस्तुत नाटक के नान्दी पाठ से ही इसके स्थायी भाव शम की सूचना मिलनी प्रारम्भ हो जाती है। नट कहता है कि यह ससार अज्ञानियो के हेतु मृगमरीचिका के समान तथा ज्ञानियो के लिए माला मे सर्प के भ्रम के समान है। अतः मै प्रत्येक ज्योति की उपासना करता हूँ। नान्दी के पश्चात् प्रस्तावना मे नट कहता है कि "महान गोपाल ने आज्ञा दी है कि शान्तरस युक्त नाटक के अभिनय से आत्मा को आनन्दित करने की इच्छा है। अत कृष्ण मिश्र कृत

---

१. (क) शान्तः शमस्थायिभाव उत्तमप्रकृतिर्मतः।
--सा० द० प० ६, पृष्ठ २४।
(ख) निर्वेद स्थायिभावोऽस्ति शान्तोपि नवमो रसः।--का० प्र० ४।

२. अनित्यत्वादिना शेषवस्तुनिः सारतातु या।
परमात्मस्वरूपं वा तस्यालम्बनमिष्यते।
पुण्याश्रमहरिक्षेत्रतीर्थरम्यवनादयः।
महापुरुषसंगद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः।
रोमांचाद्याश्चानुभावास्तथास्युर्व्यभिचारिणः।
निर्विदहर्षस्मरणमतिभूतदयादयः॥
--सा० द० प० ६, पृष्ठ १२११

'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक का अभिनय होना चाहिये।" इससे भी प्रस्तुत नाटक के शान्तरस प्रधानत्व की सिद्धि होती है। वस्तुत धर्म और दर्शन की चर्चा, आध्यात्मिक विकास, आत्मिक शान्ति एव ब्रह्मानन्द की प्राप्ति का प्रतिवाद न होने से प्रस्तुत नाटक का मुख्य रस शान्त और स्थायीभाव 'शम' है, यह असन्दिग्ध है।

२६०. इस नाटक के शान्तरस का आलम्बन 'प्रबोधोदय' है। इसमे भावात्मक पात्रो के माध्यम से मन के अज्ञान (महामोह) और ज्ञान (विवेक) का सघर्ष दिखाकर उसमे ज्ञान को विजयी दिखाया गया है। ज्ञानी मन के शान्त और विरक्त हो जाने के अनन्तर 'प्रबोध' का उदय होता है। द्वितीय और तृतीय अक मे चार्वाक, जैन, बौद्ध और सोम सिद्धान्त के प्ररूप पात्रो की सैद्धान्तिक आलोचनात्मक बातचीत काशी के आश्रमो और ब्राह्मणो का वर्णन, अन्यतीर्थों जैसे कुरुक्षेत्र, मन्दार पर्वत और चक्रतीर्थ आदि का वर्णन, ससार के सुख-भागो की असारता का प्रतिपादन और छठे अक की दार्शनिक चर्चा आदि नाटक-प्रतिपाद्य मुख्यरस शान्त के 'उद्दीपन' विभाव है। 'ब्रह्म का अशभूत 'आत्मा' (पुरुष) इस मुख्य शान्तरस का आश्रय है। 'प्रबोधोदय' होने के उपरान्त ब्रह्मानन्द का आस्वाद रूप शान्तरस का स्वाद यही चखता है। प्रबाधोदय से पूव पुरुष का ध्यान मग्न होना और उसके पश्चात आह्लादित हाना आदि इसके अनुभव है। और स्थायी शम मे क्षण प्रति क्षण उन्मग्न और निमग्न होने वाले, हर्ष स्मरण और दया आदि भाव इसके सचारी भाव है। इन्ही विभाव (आलम्बन और उद्दीपन) अनुभाव, और सचारी भावो के द्वारा पुष्ट होकर स्थायी भाव 'शम' नाटक के अन्त मे शान्तरस के रूप मे परिणत हो जाता है।

प्रबोधचन्द्रोदय के अंग (गौण) रस

२६१. प्रस्तुत कृति मे शान्तरस की प्रमुखता होते हुए भी अन्य रसो की सफल योजना हुई है। शृगार, वीर, करुण, रौद्र और वीभत्स आदि रसो ने शान्तरस के पोषण की दृष्टि से उसकी पृष्ठभूमि के रूप मे प्रस्तुत होकर शान्तरस को मुख्यत्व प्रदान करने मे पर्याप्त सहयोग दिया है। इन अगभूत रसो मे प्रधान है शृगार। इस नाटक का प्रारम्भ इसी शृगार से होता है और पर्यवसान होता है करुणरस की पृष्ठभूमि मे। यह मनोवैज्ञानिक क्रम जीवन के लिए भी उतना ही स्वाभाविक एव महत्वपूर्ण है जितना कि प्रस्तुत नाटक के लिए है। कारुण्य की अवस्था मे व्याकुल हो व्यक्ति आप्तजनो के उपदेश से वैराग्य की ओर उन्मुख होता है। इस नाटक के मन का विकल होकर सरस्वती के शान्तरस के

उपदेश से निवृत्ति की ओर उन्मुख होना तथा पुरुष का शान्तरस का आस्वादन रूप मुक्ति को प्राप्त करना, बहुत कुछ उपर्युक्त तथ्य का स्वाभाविक निदर्शन है। अब हम प्रबोधचन्द्रोदय मे से प्रधान रूप से पाये जाने वाले शान्तरस के अतिरिक्त अन्य आठ रसो के सक्षिप्त एव क्रमिक विवरण प्रस्तुत करते हैं।

२६२. **शृंगार रस**--प्रथम अक के श्लोक १० मे सूत्रधार काम और रति नामक पात्रो के विलास-पूर्ण व्यवहार का वर्णन करता है कि काम रति के ऊंचे और स्थूल दोनो कुचो को पीडित किये हुए, रोमाचित भुजाओ से आलिगन होकर, ससार को अपने चचल मादक नेत्रो से मदमत्त बनाता हुआ इधर ही आ रहा है। इस वर्णन मे स्पष्टत. शृगार रस की प्रतीति हो रही है। इस शृगाररस का स्थायीभाव है-काम पात्र का रति नामक भाव, आलम्बन है उसकी रति नामक पत्नी। इसी प्रकार रति के उत्तुग और पीवर कुचद्वयी का उत्पीडन और रोमाचित भुजाओ का आलिगन, उद्दीपन विभाव, स्वयं काम आश्रय, उसके नेत्रो की चचलता और मादकता आदि अनुभाव तथा हर्ष आदि सचारी भाव हैं। इस प्रकार इन भावो से पुष्ट होकर काम का रति रूप स्थायीभाव 'शृगाररस' के रूप मे परिणत हो जाता है।

२६३. **हास्य रस**--हास्यरस का उदाहरण हमे मिलता है द्वितीय अक के श्लोक ६ मे, जब अहकार, विचित्र वेशभूषा को धारण करनेवाले आडम्बर-पूर्ण पाखण्डी दम्भ का वर्णन करता है। उसकी भुजाओ, उदर, कण्ठ, ओष्ठ, पीठ, कपोल, चिबुक और जानु पर तिलक लगा है तथा शिखा, कान, कमर और हाथों मे उसने कुश ले रखा है। इस वर्णन को पढने पर पाठक को बरबस हँसी आ जाती है। इसके द्वारा व्यक्त हास्यरस का स्थायी भाव है- हास्य और आलम्बन है दम्भी व्यक्ति। उसके विभिन्न अगो मे चन्दन का लेप और शिखा तथा कमर आदि मे कुश का धारण करना, उद्दीपन, दर्शक या पाठक आश्रय, हास्य, अनुभाव तथा आश्चर्य, वैचित्र्य और हर्ष आदि इसके सचारी भाव हैं।

२६४. **रौद्र रस**--प्रबोधचन्द्रोदय के अक द्वितीय श्लोक २९ मे हमे 'रौद्र' रस के आस्वादन का सुअवसर मिलता है जब 'क्रोध अपने महाराज महामोह से शत्रुओ के प्रति अपने क्रोध को व्यक्त करता हुआ कहता है कि मैं संसार को नेत्रहीन एव बधिर कर सकता हूँ, धीर, चेतन एव विद्वान को अधीर, अचेतन और मूर्ख बना सकता हूँ जिससे वह अपने उचित कृत्यो का निर्णय न कर सकेगा, अपने कल्याण की बातो को नही सुन सकेगा तथा बुद्धियुक्त होते हुए भी अपने अधीन विषय को भूल जायगा इस उक्ति मे स्पष्टतया 'क्रोध' व्यक्त हो रहा है। जो कि रौद्र रस का स्थायीभाव है। इसके अन्य उपकरणो--शत्रु पक्ष के व्यक्ति शान्ति और श्रद्धा आदि-आलम्बन, शत्रु पक्ष के व्यक्तियो का उसके

महाराज के विरुद्ध आचरण-उद्दीपन, स्वय क्रोध-आश्रय, क्रोधपूर्ण वचनो का उच्चारण, ससार को नेत्रहीन और बधिर बना सकने आदि की उसकी गर्वोक्ति अनुभाव, तथा आवेग, असूया और चिन्ता आदि सचारी भाव है। इन भावो से पुष्ट 'क्रोध' नामक स्थायी भाव 'रौद्र रस' के रूप मे व्यक्त होता है।

२६५. **वीर रस**—वैसे तो वीररस के कई स्थल प्रस्तुत नाटक मे देखे जा सकते है, परन्तु चौथे अक के श्लोक १४ मे वस्तुविचार की राजा विवेक से हुई वार्त्ता मे जो वीररस का उद्रेक हुआ है, वह अनूठा ही कहा जा सकता है। वस्तुविचार राजा से कहता है मैं 'वस्तुविचार' बाणो के समान चारो तरफ बिखरे हुए विचारो से, शत्रुओ की सेना का मथन कर काम को उसी प्रकार मार सकता हूँ जैसे गाण्डीव धनुष को धारण करने वाले अर्जुन ने कौरवो की सेना का मथ कर, सिन्धुराज जयद्रथ को मारा था। वस्तुविचार की इस उक्ति म वीररस का सद्भाव है। वस्तुविचार मे रहनेवाला उत्साह इसका स्थायीभाव, काम आलम्बन काम का मादक प्रभाव, लौकिक विषय वासनाओ का विस्तार उद्दीपन वस्तुविचार आश्रय, उत्साहपूर्ण वचनो का उच्चारण, और काम को मारने का सकल्प अनुभाव तथा आवेग, धैर्य, मति, गर्व और तर्क आदि उसके सचारी भाव है। इन भावो म परिपुष्ट स्थायीभाव उत्साह रसाकार हो कर चर्वण कराता है।

२६६ **वीभत्स रस**—प्रबोधचन्द्रोदय' मे वीभत्सरस का भी अभाव नही है। इसका एक सुन्दर निदर्शन हमे उस समय मिलता है जब अक ५, श्लोक १० मे श्रद्धा विष्णुभक्ति से युद्ध का समाचार बतलाती हुई यह कहती है-'मास रूपी कीचड मे युक्त तथा कक्ररूपी दीन प्राणियो से पूर्ण, रुधिर रूपी जल मे भरी हुई नदियाँ बहने लगी। बाणो से खण्डित सिर वाले हाथी रूप पहाडो से वेग के साथ गिरनेवाले छत्र उन नदियो के हस प्रतीत होते थे। इस वर्णन मे स्पष्टतया वीभत्सरस है। पाठको या दर्शकों की 'जुगुप्सा' इसका स्थायी भाव है। मास खून और ककाल आदि आलम्बन, दर्शक या पाठक आश्रय, थूकना और मुह फेरना आदि अनुभाव एव आवेग, व्याधि आदि इसके सचारी भाव है।

२६७. **करुण रस**—करुणरस का एक उदाहरण हमे पाचवे अक के १३वे श्लोक मे दिखाई पडता है जिसमे मन अपनी प्रवृत्ति पत्नी के दिवगत हो जाने पर एक लौकिक व्यक्ति की भाँति विलाप करता हुआ, चित्रित किया गया है। मन कह रहा है 'देवी, तुम स्वप्न मे भी मेरे बिना सुखी नही होती, और मैं भी स्वप्न मे तुमसे रहित होकर मृतक के तुल्य हो जाया करता हूँ। भाग्यवश तुम

मुझसे दूर कर दी गई हो तथापि जो मैं जी रहा हूँ इससे प्रतीत होता है कि प्राण बडे कठिन है। इस विलाप से व्यगमान मन का शोक प्रस्तुत करुणरस का स्थायी भाव, विनष्ट पत्नी आलम्बन, स्वय मन आश्रय, सकल्प की प्रवृत्ति के सम्बन्ध मे बातचीत करना तथा आश्वासन आदि उद्दीपन और प्रकृति के स्मरण मे प्रलाप, उसके गुणो का कथन आदि अनुभाव एव मोह, व्याधि स्मृति, विषाद, जडता, चिन्ता आदि इसके सचारी भाव है।

२६८. **अद्भुत रस**--प्रस्तुत कृति मे हम 'अद्भुतरस' का भी एक सुन्दर उदाहरण पाते है। छठे अक के ५ वे श्लोक मे श्रद्धा ऐन्द्रजालिकी विद्या का वर्णन करती हुई कहती है-'यह सौ योजन दूर का शब्द सुन लेता है, इसको वेद-पुराण तथा महाभारत की कथाएँ और तर्क विद्याएँ प्रकट होती हैं, यह पवित्र पदो द्वारा शास्त्र या कविता का निर्माण करता है तथा समस्त लोक मे भ्रमण करता हुआ मेरुपर्वत की रत्न की खानो को देखता है। इस वर्णन मे चित्रित अभूत-पूर्व वस्तु को देखने से श्रद्धा के हृदय मे उत्पन्न विस्मय इस अद्भुतरस का स्थायी भाव, मधुमती भूमिका, आलम्बन, मधुमती भूमिका का विचित्र प्रभाव, स्वर्णिम बालुकामयी नदियाँ, पथुजघना स्त्रियाँ आदि उद्दीपन, मन आश्रय, मन का अनुमति देना अनुभाव तथा आवेग, भ्रान्ति और हर्ष आदि इसके सचारीभाव है। इन उद्दीपन, विभाव और अनुभाव तथा सचारी के सयोग से विस्मय नामक स्थायी भाव ही 'अद्भुत रस' के रूप मे परिणत हो जाता है।

२६९. ऊपर विवेचित रसो के और भी कितने उदाहरण प्रस्तुत नाटक के तत्तत् अको मे देखे जा सकते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि नाटककार ने कितनी कुशलता से अन्य रसो को शान्तरस की पृष्ठभूमि मे प्रस्तुत कर, एक मनोवैज्ञानिक तथ्य के आधार पर शान्तरस को मुख्य स्थान दिया है। प्रबोधचन्द्रोदय के युगव्यापी प्रभाव के मुख्य कारणो मे से एक रस की मनोवैज्ञानिक योजना भी है। मानव के लौकिक जीवन का केन्द्रबिन्दु शृगार रस है। सासारिक मानव शृगाररस के सरस वर्णन से सहज स्वाभाविक रूप से, आकर्षित हो जाता है। शृगार के सद्भाव मे मानव आध्यात्मिक नाटक के अध्ययन मे भी प्रवृत्त हो जाता है। अन्य रसो की सरस योजना के बीच आध्यात्मिक सैद्धान्तिक विवेचन पाठक को सहज ही ग्राह्य हो जाते हैं। प्रस्तुत नाटक के तीन अको मे तो लौकिक प्रभाव ही अधिक है। चौथे अक मे उत्तरोत्तर आध्यात्मिक प्रभाव बढने लगता है। शृगार का वीभत्स मे परिणत हो जाना तथा करुण की शोक पूर्ण सजल अवस्था मे, शान्तरस के अमृतोपम उपदेशो द्वारा ससार की नश्वरता का वर्णन एक विचित्र मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालता है। उसके उपरान्त

शान्तरस के परिपक्वावस्था रूप मोक्ष के ब्रह्मानन्द का अनुभव शृंगारी मनुष्य को भी सात्विकता की प्रेरणा अज्ञात रूप से दे ही देता है।

२७०. इस भाँति हम देखते हैं कि अगरस और अगीरस एक दूसरे के उसी प्रकार पूरक होकर आये हैं जैसे जीवन मे अभ्युदय और नि श्रेयम एक दूसरे के पूरक होते हैं और मानव जीवन को पूर्ण बना देते है। प्रबोधचन्द्रोदय में मुख्य शान्तरस की सरस प्रभावशाली योजना अगरसो को पृष्ठभूमि मे रख कर ही हुई है। इनके अभाव से शान्तरस की योजना मे, मनोवैज्ञानिक प्रभाव का भी अभाव हो जाता है। अतएव अगरसो ने जहा एक और शान्तरस को शुष्क और प्रभावहीन होने से बचाया है, दूसरी ओर यह भी सिद्ध कर दिया है कि जहा अन्य रसो का अनुभव क्षणिक और नश्वर जीवन तक ही सीमित है, वहा शान्त की रसानुभूति उसे नि श्रेयस के परम पद पर प्रतिष्ठित कर देती है। इसलिए रस योजना की दृष्टि से प्रबोधचन्द्रोदय नाटक आध्यात्मिक होते हुए भी, सरस कहा जा सकता है।

६. देशाकाल

२७१ प्राचीन नाट्यशास्त्र के अनुसार 'प्रबोधचन्द्रोदय' की यहा तक शास्त्रीय समीक्षा करने के पश्चात अब पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के प्रमुख सिद्धान्त 'देशकाल' पर विचार करेगे और यह देखने का प्रयास करेगे कि कहां तक इस नियम का पालन 'प्रबोधचन्द्रोदय' मे हो सका है। परन्तु इसके पूर्व कि हम 'देशकाल' नियम की समीक्षा करे, हमे 'सकलनत्रय' पर, जो कि 'देशकाल' का आधार माना जाता है, एक विहगम दृष्टि डाल कर उसकी समीक्षा कर लेनी चाहिए।

२७२. **संकलनत्रय**—पाश्चात्य नाट्य शास्त्र मे यह सकलनत्रय या नाटकीय-एकत्व[1] अतिशय महत्व का स्थान रखता है। सकलनत्रय का अर्थ है– काल सकलन, देश संकलन और कार्य सकलन-अर्थात् नाटक की कथावस्तु एक ही काल की हो, किसी एक ही स्थान पर घटित हुई हो और केवल एक ही घटना या कार्य व्यापार से सम्बद्ध हो। इन सिद्धान्तो का प्रचार फ्रासीसी नाट्य शास्त्रियो ने प्रमुख रूप से किया। उनके विचार में अरस्तू ने इनका प्रतिपादन किया था। परन्तु जैसा कि हम अभी देखेगे–उन्होने केवल कार्य सकलन की अनिवार्यता को छोड़कर और किसी सकलन

---

१. देखिये—सीताराम चतुर्वेदी, 'अभिनव नाट्य शास्त्र' पृष्ठ ७। इसमें श्री चतुर्वेदी जी ने 'ड्रामेटिक यूनीटीज' का वास्तविक अर्थ 'नाटकीय संकलन, न कर 'नाटकीय एकत्व' किया है, क्योंकि उनकी दृष्टि में 'यूनीटीज' शब्द का अर्थ 'एकत्व' है, न कि संकलन, जैसा कि कुछ विद्वानों ने माना है।

की अनिवार्यता की व्यवस्था नही की थी। यह अवश्य है, कि उनके 'काव्य शास्त्र' मे तीनो सकलनो का नाम मिलता है। परन्तु देश और काल सकलन की ओर उनका सकेत केवल परम्परा का उल्लेख मात्र प्रतीत होता है। दु खान्त नाटक और महाकाव्य का अन्तर स्पष्ट करते हुए उन्होने कहा है कि दु खान्त नाटक मे यथाशक्ति घटना को एक दिन अथवा उससे कुछ अधिक काल तक सीमित कर देने का प्रयास दृष्टिगोचर होता है, परन्तु महाकाव्य मे समय का कोई बन्धन नही होता।[१] इससे तो केवल यही प्रतीत होता है कि उस समय की परम्परा का उल्लेख मात्र उन्होने कर दिया है। वस्तुत नाटक की कथावस्तु एक दिन --२४ घण्टे या १२ घण्टे जैसा कि विद्वानो ने अरस्तू के सूर्य की एक परिक्रमा का अर्थ लगाया है[२]—मे ही घटित होनी चाहिए--यह नियम अत्यन्त अनुचित प्रतीत होता है। स्वय अरस्तू ने जिन नाटको का परिगणन किया है, उन सबमे कई दिन और मास तक के विवरण सन्निहित है। अतएव जैसा कि श्री सीताराम चतुर्वेदी जी ने कहा है, एक कार्य या व्यापार न जाने कितने दिनो मे पूर्ण होना है, इसलिए उसे दिन की सीमा के भीतर नही बाधा जा सकता, यह नियम अत्यन्त अव्यावहारिक और अस्वाभाविक है।[३]

२७३. ठीक इसी प्रकार अरस्तू ने 'स्थल-सकलन' के सम्बन्ध मे भी कोई नियम नही बनाया है। इस नियम का तात्पर्य यह है कि नाटक की सम्पूर्ण घटना केवल एक ही स्थान पर दिखाई जाय, ताकि नाटक के पात्र नाटक के द्वारा निर्दिष्ट स्थलो पर यातायात करने मे असमर्थ न हो।[४] यह सभव है, कि कुछ नाटको मे इसका सफलतापूर्वक आयोजन हो जाय, परन्तु नियमत इसका पालन होना अतीव कठिन है। इसलिए यह नियम भी उतना ही अव्यावहारिक दीखता है जितना कि 'काल सकलन' का नियम।

२७४. अवश्य ही, अरस्तू ने कार्य सकलन का व्यापार के सबन्ध मे नियम बनाया है। इस नियम की व्याख्या करते हुए वे लिखते है, 'किसी इतिवृत्त मे एक नायक का वर्णन होने से ही कोई इतिवृत्त एक नही कहा जा सकता जैसा कि कुछ

---

१. द्रष्टव्य--सेठ गोविन्ददास अभिनन्दनग्रन्थ—मे डा० कन्हैयालाल सहल का लेख--'सकलनत्रय' पृष्ठ १०५, और अभिनवनाट्य शास्त्र, पृष्ठ ५६।

२. द्रष्टव्य--सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ—मे डा० कन्हैयालाल सहल के लेख--'सकलनत्रय', पृष्ठ १०५ मे 'कार्नील' और 'डेसियर' का मत।

३. अभिनव नाट्य शास्त्र--पृष्ठ ५७।

४. सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रंथ—डा० कन्हैयालाल सहल, 'संकलनत्रय', पृष्ठ १०६।

लोगो का विचार है। इसका कारण यह है कि एक ही मनुष्य के जीवन मे अनन्त भिन्न-भिन्न घटनाएँ होती है, जिनको सकलित कर एक नही बनाया जा सकता। इसी प्रकार एक ही मनुष्य के द्वारा बहुत से चरित्र हो सकते है जिनको सकलित कर एक सगत कार्य नही बन सकता।'[1] इसका तात्पर्य यह निकला कि नाटक मे ऐसी कोई घटना नही होनी चाहिये जिसका नाटक की मुख्य घटना से कोई सम्बन्ध न हो। इस सम्बन्ध मे लावेल का कहना है कि जिस तरह शरीर के अगो मे पारस्परिक सम्बन्ध है उसी प्रकार नाटक के सभी भागो मे परस्पर सयोजन और सम्बन्ध होना चाहिये।[2] जहा तक इस नियम का सम्बन्ध है, ठीक है, यह औचित्य की सीमा मे है, क्योकि स्वाभाविक होने के कारण ससार के सभी महान् नाटककारो ने इसका पालन अपनी अपनी कृतियो मे किया है।

२७५. अग्रेजी साहित्य मे 'बेन' ने इन तीनो सकलनो का अपनी कृतियो मे निर्वाह किया है। प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपीयर ने 'टेम्पेस्ट' और 'कामेडी आफ एरर्स' मे कुछ सीमा तक इन सकलनो की रक्षा की है, परन्तु अन्य नाटको मे उसने इसकी ओर कुछ भी ध्यान नही दिया। टाइडन और इब्सन के बाद मे इन सिद्धान्तो को व्यर्थ सिद्ध किया है। हिन्दी मे जयशकर प्रसाद की ध्रुव-स्वामिनी को छोडकर इनका पालन और कही नही हुआ है।[3]

२७६. इससे यह नही समझना चाहिये कि यूरोप मे ही केवल सकलनत्रय से सम्बन्धित विचार हुआ, भारत मे नही। वस्तुत सस्कृत ग्रन्थो मे इस सिद्धान्त का भी सकेत पाया जाता है। भरत, नाटक लक्षण रत्न कोशकार और अभिनव गुप्त ने इन सिद्धान्तो का अल्प सकेत अपने ग्रन्थो मे किया है।[4] इसी आधार को लेकर कान्तिचन्द्र पाण्डेय ने लिखा है कि अभिनवगुप्त के साक्ष्य के रहते हुए डा० कीथ का यह कहना कि सस्कृत नाट्यकार समय और स्थान सम्बधी सकलनो के सिद्धान्तो से परिचय नही रखते थे, पूर्णतया निराधार है।[5]

---

१. अभिनव नाट्य शास्त्र, पृष्ठ ५६।

२. J. R. Lowell, The Old English Dramatists, page 55.

३. सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ--पृष्ठ १०७।

४. वही, पृष्ठ १०८।

५. "The statement of Prof. Keith in his Sanskrit Drama that Sanskrit dramatists were ignorant of the principles of unities of time and place, is based upon his own ignorance of technique of Sanskrit drama.
—Comparative Aesthetics, Vol. I, by K. C. Pande, Page 349.

२७७. अब हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि इन नियमो का पालन 'प्रबोध-चन्द्रोदय मे किस सीमा तक हुआ है।

२७८. प्रस्तुत नाटक मे वस्तुसकलन आधुनिक मान्यता के अनुसार उचित कहा जा सकता है। आधिकारिक और प्रासगिक कथाओ को अपने महत्व के अनुसार ही नाटक मे स्थान मिला है। आधिकारिक कथा का मुख्य स्थान है और प्रासगिक कथा का स्थान गौण होते हुए भी मुख्य कथा की सहायिका के रूप मे ही है। कथा-वस्तु की समीक्षा के प्रसग मे हम इसकी कुशल योजना पर विचार कर चुके है। अत हम कह सकते है कि नाटक मे वस्तु सकलन की योजना सफल है।

२७९. कालसकलन की दृष्टि से प्रस्तुत नाटक मे लौकिक या ऐतिहासिक नाटक के समान वर्षों की गणना के क्रम से, घटनाओं की व्यवस्थित योजना का महत्व नही है। क्योकि यह एक भावात्मक आध्यात्मिक नाटक है। अत इसमे भाव जगत के मनोवैज्ञानिक परिवर्तन तथा आध्यात्मिक विकासानुकूल, घटना क्रम की सत्ता है। इस मनोवैज्ञानिक परिवर्तन तथा आध्यात्मिक विकास मे वर्षो की सीमा नही है। कितने ही अगणित वर्ष इस परिवर्तन एव विकास मे व्यतीत हो सकते है। किन्तु वर्षो की सीमा न होने पर भी इस परिवर्तन तथा विकास मे एक क्रम विशेष है। हम देखते है कि नाटककार ने इस क्रम की विशेष सतर्कता से योजना की है। साधारण लौकिक जीवन मे अज्ञान की मोहावस्था से लेकर प्रबोधोदय के परम ज्ञान की अवस्था तक पहुँचने मे, मानव को वर्षों और जन्म जन्मान्तरो मे निरन्तर साधना करते जाना पडता है, तब प्रबोध (परम ज्ञान) का उदय सम्भव होता है। इस जन्मजन्मान्तरो मे उपलब्ध होने वाले दुर्लभ परम-ज्ञान की प्राप्ति को चित्रित करने मे नाटककार ने सुव्यवस्थित योजना प्रस्तुत की है। साधना के क्रमिक विकास मे—(मोहविवेक का) सघर्ष युद्ध, (विवेक की) विजय, (मन की) निवृत्ति की अवस्था, तत्पश्चात तत्वज्ञान एव मोक्ष आदि की घटनाये बिना किसी व्यतिक्रम के वर्णित हुई हैं। अत इस दीर्घकालीन साधना का कालसकलन युक्तियुक्त कहा जा सकता है।

२८०. देश वा स्थल सकलन की दृष्टि से प्रबोधचन्द्रोदय नाटक मे आध्यात्मिक रूपक कथा होने से स्थलो के सकेत नगण्य हैं। नाटककार ने अपनी विशेष बहुज्ञता से मनोवैज्ञानिक एव आध्यात्मिक पात्रो के स्थल विशेष से सम्बन्धित होने का वर्णन किया है। उदाहरण के रूप मे निम्नलिखित स्थलो के सकेत उपलब्ध होते है —१' गौड प्रदेश की राढापुरी, २ उत्कल, ३ काशी, ४ चक्रतीर्थ, ५ शालिग्राम, ६ मन्दार पर्वत। इनमे से केवल तीन स्थलो—काशी, चक्रतीर्थ तथा शालिग्राम क्षेत्र-पर नाटकीय पात्रो की स्थिति दिखाई गई है। इन स्थलो पर

पात्रों के जाने आने का क्रम व्यवस्थानुसार है। अत हम कह सकते है कि प्रस्तुत नाटक मे स्थल सकलन मे कोई विशेष दोष नही है।

२८१. इस प्रकार वस्तुमकलन, कालसंकलन और स्थल सकलन की कसौटी पर आधुनिक दृष्टि से प्रबोधचन्द्रोदय की समीक्षा करने पर निष्कर्ष रूप मे ज्ञात होता है कि प्रकृत नाटक मे (आध्यात्मिक रूपक कथा होने से) काल तथा स्थल सकलन का विशेष महत्व नही है। किन्तु फिर भी इस सकलनत्रय का उद्देश्य-अस्वाभाविकता से रहित उचित व्यवस्था करना–इस नाटक मे पूर्णतया प्रतिलक्षित है। इसमे कही भी व्यतिक्रम नही है।

२८२. सकलनत्रय की योजना पर विचार करने के पश्चात् अब हम प्रबोधचन्द्रोदय के देशकाल की विशेष परिस्थितियो का अध्ययन करेगे। (प्रबोधचन्द्रोदय की रचना का) ग्यारहवी शताब्दी का समय राजनैतिक युद्धो और सघर्षों[1] का तथा सामाजिक और धार्मिक पतन का काल था।[2] उस समय देश मे अमगलकारी धार्मिक अनैक्य प्रबल था। बौद्ध, जैन, शैव और वैष्णव तथा अद्वैत आदि मतो मे परस्पर विरोध और वैमनस्य था। उनका चारित्रिक पतन भी हो गया था।

२८३. तत्कालीन राजनैतिक सघर्ष का वर्णन नाटक की प्रस्तावना मे,

---

१ द्रष्टव्य—लेखक का समय निर्णय।

2 "There has been much speculation regarding the causes of this general degradation of religious life in India. It is a significant fact that the sameperiod also witnessed agreat decline in the general intelectual and cultural level of the people in India . But what ever may be cause, the most regrettable feature was the degradation in ideas of decency and sexual morality brought about by the religious practices.... The wealth and Luxury with its evervating effect upon character on the one hand and the degraded religious and social life on the other, sapped the vitality of the people and destroyed its manhood. The great fabric of culture and civilisation reared up in course of centuries was tottering and it was no longer a question of whether but when it would fall."

——The Struggle for Empire by R. C. Majumdar, Vol. V. page 400-401.

आश्रयदाता सम्राट के युद्ध और विजय के चित्रण मे मिलता है। नाटक की कथा मे भी मोह और विवेक नामक दो सम्राटो के (राज्य प्राप्ति के हेतु) परस्पर युद्ध का वर्णन है। जिससे कि तत्कालीन राजनैतिक सघर्ष प्रतिध्वनित होता है।

२८४. युद्ध के प्रसग मे, नायक की सेना के वर्णन मे, तत्कालीन सैनिक व्यवस्था का विवरण निहित है। उस समय मदोन्मत हाथियो की सेना तैयार की जाती थी। जिनके मस्तक से द्रवित मद का पान करके भौरे मत्त हो जाते थे। प्रचण्ड वेग से वायु को भी हठात् पराजित करने वाले घोड़े जोते जाते थे। अश्वारोही-कृपाण हाथ मे धारण कर आगे बढते और पैदल सेना अपने भालो से, समस्त दिशाओ मे नील कमल का वन सा बनाती हुई, प्रस्थान करती थी।[१]

२८५. प्रबोधचन्द्रोदय के द्वितीय अक मे सम्राट् महामोहकेस्वागतका जो वर्णन किया गया है, उसमे तत्कालीन सम्राटो के स्वागत समादर की प्रथा का पता चलता है। उनके स्वागतार्थ नगर को सुसज्जित किया जाता था। स्फटिक शिला से बनी वेदिकाओ का चन्दन लेप से सस्कार किया जाता था। फव्वारे खोल दिये जाते थे। गृहद्वारो को जल से धोकर स्वच्छ किया जाता था। मणियुक्त तोरण सर्वत्र लटका दिये जाते थे। प्रासादो पर इन्द्रधनुष के समान चित्रवर्ण पताकाए फहरा दी जाती थी।[२]

२८६. प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के अध्ययन से तत्कालीन सामाजिक विशेषताओ का भी सकेत मिलता है। सामाजिको के शिष्टाचार उसमे यत्रतत्र वर्णित पाये जाते है। गृहमेधियो के आश्रम मे गुरु के आसन पर कोई नहीं बैठ सकता था। राजा भी गुरुओ को दूर से साष्टाग प्रणाम करते थे। स्त्रिया पति को आर्यपुत्र कहकर सम्बोधित करती थी। पुत्र माता को चरण छूकर प्रणाम करते थे। अतिथि-सत्कार को सर्वोत्तम माना जाता था। प्रबोधचन्द्रोदय के कतिपय स्थलो से सामाजिक विश्वास भी ज्ञात होते है। उस समय सामाजिको की आस्था कर्त्तव्य पर न थी, भाग्य पर उन्हे विश्वास था। वे परिश्रम को महत्व न देकर भाग्य को भला-बुरा कहते थे।[३] किन्तु 'प्रतिकूले विधातरि किं कि न सम्भाव्यते।' वे मानते थे कि पुण्य कर्मों के द्वारा ही सुख-सुविधा मिलती है।[३] मगल अनुष्ठान करके यात्रा की जाती थी।

२८७. चिता मे जीवित जल जाने की प्रथा थी। केवल पति-वियोग मे

१. प्रबोधचन्द्रोदय, अक, ४, श्लोक २३, पृष्ठ १५७।
२. प्रबोधचन्द्रोदय, द्वितीय अंक, श्लोक १५, पृष्ठ ६०।
३. प्रबोधचन्द्रोदय, पृष्ठ ९७। ३. वही, पृष्ठ १६१।

ही नही, अपनी माता, स्त्री तथा पुत्रादि के वियोग मे भी ऐसा कर लेने की प्रथा थी।

२८८. धार्मिक व्यभिचार ने स्त्रियो की स्थिति को हेय बना दिया था। विधवाओ की दुर्दशा थी। उनका जीवन समाज मे अपमानित समझा जाता था। धार्मिक साधु उनके साथ व्यभिचार करते थे। साधु सन्यासी विधवाओ से ही नही विवाहिताओ से भी व्यभिचार करते थे। कुलवधुओ का जीवन आदर और मर्यादा से सम्पन्न था। उनका नैसर्गिक शील यह माना जाता था कि विपत्ति मे अपने पति की सहायता करे। स्वामी के उद्धार की एकनिष्ठ होकर प्रतीक्षा करे। कुलवधुएँ पूर्वजो के सम्मुख वार्तालाप नही करती थी। उनसे वार्तालाप और प्रश्नोत्तर धृष्टता मानी जाती थी। विवाहित स्त्रिया आभूषणो और वस्त्रो से सुसज्जित होती थी। उनकी बाहुओ मे मणियो से जटित ककण और केशपाश मे चूडामणि सुशोभित होता था। वे पैरो मे नूपुर और कण्ठ मे मुक्तामालायें धारण करती थी।

२८९. उपर्युक्त राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियो के चित्रण के अतिरिक्त प्रबोधचन्द्रोदय नाटक मे तत्कालीन धार्मिक अवस्था का चित्रण भी विशेष विस्तार मे मिलता है। तत्कालीन धार्मिको मे नैतिक दोष वेश्यागमन की प्रथा अध्ययन का अभाव और वाह्याडम्बरो का आधिक्य था? धार्मिक साधु और ब्राह्मण (वाराणसी मे) चादनी रातो मे वेश्याओ के गृह मे आकर मदिरापान करना और विहार करना पुरुषार्थ मानते थे। इस दोषपूर्ण कृत्य मे वे रात्रि मे लीन रहते किन्तु दिन मे बाह्या-डम्बर के आधार पर दोष को छिपा लेते थे। दिन मे वे सर्वज्ञ, अग्निहोत्री, ब्रह्मज्ञानी तथा तपस्वी बनने का ढोग रचते थे।[1] ये साधु सन्यासी और ब्राह्मण आदि धार्मिक धर्म ग्रन्थो का अध्ययन नही करते थे। अध्ययन से वचित इन अज्ञानी ब्राह्मणो और साधुओ के प्रति जनता की अगाध श्रद्धा थी।[2] सामाजिको को केवल ठगने के हेतु वेदो का अध्ययन होता था। वेदो का अर्थ बिना समझे अस्पष्ट वाणी मे पाठ किया जाता था। भिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य से यतिवेश धारण कर सिर मुँडा कर वेदान्त शास्त्रो का अध्ययन किया जाता था।[3] गगा के किनारे शीतल शिला पर बैठकर एक हाथ मे कुशा लेकर ब्राह्मण ध्यानावस्थित हो जाते थे। दाहिने हाथ की उगलियो मे रुद्राक्षकी माला लेकर, उसे क्रम से घुमाते हुए वे धार्मिको का धनअपहरण करते थे।[4]

---

१. प्रबोधचन्द्रोदय, अक दो, श्लोक १, पृष्ठ ४३।
२. वही वही, श्लोक, पृष्ठ ४४,४५।
३. वही " पृष्ठ ४५।
४. प्रबोधचन्द्रोदय, अंक दो, श्लोक ५।

इस प्रकार इनमे वाह्याडम्बर बहुत बढ गया था। वे जीविका के लिए त्रिदण्ड धारण करते थे और वैदिक कर्मकाण्ड को न जानते थे, न पालन करते थे। ब्राह्मण जन अपने आश्रम मे ऊँचे-ऊँचे दण्ड गाड लेते थे, यहा कृष्ण मृग का चर्म, समिधा, ओखल, मूसल, यज्ञपात्र आदि सजा लेते थे। ये ब्राह्मण, अपनी चोटी अपने कान, हाथ, कमर आदि मे कुशा लगाये रहते थे। चन्दन का छापा तिलक वे अपने ललाट, दोनो बाहु, पेट और वक्षस्थल, कण्ठ, ओष्ठ, कपोल और घुटने पर लगा लिया करते थे।[१] इस प्रकार ब्राह्मण आडम्बरपूर्ण वेष धारण कर अपने आश्रम मे बैठ जाते थे। उनके शिष्य किसी भक्त को उनके समीप न जाने देते थे। उनसे छुआछूत का व्यवहार किया जाता, कि कही पसीने की बूंदे गुरु को स्पर्श न कर ले। नवागन्तुको को हाथ-पैर धोकर, कुल जाति का परिचय देने के अनन्तर, आश्रम मे प्रवेश की आज्ञा मिलती थी। गौड देश की राढापुरी मे दम्भी और अहकारी ब्राह्मण बहुत अधिक थे। उत्कल प्रदेश मे मद और मान का प्रबल प्रभाव था।

२९०. इस पतित धार्मिक समाज मे अनेक मतमतान्तर भी प्रचलित थे। नाटककार ने चार्वाक, जैन, बौद्ध, सौमसिद्धान्त आदि मतो तथा दर्शनो की तत्कालीन अवस्था का चित्रण भी किया है। नाटक मे अन्य मतो की अपेक्षा चार्वाक मत का वर्णन सर्वप्रथम है। समाज मे चार्वाक मतानुयायियो का प्रभाव था। वे ईश्वर और स्वर्ग को प्रमाण नही मानते थे। प्रत्यक्ष को प्रमाण न मानने से, उनकी जाति-व्यवस्था तथा धर्म-कर्म के नियम पालन मे आस्था न थी। वे काम और अर्थ को ही पुरुषार्थ मानते थे। विषय-भोग ही उनके जीवन का उद्देश्य था। विशाल नेत्र तथा उच्च स्तनो वाली स्त्री के आलिंगन से प्राप्त आनन्द को ही वे आनन्द मानते थे। उनकी दृष्टि मे भिक्षा, उपवास, व्रत, सूर्यकिरण मे दाह भूखो का विधान था।[२] चार्वाक मत के प्रभाव मे वैदिक महाजन स्वेच्छाचारी हो गये थे। वेश्यागमन, मद्यपान और द्यूतक्रीडा उनका व्यसन हो गया था उत्तरप्रदेश काश्मीर, पाचाल, पजाब, काबुल, गाधार आदि देशो मे वैदिक धर्म शेष नही था। शम दम अदि सयम नियम के पालन की कही चर्चा नही होती थी। गुजरात, महाराष्ट्र आदि देशो मे वेदाध्ययन जीविका मात्र के हेतु था। कुरुक्षेत्र आदि धर्म-क्षेत्रो मे विद्या और प्रबोध का उदय स्वप्न मे भी सम्भव न था। मायापुरी के दाराश्रम बदरिकाश्रम मे भी वेदाध्ययन धर्मदान जीविका मात्र रह गया था।

२९१. तृतीय अक मे चार्वाक मत के इस वर्णन के पश्चात् जैन मत की तत्का-

---

१. वही वही, श्लोक ६।
२. प्रबोधचन्द्रोदय, अंक ३, श्लोक २२।

लीन अवस्था का वर्णन नाटककार ने किया है। उस समय जैनमतानुयायियो मे सात्विक श्रद्धा को स्थान न था। जैन साधु क्षपणक कहे जाते थे। ये राक्षस की भांति प्रतीत होते थे।[1] उनका शरीर मल के गिरते रहने से चिकना हो जाता था। गन्दगी के कारण उनके शरीर की छवि बीभत्स एव दुष्प्रेक्ष्य थी। उनके बाल नुचे हुए होते थे। वे वस्त्रहीन दिगम्बर होते थे। हाथ मे वे मयूरपच्छिका लिये रहते थे। अन्य मतावलम्बियो को वे तेजविहीन एव नारकी प्रतीत होते थे। वे 'ऊष्मोजलिहन्ताणम्' का उच्चारण करते थे। अपने श्रावको के प्रति उनके उपदेश थे कि ऋषियो को दूर से प्रणाम करो, मधुर स्वादिष्ट भोजन दो, यदि ऋषि श्रावक वधू के साथ विहार करे तो ईर्ष्या नही करनी चहिए। इस प्रकार प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के वर्णनानुसार तत्कालीन जैन साधु चरित्रहीन एव व्यभिचारी होते थे। जैनमत मे सुरापान वर्जित था किन्तु वे जैन साधु क्षपणक चरित्रहीनता के कारण उस दोष से अछूते न रह पाते थे। विषय-वासनाओं का आकर्षण उनमे प्रबल था।

२९२. तृतीय अक मे जैनमत के अनुयायियो के विवरण के पश्चात् बौद्धमतानुयायियो का विवरण मिलता है। बौद्धमतानुयायी, बौद्धागम, भिक्षु कहकर सम्बोधित होते थे उनमे सात्विकी श्रद्धा न थी, वरन् तामसी श्रद्धा का ही प्रचार था। ये भिक्षु रूप मे अपने मत की पुस्तक लेकर स्वतत्र विचरण करते थे। वे ताड की तरह लम्बे होते थे। इन भिक्षुओ के वस्त्र थे, लटकता हुआ केसरिया चोगा। ये शिखा समेत अपना सिर मुडाये रहते थे।[2] भिक्षुओ का चरित्र नैतिक दोष से पूर्ण था। उनके जीवन मे नियम एव सयम का पालन तथा चरित्र की पवित्रता न थी। ऊँचे ऊँचे भवन उनके निवासस्थान थे। सेठो की स्त्रिया उन्हे मनोनुकूल स्वादिष्ट भोजन देती थीं। वे सुकोमल सुमज्जित शय्या का सेवन करते थे। सुन्दरी युवतिया श्रद्धापूर्वक अगदान देकर उनकी उपासना करती थी। उनकी चन्द्रिका आलोकित शीतल रात्रिया आनन्द से व्यतीत होती थी।[3] पीन पयोधरा विधवाओ को वे गले लगाते थे।[4] ये भिक्षु वेश्यागमन तथा सुरापान मे लीन रहते थे।[5] इस प्रकार प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के अनुसार बौधिक भिक्षु चरित्रहीन और कर्तव्यच्युत थे।

२९३. तृतीय अक मे जैन और बौद्ध मतो के अनन्तर सोमसिद्धान्त के अनुयायियों

१. वही, वही, पृष्ठ ९८।
२. प्रबोधचन्द्रोदय, अंक ३, पृष्ठ १०५।
३. वही वही, पृष्ठ १०४,१०५।
४. वही वही, पृष्ठ १०९।
५. वही वही, पृष्ठ १२३।

का विवरण मिलता है। ये कापालिक कहलाते थे।[1] वे नर-अस्थि एव मुण्डों की माला धारण करते तथा नृकपाल मे भोजन करते थे। श्मशान उनका निवास स्थान था। इन कापालिकों में राजसी श्रद्धा का प्रचार था। ये शिवसाधना करते और महाभैरवी विद्या मे पारगत होते थे। कापालिक, कापालिकी के आलिगन और सुरापान के अनुभव के अन्य मतावलम्बियों को आकर्षित कर लेते थे। इस प्रकार प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के अनुसार कापालिको की अपने मत मे इतनी दृढ आस्था थी कि वे अन्य मत को स्वीकार नही करते थे। उन्हे अनेक सिद्धियां भी प्राप्त होती थी, जिससे वे अपने मत का प्रचार सरलता से कर लेते थे।

२९४. प्रबोधचन्द्रोदय नाटक मे जैन बौद्ध और कापालिक मतो के अनुयायियो का विवरण तो पृथक्-पृथक् किया ही गया है, किन्तु साथ ही तीनों मतावलम्बियों की जो वार्त्ता और अभिनय प्रदर्शित किया है उससे भी इनके सम्बन्ध मे कुछ विशेषताएँ ज्ञात होती है। जैसे इन मतो मे परस्पर झगडे हुआ करते थे। इनका वाद-विवाद इतना बढ जाता था कि एक दूसरे को अपशब्द कहने तथा तलवार खींचकर मारने की स्थिति भी आ जाती थी। वे परस्पर वादविवाद मे चारित्रिक दोषों पर आक्षेप करते थे। पापमलपकधर, निर्बुद्धि, विहारदासीभुजग, पाखण्डापसद तथा विप्रलम्भक आदि अपशब्दो का भी इनके द्वारा प्रयोग नाटक म मिलता है। इस विवरण के अतिरिक्त प्रबोधचन्द्रोदय नाटक मे, महामोह के पराजित होने से, जैन, बौद्ध और कापालिक मतो के विभिन्न देशो मे चले जाने का भी वर्णन है। बौद्धमत के सिन्धु, गान्धार, पारसीक, मागध, आन्ध्र, हूण, वग, कलिग आदि म्लेच्छ देशों मे चले जाने का तथा दिगम्बर और कापालिक मत के पाचाल, मालव, आभीर, आवर्त, सागरानूप देशो मे छिपकर घूमने का वर्णन है।[2]

२९५ धार्मिक परिस्थिति के इस चित्रण मे नाटककार दर्शनो की—भक्ति, उपनिषद और गीता की-तत्कालीन अवस्था का चित्रण करना भी नही भूला है। उस समय यज्ञविद्या के अनुयायी उपनिषद् की तात्त्विक व्याख्या को नही समझते थे। उनका धार्मिक व्यापार श्रोत्रिय यज्ञादि कर्मों तक ही सीमित था। उनके आश्रम, मृगचर्म, अग्नि, समिधा, घी, जुहू, ध्रुवा आदि से तथा इष्टि, पशु सोमादि यज्ञा से सुशोभित थे। कर्मकाण्ड मे मीमासक उपदेश और अतिदेश की योजना करते हुए, उत्तर मीमासानुसार कर्मकाण्ड मे निरत थे। वे उपनिषद के तात्त्विक ज्ञान की उपेक्षा करते थे। उनका विश्वास था कि कर्म मे ही कर्म की निवृत्ति हो जाती है। तर्क

१. वही वही, पृष्ठ १११।
२. प्रबोधचन्द्रोदय, अक ५, पृष्ठ १७७,७८।

विद्या के अनुयायियो की सख्या बहुत अधिक थी। वे तर्क के आधार पर ही ससार के तत्वो की गणना करते और उपनिषद् के तत्वो पर विचार भी करने का प्रयत्न नही करते थे। उस काल मे कलियुग के कारण विष्णुभक्ति का प्रचार बहुत कम हो गया था। विष्णुभक्ति शालिग्राम क्षेत्र मे विशेष रूप से प्रचलित थी। उसके भक्तो को कलियुग के दोष प्रभावित नही करते थे। ये विष्णुभक्त वास्तव मे सच्चरित्र और श्रद्धालु होते थे[1]। उनसे दुर्जन भयभीत रहते थे। विष्णुभक्ति अनुयायियों पर उनका भक्ति के प्रभाव से कापालिको की "भैरवी विद्या" और 'इन्द्रजाल' का कोई प्रभाव नही पडता था। ऐन्द्रजालिको का प्रयत्न उनकी भक्ति के प्रभाव से नष्ट हो जाता था। इससे अनुमान होता है—कृष्ण मिश्र के समय मे विष्णुभक्ति की दशा अन्य मतो की अपेक्षा श्रेष्ठावस्था मे थी। सम्भव है विष्णुभक्ति से प्रभावित होने के कारण नाटक मे ऐसा वर्णन किया गया है, किन्तु यह कहना उचित प्रतीत नही होता क्योंकि उपनिषद् को महत्व पूर्ण स्थान देने पर भी नाटककार ने उसकी दुर्दशा का वर्णन किया है। उसकी करुण स्थिति चित्रित की है। उस काल मे उपनिषद अध्ययन और मनन नही होता था।[2] धार्मिक जन उपनिषद् का अर्थ न समझकर व्यर्थ की कल्पनाए किया करते थे।[3] उस युग मे गीता को ही मान्यता थी। उपनिषद् उत्तराधिकारिणी गीता को ही माना जाता था। गीता के अनुयायियो का विशेष स्थान मन्दार पर्वत पर मधुसूदन का मन्दिर बताया गया है।

२९६ इस प्रकार हमे प्रबोधचन्द्रोदय नाटक मे तत्कालीन राजनैतिक सामाजिक एव धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण मिलता है। उससे अनुमान होता है कि उस काल मे राजनैतिक क्षेत्र मे साम्राटो मे परस्पर सघर्ष था। सामाजिको का जीवन भी धार्मिक पतन के कारण अव्यवस्थित था। धार्मिक समाज मे विभिन्न मतमतान्तरो का चारित्रिक पतन, विष्णुभक्ति का श्रेष्ठ प्रभाव, उपनिषद् की उपेक्षा और गीता की मान्यता थी। अत वह युग एक प्रकार से पतन का काल था। किन्तु उस पतन के काल मे भी कृष्ण मिश्र जैसे, प्रकाण्ड विद्वान् की स्थिति और प्रबोधचन्द्रोदय ग्रन्थ का प्रणयन, इस बात का द्योतक है कि उस पतन के अन्धकार मे भी कही कही ज्ञानमार्तण्ड की किरणे वातावरण को प्रकाशित अवश्य कर रही थी। और देश के उत्थान की आशा-किरण शेष थी।

---

१. प्रबोधचन्द्रोदय, अंक ३, पृष्ठ १३०।
२. वही, अंक ६, पृष्ठ २१८।
३. वही, अंक ६, पृष्ठ २१८।

७. प्राचीन 'टेकनीक'

२९७ प्राचीन एव आधुनिक मान्यताओ के अनुसार कथावस्तु, पात्र और रस आदि मुख्य तत्वो का विवेचन करने के पश्चात्, अब हम प्राचीन नाट्यशास्त्र की दृष्टि से शेष कुछ विशेष विधिविधान का अध्ययन करेंगे। इस विधिविधान का अध्ययन हम निम्न शीर्षको मे कर सकते हैं :—

(१) प्रबोधचन्द्रोदय एक नाटक
(२) नाटक का नामकरण
(३) नान्दी
(४) प्रस्तावना
(५) वस्तुविभाग दृष्य-सूच्य
(६) वृत्तिया
(७) अभिनय सकेत और रग सकेत
(८) प्रशस्ति श्लोक

२९८ इन उपर्युक्त शीर्षको मे नाटक मे सयोजित प्राचीन टेकनिक की समीक्षा हम क्रम से करेंगें

२९९. **प्रबोधचन्द्रोदय एक नाटक**—सस्कृत साहित्य मे काव्य के दो भेद हैं-दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य के अन्तर्गत रगमच पर अभिनीत रूपको की गणना होती है। रूपको के दस भेद होते है। उन दस भेदो मे से एक भेद नाटक नाम से भी है नाटक की परिभाषा[1] मे कहा गया है कि नाटक की कथा गौरवपूर्ण एव सुप्रसिद्ध होती है। आधिकारिक कथावस्तु का नायक कुलीन एव महान् गुणाभिपेत होता है। उसके प्रधान कार्य मे अन्य व्यक्तियो का सहयोग भी होता है। जो प्रासगिक कथा के नायक हो सकते हैं। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक की कथा मानव-मन की भावनाओ की मनोवैज्ञानिक चिरपरिचित कथा है। आधिकारिक कथा का नायक विवेक कुलीन और धीर-गम्भीर श्रेष्ठ नायक है। प्रधान कार्य मे विष्णुभक्ति तथा वैय्यासिकी सरस्वती आदि ने सहयोग दिया है। जो प्रस्तुत नाटक की प्रासगिक कथा, पताका और प्रघरी की नायिकायें हैं। प्रबोधचन्द्रोदय मे शान्त रस प्रधान है। इस प्रधान रस के परिपाक के हेतु अन्य शृगार वीर-आदि सभी रस सहायता पहुँचाने के हेतु कला-कौशल से सजोये गये है। प्राय नाटक मे पाच से दस तक अक होने का विधान होता है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक मे छ अक हैं। अत.प्रबोधचन्द्रोदय को रूपक के दस शास्त्रीय भेदो मे से 'नाटक' की सज्ञा दे सकते है। यह रचना 'गो पुच्छ के अग्र

१. रूपक और रूपक रहस्य, पृष्ठ १५८।

भाग के समान' क्रमश. विकसित होती हुई उपसहार मे कलात्मकता से समन्वित हो जाती है। इस नाटक में पच सन्धियो और अर्थ प्रकृतियो का प्रयोग भी यथोचित रूप से हुआ है। इस नाटक की निर्वहण सन्धि मे चिर शान्तिदायक आनन्दपूर्ण मोक्ष की अद्भुत योजना भी हुई है। जिससे कि समग्र रूप से यह एक नाटक ही सिद्ध होता है।

३००. **नाटक का नामकरण**—अब हम इस नाटक के नामकरण पर विचार करेंगे। किसी भी नाटक का नामकरण प्राय उसके नायक उद्देश्य, प्रस्तुत वस्तु एव मुख्य घटना आदि के आधार पर किया जाता है। प्रस्तुत कृति का नाम 'प्रबोध-चन्द्रोदय' है जो कि इसमे घटित मुख्य घटना का उद्देश्य 'प्रबोधचन्द्रोदय' के उदय-के आधार पर किया गया प्रतीत होता है।

३०१. 'प्रबोधचन्द्रोदयम्' पद की व्युत्पत्ति है, प्रबोध और चन्द्र मे तादात्म्य सबध स्वीकार कर, रूपकालकार मानते हुए—प्रबोध एव चन्द्र, प्रबोधचन्द्र : तस्य उदय यस्मिन् तत् अर्थात् प्रबोध से अभिन्न चन्द्र का उदय जिसमे हुआ हो। इस प्रकार रूपकालकार के आधार पर की गई व्युत्पति मे प्रबोध और चन्द्र के अभिन्न होने के कारण 'उदय' 'उद्गम' धर्म दोनो मे अन्वित हो जाता है। अतएव यह व्युत्पत्ति ही समीचीन प्रतीत होती है, जिसका अर्थ है प्रबोधरूपी चन्द्र का उदय है जिसमे, ऐसा 'प्रबोधचन्द्रोदयम्'। प्रबोध शब्द की 'प्रबुध्यते अनेनेति प्रबोध 'इस व्युत्पत्ति के आधार पर प्रबोध का अर्थ होता है—ब्रह्मस्वरूप या अज्ञानानावृत ब्रह्माकारान्त करण वृत्ति और चन्द्र का अर्थ है उनको प्रकाशित करने वाला। प्रबोध और चन्द्र का समास होने पर 'प्रबोध चन्द्र' इस समस्त पद का अर्थ होगा—ब्रह्मस्वरूप या अज्ञानानावृत ब्रह्माकारान्त: करणवृत्ति का प्रकाशक। उस 'प्रबोधचन्द्रोदय' का उदय—उद्गम—साक्षात्कार-जिसमे हुआ हो उसे 'प्रबोधचन्द्रोदय' कहते है। इस नाटक मे पुरुष को 'प्रबोधचन्द्रोदय' रूपी फल की प्राप्ति हुई है। अत मुख्य फल के आधार पर किया गया इस नाटक का 'प्रबोधचन्द्रोदय' यह नामकरण उचित ही है। नामकरण के अर्थ पर अन्य विद्वानो के विचारो का उल्लेख करने के उपरान्त डा० सीता भट्ट ने भी इसी मत से समता रखते हुए अर्थ को ही स्वीकार किया है।[1]

---

1. "The name Probodha candrodayah has been translated vaiiously by various people. J. Taylor translated it as 'Rise of the Moon of Intellect,' Winternitizas 'Erkenntnismondaufgang; Macdonell as Rise of the Moon of Knowledge', S. K. De as

३०२. **नान्दी**—नाट्यशास्त्र के नियमानुसार प्रस्तुत कृति के आरम्भ मे ही सूत्रधार के द्वारा दो श्लोको का नान्दी-पाठ है। इस नान्दी का स्वरूप मगलात्मक और नमस्कारात्मक है। साथ ही इसमे अभिधावृत्ति के द्वारा नाटक की मुख्य वस्तु का निर्देश भी किया गया मिलता है, जैसे प्रथम श्लोक मे ब्रह्मज्योति की स्तुति है जो ब्रह्म के सच्चिदानन्द स्वरूप की उद्बोधिका है। दूसरे श्लोक मे प्रत्यक्ष ज्योति की चर्चा से जीवात्मा के विजयी होने की मगल कामना व्यक्त होती है। इसके अतिरिक्त पहले श्लोक के 'तत्' और द्वितीय श्लोक के 'त्वम्' पद से 'तत्वमसि' वाक्य की अद्वैत-परक व्याख्या के द्वारा जीवात्मा की मगल-कामना की गई है।

३०३. इस नान्दी के प्रथम श्लोक द्वारा प्रस्तुत कृति के सम्बन्ध चतुष्टय—१, प्रयोजन, २ विषय, ३ सम्बन्ध और ४ अधिकारी व्यक्त किये गये है। उसके अनुसार जीवो का अज्ञान से निवृत्त होना, प्रस्तुत नाटक का प्रयोजन, प्रतिपाद्य (विषय) और प्रतिपादक (कर्त्ता) का भाव—इसका सम्बन्ध, अद्वैत सिद्धान्त के साथ विष्णुभक्ति का समन्वय विषय तथा अज्ञान-निवृत्ति की इच्छा करने वाला व्यक्ति इसका अधिकारी है। इस नान्दी के अर्थ से वस्तुविषय भी प्रतिध्वनित होता है। प्रथम श्लोक मे 'अज्ञानत' मे महामोह, 'खवायु —त्रैलोक्य–मुन्मीलति 'मे महामोह की सेना, 'यत्तत्वविदुषा'–से विवेक का पक्ष, 'निमीलति' से दोनो पक्षो का नाश, ज्योति के आत्मावबोध मे प्रबोध की उत्पत्ति का भाव प्रतिलक्षित हो रहा है। इस प्रकार इस नाटक की नान्दी गम्भीर, भाव पूर्ण, दार्शनिक और सार्थक है।

३०४. **प्रस्तावना**—नान्दी के पश्चात् प्रकृत नाटक की प्रस्तावना[1] के अन्तर्गत सूत्रधार और नटी का वार्तालाप है। इस प्रस्तावना मे लेखक का नाम, उद्देश्य,

---

'the Moon Rise of true knowledge', and Dr. J. W. Boissevain as' Maansopgang der Ontwaking,

I prefer to translate it as 'the rise of the Moon of (Spiritual) awakening'—Dr. Sita Bhatt Thesis—Introduction.

१. (अ) 'रूपक और रूपक रहस्य', पृष्ठ १३८।

(ब) नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा।
सूत्रधारेण सहिता : सलाप, यत्र कुर्वते।
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुख तत्तु, विज्ञेय नाम्ना प्रस्तावनापि सा।
—साहित्य दर्पण, परिच्छेद ६, पृष्ठ १७६।

प्रेरणा तथा राज्याश्रय का परिचय दिया गया है।[1] प्रस्तावना के पांच प्रकारो[2] में से यह प्रस्तावना कथोद्घात[3] नाम की है। 'सूत्रधार के समान घटना वाले वाक्य को या वाक्यार्थ को लेकर तदनुकूल उक्ति का प्रयोग करते हुए, जब कोई नाटकीय पात्र मच पर (प्रथम अक मे) प्रवेश करता है, तो उस प्रस्तावना को कथोद्घात कहते है। इस प्रस्तावना मे सूत्रधार जैसे ही विवेक की विजय और प्रबोधोदय का सकेत करता है[4] वैसे, तुरन्त ही, उसके वाक्यार्थ को लेकर उसका विरोध 'काम' नामक पात्र नेपथ्य मे से करता हुआ प्रवेश करता है।[5] जिस से सूत्रधार भयभीत होकर प्रस्थान कर जाता है। काम के रति के साथ रगमच पर, प्रवेश करने से कथा का क्रम प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार सूत्रधार के वाक्य के वाक्यार्थ को लेकर काम नामक पात्र के विरोध से कथोद्घात नाम की प्रस्तावना है।

३०५. **वस्तुविभाग-दृश्य सूच्य**---प्रस्तावना के पश्चात् अब हम दृश्य और सूच्य नामक कथावस्तु के दो विभागो पर विचार करेगे। दृश्य वस्तु के अन्तर्गत रगमच पर प्रत्यक्ष अभिनय के प्रसग होते है। किन्तु रगमच की कुछ सीमाये भी होती है। जिनके कारण सभी प्रसगो का अभिनय रगमच पर नही हो सकता है। इसके लिए सूच्य विषयो का सहारा लेना पडता है। सामाजिको को यह सूचना पाच प्रकार से दी जाती है--विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अक और अकास्य। सूचना के पाच प्रकारो मे विष्कम्भक का प्रयोग इस नाटक मे है। इसका विष्कम्भक (मिश्र) सकीर्ण विष्कम्भक है।[6] इसमे मध्यम तथा अधम श्रेणी के पात्रो[7] के

१. प्रबोधचन्द्रोदय, प्रथम अक, पृष्ठ ४--१४।

२. उद्घात्यकः कथोद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा।
प्रवृत्तकावलगिते पचांगान्यामुखस्य तु॥३३॥
--ना० शा० विशो अ०, पृष्ठ ९३।

३ सूत्रधारस्य वाक्य वा समादायार्थमस्यवा।
भवेत्पात्र प्रवेशश्चेत्कथोद्घातः स उच्यते॥३॥
--साहित्य दर्पण, परिच्छेद ६, पृष्ठ १७६।

४. प्रबोधचन्द्रोदय, प्रथम अक श्लोक ९, पृष्ठ १३।

५. वही, पृष्ठ १३।

६ वृत्तवर्तिष्यमाणाना कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्र प्रयोजितः॥५९॥
--दश रूपक, प्रथम प्रकाश

७. "सकीर्णा नीचमध्यकृतः'
---ना० शा० एकोनविंशोऽध्याय, श्लोक ११२, पृष्ठ ३५।

वार्तालाप द्वारा घटित घटनाओ या भविष्य की घटनाओ की सूचना मिलती है। इस नाटक के संकीर्ण विष्कम्भक मे[1] काम तथा रति नामक शत्रु पक्ष के अधम श्रेणी के पात्रों का वार्तालाप है। यह वार्तालाप प्रबोधोदय की भावी घटना की सूचना देता है। प्रथम अक के अतिरिक्त चतुर्थ अक मे शुद्ध विष्कम्भक[2] का प्रयोग है। क्योकि इसमे श्रद्धा और मैत्री मध्यम श्रेणी के पात्र अतीत (श्रद्धा की दुर्दशा) और भविष्य (युद्ध की आज्ञा) की सूचना देते है।

३०६. सूच्य विषय के प्रवेशक का प्रयोग, प्रस्तुत नाटक मे द्वितीय, पचम तथा षष्ठ अक मे हुआ है। दो अको के मध्यभाग मे स्थित, जिस दृश्य मे अतीत या भविष्य की सूचना होती है उसे प्रवेशक[3] कहते हैं द्वितीय अक[4] मे दम्भ और अहकार नामक शत्रुपक्ष के पात्रो का वार्तालाप है। जो महामोह के अद्भुत प्रभाव का वर्णन करते हैं। पचमाक[5] के प्रवेशक मे श्रद्धा और विष्णुभक्ति का वार्तालाप है। श्रद्धा ने विष्णुभक्ति को महामोह और विवेक के युद्ध का वृत्तान्त सुनाया है। तत्पश्चात् मन को शान्त करने की भविष्य की योजना बनाई है। षष्ठाक[6] के प्रवेशक मे शान्ति और श्रद्धा का वार्तालाप है। जिसमे मन द्वितीय महामोह के प्रभाव मे रक्षा किये जाने की अतीत की घटना का वर्णन तथा उपनिषद् और विवेक मे सम्बन्धित भविष्य की सूचना है। विष्कम्भक और प्रवेशक के साथ ही इस नाटक मे चूलिका का प्रयोग भी किया गया है। नेपथ्य से किसी अर्थ (कथावस्तु) की सूचना देना चूलिका कहलाता है[7]। यह चूलिका द्वितीय, चतुर्थ और छठे अक मे प्रयुक्त है। द्वितीय अक

---

१. प्रबोधचन्द्रोदय, प्रथम अक, पृष्ठ १५-२९।

२. 'मध्यम पात्रैः शुद्ध.'

—ना० शा० एकोनविंशोऽध्याय, श्लोक ११२, पृष्ठ ३५।

३. अंकान्तरानुसारी सक्षेपार्थमधिकृत्य बिन्दूनाम्।
प्रकरणनाटक विषये प्रवेशको नाम विज्ञेयः ।।११४।।

—ना० शा० एकोनविंशोऽध्यायः।

४. प्रबोधचन्द्रोदय, द्वितीय अक, पृष्ठ ४१–६१।

५. वही, पृष्ठ १६६–१७९।

६. वही, पृष्ठ २०२–२०९।

७. अन्तर्यवनिका सस्थैः सूतादिभिरनेकधा।
अर्थोपक्षेपणं यत्तु क्रियते सा हि चूलिका ।।११३।।

—ना० शा० एकोनविंशोऽध्यायः। पृष्ठ ६५।

मे[1] नेपथ्य से महामोह के आगमन तथा स्वागत मे सुसज्जित नगर का विवरण सुनाया गया है। चतुर्थ अक मे[2] नेपथ्य से सैनिको को प्रस्थान की आज्ञा तथा विस्तृत सेना का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। षष्ठाक[3] मे, रगमच पर बैठे हुए पुरुष के ध्यान मे होते हुए प्रबोध के उदय का वर्णन नेपथ्य से किया गया है। इस वर्णन के पश्चात् प्रबोध नाम का पात्र रगमच पर प्रविष्ट होता है। सूच्य विषय के तीन प्रकारो विष्कम्भक, प्रवेशक और चूलिका के अतिरिक्त अकास्य और अकावतार का प्रयोग इस नाटक मे नही है।

३०७. **वृत्तियाँ**—प्राचीन नियमो के अनुकूल नाटक मे चार वृत्तियो–कैशिकी, आरभटी, सात्वती और भारती का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुत कृति मे इन चारो वृत्तियो का निवेश है।

३०८ **अभिनय संकेत और रंग संकेत**— इस 'रूपक' नाटक मे नाटकीयता लाने के हेतु अभिनय सकेत भी पर्याप्त मात्रा मे दिये गये हैं। आगिक, वाचिक, सात्विक तथा आहार्य आदि चारो प्रकारो के अभिनय सकेत यत्र-तत्र मिल ही जाते है। आगिक अभिनय मे पात्र शारीरिक अगो से विशेष प्रकार की क्रिया सम्पादित करके अभिनय को पूर्ण बनाते है। उदाहरण के लिए —

दम्भ—(हस्त सज्ञया समाश्वसयति)

दम्भ—(दन्तान् सम्पीड्य बटु पश्यति)

भिक्षु—(कर्णौ पिधाय)

इस प्रकार हाथ से सकेत करना, दात पीसना और कानो को दबा लेना आगिक अभिनय के उदाहरण है। वाचिक अभिनय मे वाणी के उतार-चढाव का सहयोग लेकर अभिनय सम्पन्न करने की चेष्टा की जाती है। प्रस्तुत कृति मे उदाहरण के हेतु दृष्टव्य है —

'दम्भो हुकारेण निवारयति'

'भिक्षुमालोक्योच्चै शब्द'

इस प्रकार हुकार से निवारण करना तथा ऊँची आवाज मे बोलना वाचिक अभिनय के उदाहरण हैं। आहार्य अभिनय के अन्तर्गत विशेष वेषभूषा और कृत्रिम सज्जा से अभिप्राय के स्पष्टीकरण के लिये अभिनय मे सहयोग लिया जाता है। जैसे— प्रबोधचन्द्रोदय के भिक्षु का वर्णन—

---

१. प्रबोधचन्द्रोदय, पृष्ठ ६०।

२. वही , पृष्ठ १५७।

३. प्रबोधचन्द्रोदय, पृष्ठ २३७।

"लवणतालतलप्रलम्बो लम्बमानकषायविशंगजीवरोमुण्डित सचूडमुण्डपिण्डहत एवागच्छति।"

इस प्रकार बौद्ध भिक्षु की विशेष वेष-भूषा के कारण, अभिनय को प्रभावशाली और सजीव बनाने मे सहयोग मिला है। जैन और कापालिक साधुओ तथा काशी के ब्राह्मणो की वेषभूषा और सज्जा का वर्णन भी इसमे मिलता है। किन्तु भावतात्विक रूपक पात्रो की वेषभूषा का वर्णन नही किया गया है। अभिनय के अन्तिम अग सात्विक अभियन ने नाटक के अभिनय को भावपूर्ण बनाने मे सहयोग दिया है। पात्रो के भावपूर्ण होने के कारण सात्विक अभिनय के उदाहरण यत्र-तत्र मिल ही जाते है। जैसे—

प्रविशति बटु (ससभ्रम्)

अहकार—(सक्रोधम्)

महामोह—(सभयमात्मगतम्)

चार्वाक—(विहस्य)

राजा—(सलज्जमघोमुखस्तिष्ठति)

इस भाति व्याकुलता व्यक्त करने, क्रोधित होने, भयभीत होने तथा लज्जित होने आदि के कितने ही उदाहरण यत्र-तत्र नाटक मे उपलब्ध होते है। जिससे ज्ञात होता है कि नाटककार के अभिनय सकेतो की योजना नाटक को अभिनेय बनाने मे सहयोगी सिद्ध हुई है। अभिनय सकेतो को सप्राण बनाने के हेतु रग सकेत अनिवार्य है। रग-मच की सजावट के विशेष सकेत इस नाटक मे नही है। प्राचीन परम्परा मे नाट्यशास्त्र के नियम रगमच के सम्बन्ध मे इतने परिवर्तित थे कि नाटककार नाटक मे उनके सम्बन्ध विशेष के विवरण नही दे सकते थे। किन्तु इसके कारण अभिनय मे कठिनाई नही पडती थी। रगमच के शास्त्रीय नियमो के अनुकूल रगमच की व्यवस्था कर ली जाती थी। प्रस्तुत कृति मे रगमच पर पर्दा उठने और गिरने की सुविधाजनक योजना है। पात्रो के प्रवेश और निष्क्रमण सयोजित है। नेपथ्य का प्रयोग भी स्वाभाविक है। इस कारण नाटक मे रगमच की व्यवस्था उचित ही प्रतीत होती है। यह नाटक प्रधान रूप मे मानसिक जगत का नाटक है। अतएव मानव नेत्र बद करके भी अपने अन्त जगत मे ही इसके अभिनय को देखने के आनन्द का अनुभव कर सकता है। इसके लिए बाह्य रगमच की विशेष आवश्यकता नही है। मानस जगत मे रगमच की इतनी ही योजना पर्याप्त है। मानव अन्त मानस मे इस नाटक का अभिनय नित्य प्रति किसी न किसी रूप से स्वभावत हुआ ही करता है।

३०९. **प्रशस्ति श्लोक**—प्राचीन टेकनीक के **अन्तर्गत अन्तिम रूप से,**

अब हम नाटकान्त मे प्रयुक्त होने वाली निर्वहण सन्धि के अन्तिम अग प्रशस्ति[1] की योजना पर विचार करेंगे। 'शुभ की आकाक्षा प्रशस्ति कहलाती है।' इस प्रशस्ति को 'भरत वाक्य' भी कहते है।[2] क्योकि नाट्यशास्त्र का यह प्राचीन विधान रहा है कि नायकादि के वर प्राप्ति के पश्चात् ग्रन्थ की समाप्ति होनी चाहिए।[3] इस हेतु शान्ति तथा शुभ कल्याणमयी भावनाओ की अभिव्यक्ति के साथ ग्रन्थ का अन्त करने का प्राचीन नियम रहा है। इसी के अनुसार कृष्णमिश्र ने भी विष्णुभक्ति के द्वारा फल प्राप्ति से सम्पन्न पात्र के लिए शुभ कल्याणमयी कामना के आशीर्वाद की योजना की है। इस मगल मे तत्कालीन मगल कामना के साथ ही उदार और व्यापक भावी शुभाकाक्षा भी निहित है। वह प्रशस्ति वाक्य है कि पृथ्वी पर गम्भीर मेघमालाए शीतल जल की पर्याप्ति वर्षा करे। पृथ्वी अपेक्षित जल से शीतल हो जाय। अतिवृष्टि और अनावृष्टि दूर हो। भूपाल शत्रु के विरोधो, अपने देश या राज्य के अन्य उपद्रवो से निवृत्त होकर शान्तिपूर्वक, पृथ्वी का पालन और राज्यशासन करे। इस प्रशस्ति श्लोक की प्रारम्भिक दो पक्तियो मे लौकिक अभ्युदय की कामना के अनन्तर पारलौकिक नि श्रेयस की कामना भी है। वह यह है कि विष्णुभक्ति की कृपा से सत् आत्माये सर्वज्ञान के विकास से सम्पूर्ण ही अज्ञान को नष्ट करके ज्ञानवान और महान् बने तथा स्रक् चन्दन वनितादि विषयो से (ममता मोह के पक से) पूर्ण भवसागर को पार करने की सामर्थ्य प्राप्त करे। इस भाति प्रस्तुत पूर्ण लौकिक और पारलौकिक कल्याण कामना मे समन्वित विशाल और व्यापक है। अन्त मे हम कह सकते हैं कि प्रस्तुत कृति मे प्राचीन टेकनीक की योजना नियमानुकूल होते हुए भी साहित्यिक एव कलात्मक कही जा सकती है। इसमे नान्दी, प्रस्तावना, विष्कम्भक और प्रवेशक आदि सभी क्रमिक रूप से यथास्थान सुसयोजित है।

---

१. (क) प्रशस्तिः शुभशंसनम्।

—द० रू०, प्र० प्र०, श्लोक ५४, पृष्ठ ६३।

(ख) नृपदेशप्रशान्तिश्च प्रशस्तिरभिधीयते।

ना० शा० एकविंशोऽध्यायः, श्लोक १०४, पृ० ६१

(ग) साहित्यदर्पण में श्लोक ११४, परिच्छेद में नाट्यशास्त्र के अनुकूल ही परिभाषा है।

२. दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृष्ठ ६३।

३. वरप्रदानसंप्राप्तिः काव्यसंहार इष्यते।

—ना० शा० एकोनविंशोऽध्याय, पृष्ठ ६०।

८. प्रबोधचन्द्रोदय की आध्यात्मिक भावसम्पत्ति

३१०. पिछले पृष्ठो मे की गई 'प्रबोधचन्द्रोदय' की शास्त्रीय समीक्षा से यद्यपि हम इसकी साहित्यिक एव मनोवैज्ञानिक विशेषताओ से विशेष परिचय प्राप्त कर चुके है, तथापि इसकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता आध्यात्मिकता भावसम्पत्ति है जिसका कि हमे अभी अध्ययन करना है। प्रस्तुत नाटक के मतमतान्तरो एव धर्म-दर्शनो के प्रतिपादन की समीक्षा की गई है। नाटककार के पूर्व के सभी धार्मिक सम्प्रदायो एव मतो की स्वसमसामयिक स्थिति का यथातथ्य चित्रण तथा अपने अभीष्ट मत का प्रतिपादन इस नाटक मे बडी ही स्पष्ट रीति से हुआ है। फलस्वरूप नास्तिक —लौकायत, बौद्ध और जैन —तथा आस्तिक—यज्ञविद्या, मीमासा और तर्कविद्या—दर्शनो एव उनके उपजीव्य उपनिषद् के सारभूत सिद्धान्तो का प्रतिपादन अतीव सफलता के साथ इसमे हो सका है। नाटककार ने शैवदर्शन के एक अग 'कापालिक' को भी अपना आलोच्य विषय बनाया है। साथ ही विष्णु-भक्ति-पात्र के माध्यम से नाटककार ने वैष्णवदर्शन के स्वामिगत सिद्धान्त को भी इसमे व्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। इसलिये इसके पूर्व कि हम 'प्रबोध-चन्द्रोदय' नाटक मे चित्रित धर्म और दर्शन का अध्ययन करे, हमे प्रस्तुत कृति की पृष्ठभूमि के रूप मे उन सभी उपरोक्त दार्शनिक एव धार्मिक सम्प्रदायो के सिद्धान्तो का सामान्य परिचय प्राप्त कर लेना चाहिये जिनका कि विवरण एव सकेत आलोच्य ग्रन्थ मे उपलब्ध होता है, जिससे उनके प्रकाश मे 'प्रबोधचन्द्रोदय' के धर्म और दर्शन का अध्ययन किया जा सके।

३११. प्रबोधचन्द्रोदय के धर्मदर्शन की पूर्व परम्परा—उपनिषद्, यज्ञविद्या, मीमासा और तर्कविद्या आदि का मूलाधार 'वेद' ही है। इसलिये इनके वास्तविक स्रोत का परिचय प्राप्त करने के लिये 'वेद' और उसमे प्रतिपादित सिद्धान्तो का सक्षिप्त विवरण सर्वप्रथम दे देना आवश्यक प्रतीत होता है।

३१२ **वेद**—भारतीय धर्म और तत्वज्ञान के प्राचीनतम स्वरूप को समझने के लिये हमारे पास एक ही महान् साधन है और वह है विश्वसाहित्य के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ 'वेद'। ज्ञानार्थक 'विद्' धातु से निष्पन्न 'वेद' शब्द 'ज्ञान' का वाचक है। यह ज्ञान लौकिक एव अलौकिक दोनो प्रकार का हो सकता है। वस्तुत 'वेद' इन लौकिक और अलौकिक उभयविध ज्ञानो, विद्याओ का एक अपूर्व भाण्डागार है। विभिन्न देवताओं की स्तुतियो के रूप मे अनेक महर्षियो के द्वारा रचित ऋचाओ के सकलन के रूप मे प्रारम्भ मे केवल एक ही 'वेद' था जिसे हम 'ऋग्वेद' के रूप मे जानते है। परन्तु कालान्तर मे पुरोहित वर्ग मे यज्ञो की महत्ता के अत्यधिक बढ़ जाने के कारण उसके द्वारा यज्ञीय आवश्यकताओ को ध्यान मे रखकर 'वेद' को

चार भागो मे विभाजित कर दिया गया। ये चारो ही भाग 'वेद' नाम से अभिहित किये गये। इन वेदो की संहिताओ—मत्र समूहो—के नाम हैं :—ऋग्वेद संहिता यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता और अथर्ववेद संहिता है।

३१३. **प्रतिपाद्य विषय**—वेद भारतीय वाङमय के अति प्राचीन रूप को उपस्थित करते है, इसलिए यह भी अनिवार्य सा है कि उनके द्वारा भारत के प्राचीनतम रीति-रिवाज तथा धर्म और दर्शन के सम्बन्ध मे भारतीयो के अभिमत का पता चले। जहा तक ऋग्वेद का सम्बन्ध है, वह भारतीयो के प्राचीनतम आचार-व्यवहार का भव्य रूप उपस्थित करता हुआ उनके अधविश्वासो की ओर भी हमारे ध्यान को आकृष्ट करता है। वह हमे बताता है किस प्रकार आर्यों ने प्राकृतिक पदार्थों मे देवता तत्व का आरोप कर उन्हे इन्द्र-वरुण-विष्णु और सविता आदि के रूप मे प्रतिष्ठित किया है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के 'नासदीयसूक्त' जैसे कुछ उच्च विचारपरक सूक्तो के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि सम्भवत. उस समय के आर्य सामान्य देवताओ से आगे बढकर उस एक शक्ति की खोज की ओर प्रवृत्त हो चुके थे—जो इस विश्व को उत्पन्न और नष्ट करने वाली मानी जाती थी तथा समस्त देवताओ को जिसका अग माना जाता था। आगे चलकर, इसी सूत्र को उपनिषदो ने पकडा और उस मूलतत्व का नाम 'ब्रह्म' रखा।

३१४. अथर्ववेद को छोडकर शेष दो वेदो मे हमे यज्ञीय विद्या का विभ्राट् रूप देखने को मिलता है-इसके अतिरिक्त इनमे और कोई विशेषता नही। अथर्ववेद विशेष रूप से उस समय के नीचे धरातल मे विद्यमान साधारण जनता के रीति-रिवाजो का वर्णन प्रस्तुत करता हैं। इसके अतिरिक्त हमे इसमे ऋग्वैदिक देवतातत्व का कुछ विकसित रूप भी मिलता है जिसका सकेत इसके कुछ दार्शनिक सूक्तो मे उपलब्ध होता है।

३१५. जैसा कि आगे हम देखेंगे वेदो मे सूत्र रूप मे आए हुए—कर्मकाण्ड और दार्शनिक तत्वो को ही आधार बना कर परवर्तीकाल के—ब्राह्मण, उपनिषद् और उनके उपजीव्य मीमासा और वेदान्त शास्त्रो ने अपनी प्राणप्रतिष्ठा की।

३१६. **ब्राह्मण और आरण्यक**—आगे चलकर जब वैदिक मत्रो की रचना समाप्त हो गई तो पुरोहित-वर्ग की दृष्टि एकमात्र यज्ञीय क्रिया-कलाप पर पड़ी और उसका इतना अधिक विकास या कहिये आडम्बर हुआ कि उसके लिए विधि-विधानो के ग्रन्थो की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। कर्मकाण्ड को दृष्टि मे रख कर लिखे गये इन ग्रन्थो को 'ब्राह्मण' कहते है। 'ब्राह्मण शब्द का अर्थ है—यज्ञ का प्रतिपादन करनेवाले ग्रन्थ। अनन्तर इनको भी 'वेद' सिद्ध करने का प्रयास किया गया और वेदों की शाखाओ से इनका सम्बन्ध जोड़ा गया। इस

प्रकार 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्' के अनुसार मन्त्र के समान ये भी 'वेद' के अन्तर्भूत माने जाने लगे। जैसा कि बताया गया है, वेदो की अनेक शाखाओ से सम्बद्ध होने के कारण प्राचीन काल मे इनकी सख्या बहुत थी, परन्तु आजकल बहुत थोडी सख्या मे ये उपलब्ध है। इनमे से 'शतपथ' सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

३१७. वैसे तो इनमे अपने प्रतिपाद्य विषय यज्ञगत कार्यकलाप का ही प्रबल और आडम्बरपूर्ण रूप से प्रतिपादन किया गया है किन्तु तत्कालीन समाज के वैचारिक मानदण्डो, उसके आचार-व्यवहारो तथा रीति-रिवाजो का भी सामान्य परिचय हमे यहाँ उपलब्ध हो जाता है। भारत के प्राचीन आर्यजनो के धार्मिक इतिहास की जानकारी के लिए इस विषय के जिज्ञासु व्यक्तियो के लिए इन ब्राह्मणो का अनल्प महत्त्व है।

३१८. ब्राह्मणो के ही अन्तर्गत आरण्यक भी आते है। इनमे यज्ञ के कर्मकाण्ड सम्बन्धी रहस्यो की व्याख्या की गई है। इन विषयो का विवेचन प्राय अरण्यो मे हुआ करता था, इसलिए यज्ञ-रहस्य का प्रतिपादन करनेवाले इन ग्रन्थो को 'आरण्यक' कहा जाने लगा। इनका भी प्रतिपाद्य विषय—जैसा कि स्पष्ट है—ब्राह्मणो जैसा ही है। यज्ञ के विधि-विधानो के अलावा इनमे समाज के अन्य विषयो की जानकारी बहुत ही कम मिलती है। वैसे इनका भी ब्राह्मणो के तुल्य धार्मिक महत्त्व तो है ही।

३१९. **उपनिषद्**—आगे चलकर हमे 'उपनिषदो' के रूप मे वेद का चरम विकास उपलब्ध होता है। इनमे साक्षात्कृत धर्मा महर्षियो ने ब्रह्म, जीव और जगत की गूढ पहेलियो को सुलझाने का सफल प्रयास किया है। वस्तुत अध्यात्म-ज्ञान के विश्व कोष-भूत इन उपनिषदो के कारण ही आज विश्व मे वैदिक एव सस्कृत साहित्य की महत्ता है।

३२०. 'उपनिषद्' शब्द की निष्पत्ति उप और नि उपसर्ग पूर्वक 'सद्' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय लगा कर की गई है। 'सद्' धातु के तीन अर्थ होते है - १ विशरण अर्थात् नाश होना, २ गति अर्थात् प्राप्ति होना और ३ अवसादन अर्थात् शिथिल करना। वस्तुत 'उपनिषद्' शब्द का अर्थ 'सद्' धातु के इन तीनो ही अर्थो के अनुकूल है। क्योकि यह ससार की बीजभूत अविद्या को नष्ट करती है, ब्रह्म की प्राप्ति कराती है, और गर्भवासादि अन्य क्लेशो को सदा के लिये शिथिल कर देती है। ज्ञान के प्रतिपादक होने के कारण इनका भी सम्बन्ध वेदो से जोडा गया था, सम्बन्ध ही नही जोडा गया अपितु इनकी ज्ञानगरिमा के कारण इन्हे वेद का अन्त अर्थात् पराकाष्ठा भी कहा जाने लगा। परवर्ती काल मे उद्भूत वेदान्त शास्त्र के मूल ग्रन्थ और प्रस्थानत्रयी मे अन्यतम 'ब्रह्म-

सूत्रों' के उपजीव्य ये उपनिषद् ही हैं। वासुदेव कृष्ण द्वारा गीत 'श्रीमद्‌भगवद्‌गीता' का भी आधार ग्रन्थ होने का सौभाग्य इन्ही उपनिषदो को ही प्राप्त है। इस प्रकार आध्यात्मिक साहित्य के क्षेत्र मे 'उपनिषद्' विश्व-साहित्य की परम्परा मे अद्वितीय स्थान के अधिकारी हैं।

३२१. यद्यपि आधुनिक अनुसन्धानो से २०० के लगभग 'उपनिषद्' ग्रन्थों की उपलब्धि हो चुकी है परन्तु प्रामाणिकता की दृष्टि से केवल १० उपनिषद् ही मान्य है –ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्ड, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, एतरेय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक—जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है —

ईशकेनकठप्रश्नमुण्डमाडूक्यतित्तिरिः।
ऐतरेयंचछान्दोग्यं बृहदारण्यकं दश॥

३२२ **प्रतिपाद्य विषय**—जैसा कि ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हो चुका है, इन उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय मुख्यतया ब्रह्मजीव और जगत् से सम्बन्ध रखता है। यहाँ इन तीनों के सम्बन्ध मे उपनिषद् की धारणाओं और मान्यता से परिचय प्राप्त कर लेना कदाचित् अनावश्यक न होगा।

३२३. **ब्रह्म**--उपनिषदो मे ब्रह्म के दो रूपो का विवेचन किया गया है—सगुण और निर्गुण का। उनके अनुसार ब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनों है। सगुण ब्रह्म को सविशेष और निर्गुण ब्रह्म को निर्विशेष कहा गया है। ब्रह्म का यह सगुणत्व और निर्गुणत्व या निर्विशेषत्व और सविशेषत्व गुणो और विशेषो को अंगीकार करने और न करने पर निर्भर करता है। ब्रह्म के इन दोनों रूपो का वर्णन करने के हेतु उपनिषदो ने दो विशेष लिंगो का प्रयोग किया है—सगुण के लिए पुंल्लिग और निर्गुण के लिये नपुसक लिग का।[1] ब्रह्म के इन दोनो ही रूपों को उपनिषदो ने एक माना है। यह ब्रह्म जगत् का उपादान और निमित्त दोनो कारण हैं।

३२४. जीव अथवा आत्मा—उपनिषदो मे आत्मतत्व का विवेचन सूक्ष्म और गम्भीर है। कठोपनिषद् मे आत्मा की श्रेष्ठता का प्रतिपादन सुन्दर रूपक के माध्यम से किया गया है। आत्मा के नित्यत्व के सम्बन्ध मे यमराज ने नचिकेता को बताया है कि आत्मा नित्य, अजर, अमर तथा अविकृत है। माण्डूक्य मे शुद्ध आत्मा को तुरीय कहा गया है। उपनिषदो की दृष्टि मे ब्रह्म और आत्मा मे एकत्व

---

१. (क) निर्गुण—यत् तद् अदेश्यमग्राह्यम्—मण्डूक उपनिषद् १।१।६
(ख) सगण—नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मम्—वही १।१।६

माना गया है। वस्तुत. मायोपहित ब्रह्म ही जीवात्मा के रूप मे जगत् मे अवतीर्ण होकर कर्म के बन्धनो को स्वीकार करता है और कर्म के बन्धनो के क्षीण हो जाने तथा विवेक के द्वारा माया की निवृत्ति हो जाने पर, वह पुन 'ब्रह्म' हो जाता है।[1]

३२५. जगत्--उपनिषदो मे जगत् की सृष्टि के सम्बन्ध मे भी विचार किया गया है। उनकी दृष्टि मे सृष्टि के आदि मे कुछ भी नही था। केवल मृत्यु थी। बाद मे मन, जल, तेजस्, पृथ्वी और अन्त मे प्रजापति की सृष्टि हुई। इसके पश्चात् सुर और असुरो की उत्पत्ति हुई। पुरुष और स्त्री के सयोग से इस सृष्टि का क्रम चला--इसका भी उल्लेख उपनिषदो मे है। वास्तव मे इस जगत् की उत्पत्ति ब्रह्म से ही होती है और अन्त मे जाकर यह उसी मे लीन भी हो जाता है।[2] इस प्रकार ब्रह्म जगत् का उपादान और निमित्त दोनो ही कारण है। ब्रह्म का उपदेश देने वाली यही 'उपनिषद्' 'प्रबोधचन्द्रोदय' की उपनिषद् है।

दर्शन

३२६. मनुष्य एक बुद्धि-सम्पन्न प्राणी है। अतएव वह अपने समस्त कार्यों को बुद्धि की सहायता से सम्पन्न करता है। वह अपना तथा ससार का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर उसके अनुसार जीवन यापन करता है। मानव से पशु के भिन्न होने का कारण उसमे बुद्धि का न होना ही है। वस्तुत बुद्धि मानव की एक व्यक्तिगत विशेषता है। बुद्धि की सहायता से ही वह युक्तिपूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इसी युक्तिपूर्वक तत्वज्ञान प्राप्त करने के प्रयत्न को 'दर्शन' कहते है।[3] इस 'दर्शन' का उपयोग प्रत्येक मानव करता है। वस्तुत प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक 'दर्शन' होता है। क्योकि वैचित्र्य और वैविध्य से परिपूर्ण इस ससार के किसी भी मानव की योग्यता, विचार और बुद्धि मे समता नही होती। एक ही गन्तव्य स्थान पर जाने के हेतु प्रयत्नशील अनेक मानवो मे पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। युग और परिस्थिति की भिन्नता का तो कहना ही क्या ? ऐसी दशा मे अतीन्द्रिय अगो पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म ब्रह्म जैसे पदार्थ के अन्वेषण के सम्बन्ध मे विचारको के विचारो मे विभेद का पाया जाना स्वाभाविक है। भारतवर्ष मे 'दर्शनो' के अनेक भेद होने का मुख्य कारण यही है।

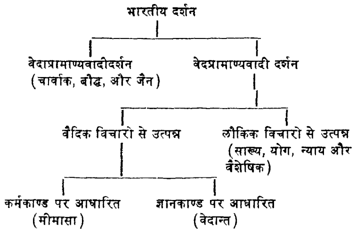
---

१. स्वयं निर्माय--बृहदारण्यक ४-३-९।

२. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिविशन्ति। --तैत्तरीय उपनिषद् ३-१।

३. भारतीय दर्शन (हिन्दी अनुवाद)--दत्ता एवं चटर्जी, पृष्ठ १।

३२७. माधवाचार्य ने अपने 'सर्वदर्शन सग्रह' मे श्रुति पर आस्था और अनास्था के आधार पर (भारतीय) दर्शनो को आस्तिक और नास्तिक—इन दो वर्गों मे विभाजित किया है, अर्थात् उनके अनुसार वेद को प्रामाणिक मानने वाले दर्शन आस्तिक और उसके प्रामाण को न स्वीकार करने वाले दर्शनो को नास्तिक कहते है। 'नास्तिको वेदनिन्दक'। इस मत के अनुसार हम निम्नलिखित रूप से आस्तिक और नास्तिक दर्शनो का विभाजन कर सकते है —



उपर्युक्त विभाजन से यह स्पष्ट है कि नास्तिक दर्शनो मे चार्वाक, बौद्ध और जैन दर्शन तथा आस्तिक दर्शनो मे साख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमासा और वेदान्त दर्शनो का परिगणन होता है। अब हम इसी क्रम से इन दर्शनो के मान्य सिद्धान्तो का सामान्य परिचय प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

नास्तिक दर्शन

३२८. **चार्वाक दर्शन**—श्रुतियो को अप्रामाणिक मानने वाले नास्तिक दर्शनो मे चार्वाक दर्शन अपने असाधारण सिद्धान्तो और कट्टरता के लिए प्रख्यात है। इस मत का सकेत पुराणों और दार्शनिक ग्रन्थो मे मिलता है। 'चार्वाक' शब्द की निष्पत्ति के विषय मे विद्वानो मे मतभेद दिखाई पडता है। कुछ लोग चार्वाक नामक किसी ऋषि के द्वारा चलाये जाने के कारण इसे 'चार्वाक' मत कहते है और कुछ का कहना है कि 'चार्वाक' शब्द भक्षणार्थक 'चर्व' धातु से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है भोजन करने वाला—आध्यात्मिकता का एकान्त परिहार कर भौतिक सुखों को उपभोग करनेवाला। कतिपय विद्वान्

इसकी व्युत्पत्ति मधुर वाणी मे आकर्षक उपदेश देने के कारण चारु+वाक् शब्द से मानते है। इसकी व्युत्पत्ति चाहे जो हो, परन्तु इसका एक दूसरा नाम 'लोकायत' दार्शनिक ग्रन्थों मे प्राय देखा जाता है। इस मत के प्रचारक या सस्थापक के रूप मे किन्ही आचार्य बृहस्पति का उल्लेख विभिन्न ग्रन्थो मे पाया जाता है।[1] नीचे हम इस मत के सिद्धान्तों को सक्षेप मे दे रहे है।

३२९. प्रमाण—चार्वाको के मत मे प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है। जो दृश्य है, गोचर है, उपलब्ध है—उसी को चार्वाक माननीय, विचारणीय तथा एकमात्र सत्य मानते है। अनुमान को सन्देह और अनिश्चयात्मकता के कारण चार्वाक महत्व नही देते है। वेद और आप्त वचनो मे भी उनका विश्वास नही। उनके विचार से प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता है? इसलिए 'प्रत्यक्षमात्र चार्वाका' कहा जाता है।

३३० तत्व विचार—इस मत के अनुसार जड एक मात्र तत्व है। सूक्ष्म, अदृश्य, और अगोचर की सत्ता नही है। पृथ्वी, जल, तेज और वायु ये चार ही महाभूत है, जिनसे इस ससार की उत्पत्ति होती है। आकाश को महाभूतो के अन्तर्गत नही माना जाता। न केवल जड प्रकृति को अपितु चेतन जगत् का भी निर्माण उपरोक्त चारो भूतो के ही द्वारा हुआ, ऐसी भी इनकी मान्यता है[2]।

३३१ आत्मा का अभाव—चार्वाक शरीर के अतिरिक्त किसी चेतन द्रव्य को 'आत्मा' नही मानते। उनके मतानुसार—शरीर के एक विशेष गुण 'चेतना' को ही आत्मा कहते है, जिसका अनुभव शरीर के साथ किया जा सकता है। वही चेतना शरीर के जन्म लेने पर उत्पन्न होती है और उसके नष्ट होने पर नाश को प्राप्त हो जाती है। यह चेतना कोई अतिरिक्त द्रव्य नही अपितु पान, कत्था और चूना आदि के सयोग से उत्पन्न होने वाली रक्तिमा की भाति चार तत्वो का एक सायोगिक स्फुरण मात्र है।[3]

३३२. ईश्वर का अनस्तित्व—इस मत मे ईश्वर की सत्ता स्वीकार नही की

---

१. अग्निहोत्रं त्रयोवेदाः त्रिदण्डं भस्मलुण्ठनम्।
प्रज्ञा पौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः।
—प्र० च०, अक २, श्लोक २६।

२. भारतीय दर्शन (हिन्दी अनुवाद) दत्ता और चटर्जी, पृष्ठ ४०।

३. जड़भूत विकारेषु चैतन्यं यत्तु दृश्यते।
ताम्बूल पूगचर्णानां योगात् राग इवोत्थितम्।।
—स० सि० सं० २।७

गई है। जड़भूतो का बना यह संसार स्वय ही संचालित, निर्मित और नष्ट होता रहता है। इसके लिए किसी सर्वशक्तिमान ईश्वर की कल्पना करना व्यर्थ है। इस प्रकार चार्वाको के मत मे सृष्टि किसी प्रयोजन के साधन के लिये नही है अपितु जडभूतो का सयोग मात्र है।

३३३. मोक्ष—इस मत के अनुसार मरण ही अपवर्ग है—मरणमेवापवर्ग'। जीवन मे अन्य किसी साधन से दु ख की निवृत्ति नही होती—परन्तु मृत्यु के द्वारा सम्पूर्ण दु खो से मानव को मुक्ति मिल जाती है, इसलिए मरण ही मोक्ष है।

३३४. निष्कर्ष—यद्यपि यह सत्य है कि वैदिक कर्मकाण्डो के अन्धविश्वासो और कुरीतियो तथा अप्रत्यक्ष की साधना मे प्रत्यक्ष की अवलेहना आदि को चार्वाको के भौतिक जीवन को सुखी बनाने के इस सिद्धान्त ने जर्जरित कर दिया। परन्तु सत्य, सदाचार और त्याग के अभाव मे चार्वाको का भी मत भारतीय जनता के लिये, ग्राह्य नही हो सका। अतएव उसका प्रसार नही हो सका।

३३५. बौद्ध दर्शन—बौद्ध दर्शन की भी गणना नास्तिक दर्शनो मे ही की जाती है। इसके प्रस्तावक थे महात्मा गौतम बुद्ध, जो कपिलवस्तु के महाराज शुद्धोदन के पुत्र थे। मानव को जरा और मरण से रहित करने की इच्छा से जिसने वैराग्य धारण कर लिया था।

३३६. महात्मा गौतम के उपदेश थे तो मौखिक ही, परन्तु कालान्तर मे उनके शिष्यो के द्वारा निबद्ध किये जाने पर उन्हे ग्रन्थ का रूप मिला। वे ग्रन्थ जिनमे गौतम के उपदेशो को सकलित किया गया, 'त्रिपिटक' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमे तीन ग्रन्थ है—१ विनयपिटक–इसमे नियमो का सग्रह है, २ सुत्तपिटक—इसमे उनके उपदेश और बातचीत का सग्रह है, और ३ अभिधम्मपिटक—इसमे उनके दार्शनिक विचारो का सकलन है। परवर्तीकाल मे अनन्त विस्तार प्राप्त बौद्ध दर्शन के आधार ये ही त्रिपिटक या बुद्ध वचन रहे है। नीचे हम उपर्युक्त ग्रन्थो के आधार पर बुद्ध के उपदेशो और दार्शनिक सिद्धान्तो का सार-सग्रह प्रस्तुत कर रहे है —

(१) **विवादपराङमुखता**—बुद्ध के विचार मे मानव को तर्क-जाल मे फँसना ठीक नही है, क्योकि इससे वह अपना कल्याण नही कर सकता। उसे अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये, दु ख निरोध का सतत प्रयत्न करना चाहिये।

(२) **चार आर्यसत्य**—चार आर्यसत्यो के नाम से महात्मा बुद्ध की शिक्षाये सकलित है। ये चारो आर्यसत्य है—

(क) दुःख (ससार में दुःख की सत्ता है)

(ख) दु.ख समुदाय (दु खो का कारण है)

(ग) दु खनिरोध (दु खो का अन्त सम्भव है)

(घ) दु ख निरोध मार्ग (दु'खो को दूर करने का उपाय भी है)

(क) प्रथम आर्यसत्य-दु ख—रोग, जरा, मरण, शोक और क्लेश आदि सासारिक दु खो की सत्ता है। ये क्षणिक विषयो के कारण उत्पन्न होते है और जीव को पुनर्जन्म और बन्धन मे बाध देते है।

(ख) द्वितीय आर्यसत्य–दु ख समुदाय—उपरोक्त दु खो का कारण प्रधानतया वासना, तृष्णा, सस्कार और अविद्या आदि है।

(ग) तृतीय आर्यसत्य—दु ख निरोध—दु ख का अन्त निर्वाण द्वारा ही सम्भव है। यह निर्वाण लौकिक जीवन मे भी सभव हो सकता है। निर्वाण का अर्थ निष्कर्मण्यता नही है, जैसा कि लोग बहुधा समझा करते है– अपितु स्थायी प्रज्ञा की उपलब्धि के अनन्तर बोधि (पूर्ण ज्ञान) सत्व होकर ससार के कल्याण मे निरत होना है। निर्वाण प्राप्ति हो जाने के पश्चात् पुनर्जन्म और दु खो का अन्त हो जाता है। जीवन-काल मे ही निर्वाण प्राप्त को सच्ची शान्ति का अनुभव हो जाता है।

(घ) चतुर्थ आर्यसत्य—दु ख निरोध मार्ग—बौद्ध धर्म मे दु ख से मुक्ति प्राप्त करने के आठ साधन या मार्ग बताए गए है —

(१) सम्यग् दृष्टि—अविद्या के कारण दृष्टि के मिथ्या हो जाने के कारण सासारिक बन्धन जीव को पीडित करते रहते है। अत वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप पर सतत ध्यान, विचार और मनन करना चाहिये। इसी को सम्यग् दृष्टि कहते है। इससे अनात्मवस्तु की असत्यता और आत्मवस्तु की कल्याण करने की क्षमता सिद्ध होती है।

(२) सम्यग् सकल्प—उपदेशो के पालन करने के निमित्त विद्वेष और हिसा त्याग पूर्वक दृढ सकल्प का होना नितरा आवश्यक है।

(३) सम्यग् वाक्—मिथ्यावादिता और निन्दा आदि का परित्याग और वाणी का सयत होना—'सम्यग्वाक्' कहलाता हे।

(४) सम्यग् कर्मान्त—सम्यग् सकल्प को कार्य रूप मे परिणत करने के लिए की गयी अहिसा, अस्तेय और इन्द्रिय सयम को 'सम्यग् कर्मान्त' कहते हैं।

(५) सम्यगाजीव—मनुष्य को बुरे वचन और बुरे कर्मों का परित्याग कर शुद्ध उपाय से अपनी जीविका का उपार्जन करना चाहिये। इसी को सम्यगाजीव कहते है।

(६) सम्यग् व्यायाम—पुराने बुरे भावो को नष्ट करने, नये बुरे भावो को मन मे न आने देने, मन को बराबर अच्छे-अच्छे विचारो से पूर्ण रखने और

शुभ विचारो को मन मे सदैव धारण करने की चेष्टा करना सम्यग् व्यायाम कहलाता है।

(७) सम्यग् स्मृति—जिन विषयो का ज्ञान जीव को हो गया हो, उसका सदैव स्मरण करते रहना–सम्यग् स्मृति कहलाती है। अर्थात् शरीर को शरीर, वेदना को वेदना तथा चित्त को चित्त ही समझना चाहिये। इनमे से किसी के लिए भी 'मम' और 'अहं' का व्यवहार नही करना चाहिये।

(८) सम्यग् समाधि—उपर्युक्त सातो नियमो के द्वारा मनुष्य को अपनी बुरी चित्त वृत्तियो को दूर कर ध्यान मे एकाग्र होने की सतत चेष्टा करनी चाहिये। इसे ही सम्यग् समाधि कहते है।

३३७. इस प्रकार अष्टागिक मार्ग के मुख्य अग—शील, समाधि और प्रज्ञा ये तीन है।

दार्शनिक विचार

३३८. **क्षणिकवाद**—बुद्ध के वचनो का सूक्ष्म अध्ययन करने पर पता चलता है कि वे ससार को क्षणिक या विनाश शील मानते है। उनके मतानुसार ससार की प्रत्येक वस्तु प्रतिक्षण परिवर्तित होती रहती है और केवल क्षणमात्र के लिये स्थायी होती है। इस क्षणिकवाद के समर्थन मे बीज और पौधे का दृष्टान्त दिया जाता है। जो कि ससार की प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध मे घटित होता है।

३३९ **अनात्मवाद**—आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार न करना ही अनात्मवाद है। बौद्ध मत मे आत्मा की सत्ता स्वीकार नही की गई है। इस क्षणिक और परिवर्तनशील विश्व मे मानव का जीवन भी क्षणिक और परिवर्तनशील है। बचपन, जवानी और बुढापे की अवस्थाओ मे उसका परिवर्तन होता रहता है। विभिन्न रूपान्तरित अवस्थाओ के क्रम को ही इस मत मे जीवन माना गया है। रात भर जलते रहने वाले दीपक के समान, जीवन की एक सूत्रता को 'आत्मा' कहा गया है।

३४०. उपरोक्त दार्शनिक विचार मूलबद्ध वचन से प्रतिभासित होते है। आगे चलकर बौद्ध दर्शनिको के चारवर्ग हो गये–१ योगाचार, २. माध्यमिक, ३ वैभाषिक, और ४ सौत्रान्तिक। हमारे आलोच्य ग्रन्थ 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक मे केवल योगाचार सम्प्रदाय के सम्बन्ध मेही सकेत है क्योकि क्षपणक के द्वारा योगाचार के विज्ञानवाद और क्षणिकत्व की ही आलोचना की गई है। अब हम यहा केवल योगाचार के 'विज्ञानवाद' के विषय मे कुछ परिचय प्राप्त कर लेना चाहते हैं।

३४१. विज्ञानवाद—बाह्य वस्तुओ में ज्ञानको 'विज्ञान' कहते हैं। विज्ञान वादी दार्शनिक मन को आलयविज्ञान कहते है। आलय का अर्थ है भण्डार। मन मे सभी ज्ञान बीजरूप से निहित है। आलयविज्ञान या मन, परिवर्तनशील चित्त-वृत्तियो का एक प्रवाह है। अभ्यास और आत्मसयम से आलयविज्ञान के वश मे आने के पश्चात् विषय ज्ञान और वासना की उत्पत्ति रोकी जा सकती है। फलस्वरूप काल्पनिक वाह्य जगत का बन्धन छूट सकता है। यही विज्ञानवाद का सार-सक्षेप है।

३४२. **जैन दर्शन**—जैन मत के प्रवर्तकों मे चौबीस तीर्थंकरो की गणना की जाती है। ऋषभदेव इस परम्परा के प्रथम तीर्थंकर हैं। जैन दार्शनिको के विचार से जीवात्मा का कल्याण सिद्ध और सर्वज्ञ इन तीर्थंकरो का अनुगमन करने से ही हो सकता है।

३४३. जैन दर्शन का साहित्य वैसे बहुत ही विशाल है, परन्तु मूल आगम—जिनकी सख्या ४५ के लगभग मानी जाती है—वही इस दर्शन के उपजीव्य ग्रथ हैं।

३४४. प्रमाण—जैन दर्शन मे प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द ये तीन ही प्रमाण माने जाते है।

३४५. स्याद्वाद—जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक वस्तु के अनन्त धर्म हुआ करते है—अनन्त धर्मक वस्तु। किन्तु मनुष्य इस वस्तु के केवल आशिक गुण को ही जान पाता है। इस आशिक ज्ञान को जैन दार्शनिक 'नय' नाम से पुकारते है। जैन दार्शनिक प्रत्येक 'नय' के साथ 'स्यात्' शब्द का योग करते है। इससे वे यह दिखाना चाहते है कि कोई भी 'नय' एकान्त या निरपेक्ष रूप से सत्य नही है। इस प्रकार 'स्यात' के योग से उन्होंने 'सप्तभगी' नय की कल्पना की है। जिसका स्वरूप निम्नलिखित है —

१ स्यात् है।
२ स्यात् नही है।
३. स्यात् है और नही भी है।
४ स्यात् अवक्तव्य है।
५ स्यात् है और अवक्तव्य भी है।
६ स्यात् नही है और अवक्तव्य भी है।
७ स्यात् है, नही है, अवक्तव्य भी है।

३४६. जीव—जैन दर्शन के अनुसार चेतन द्रव्य को जीव या आत्मा कहते है। जीव मे चैतन्य सब समय वर्तमान रहता है। किन्तु भिन्न-भिन्न जीवो मे इसकी मात्रा मे अन्तर हो सकता है। इस प्रकार चैतन्य के तारतम्य के कारण मूर्ख और

बुद्धिमान का भेद है। यह जीव स्वय प्रकाशमान है तथा अन्य वस्तुओ को भी प्रकाशित करता है। यह नित्य है, किन्तु इसकी अवस्थाओ मे परिवर्तन होता रहता है। यह जीव शरीर से भिन्न है। इसके अस्तित्व का प्रतिमान हमे आत्मानुभूति से होता है। अपने सचित कर्मों के कारण इसे शरीर धारण करना पडता है। दीपक जिस प्रकार अपने चारो तरफ प्रकाश को फैलाता है ठीक उसी प्रकार जीव भी अपने द्वारा अधिष्ठित शरीर मे चैतन्य का प्रकाश फैलाता है। यह जीव निराकार है। इसकी व्यापकता केवल शरीर तक ही सीमित है। चैतन्य शरीर के बाहर नही वरन् उसके अन्दर ही रहता है।[1]

३४७. मोक्ष—जैन दर्शन के अनुसार जीव का पुद्गल से[2] वियुक्त होना ही उसका मोक्ष है। परन्तु पुद्गल से उसका वियोग तभी होता है जब नये पुद्गल का आस्रव बन्द हो और जीव मे पहले से रहने वाले पुद्गलो का विनाश हो जाय। पहले को सवर और दूसरे को निर्जरा कहते है। पुद्गल का आस्रव जीव के अन्तर्निहित कषायो के कारण होता है और इन कषायो का कारण अज्ञान है। इस अज्ञान का विनाश ज्ञान प्रगति से ही हो सकता है। इसलिये जैन दर्शन मे सम्यग् ज्ञान को अत्यधिक महत्व दिया गया है। इस सम्यग् ज्ञान का सहायक सम्यग् दर्शन है। और सम्यग् दर्शन का सहायक है—सम्यग् चरित्र। इन्ही तीनो को जैन दर्शन मे 'त्रिरत्न' कहा गया है। उमा स्वामी के स्वार्थ सूत्र मे इन्ही त्रिरत्नो को मोक्ष का मार्ग कहा गया है—'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्राणि मोक्ष मार्ग ।'

३४८. पच महाव्रत—सम्यग् चरित्र का परिपालन करने के हेतु जैन दार्शनिक पच महाव्रतो की व्यवस्था करते है। ये पच महाव्रत हैं—अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। ये पाचो महाव्रत मोक्ष के सहायक माने गये है।

३४९. जैन धर्म मे ईश्वर के लिये कोई स्थान नही। ईश्वर के स्थान पर यहा तीर्थकरो को ला बिठाया गया है। ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार करने पर भी जैनियो मे धार्मिक भावना की कमी नही है। वस्तुत इनके यहा तीर्थकर ही ईश्वर है। वे ही इनका मार्गदर्शन करते है। जैन धर्म स्वावलम्बन की शिक्षा देता है। यह बहुत ही सयमी और वीर व्यक्तियो के लिये ही ग्राह्य है। इसी लिये जैन धर्म मे मुक्त आत्मा को 'जिन' या 'वीर' कहा जाता है।

---

१. 'प्रदेश-संहार-विसर्पाभ्यां प्रदीपवत्।'

—स्याद्वादमंजरी (८) और तत्वार्थाधिगम सूत्र—५।१६

२. 'पुद्गल' शब्द जैन दर्शन में जडतत्व का वाचक है। इसका व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है—जिसका संयोग और विभाग हो सके—पूरयन्ति गलन्ति च।

—सर्वदर्शन संग्रह, ३।

आस्तिक दर्शन

३५०. जैसा कि पहले विवेचन मे बताया जा चुका है, आस्तिक दर्शनो के अन्तर्गत साख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमासा और वेदान्त नामक दर्शन आते है। 'प्रबोध-चन्द्रोदय' मे साख्य, योग, न्याय और वैशेषिक दर्शनो का केवल एक स्थल पर सकेत कर दिया गया है इसलिये हम उनका यहा अत्यन्त सक्षेप मे वर्णन करेगे। मीमासा और वेदान्त का परिचय इनके बाद कुछ विस्तार के साथ देगे।

३५१. **सांख्य**—यह एक द्वैतवादी दर्शन है। इसमे दो मौलिक तत्व माने गये, है, पुरुष और प्रकृति। पुरुष, निर्गुण, निर्विकार, और निर्लेप है। इन सब गुणो के होते हुए भी वह चैतन्य विशिष्ट है। प्रकृति जड है। यह त्रिगुणात्मिका है। निरीह पुरुष और जडात्मिका प्रकृति के सयोग से इस समस्त विश्व की उत्पत्ति हुई है। इस दर्शन मे ईश्वर की सत्ता अगीकृत नही हुई है। ईश्वर के कार्यों का सम्पादन यहा प्रकृति ही करती दिखाई पडती है। साख्य दर्शन सत्कार्यवाद का पोषक है-अर्थात इसके अनुसार कार्य अपनी सत्ता मे पूर्व कारण के रूप मे वर्तमान था यही साख्य का 'सत्कार्यवाद' है।

३५२. **योग**—यह भी 'साख्य' के ही समान शास्त्र है। साख्य के द्वारा प्रतिपादित सभी तत्वो को योग ने अपनाकर उनमे 'ईश्वर' नामक तत्व को बढा कर तत्वो की सख्या २६ कर दी है। 'ईश्वर' को एक अतिरिक्त मानने के कारण कुछ लोग इसे 'सेश्वर साख्य' भी कहते है। वस्तुत योग शास्त्र का विषय अनुभूतिगम्य है। यह तर्क पर उतना जोर नही देता है जितना कि अनुभूति पर। इसमे ध्यान, धारण, समाधि आदि योग के आठ अगो के द्वारा चित्त को शुद्ध एव निर्मल बनाकर परमात्मा मे उसके लीन करने की विधि का सागोपाग वर्णन किया गया है। 'योग-दर्शन' भारतीय दर्शन की अमूल्य निधि है।

३५३ **न्याय**—प्रमाणो के द्वारा अर्थ की परीक्षा करने का नाम है न्याय। इसे तर्कशास्त्र या आन्वीक्षिकी विद्या भी कहते है। इसके प्रवर्तक के रूप मे महर्षि गौतम का नाम ख्यात है। इसमे विशेषकर प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द प्रमाणो का बहुत ही विशद विवेचन किया गया है। वैसे इसमे ईश्वर और आत्मा के अस्तित्व को भी सिद्ध करने का प्रबल प्रयत्न किया गया है। परन्तु प्रमाणो के आगे इनकी सत्ता गौण ही है। अतएव न्याय को प्रमाण शास्त्र भी कहते है। इसमे प्रमाण प्रमेय और हेत्वाभास, ईश्वर, आत्मा और मन आदि षोडश पदार्थ माने गये है। इन्ही के स्वरूपो और अस्तित्व की सिद्धि प्रमाणो के आधार पर की गई है।

३५४. **वैशेषिक**—यह भी 'न्याय' के समान शास्त्र है। इसके प्रवर्तक महर्षि

कणाद है। इसमे द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव, ये सात पदार्थ माने गये है। विशेष नामक पदार्थ का अस्तित्व स्वीकार करने के कारण इस दर्शन को वैशेषिक के नाम से पुकारते है। पहले यह और न्याय दोनो अलग अलग थे- परन्तु आगे चल कर-दोनो के तत्वों मे पर्याप्त साम्य देखकर कुछ लोगो ने इन्हे मिलाने का भी श्लाघनीय प्रयास किया है। इसमे केवल दो प्रमाण माने गये है—प्रत्यक्ष और अनुमान ईश्वर की सत्ता को यह दर्शन स्वीकार करता है। जहा तक जीव का प्रश्न है–उसके सम्बन्ध मे न्याय और वैशेषिक दोनो का दृष्टिकोण करीब-करीब एक सा है। दोनो ही जीव को अनेक मानते है, तथा उसके अणुत्व के पक्षपाती है।

३५५. **मीमांसा**—मीमासा का मूलाधार जैमिनि ऋषि के 'मीमासा सूत्र' हैं जिनमे वैदिक कर्मकाण्ड की मीमासा की गई है। मीमासा दर्शन मे पाच प्रमाण माने गये है–प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द और अर्थापत्ति।

३५६. **तत्व विचार**—प्रत्यक्ष विषय, स्वर्ग, नरक और वैदिक यज्ञो के देवताओ की मीमासा मे स्वीकार किया गया है। इसके अनुसार जीव (आत्मा) नित्य और अविनाशी है। मीमासा मे ईश्वर की अपेक्षा वेदो का ही महत्व है। ईश्वर की सत्ता तक को मीमासा से अस्वीकृत कर दिया है। विधि-निषेध वाक्यो और नियमो का आधार होने के कारण वेदविहित कर्म ही धर्म है। इसकी दृष्टि मे वेदविहित जीवन ही श्रेयस्कर है। मीमासा कर्मकाण्ड को मानव जीवन के लिये आवश्यक समझती है। इसलिये यज्ञो का यहा अधिक महत्व दिया गया है। यज्ञ ही देवताओ की प्रसन्नता के माध्यम है। इसमे कर्म तीन प्रकार का माना गया है–काम्य, नित्य और नैमित्तिक। एक चौथे प्रकार का निषिद्ध कर्म भी माना गया है। साधारण, नीच और कुकर्मी आत्माओ को अच्छे कर्मो का पालन अनिवार्य है। इससे समाज मे उनके अभ्युदय और विकास की अच्छी व्यवस्था हो जाती है। मीमासा स्वर्गादि नि.श्रेयस फलो की प्राप्ति का साधन यज्ञ को ही मानती है। जीवन को यज्ञादि व्यवस्था के अनुकूल व्यतीत करना उसका चरमलक्ष्य स्वीकार किया गया है। वस्तुत. मीमासा मानव जीवन के अभ्युदय और नि श्रेयस दोनो का समन्वय प्रस्तुत करती है। इस प्रकार हम देखते है कि मीमासको ने वेद को गौरवमय स्थान देकर ससार के आदिम ज्ञान को सुरक्षित कर लिया। वेद के अनुसार मानव जीवन मे अनिवार्य रूप से कर्म की व्यवस्था कर उन्हे आलस्य और अकर्मण्यता से बचाकर उन्हे अभ्युदय और नि श्रेयस का सच्चा मार्ग दिखाया। यह उपकार कुछ कम नही है।

वेदान्त दर्शन

३५७. **वेदान्त दर्शन की उत्पत्ति और विकास**—वेदान्त भारतीय को

अध्यात्म शास्त्र का चरम उत्कर्ष कहा जा सकता है। वेदान्त शब्द का तात्पर्य है 'वेद का अन्त।' इस शब्द का प्रथम प्रयोग उपनिषदो मे ही मिलता है। उपनिषद् वेदान्त का मूल है। उपनिषदो मे दार्शनिक तथ्यो की आलोचना की गई है। वन के एकान्त वातावरण मे महर्षियो के निकट बैठकर जीव, जगत् आत्मा और परमात्मा के गूढ रहस्यो की जिज्ञासा का समाधान उपनिषदो मे तप पूत ऋषियो ने किया है। एकान्त विचार विमर्श के फलस्वरूप उपनिषदो का तात्विक विवेचन सहिताओ और ब्राह्मण ग्रन्थो के एतद्विषयक विवेचन से कही अधिक विस्तृत गम्भीर और प्रौढ है। इन्ही उपनिषदो के आपातत प्रतीयमान विरोधो के परिहार के हेतु 'वादरायण' ने 'ब्रह्मसूत्र, नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसमे सारे प्रामाणिक उपनिषदो की पृष्ठभमि मे ब्रह्म, जीव और जगत् का दार्शनिक विवेचन उपलब्ध होता है। यही 'ब्रह्मसूत्र' वेदान्तशास्त्र का आदिम ग्रन्थ है ब्रह्मसूत्र के ही अन्य नाम 'वेदान्त सूत्र', 'शरीरक सूत्र' 'शारीरक मीमासा' या 'उत्तर मीमासा आदि ह्। ये 'वेदान्त सूत्र' इतने सक्षिप्त है कि परवर्ती काल के विद्वानो को इनका अर्थ करना कठिन हो गया। अतएव इन पर 'भाष्यो' लिखे गये। यद्यपि इन पर लिखे गये भाष्योकी आज तक की उपलब्ध सख्या १२ है, परन्तु इनमे से आचार्य शकर और रामानुज के भाष्यो को ही मातिशय गौरव मिला है। आचार्य शकर आलोच्य ग्रन्थ के रचयिता कृष्ण मिश्र से पर्याप्त पूर्व हो चुके थे, इस प्रकार यह सम्भावना करना कि कृष्ण मिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय मे 'अद्वैत' का जो स्वरूप उपस्थित किया है वह आचार्य शकर के प्रभाव मे आकर ही किया है, उचित ही है। यद्यपि 'प्रबोधचन्द्रोदय' की 'विष्णु-भक्ति' के ऊपर भी आचार्य रामानुज जो कि कृष्ण मिश्र के समकालीन थे—के प्रभाव की कल्पना की जा सकती है, परन्तु जैसा कि हम आगे 'विष्णभक्ति' शीर्षक अध्ययन मे देखेगे-कृष्ण मिश्र की 'विष्णुभक्ति' रामानज की अपेक्षा उनके पूर्ववर्ती आचार्यो तथा भागवत आदि ग्रन्थो के भक्तिमय सिद्धान्तो से प्रभावित दीख पडती है, क्योकि कृष्ण मिश्र जैसे स्मार्तवैष्णव की विष्णुभक्ति पर रामानुज के विशिष्टाद्वैत' का प्रभाव किसी भी रूप मे दृष्टिगोचर नही होता। अतएव हम यहा केवल आचार्य शकर के 'अद्वैत दर्शन' का एक सक्षिप्त परिचय देगे।

अद्वैत दर्शन के सामान्य सिद्धान्त

३५८ जगत् विषयक विचार—उपनिषद् के 'सर्वखल्विद ब्रह्म' के आधार पर अद्वैत वेदान्ती जगत् की सत्ता को 'ब्रह्म' मे ही अन्वित मानते है। जगत का मूल और सर्वव्यापक तत्व 'ब्रह्म' ही है या यो कहिये कि जगत और ब्रह्म दोनो एक ही हैं, यही 'अद्वैत दर्शन' का मूल सिद्धान्त है। प्रकृतिवाद और परमाणुवाद जैसे अन्य दर्शनो

के सिद्धान्त 'वेदान्त' को स्वीकार्य नही हैं। ब्रह्म और ईश्वर एक ही सत्ता के दो नाम है। ब्रह्म, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, अखण्ड, अगोचर, निराकार और निर्लेप शक्ति है, जबकि ईश्वर जगत् का सृजन, पालन और सहार करता है। इन्ही रूपो और कार्यों के आधार पर ब्रह्म और ईश्वर का भेद अवलम्बित है। वस्तुत ब्रह्म और ईश्वर मे कोई भेद नही है।

विशेष-सिद्धान्त

३५९. भ्रम और अविद्या—ससार के सम्बन्ध मे भ्रम का कारण अविद्या को माना गया है। वास्तविक आधार या तत्व का परिज्ञान न होने से भ्रम उत्पन्न हो जाता है। इस भ्रम के सम्बन्ध मे सर्प और रज्जु का दृष्टान्त दिया जाता है, रस्सी का यथार्थ ज्ञान न होने पर ही हमे उसमे सर्प का भ्रम होता है। जिसे रज्जु का ज्ञान नही होता वही रज्जु को सर्प समझ कर उसमे भयभीत होता है, परन्तु जिसे बाद मे रज्जु का यथार्थ ज्ञान हो जाता है, उसके भय और भ्रम दोनों दूर हो जाते है। यह अज्ञान अथवा अविद्या न केवल वस्तु के वास्तविक स्वरूप का आवरण करती है। अपितु उसका 'विक्षेप' भी उत्पन्न करती है। 'आवरण' के द्वारा वस्तु के वास्तविक स्वरूप का आच्छादन हो जाता है, जिससे उसकी वास्तविकता का पता नही लगता है और विक्षेप के द्वारा तात्विक वस्तु के ऊपर अन्य वस्तुओ का आरोप हो जाता है, जिसके कारण, अन्य अनेक शकाओं और क्रियाओ से भ्रम का विस्तार हो जाता है, जिसके चक्राकार आवर्त मे पडा जीव मूलतत्व से अधिकाधिक दूर होता चला जाता है। 'आवरण' और 'विक्षेप' ये दोनो अविद्या की शक्तिया हैं।

३६०. माया—शकर ने माया को ब्रह्म की शक्ति माना है। माया ब्रह्म की इच्छा शक्ति है, जिसे वह जब चाहे छोड भी सकता है। इस प्रकार शकर के मत में इच्छा शक्ति अनित्य है जो कभी रहती है और कभी नही रहती है। इस माया के कारण ब्रह्म मे कोई विकार नही उत्पन्न होता है, क्योंकि 'ब्रह्म' निर्लेप और निर्विकार माना गया है। माया से युक्त होने पर भी वह उसके कार्यों से प्रभावित नही होता। यह माया जगत के परिणाम की नही अपितु उसके 'विवर्त' की जननी मानी गई है।

३६१. विवर्तवाद—'विवर्तवाद' अद्वैत वेदान्त का एक प्रमुख सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त 'साख्य' के 'परिणामवाद' से विपरीत है। 'परिणामवाद' वस्तु तत्व का परिणाम मानता है। उसके अनुसार जैसे दूध का दही के रूप मे परिणमन होता है और इस प्रकार यह दृश्यमान जगत् मूलतत्व का परिणाम या विकार है। परन्तु 'विवर्तवाद' इस परिणाम या विकार को केवल भ्रम समझता है। यह सही है कि

हमे सीप मे रजत की प्रतीति होती है, परन्तु यह प्रतीति होती है—भ्रान्त ही, न कि वास्तविक। इस प्रकार इस 'विवर्तवाद' के अनुसार भिन्न भिन्न नाम रूपात्मक जगत भ्रमपूर्ण प्रतीति मात्र है। वास्तविक तत्व तो ब्रह्म ही है, जिसमे माया के कारण भ्रम उत्पन्न हो जाने के कारण 'शुक्ति' मे रजत सा, जगत का आभास होने लगता है।

३६२. अध्यास—किसी वस्तु के सम्बन्ध मे भ्रमपूर्ण कल्पना को जब भ्रमके कारण सत्य मान लिया जाता है तब उसे 'अध्यास' कहते है। वास्तव मे वह वस्तु वहा होती नही ओर उसकी कल्पना अथवा वाह्य आरोपकर लिया जाता है। शकर के मत के अनुसार वस्तुत जगत की सत्ता नही है, वह तो वस्तुतत्व ब्रह्म की एक भ्रान्त प्रतीति मात्र है। इस असत्य जगत् को सत्य समझना अध्यास है। यह जगत् ब्रह्म मे अध्यस्त है।

३६३. ब्रह्म विचार—शकर के अनुसार 'ब्रह्म' ही एकमात्र सत्ता है। इस अनन्त शक्तिशाली नियन्ता 'ब्रह्म' के दो रूप होते है–व्यावहारिक और स्वाभाविक। क्योकि शकर ने जगत को व्यावहारिक माना है। इसलिए 'ब्रह्म' के व्यावहारिक रूप को उन्होने स्वीकार किया है। ब्रह्म का व्यावहारिक रूप माया से उपहित अर्थात् आवेष्टित माना गया है और उसकी सज्ञा 'ईश्वर' की गई है। यह 'ईश्वर' ब्रह्म का तटस्थ लक्षण माना जाता है। यही जगत का स्रष्टा, नियन्ता और पालक समझा जाता है। इस प्रकार जगत् का कर्त्ता, नियन्ता और रक्षक 'ईश्वर' माया से उपहित है और वह 'ब्रह्म' से भिन्न सत्ता नही है।, अपितु उसका तटस्थ लक्षण मात्र है। ब्रह्म का 'स्वरूप' लक्षण तो उसका निर्विकार, निराकार, निर्लेप अनन्त व्यापक, और ज्योति स्वरूप होना ही है। 'ब्रह्म' के इन दोनो स्वरूपो का भेद 'शाकर भाष्य' मे दिये हुए एक गडरिये के दृष्टान्त से अच्छी तरह समझा जा सकता है। रगमच पर एक गडरिया एक राजा का अभिनय कर रहा है। वह एक देश पर अपना आधिपत्य स्थापित कर वहा का राजा बन जाता है और शासन करने लगता है। इस गडरिये के दो लक्षण किये जा सकते हैं—एक तो उसका व्यावहारिक अर्थात् राजा का शासकीय रूप—तटस्थस्वरूप—और दूसरा गडरिया रूप—उसका स्वाभाविक स्वरूप। अपने तटस्थ व्यावहारिक रूप का पालन करते हुए जैसे वह राजा कहलाता है उसी प्रकार ब्रह्म का 'ईश्वर' रूप भी अपने कार्यों का सम्पादन करता हुआ, ब्रह्म का तटस्थ या व्यावहारिक रूप है। यह ब्रह्म का 'औपाधिक रूप' भी कहलाता है। 'ब्रह्म' का स्वाभाविक रूप तो उसका निर्गुण आदि रूपो मे रहना ही है।

३६४. आत्म विचार—शकर के अद्वैतवाद मे आत्मा या जीव ब्रह्म से अभिन्न माना गया है। अविद्योपहित होने के कारण ही जीवात्मा 'ब्रह्म' से अपनी पृथक्

सत्ता को मानता है। वास्तव मे ब्रह्म और आत्मा मे ऐक्य है और उनका पार्थक्य अज्ञान मूलक है। अत आत्मा स्वत प्रकाश, अनन्त और चैतन्यस्वरूप है। आत्मा और ब्रह्म की इस एकता का समर्थन करने के लिए, अद्वैत वेदान्तियों ने उपनिषद् के 'तत्वमसि' महावाक्य का दृष्टान्त दिया है जो कि जीव को ब्रह्म का ही रूप बताता है। आत्मा का अधिष्ठानभूत यह शरीर–जो कि पचमहाभूतो से निर्मित होता है, एकान्नत नश्वर है, परन्तु स्वय आत्मा अमर, अजर और चैतन्य स्वरूप है।

३६५ मोक्ष विचार—इस मत मे 'ब्रह्म' का साक्षात्कार अर्थात् जीवात्मा का प्रबुद्ध हो यह स्वीकार कर लेना कि मैं ब्रह्म हू (अह ब्रह्मास्मि) मोक्ष माना जाता है। परन्तु यह मोक्ष विना ज्ञान के सम्भव नही है—ऋते ज्ञानान्न मुक्ति'। साधना करते करते जब साधक को इस बात की अनुभूति होने लगे कि एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है, जगत् असत्य है तथा जीव ही ब्रह्म है (ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैव नापर) तब मुक्ति की अवस्था समझनी चाहिये।

३६६ ज्ञानसाधना—जैसा कि कहा गया है, मोक्ष के साधन भूत ज्ञान की प्राप्ति निरन्तर साधना मे ही सम्भव है, इस ज्ञान साधन के लिए उपनिषदो ने तीन साधन बनाए है–श्रवण, मनन और निदिध्यासन। उनका तो यहा तक कहना है कि इन तीनो से आत्मा का परिज्ञान हो जाने पर सम्पूर्ण विश्व का परिज्ञान हो जाता है।[1]

३६७ **शैवमत–सोमसिद्धान्त (कापालिक)**—वामन पुराण (६–८६–९१) मे शैवमत के चार सम्प्रदाय बतलाये गये है—शैव, पाशुपत, कालदमन तथा कापालिक यामुनाचार्य के आगम प्रामाण्य (पृ० ४८–४९) मे कालदमन के स्थान पर कालामुख का उल्लेख किया है। इस प्रकार शैवो के चार सम्प्रदाय हुए-शैव, पाशुपत, काला-मुख और कापालिक। उनमे से कापालिक मत जिसे सोमसिद्धान्त भी कहते है-शैव मत का अत्यन्त भयकर रूप है। यह सम्प्रदाय बडा ही रहस्यमय और गोपनीय रहा है। अतएव आज इनकी परम्परा का उच्छेद-सा हो गया है। रामानुज के अनुसार कापालिको के मत मे छ. मुद्राओ को धारण करने से अपवर्ग की प्राप्ति होती है-वे छ मुद्राये–कर्णिका, रुचक, कुण्डल, शिखामणि, भस्म और यज्ञोपवीत है। इस सम्प्रदाय मे कपाल-पात्र मे भोजन शव के भस्म से स्नान, लगुड धारण, सुराकुम्भ से स्नान तथा तन्त्रस्थ देवताओ की उपासना से अपवर्ग की प्राप्ति का विधान किया

---

१. आत्मा वा अरेश्रोतव्य मन्तव्यो, निदिध्यासितव्यः। आत्मनो वा अरे दर्शनेन, श्रवणेन, मत्या, विज्ञानेनेदं सर्वं विज्ञातं भवति॥

—बृहदारण्यक—२।४।५

गया है। रुद्राक्ष माला, जटाजूट, कपाल, और भस्म आदि इस सम्प्रदाय के विशेष और पवित्र चिह्न है। गुप्त क्रियाओ के द्वारा अनेक अद्भुत शक्तियो की प्राप्ति की सम्भावना भी इस सम्प्रदाय की विशेषता है। कापालिक लोग भैरव के भक्त होते हैं। माधवाचार्य कृत 'शकरदिग्विजय' मे शकराचार्य की एक स्थान पर कापालिको से भेट होने का वर्णन है। कापालिको का गुरु शकराचार्य के पास आया। वह शरीर मे श्मशान का भस्म लगाये हुए था। उसके एक हाथ मे कपाल और दूसरे मे त्रिशूल था। आनन्द गिरि के अनुसार जिन कापालिको से उज्जयिनी मे शकराचार्य की भेट हुई थी वे भैरव को परमेश्वर तथा सृष्टि का उत्पादक और सघारक मानते थे। वे यह विश्वास करते थे कि सुरापान तथा अभक्ष्य भोजन से ज्ञान-शक्ति का उदय होता है। वे अपने को भैरव की शक्ति से सुरक्षित समझते थे। भवभूति ने अपने 'मालतीमाधव' मे 'श्री शैल्य' को कापालिको का केन्द्र बताया है। योग के द्वारा वे शीघ्र गमन की शक्ति प्राप्त कर लेते थे। कपालकुण्डला मानवमुण्डो की माला धारण करती है। वह निशीथ काल मे अपने पिता के महल मे सोती हुई मालती को उठाकर ले जाती है। और श्मशान मे ले जाकर कराला-चामुण्डा के सामने अपने गुरु अघोर-घण्ट द्वारा भेट चढाये जाने के लिये समर्पित कर देती है। 'प्रबोधचन्द्रोदय' का कापालिक सुरापान और कापालिकी का सेवन करना है, जैसा कि हम आगे देखेगे। इससे विदित होता है कि कापालिक सम्प्रदाय कितना भयकर था। सुरा, रक्त और मानव-बलि ही इनके देवताओ को प्रसन्न कर सकती थी। इन सम्प्रदायो मे अनेक वीभत्स क्रियाओ का प्रचार था, यह ऊपर के विवरण से स्पष्ट है।

३६८. **विष्णुभक्ति**--जैसा कि 'वेदान्त' शीर्षक अध्ययन मे कहा है, 'प्रबोध चन्द्रोदय' की विष्णुभक्ति प्रसिद्ध वैष्णवाचार्य आचार्य रामानुज के विशिष्टाद्वैत' सिद्धान्त से अनुप्राणित नही दीख पडती, अतएव इसके मूल हमे रामानुज के बहुत पहले से चले आरहे वैष्णव धर्म के प्राचीन रूप मे खोजना होगा, न कि रामानुज के द्वारा प्रवर्तित विष्णुभक्ति मे। वैसे रामानुज और प्रबोधचन्द्रोदय की 'विष्णुभक्ति' मे अनेक प्रकार के सादृश्य खोजे जा सकते हैं, परन्तु यह बात हमे ध्यान मे रखनी होगी कि प्रबोधचन्द्रोदय की 'विष्णुभक्ति' के उपदेश से पुरुष को 'ब्रह्म' का साक्षात्कार या उसके ऐक्य का लाभ हुआ। जब कि रामानुजीय विष्णुभक्ति के द्वारा--जीवात्मा के मुक्त हो जाने पर भी उसे वैकुण्ठ मे श्री महाविष्णु की सन्निधि मे रहकर उनके दासत्व का आनन्द लाभ करना होता है। इस प्रकार के दोनो के फलो मे महान् अन्तर प्रतीत होता है। इसलिये हमे यह जानने के लिये कि 'प्रबोधचन्द्रोदय' की विष्णुभक्ति का स्वरूप क्या है और उसका उद्भव और विकास किस

रूप मे हुआ, विष्णु देवता और उसकी भक्ति के विषय मे कुछ विचार कर लेना चाहिये।

३६९. विष्णु—ऋग्वेद के कुछ सूक्तो मे विष्णु देवता की स्तुति की गई मिलती है। यह देवता उस समय भी महान माना जाता था, परन्तु उतना महान् नही जितना कि इन्द्र। वस्तुत इन्द्रदेव के सहायक के रूप मे ही इसका उल्लेख ऋग्वेद मे किया गया है। विष्णुरिन्द्रस युज्य सखा—इसलिये आगे चलकर पुराणो मे इसे 'उपेन्द्र—इन्द्र का छोटा भाई या सहायक–बताया गया है। वैदिक युग मे भी विष्णु के लोक मे जाकर लोग मधु पीने की कामना करते थे (विष्णो पदे-परमे मध्व उत्स)। विष्णु उस समय किस प्राकृतिक शक्ति का प्रतीक माना जाता था, इस सम्बन्ध मे अधिकाश विद्वानो का बहुमत इसे सविता या सूर्य का रूप मानने के पक्ष मे है। स्वय ऋग्वेद से इसकी पुष्टि होती है। वेद मे विष्णु के लोक मे लम्बी-लम्बी सींग वाली गतिशील गायो का उल्लेख मिलता है—'यत्र गावो भूरिश्रृगा अयास '। विष्णु को तीनो लोको को नापने वाला कहा गया है—'त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णु त्रेधा निदधे पदम् ' इन गतिशील गायो एव तीन पदो से तीनो लोको को आक्रान्त करने वाले प्रतीको के आधार पर जहा पुराणो मे आगे चलकर उसके गोलोक और वामन या त्रिविक्रम रूप की कल्पना की गई है। वहा 'गौ' शब्द से किरणो और त्रेधानिदधे पद्म्' द्वारा प्रात मध्याह्न और सायकाल का अर्थ लेकर उसको सूर्य का रूप माना गया। डा० विल्सन,[1] प्रो० मैक्समूलर आदि विद्वानो ने इसी मत को मान्य ठहराया है। आगे बढने पर ब्राह्मण काल मे विष्णु को हम महत्वपूर्ण पद पर बिराजमान पाते है। इस समय तक यह सभी देवताओ के अधिपति के रूप मे माना जाने लगा था। सम्भवत इसी युग मे नारायण से इसका ऐक्य सम्बन्ध जोडा गया।[2] ब्राह्मणो ने विष्णु को यज्ञ कहा है–'यज्ञो ह वै विष्णु' —जिससे प्रतीत होता है कि उस समय तक विष्णु यज्ञपुरुष के रूप मे स्वीकृत हो चुके थे। महाभारत के वन पर्व मे नर और नारायण को ऋषि कहा है[3]—और 'विष्णु सहस्र' नाम मे विष्णु का एक नाम नारायण भी कहा गया है। यही पर वासुदेव कृष्ण से उनका सम्बन्ध होता है। और आगे पुराणो मे राम और बुद्ध आदि भी विष्णु के अवतार घोषित कर दिये जाते है। भागवत पुराण और 'आध्यात्म रामायण' मे विष्णु को ब्रह्म स्वीकार करके उनकी उपासना एव भक्ति की गई है। यहा तक कि

---

१. विल्सन्स ट्रान्सलेशन टू द ऋग्वेद संहिता—भाग १, पृष्ठ ३४।

२. तैत्तिरीय आरण्यक : १०–११।

३. नरस्त्वमसि दुर्द्धर्ष हरिर्नारायणो ह्यहम्।—श्लोक १२, ४६–४७

अद्वैततत्व के 'परमार्थसार' नामक ग्रन्थ मे भी 'विष्णु' को 'परब्रह्म' स्वीकार कर लिया गया है। जैसे—'सर्वालय सर्वचराचरस्थ त्वमेव विष्णु शरण प्रपद्ये।'[1]

३७०. इस प्रकार हम देखते है कि एक प्राकृतिक शक्ति सूर्य के प्रतीक के रूप से विष्णु का कितना अधिक विकास हुआ। अब हमे 'विष्णुभक्ति' के रूप पर थोडा विचार करना है। हम पहले ही बता चुके है कि वैदिक युग मे भी विष्णु को आदर की दृष्टि से देखा जाता था। शायद विष्णु की उपासना भी की जाती थी। ब्राह्मण काल मे यज्ञ से सम्बन्ध जुडने पर 'कर्मकाण्ड' के द्वारा भी इनका पूजन होने लगा। यह पूजा श्रद्धा से ही की जाती थी, जो कि भक्ति का ही एक अग है। परवर्तीकाल मे महाभारत के समय मे—जब नारायण विष्णु और वासुदेव को एक मान लिया गया और देवाधिदेव विष्णु की आराधना के निमित्त एक विशिष्ट आचार पद्धति का प्रवर्तन किया गया जो कि 'सात्वत् पद्धति' के नाम से प्रसिद्ध हुई,[2] तभी श्रद्धा मे प्रेम के तत्व के आ मिलने से भक्ति का वास्तविक रूप हमारे सामने प्रकट होता है। यह भक्ति विष्णुभक्ति कहलाई। दक्षिणी प्रान्तो मे इसका सातिशय प्रचार हुआ। दक्षिण के १२ आलवार सन्तो ने विष्णुभक्ति की मन्दाकिनी को एक छोर से दूसरे छोर तक प्रवाहित किया—इनके द्वारा उद्‌घाटित विष्णुभक्ति के स्वरूप को ही आचार्य रामानुज ने अपनाया और उसका सम्बन्ध 'पाचरात्र' से स्थापित किया। इस प्रकार यह सिद्ध है कि रामानुज के बहुत पहले से ही विष्णुभक्ति का प्रचार सारे भारत मे था।

३७०-१. कृष्ण मिश्र के द्वारा प्रबोधचन्द्रोदय मे विष्णुभक्ति का जो स्वरूप-गृहीत हुआ है, उसका साम्य आचार्य रामानुज और उनके द्वारा अनुमोदित 'पांच रात्र' की भक्ति से न होकर, भगवतपुराण और आध्यात्मरामायण की भक्ति से ही है। भगवतपुराण और अध्यात्मरामायण के समान 'प्रबोधचन्द्रदोदय' मे भी परब्रह्म विष्णु और उनकी भक्ति को मोक्ष की साधिका स्वीकार किया गया है।

विष्णु

भागवत पुराण —तं त्वामहं ब्रह्मपरं पुमांसं
प्रत्यक्स्रोतस्यात्मनि संविभाव्यम्।
स्वतेजसा ध्वस्त गुणप्रवाहं
वन्दे विष्णुं कपिलं वेदगर्भम्॥
भागवतपुराण, तृतीय स्कन्ध, अध्याय ३३ श्लोक ८

---

१ "परमार्थसार"—आदिशेष श्लोक १।

२ वैष्णव भाष्यो का तुलनात्मक अध्ययन—डा० रामकृष्ण आचार्य, पृ० २७।

अध्यात्मरामायण — वेद्याखिललोक हृतस्थमजरं
सर्वज्ञमीशं हरिम ॥१–२–७॥
किरीट हार केयूर कुण्डलैः कटकादिभिः।
विभ्राजमानं श्रीवत्स कौस्तुभ प्रभयान्विम् ॥
—अध्यात्म रामायण बालकाण्ड, प्रथम सर्ग श्लोक १०

प्रबोधचन्द्रोदय—
नित्य स्मरञ्जलदनीलमुदारहार-
केयूर कुण्डलकिरीटधरं हरिं वा।
ग्रीष्मे सुशीतमिव वा हृदमस्तशोकं
ब्रह्म प्रविश्य भज निर्वृतिमात्मनीनाम् ॥
—प्र० च० अक ५, श्लोक ३१

विष्णुभक्ति
भागवतपुराण — अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदार धीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥
—द्वितीयस्कन्ध, अध्याय तृतीय, श्लोक १०

अध्यात्मरामायण —
आभासस्तु मृषा बुद्धिरविद्याकार्यमुच्यते।
अविच्छिन्न तु तद्ब्रह्म विच्छेदस्तु विकल्पतः ॥४८॥
अविच्छिन्नस्य पूर्णेन एकत्व प्रतिपाद्यते।
तत्वमस्यादिवाक्यैश्च सभासस्याहमस्तथा ॥४९॥
ऐक्य ज्ञान यदोत्पन्नं महावाक्येन चात्मनोः।
तदाऽविद्या स्वकार्यैश्च नश्यत्येव न संशयः ॥५०॥
एतद्विज्ञायमद्भक्तो मद्भावायोपपद्यते।
मद्भक्ति विमुखानां हि शास्त्र गर्तेषु मुह्यताम् ॥५१॥
बालकाण्ड, प्रथम सर्ग

प्रबोधचन्द्रोदय —
एषोस्मीति विविच्य नेतिपदतश्चितेन सार्धं कृते
तत्वानां विलये चिदात्मनि परिज्ञाते त्वमर्थे पुनः।
श्रुत्वा तत्त्वमसीति बाधितभवध्वान्तं तदात्मप्रभं
शान्तं ज्योतिरनन्त मन्तरुदितानन्दः समुद्योतते ॥
प्र० च० अंक ६, श्लोक ५७

पुरुषः—×× सर्वथा कृतकृत्योऽस्मि भगवत्या विष्णु
भक्तिः प्रसादात्। ××।
प्र० च०, पृ० २३९ अंक ६।

३७०-२. अद्वैतका प्रतिपादन करते हुए भी कृष्णमिश्रका विष्णु को ब्रह्म मानना आदिशेष के 'परमार्थ सार'[1] से साम्य रखता है।—

बुद्ध्वैवमसत्यमिदं
विष्णोर्मायात्मकं जगद्रूपम्।
विगतद्वन्द्वोपाधिक
भोगासङ्गो भवेच्छान्तः।
परमार्थसार श्लोक ७४'

मोहान्धकारमवधूय विकल्पनिद्रा-
मुन्मथ्य कोऽप्यजनि बोधतुषार रश्मिः।
श्रद्धाविवेकमतिशान्तियमादिकेन
विश्वात्मकः स्फुरति विष्णुरहं स एषः॥
प्र० च० अंक ६, श्लोक ३०

कृष्ण मिश्र ने विष्णुभक्ति और अद्वैत सिद्धान्त के समन्वित प्रतिपादन के लिए वास्तव में कहाँ से प्रेरणा ली वा अनुकरण किया यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। डा० सीता भट्ट ने दार्शनिक पक्ष से सम्बन्धित अपने अनुसन्धान में भी इसी समता का ही दिग्दर्शन मात्र किया है। प्रबोधचन्द्रोदय का सूक्ष्म अध्ययन करने से यह भी पता चलता है कि कृष्ण मिश्र ने विष्णुभक्ति का जो लोक कल्याणात्मक रूप सभी स्तरों पर दिखाया है, वह केवल उनका बाह्य प्रदर्शन मात्र नहीं था, वपितु उनकी आत्मा की वास्तविक अनुभूति भी थी। जिससे 'अद्वैत' वेदान्त के साथ उसका अभूतपूर्व समन्वय स्थापित कर, उस समय के विशृंखल समाज को बढ़ते हुए अनाचारों और व्यभिचारों से पराङ्मुख कर उसके कल्याण का सत्य और सुखद मार्ग दिखाया।

३७१. इस प्रकार 'प्रबोधचन्द्रोदय' में सकेतित तथा स्पष्ट नामोल्लेख पूर्वक

---

१. डा० सीता भट्ट ने 'परमार्थसार' को गौडपदकारिकाओं के पूर्व लिखा जाना स्वीकार किया है। उनका यह मत परमार्थसार की भूमिका में लिखे गये शास्त्री के मतानुसार है:—

According to Sastri Para seems to be earlier than even the Gaudapadkarikas cp. Paramarthsara Introduction—Adisesa : Parmarthsara, Ed. by S. S. Suryanarayana Sastri, Karnatak Publishing House, Bombay. 1941.

प्रतिपादित सभी दार्शनिक सम्प्रदायों एव धार्मिक मतमतान्तरों का संक्षिप्त परिचय देने के उपरान्त अब हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि कृष्ण मिश्र ने इन वादो एव धार्मिक मतो का निर्देश अपने नाटक मे किस रूप मे और किस स्तर पर किया है तथा उसके सम्बन्ध मे उनका अपना अभिमत क्या रहा है।

प्रबोधचन्द्रोदय में धर्म-दर्शन

३७२. 'प्रबोधचन्द्रोदय' मे जिन दार्शनिक मतो की प्रसगवश चर्चा एव सकेत उपलब्ध होते हैं, उन्हें हम सामान्यत· दो श्रेणियो मे विभाजित कर सकते है— आलोच्य धर्म-दर्शन और स्वाभिमत धर्म-दर्शन। 'स्वाभिमत धर्म-दर्शन' क्योंकि नाटक का अपना प्रतिपाद्य है इसलिये उसकी समीक्षा हम बाद मे करेंगे। यहा पर पहले 'प्रबोधचन्द्रोदय' के आलोच्य धर्म-दर्शन को लेते हैं।

आलोच्य धर्म-दर्शन

३७३. नाटककार के आलोच्य धर्म-दर्शन क्रमश· ये रहे हैं—लोकायत (चार्वाक), बुद्धागम, दिगम्बर सिद्धान्त, सोम सिद्धान्त, यज्ञविद्या, मीमासा और तर्क विद्या। इनमे से लोकायत से तात्पर्य नास्तिक चार्वाक दर्शन से। बुद्धागम से अभिप्राय बौद्ध-दर्शन से, दिगम्बर सिद्धान्त से तात्पर्य जैन-दर्शन से, सोम सिद्धान्त से आशय कापालिक मत से तथा यज्ञविद्या, मीमासा और तर्कविद्या से तात्पर्य क्रमश ब्राह्मणो मे प्रतिपादित याज्ञिक क्रिया-कलाप, पूर्व मीमांसा और सांख्य, योग, न्याय तथा वैशेषिक दर्शनो से है। इनमे से यथाक्रम प्रत्येक की समीक्षा नीचे की जा रही है।

३७४ **लोकायत मत (चार्वाक)**—प्रबोधचन्द्रोदय नाटक मे महामोह लोकायत मत की प्रशसा करता है और इस मत को अपने पक्ष का स्वीकार करता है। तदनन्तर चार्वाक नाम का पात्र रगमच पर आकर, अपने मत का परिचय देता है।[1] उसका विचार है कि लोकायत मत ही सर्वश्रेष्ठ है। इस मत को बृहस्पति ने पुष्ट किया था। इसमे मृत्यु ही मोक्ष है। प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। पृथ्वी, जल, तेज और वायु ये चार तत्त्व है। इन्ही चार भूतो के सम्मिलन मे ही चेतना उत्पन्न होती है। अर्थ और काम ही पुरुषार्थ है। परलोक नही है। दण्ड नीति चौदह विद्याओं मे से एक विद्या है। वेद धूर्तों का प्रलाप है। इस लोक में कर्म करके लोकान्तर मे उस कर्म का फल भोग करनेवाली जीवात्मा को मानना मिथ्या है। चार महाभूतो के

---

१. लोकायत मत की चर्चा — प्र० च० के अंक दो में, पृष्ठ ६१ से ७१ तक।

संयोग से चेतनायुक्त शरीर मे चीर-फाड करने पर प्रत्यक्ष मे जीवात्मा के लिए कोई प्रमाण भी नही मिलता है। देह से भिन्न मूर्तिमान आत्मा दूसरे लोक मे पाप-पुण्य के फल को भोगती है, यह कहना आकाश वृक्ष के पुष्प से उत्पन्न फलास्वाद की आशा के समान है। धूर्त जन निज कल्पना से आत्मा को लोकान्तर मे सुख-दु ख भोगनेवाली बता करके ठगते है। वर्ण-व्यवस्था मानना अनुचित है। क्योंकि चारों वर्णों के शरीर मुख, आख आदि समान है। उनमे कोई भेद नही है। हिसा मे, स्त्रियो के यथेष्ट गमन मे, दूसरे के धन के अपहरण करने मे कार्याकार्य के विधि-प्रतिषेध को पुरुषार्थहीन धूर्त मानते है। यज्ञ और श्राद्ध आदि अनुष्ठान व्यर्थ है। स्वर्ग का अस्तित्व भ्रममात्र है। विषय सगम मे यदि कुछ दु ख मिश्रित है तो भी वह त्याज्य नही है। जैसे सुन्दर श्वेत चावल से परिपूर्ण धान भूसी के सयोग के कारण छोडने योग्य नही होता है। ससार का सुख एव ऐश्वर्य ही स्वर्ग है। विषयानन्द ही ब्रह्मानन्द है।

३७५ कृष्ण मिश्र ने नाटक मे चार्वाक को महामोह और कलियुग का साथी कहा है। इससे यह अभिप्राय व्यक्त होता है कि यह मत अज्ञान और अधर्म का साधन मात्र है। कलियुग के साथी होने से, इस मत पर, भ्रष्टाचारी और व्यभिचारी होने का आक्षेप है। इस प्रकार नाटककार ने लोकायत के सिद्धान्तो का सक्षिप्त किन्तु आलोचनात्मक उल्लेख करते हुए नाटकीय दृश्य मे, प्रभावशाली ढग से, लोकायत मत के भवन को खण्डित करने की चेष्टा की है।

३७६ **बौद्धमत**--बौद्धमत के प्रतिनिधि एक भिक्षु पात्र ने रगमच पर उपस्थित होकर, बौद्धमत का सक्षिप्त प्रतिपादन किया है।[1] उसके अनुसार सौगत धर्म का प्रवर्तन महात्मा बुद्ध ने किया है। इसमे सुख और मोक्ष दोनो की व्यवस्था है। इस मत का प्रधान सिद्धान्त विज्ञानवाद है।[2] ससार कारणीभूत वासना के उच्छिन्न या विच्छिन्न हो जाने पर विज्ञान सन्तति (धी सतति) स्वय प्रकाशित या स्फुरित हो जाती है। इस विज्ञान सतति मे घटपटादि ससारिक पदार्थ भाव विषय रूप मे समर्पित रहते है। विज्ञान सन्तति मे समर्पित यह घटपटादि भाव विषय

---

१. बौद्ध मत का विवरण--प्र० च० अक तृतीय, पृष्ठ १०४-१२९।

२. सर्वे क्षणक्षयिणएव निरात्मकाश्च
यत्रार्पिताबहिरिव प्रतिभान्ति भावा.।
सैवाधुना विगलिताखिलवासनत्वा-
द्धीसन्ततिः स्फुरति निर्विषयोपरागा॥
--प्रबोधचन्द्रोदय, अक ३, श्लोक ८, पृष्ठ १०३।

बाह्य रूप से प्रतिभासित रहते हैं। यह भाव-पदार्थ क्षणिक हैं। और निरात्मक है। क्योंकि अपने ज्ञान काल के पश्चात् नष्ट हो जाते हैं। नये ज्ञान को जन्म देते हैं अत. क्षण-प्रतिक्षण विनाशी होते हैं।

३७७. पूर्ववर्ती धर्म दर्शन मे बौद्धमत के जिन सिद्धान्तो का वर्णन है, उनमे से विज्ञानवाद के मुख्य सिद्धान्त को मिश्रजी ने अपनी आलोचना का विषय बनाकर बौद्धमत के निराकरण की चेष्टा की है। बौद्धमत के क्षण विनाशी विज्ञानवाद की आलोचना नाटककार ने जैन साधु क्षपणक के माध्यम से की है।[1] बौद्धमत मे आत्मा जब क्षणविनाशी है तो प्रयत्न किसके लिए किया जाय? प्रत्यक्ष मे की गई साधना का परिणाम भविष्य मे किसी अन्य को प्राप्त होगा। तब मोक्ष साधक को होगा या अन्य को। इस प्रकार विज्ञानवाद मे अनेक शकाए और समस्याये है जो विवाद का विषय है। साधारण साधक को ये एक गम्भीर आधार-शिला देने की अपेक्षा साधना से च्युत करने मे समर्थ है।

३७८. जैनमत—क्षपणक नामक पात्र ने जैनमत का प्रतिपादन करते हुए, आत्मा के सबध मे विशेष स्पष्टीकरण किया है।[2] उसके अनुसार जैन सिद्धान्त जिनवर के द्वारा प्रवर्तित हुआ था। यह सिद्धान्त सुखद और मोक्षप्रद है। इसके उपासक 'आमणभा हन्त' उच्चारण कर नमस्कार करते है। नवद्वार पुरी अर्थात् नवछिद्र वाले शरीर मे आत्मा दीपक के समान प्रकाशित है। आत्मा का स्वभाव निर्मल है। इसका ज्ञान ऋषि परिचर्या से होता है। मलमय पुद्गलपिण्ड की जल से शुद्धि नही होती है।

३७९. जैनमत के आत्मा सम्बन्धी सिद्धान्त की बौद्ध भिक्षु ने आलोचना की है। जिससे यह व्यक्त होता है कि शरीर के मध्य मे परिमित आत्मा बाह्य को प्रकाशित करने मे उसी प्रकार असमर्थ है, जैसे घडे के मध्य मे रखा, सुशिखा से युक्त दीपक घडे के बाहर गृह मे रखे घटपटादि को प्रकाशित नही कर सकता है?[3] अत.

---

१. क्षपणक—मण तावत्क्षण विनाशिना त्वया कस्य कृते इव व्रत धार्यते।
—प्रबोधचन्द्रोदय, अक ३, पृष्ठ १०७।

२. जैन सिद्धान्त का विवरण—प्र० च०, अक तृतीय, पृष्ठ १००-१२९।

३ ज्ञातुं वपुः परमितः क्षमते त्रिलोकीं
जीवः कथं कथय सगतिमन्तरेण।
शक्नोति कुम्भनिहितः सुशिखोऽपि दीपो
भावान्प्रकाशयितुमप्युदरे गृहस्य॥११॥
—प्र० च०, अंक तृतीय, पृष्ठ ११०।

आत्मा के सम्बन्ध मे उनकी धारणा भ्रमपूर्ण है। इस अध्याय के पूर्ववर्ती धर्मदर्शन के शीर्षक मे किये गये जैन सिद्धान्त के प्रतिपादन मे स्पष्ट है कि कृष्ण मिश्र ने उस मुख्य सिद्धान्त को अपनी आलोचना का विषय बनाया, जिस पर कि जैन-मत आधारित है। कृष्ण मिश्र ने उसका खण्डन करके तथा क्षपणक के व्यभिचारी कृत्यो को प्रदर्शित करके, जैनमत को त्रुटित और निराधार सिद्ध करने की चेष्टा की है।

३८०. **सोमसिद्धान्त**--सोमसिद्धान्त का अनुयायी कापालिक रगमच पर उपस्थित होकर, अपने मत का प्रतिपादन करता है।[1] वह परिचय देता है कि सोमसिद्धान्ती नरो की हड्डियों की माला का सुन्दर भूषण बनाते है। वे श्मशान मे रहते है। योगाजन से शुद्ध नेत्रो से परस्पर भिन्न जगत् को, ये ईश्वर शकर से अभिन्न और अपृथक देखते हैं। मस्तिष्क, मेदा, अँतडी, वसा और मज्जा से पूरित नर-मास की आहुति अग्नि मे करना, व्रत के अन्त मे नर-कपाल मे रक्खी सुरा से पारण करना, तत्काल ही कटे हुए सिर से गिरती हुई रुधिर की धार से शोभित पुरुष की नर बलियों से, महाभैरव का पूजन करना आदि इस मत के धर्म है। इस मत के अनुयायी ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओ को भी पकड कर ला सकते है। आकाश मे चलते नक्षत्रों की गति को भी रोक सकते है। पृथ्वी को शीघ्र ही जल से भर और उसे सुखा भी सकते हैं। मोक्ष के सम्बन्ध मे उनका विचार है कि विषयानन्द को छोडकर सुख रहित निश्चल पत्थर की स्थिति रूप मोक्ष व्यर्थ है। मुक्त जीवात्मा, पार्वती के स्वरूप वाली स्त्री से आलिगित चन्द्र-चूड-वपु-शकर का रूप बनकर अनन्त काल तक आनन्द का अनुभव करती है।

३८१. कृष्ण मिश्र ने सोमसिद्धान्त के नरबलि और रक्तपान के वीभत्स हिंसात्मक कृत्यों की समीक्षा जैन और बौद्ध साधुओं के घृणास्पद आक्षेपो के माध्यम से की है। कापालिको की भैरवी विद्या की सिद्धि को ऐन्द्रजालिक विद्या कह कर भर्त्सना की है। राजसी श्रद्धा के विलासपूर्ण कृत्यो से इस मत को सरागी और व्यभिचारी भी वर्णित किया है। इससे ज्ञात होता है, नाटककार ने मतमतान्तर के निराकरण के हेतु विवादास्पद सिद्धान्तो की ही ओर सूक्ष्म सकेत किया है। उस मत विशेष के निराधार, हिंसात्मक, ऐन्द्रजालिक, व्यभिचारो का प्रतिपादन कर उसे निराकृत कर दिया है।

३८२. **यज्ञविद्या**--'यज्ञविद्या' से 'उपनिषद' का वार्तालाप हुआ है। उसमे

---

१. सोमसिद्धान्त का विवरण--अंक तृतीय, पृष्ठ १११-१३०।

'यज्ञविद्या' ने अपने सिद्धान्तो की चर्चा की है।[1] उसका विचार है कि ईश्वर अकर्ता नही है। ससार के बन्धन निवृत्ति कर्मों मे होती है, वस्तुज्ञान मात्र से नही। अत ससार से निवृत्ति के लिए यज्ञादि कर्म को करते हुए शान्तमन से सौ वर्ष जीने की इच्छा करनी चाहिए। (कुर्वन्नेवेह कर्माणिजिजीविषेच्छत समा)। कर्मों से ही कल्याण होना सम्भव है। इन कर्मों का फल देनेवाला ईश्वर है।[2] यह ईश्वर कर्ता और भोक्ता है।[3]

३८३. नाटककार ने विवेक के द्वारा 'यज्ञविद्या, की आलोचना की है। इसका ईश्वर सम्बन्धी मत अज्ञानमय है। वास्तव मे ईश्वर अचल निर्लेप और निर्विकार हाता है। माया के प्रभाव से वह कर्ता प्रतीत होता है। कर्मो मे, कर्मों की निवृत्ति मानना, मल से मल को स्वच्छ करने की चेष्टा के समान निरर्थक है। तत्वज्ञान से ही ससारिक कर्म बन्धनो की निवृत्ति होती है।

३८४. **मीमांसा**--प्रबोधचन्द्रोदय मे मीमासा[4] के दो प्रमुख प्रतिपादक है। एक प्रभाकर गुरु है। इनके मत मे पुरुष कर्ता और भोक्ता है। इस कर्ता और भोक्ता के अतिरिक्त और कोई ईश्वर नही है। दूसरे प्रमुख प्रतिपादक कुमारिल भट्ट है। यह कुमारिल मीमासा के अनुसार पुरुष को कर्त्ता भोक्ता मानने पर भी, उपनिषद के अकर्त्ता और अभोक्ता रूप मे परिचित थे। इस प्रकार मीमासा मे स्वर्गादि सुखो की व्यवस्था कर्म फल के अनुसार होती है। पुरुष फल का भोक्ता और कर्ता है।

३८५ मीमासा के उभय प्रतिपादको के कर्म से स्वर्ग प्राप्ति रूप मुक्ति और पुरुष को कर्त्ता मानने के सिद्धान्त मे नाटककार ने अपनी विमति प्रकट की है, क्योंकि अद्वैत मत के अनुसार मुक्ति ज्ञान से होती है तथा पुरुष कर्तृत्व और भोक्तृत्व आदि गुणो से रहित है।

३८६. **तर्कविद्या**--तर्कविद्या के अन्तर्गत साख्य योग न्याय और वैशेषिक

१ प्र० च०, अक ६, पृष्ठ २१९-२२३।

२. पुमानकर्ता कथमीश्वरो भवेत्
क्रिया भवोच्छेदकरी न वस्तुधीः।
कुर्वन्क्रिया एव नरो भवच्छिदः
शतं समाः शान्तमना जिजीविषेत् ॥१५॥--प्र० च०, अंक ६।

३ "कर्तारं भोक्तारं पुरुषं स्तुवन्ति"--प्र० च० अंक ६।

४ प्र० च०, अंक ६, पृष्ठ २२५-२२६।

आदि इन चारो दर्शनो का सकेत उपनिषद् पात्र ने एक ही श्लोक मे किया है।[1] तर्कविद्याओं के तत्कालीन विचारधारा के विवरण मे वह बताती है कि साख्य और योग—प्रकृति और पुरुष का विभाजन करके महत् अहकार आदि के सृष्टि क्रम के अनुसार तत्वो की गणना करती है। ये ईश्वर को विनाश धर्मी मानकर प्रधान से ईश्वर की उत्पत्ति बताती है। न्याय विद्याए—न्याय, वैशेषिक—छल जाति और निग्रह आदि के द्वारा पचावयव वाक्य रूपवाद, जल्प और वितण्डा का विस्तार करती हैं। परमाणु के द्वारा विश्व की उत्पत्ति मानती है। ईश्वर को निमित्त कारण मानती है।

३८७. नाटककार का विचार है कि सृष्टि के क्रम के सम्बन्ध मे तर्क विद्याओ का मत भ्रमपूर्ण है। सभी कार्य प्रमेय रूप होते है। अत परमाणु से सृष्टि का आरम्भ नही हो सकता है। परमाणु और प्रकृति के भी मूल उपादान कारण की आवश्यकता होती है ?[2] माला मे सर्प की भ्रान्ति के समान ससार की प्रतीति होती है, जो भ्रमपूर्ण प्रतीति तत्वज्ञान से दूर हो सकती है।[3] निर्विकार ब्रह्म, स्वच्छ आकाश के समान मेघमाला के घिर जाने पर भी स्वच्छ और पवित्र ही रहता है।[4]

३८८. निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मिश्र जी ने अधिक विस्तार मे न पडकर अन्य धर्म-दर्शनो के विशेष विवादास्पद सिद्धान्तो को ही आलोचना का विषय बनाया है। यह आलोचना–तत्कालीन धार्मिक समाज के सजीव दृश्य के रूप मे प्रस्तुत की गई है। पात्रो के परस्पर अहकारपूर्ण वार्तालाप, वाद-विवाद एव कार्य-कलाप से आलोचना व्यक्त हुई है। आलोचना को शुष्क और वर्णनात्मक न कर उसकी सरस प्रभावशाली योजना करना इनकी एक अन्यतम विशेषता है। जो परवर्ती अन्य नाटककारो मे अपने इस सुष्ठु रूप मे नही मिलती है। इस आलोचना ने कृष्ण मिश्र के (उपनिषद् का अद्वैत–विष्णुभक्ति) समन्वयात्मक दृष्टिकोण का प्रतिपादन करने के लिए, एक पृष्ठ भूमिका कार्य किया है और साथ ही दार्शनिक विचारो को एक गौरव प्रदान किया है।

स्वाभिमत धर्म दर्शन

३८९. नाटक के स्वाभिमत धर्म दर्शनो मे 'अद्वैत दर्शन', 'विष्णुभक्ति',

---

१. **प्रबोधचन्द्रोदय, अंक ६, पृष्ठ २२८।**
२. वही वही, पृष्ठ २२९।
३. वही वही, श्लोक २२।
४. वही वही, श्लोक २३।

'वैयासिकी, सरस्वती', और 'उपनिषद्' हैं। इनकी क्रमिक समीक्षा नीचे दी जा रही है—

३९०. **अद्वैत दर्शन**—कृष्ण मिश्र से पूर्व शकर अद्वैत वेदान्त का प्रतिपादन कर चुके थे। अतएव नाटककार के दार्शनिक विचारो पर उनका पर्याप्त प्रभाव पडा था। नाटककार ने अद्वैत वेदान्त के अनुकूल ही तत्वो की दार्शनिक व्याख्या की है। तात्पर्य यह कि इसी मान्यता के आधार पर, उसने ब्रह्म, जीव, जगत और माया सम्बन्धी विचार व्यक्त किये है। मोक्ष के सम्बन्ध मे भी नाटककार का मत अद्वैत मत के अनुसार ही है। अतएव अब हम नाटककार के द्वारा अद्वैत मत के अनुकूल—ब्रह्म, जीव, जगत, माया और मोक्ष के स्वरूप पर विचार करते है।

३९१. **ब्रह्म**—नाटककार के मत मे ब्रह्म चिदानन्द, निरजन, निर्गुण, निराकार, है। माया के ही कारण वह अनेक रूपो मे भासता है किन्तु वास्तव मे वह अखण्ड ज्योतिस्वरूप है। प्रथम अक के नान्दी पाठ मे ब्रह्म के स्वरूप लक्षणो की व्याख्या करते हुए उसे आनन्दमय और ज्योतिस्वरूप ही बताया है।—'सान्द्रानन्दमुपास्महेतदमलस्वात्मावबोधमह।'' (प्रथम अक पृ० २, श्लोक १) ब्रह्म की यह अखण्ड अनादि ज्योति स्वरूप सत्ता माया के कारण भिन्न प्रतीत होने लगती है। भिन्न प्रतीत होते हुए ब्रह्म की सज्ञा भी भिन्न हो जाती है। दुश्चरित्र स्त्री की भाति माया से वचित होने या ठगे जाने पर ब्रह्म 'पुमान्' कहे जाने लगते है।[1] ब्रह्म स्फटिक मणि के समान तेजस्वी, शुद्ध, असगत, अविक्रिय है। किन्तु माया से आवेष्टित होने के कारण वह विकृत हो जाता है।[2] उसमे विकार प्रतीत होने लगता है। विकृत हो जाने से ब्रह्म की अनन्त सत्ता सीमित हो जाती है। माया के कारण अहकारादि भावनाए उसे दीन दशा को प्राप्त करा देती हैं। जिसका भाव निम्न श्लोक से व्यक्त होता है —

> असावहंकारपरैर्दुरात्मभि-
> र्निबध्य तैः पापशठैर्भवाब्धिभिः।
> चिरं चिदानन्दमयो निरंजनो
> जगत्प्रभुर्दीनदशामनीयत ॥२४॥ प्र० च०, प्रथम अंक।

---

१. 'स्वमपि यतो मायासंगात्पुमानिति विश्रुतः।'
—प्र० च०, प्रथम अंक, श्लोक २५।

२. 'स्फटिकमणिवद्भास्वानेवः प्रगाढमनार्यया
विकृतिमनया नीतः कामप्यसंगतविक्रियः।
—प्र० च०, प्रथम अंक, श्लोक २६।

शुद्ध निर्मल ज्योतिस्वरूप ब्रह्म को नाटककार ने अकर्त्ता माना है। अद्वैत के अनुसार ब्रह्म अचल, अखण्ड, ज्योतिस्वरूप है। माया के कारण वह कर्त्ता और भोक्ता प्रतीत होता है। ब्रह्म के कर्तृत्व का आभास माया के सग से, उसी प्रकार से है जैसे चुम्बक पत्थर के प्रभाव से, लोहा अचल होते हुए भी चलायमान प्रतिभासित होता है।[1] माया के प्रभाव मे अनेक प्रकार से विकारयुक्त प्रतिलक्षित होने पर भी, ब्रह्म के स्वरूप मे अन्तर नही होता है। उसका वास्तविक स्वरूप ज्यो का त्यो बना रहता है। वह चिदानन्द ज्योति.स्वरूप ही रहता है। ब्रह्म के इस रहस्य का वर्णन छठे अक के २३ श्लोक मे निर्मल पवित्र आकाश मे आये हुए काले बादलो के उदाहरण मे स्पष्ट किया गया है।[2] इस ब्रह्म की उपासना जो कि अद्वय, अज, अनन्त, शान्त और ज्योतिस्वरूप है, अनेक प्रकार से की जाती है—'अनेक प्रवाहो से सम्पन्न जलनिधि के समान, अनेक रूपो मे आगमो, श्रुतियो और शैवो के द्वारा उपास्यमान (ब्रह्म) जगदीश्वर, प्राप्त करने योग्य है।'[3] तमोमय ससार को प्रकाशित करने वाले ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त हो जाने पर, ब्रह्म से परिचित आत्माए मोक्ष को प्राप्त होती है। इस ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार ही भवसागर से मुक्त कराने का, एक मात्र साधन है। छठे अक के श्लोक सत्रह मे नाटककार का यही भाव द्रष्टव्य है—'तमेवविद्वानतिमृत्युमेतिनान्योऽस्ति पन्था भवमक्तिहेतु।'

३९२ जीव—नाटककार ने अद्वैत वेदान्त के अनुकूल 'जीव' को ब्रह्म का ही अश स्वीकार किया है। जीव चैतन्यरूप ब्रह्म का ही अश होने पर भी, अज्ञान और अविद्या के आवरण के कारण अपने को पृथक् मानता है। वह विषय सबधो के

---

१. अयः स्वभावादचलं बलाच्चल-
त्यचेतनं चुम्बकसंनिधाविव।
—प्र० च०, अंक ६, श्लोक १६।

२. शांतं ज्योतिः कथमनुदितानस्तनित्यप्रकाशं
विश्वोत्पत्तौ व्रजति विकृतिं निष्कलं निर्मलं च।
शश्वन्नीलोत्पलदलरुचामम्बुवाहावलीनां
प्रादुर्भावे भवति नभसः कीदृशो वा विकारः॥

३. ज्योतिः शान्तमनन्तमद्वयमजं तत्तद्गुणोन्मीलना-
द्ब्रह्मेत्यच्युत इत्युमापतिरिति प्रस्तूयते नैकधा।
तैस्तैरेव सदागमैः श्रुतिमुखैर्नानापथप्रस्थिते-
र्गम्यो सौ जगदीश्वरो जलनिधिर्वारां प्रवाहैरिव॥
—प्रबोधचन्द्रोदय, अंक ५, श्लोक ९।

बन्धनो के मिथ्या भ्रम मे भ्रान्त रहता है। मिथ्या भ्रम के कारण जीवात्मा पुत्र-कलत्रादि से सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। वह कल्पना करता है कि उसके पिता, जननी, पत्नी, पुत्र और मित्र आदि उसके हितैषी हैं। यह कल्पना उसे अविद्यामय एव अज्ञानान्धकार से सम्पन्न बना देती है। जिससे वह अज्ञानमयी निद्रा मे लीन रह कर अनेक स्वप्न देखा करता है।[1] नश्वर विषय-वासनाओ मे सुख भोग का अनुभव करता है। किन्तु वास्तव मे शरीर के अन्दर कर्ता—पुमान् ईश्वर है, जो कार्य-सचालन करता है।[2] आत्मा ब्रह्म का ही अश है, इस तथ्य को छठे अक मे सरल मनोवैज्ञानिक प्रश्नोत्तर की नाटकीय शैली मे नाटककार ने स्पष्ट कर दिया है। जीवात्मा रूप 'पुरुष उपनिषद्' देवी से प्रश्न करता है कि 'क्या मै ही परमेश्वर रूप हूँ ?' उपनिषद् उत्तर देती है कि 'जीवात्मा और परमात्मा दो भिन्न सत्ता नही है। दोनो अद्वैत रूप मे परस्पर अभिन्न है। अभिन्न होते हुए भी दोनो की भिन्न प्रतीति होती है जैसे जल मे बिम्ब पड़ने मे एक सूर्य की सत्ता के स्थान पर भ्रम से दो सूर्यो का आभास होने लगता है। अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा का द्वैत भ्रमपूर्ण है।[3] साधारण मानवो को यह शका होना सम्भव है कि भिन्न-भिन्न रूप मे दिखाई देने वाली और जरा मरण वाली, यह आत्मा ब्रह्म कैसे हो सकती है।[4] किन्तु

१. जातोऽहं जनको ममैष जननी क्षेत्रं कलत्रं कुलं
पुत्रा मित्रमरातयो वसु बलं विद्या सुहृद्बान्धवाः।
चित्तस्पन्दितकल्पनामनुभवन्विद्वानविद्यामयीं
निद्रामेत्य विघूर्णितो बहुविधान् स्वप्नानिमान्पश्यति ॥
—प्र० च०, प्रथम अक, श्लोक २९।

२ बाला मामियमिच्छतीन्दुवदना सानन्दमुद्वीक्षते
नीलेन्दीवरलोचना पृथुकुचोत्पीडं समाश्लिष्यति।
का त्वामिच्छति का च पश्यति पशो मांसास्थिभिर्निर्मिता
नारी चैव न किंचिदत्र स पुनः पश्यत्यमूर्तः पुमान् ॥
—प्र० च०, चतुर्थ अक, श्लोक १०।

३ उपनिषत्—एवमेतत्। तथाहि—
असौ त्वदन्यो न सनातनः पुमान् भवान्न देवात्पुरुषोत्तमात्परः।
स एष भिन्नस्त्वदनादिमायया द्विधेव बिम्बं सलिले विवस्वतः ॥
—प्र० च०, अंक ६, श्लोक २५।

४. अवच्छिन्नस्य भिन्नस्य जरामरणधर्मिणः।
मम ब्रवीति देवीयं सत्यामव्यभिचारिताम् ॥—प्र० च०, अंक ६ श्लोक २६।

यह शंका उन्हीं को होती है जिन्हे तत्वज्ञान-पदार्थज्ञान नहीं होता है। 'तत्वमसि' महावाक्य के पदार्थज्ञान होने के पश्चात् आत्म साक्षात्कार सम्भव हो जाता है।[1] अत: अज्ञानावरण के कारण आत्मा और ब्रह्म दो भिन्न सत्ताएं होती हैं। अज्ञानावरण हट जाने से आत्मा को ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है। दोनों की एकता सिद्ध हो जाती है।

३९३ माया—ब्रह्म और जीव के अतिरिक्त माया के सम्बन्ध मे भी नाटककार ने विचार व्यक्त किये हैं। उनके मत मे माया ब्रह्म की शक्ति है। जिसके कारण भ्रम रूप जगत वास्तविक प्रतीत होने लगता है। ब्रह्म के संग से माया ने प्रथमत: मन की सृष्टि की थी, तदनन्तर त्रैलोक्य की रचना की थी।[2] माया ने अपनी सत्ता व्यापक करने के हेतु नवद्वार रूप पुर बनाकर[3] मन को प्रभावशाली बना दिया। जिससे निर्मल ज्योति रूप ब्रह्म मे मणि मे प्रतिलक्षित बिम्ब के समान,[4] मन की विषय सम्बन्धी क्रियायें प्रतिबिम्बित होने लगी। इस प्रतिबिम्ब के कारण ब्रह्म के स्थान पर नश्वर मन को ही आत्मा (ब्रह्म) समझा जाने लगा है।

३९४ जगत्—जगत् मिथ्या है। यह भ्रमरूप भी है। वास्तव मे ब्रह्म के अतिरिक्त सब असत्य है। मूर्खों को मृगमरीचिका के समान सत्य प्रतीत होता है। उनको आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी से निर्मित जगत् प्रतिभासित होता है। तत्व को जानने वाले विद्वानों को भी यदाकदा माला मे सर्प के समान, संसार के सम्बन्ध मे, भ्रम हो जाया करता है।[5] असत्य और नश्वर जानते हुए भी संसार

---

१. एषोऽस्मीति विविच्य नेतिपदतश्चित्तेन सार्धं कृते
+ + +
शान्तं ज्योतिरनन्तमन्तरुदितामन्दः समुद्योतते।।
—प्र० च०, अंक ६, श्लोक २७।

२. प्रबोध चन्द्रोदय, अंक १, श्लोक १७।

३. वही वही, पृष्ठ ३५।

४. एकोऽपि बहुधा तेषु विच्छिन्नेव निवेशितः।
स्वचेष्टितमथो तस्मिन्विदधाति मणाविव।।
—प्र० च०, प्रथम अंक, श्लोक २८।

५. मध्याह्नार्कमरीचिकास्विव पयःपूरो यदज्ञानतः
खं वायुर्ज्वलनो जलं क्षितिरिति त्रैलोक्यमुन्मीलति।
यत्तत्वं विदुषां निमीलति पुनः स्रग्भोगिभोगोपमं
+ + +
—प्र० च० प्रथम अंक, श्लोक १।

को सत्य मानने के भ्रम में पड जाते हैं। मार्ग के पथिकों के समान, समुद्र में यात्रा करने वाले यात्रियो के समान ससार मे माता-पिता, भाई और बन्धु का सम्बन्ध होता है।[1]

३९५ मोक्ष—नाटककार के अनुसार उपनिषद् से पुरुष के तत्वमसि वाक्य के सुनने पर वह ध्यान करता है। ध्यान मे उपनिषद् की सकर्षण शक्ति के द्वारा विद्या के प्रकट होने से अज्ञान का निराकरण हो जाता है। तदनतर उसमें प्रबोध का सक्रमण होता है। प्रबोध रूप इस ज्ञान के उदित होने के पश्चात् उसे 'सोऽह ब्रह्म' की अनुभूति होने लगती है। यही उसके मोक्ष की अवस्था होती है। इस अवस्था मे पुरुष को यह ज्ञान नही रहता कि उसने क्या पाया और क्या खोया, क्या उदित हुआ और क्या हटाया गया। ऐसे वितर्क उस समय उसमे रह ही नही जाते, क्योंकि उस समय सहज प्रकाश मे त्रैलोक्य के मूलभूत अधकार का निरास हो जाता है। और आत्म-साक्षात्कार रूप ब्रह्मानन्द का अनुभव करता हुआ, सदानन्द पद (मोक्ष) को प्राप्त होता है।

साधना मार्ग

३९६ तत्वो और मोक्ष के सम्बन्ध मे कृष्ण मिश्र की मान्यता का अध्ययन करते हुए हमने देखा कि ये तत्वो तथा मोक्ष की व्याख्या अद्वैतसिद्धान्तानुसार ही करते है। किन्तु अद्वैत की इस मान्यता का प्रतिपादन होने पर भी, केवल मात्र अद्वैत का ही प्रतिपादन नही है। अपितु अद्वैतानुसार तत्वो की व्याख्या के स्पष्टीकरण तथा मोक्ष-प्राप्ति के हेतु विष्णुभक्ति का सहयोग अनिवार्य स्वीकार किया है। इस भाति अद्वैत और विष्णुभक्ति से समन्वित, एक विशेष साधना मार्ग का वर्णन कृष्ण मिश्र ने प्रस्तुत किया है। इस साधना मार्ग का सचालन विष्णुभक्ति के आदेशो से ही होता है। विष्णुभक्ति श्रद्धा और शान्ति के द्वारा साधना के सम्बन्ध में आदेश प्रेषित करती है। इस अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार, विष्णुभक्ति के आदेशो तथा पथ-प्रदर्शन से समन्वित साधना मार्ग का वर्णन, प्रारम्भिक अवस्था से लेकर अन्तिम अवस्था तक है। जिसमें क्रम से बन्धनो और बाधाओ पर विजय प्राप्त करके मोक्ष-

---

१. पान्थानामिव वर्त्मनि क्षितिरुहां नद्यामिव प्रस्यतां
मेघानामिव पुष्करे जलनिधौ सांयात्रिकाणामिव।
संयोगः पितृमातृबन्धुतनयभ्रातृप्रियाणां यदा।
+ + +
—प्र० च०, अंक ५ श्लोक २५

प्राप्ति होती है। इस साधना मार्ग का अध्ययन हम निम्न विभाजन से कर सकते हैं :—

१ मन के दुर्गुणो की पराजय तथा सद्गुणो की विजय।

२ मन का निवृत्ति की ओर उन्मुख होना।

३ उपनिषद के 'तत्वमसि' महा वाक्य का ज्ञान।

४ निदिध्यासन के प्रवेश से प्रबोध का उदय।

३९७ साधना मार्ग के प्रथम स्तर मे मोह (दुर्गुण) और विवेक (सद्गुण) के पक्षो का परस्पर सघर्ष होता है। इस सघर्ष मे मोहादिक दुर्भावनाये जब अपने विस्तार का प्रयत्न करती है, तब उन्हे विष्णुभक्ति का भय रहता है। वे जानते है, यदि श्रद्धा और धर्म विष्णुभक्ति के अनुयायी रहे तो मोक्ष-प्राप्ति मे सन्देह नही रहेगा। अत महामोह के पक्ष की ओर से श्रद्धा और धर्म दोनो के विनाश का प्रयत्न होता है। किन्तु दोनो की रक्षा विष्णुभक्ति स्वय अपनी अद्भुत शक्ति से सम्पन्न कर लेती है। विष्णुभक्ति एक ओर विवेक के निकट, युद्ध प्रारम्भ करने की आज्ञा, श्रद्धा द्वारा प्रेषित करती है, दूसरी ओर मैत्री, मुदिता आदि चित्त की शोधक वृत्तियो को (विवेक का मार्ग प्रशस्त करने के हेतु) भक्तो के हृदय मे निवास के लिए भेज देती है। विष्णुभक्ति के सन्देश से प्रोत्साहित होकर विवेक मोह के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ करता है। अन्त मे उनकी शुभकामना से विवेक को विजय मिलती है। नाटककार ने इस प्रकार साधना मार्ग के इस प्रथम स्तर मे यह दिखा दिया है कि मानव के दुर्गुण, उसे आध्यात्मिक कल्याण की ओर प्रवृत्त नही होने देते हैं। कल्याण की ओर प्रवृत्त होने के लिए, विवेक के साथ भक्ति, श्रद्धा और शान्ति के सहयोग की आवश्यकता है। भक्ति की शक्ति द्वारा, विवेक से श्रद्धा विलग नही होती है। ऐसे श्रद्धालु और विवेकी भक्त को, शान्ति मैत्री, मुदिता और उपेक्षा आदि वृत्तिया दुर्गुणो पर विजय-प्राप्ति मे सशक्त बना देती है। भक्त के हृदय मे मनोविकार शेष नही रह जाते है।

३९८ दुर्गुणो पर विजयी मनुष्य के हेतु साधना का दूसरा स्तर प्रस्तुत होता है। इस दूसरे स्तर मे (दुर्गुणो पर विजय प्राप्त कर लेने पर भी) मनुष्य का मन अनिश्चित अवस्था मे होता है। उसे भ्रमपूर्ण आकर्षणो से भ्रमित होने की सम्भावना बनी रहती है। इस अनिश्चित अवस्था को दूर करने और आध्यात्मिक कल्याण को निश्चित बनाने के हेतु विष्णुभक्ति वैयासिकी सरस्वती के अमृतोपम उपदेशो की व्यवस्था करती है। सरस्वती के अमृतोपम उपदेशो से मन निवृत्ति की ओर उन्मुख हो जाता है। मन के महामोह से निवृत्त हो जाने से आध्यात्मिक साधना का दूसरा स्तर पार कर, साधक तीसरे स्तर की कोटि मे जाता है।

३९९. साधना मार्ग के तीसरे स्तर में निवृत्त मन वाला (आत्मा) पुरुष तत्वज्ञान की इच्छा करना प्रारम्भ करता है। विष्णुभक्ति, उपनिषद् को पुरुष के सन्निकट लाकर विवेक के साथ 'तत्वमसि' का उपदेश देने की अनुमति देती है। आध्यात्मिक ज्ञान के प्रति जिज्ञासु पुरुष आत्मा और ब्रह्म के सम्बन्ध में जिज्ञासा व्यक्त करता है। तब उपनिषद् उसे 'तत्वमसि' का उपदेश देती है। इस उपदेश को पुरुष 'विवेक' की सहायता से ग्रहण करता है। उपदेश को ग्रहण करने के पश्चात् वह मनन करना प्रारम्भ करता है। मनन प्रारम्भ हो जाने पर साधना मार्ग में चौथे स्तर की अवस्था आ जाती है।

४००. साधना मार्ग के चौथे स्तर में विष्णुभक्ति की आज्ञा से निदिध्यासन प्रवेश करता है और उपनिषद् को अपनी सकर्षण शक्ति से विद्या को मन में तथा प्रबोध को पुरुष रूप में प्रवेश कराने की प्रेरणा देकर, स्वयं पुरुष में प्रविष्ट हो जाता है। निदिध्यासन की अवस्था में, पुरुष में विद्या के द्वारा अज्ञानान्धकार का नाश तथा प्रबोध के उदय से अलौकिक ज्योतिरूप ब्रह्मानन्द का अनुभव और आत्म-साक्षात्कार होता है। यह आत्म-साक्षात्कार रूप प्रबोध का उदय, साधना मार्ग की अन्तिम अर्थात् मोक्ष की चरम अवस्था है। साधना मार्ग की अन्तिम अवस्था पर पहुंचाकर विष्णुभक्ति स्वयं आत्मदर्शी को दर्शन देती है। प्रस्तुत नाटक में प्रबोधोदय प्राप्त पुरुष विष्णुभक्ति के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हुआ कहता है —

"देव्या विष्णु भक्तिः प्रसादात्कि नाम दुष्करम्"

अर्थात् विष्णुभक्ति की कृपा से ससार में सभी कामनाएं पूर्ण हो सकती हैं।

४०१. साधना मार्ग के प्रस्तुत विवरण से स्पष्ट है कि साधना मार्ग में विष्णु-भक्ति आवश्यक है। विष्णुभक्ति के निरन्तर सहयोग से साधना की बाधाएं मन और आत्मा के मल, विक्षेप और आवरण दूर हो गये। मल से तात्पर्य मन के दुर्विचारों से है। विक्षेप के अर्थ मन की चचलता अर्थात् अज्ञात वस्तुओं में विभिन्न कल्पनायें करना है। आत्मा के सम्बन्ध में तत्व का अज्ञान-आवरण कहा जाता है। विष्णुभक्ति मोहादि विकारों पर विजय प्राप्त करा कर सद्गुणों से विभूषित कर मल को दूर कर देती है। मिथ्या ससार के मोह में आसक्त, चचल और कल्पना-शील मन के विक्षेप को विष्णुभक्ति, वैयासिकी सरस्वती के अमृतोपम उपदेश के द्वारा, निवृत्ति की ओर उन्मुख बना देती है। मन शान्त और निर्मल तथा विक्षेप से रहित हो जाता है। मन मल और विक्षेप से रहित हो जाने पर भी आत्मा पर अज्ञान का आवरण होता है, जो तत्वों के ज्ञान से ही दूर हो सकता है। अज्ञान को दूर करने के हेतु विष्णुभक्ति, उपनिषद् और विवेक के द्वारा 'तत्वमसि' महावाक्य

का उपदेश ग्राह्य बनवा देती है। जिससे कि पुरुष को निदिध्यासन की अवस्था मे प्रबोधोदय होता है। वह स्वायम्भुव होने का अनुभव करता हुआ सदानन्द पद (मोक्ष) पर प्रतिष्ठित हो जाता है। इस भाति नाटककार ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि अद्वैत सिद्धान्तानुसार साधना मार्ग मे भक्ति का सहयोग परमावश्यक और कल्याणकारी है। तर्क और बुद्धि (मति) के शान्त हो जाने पर ही श्रद्धा, शान्ति और भक्ति आदि के सहयोग से प्रबोधोदय सम्भव होता है।[1] अर्थात् आत्मा को निरन्तर कल्याण मे नियोजित करने के हेतु भक्ति का हितैषी सूत्र-सचालन आवश्यक है। विभिन्न ज्ञान और दर्शनशास्त्रो का महत्व केवल अवस्था और प्रसगानुसार ही होता है। ये दर्शन विशेष परिस्थिति मे ही कल्याणकारी सिद्ध हो सकते है। भक्ति के सचालन से शासित आत्मा दुर्गुणो पर विजय प्राप्त करने, निवृत्युन्मुख होने, तत्वज्ञान और आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने मे समर्थ हो सकती है। आत्मा को निरन्तर हितैषी एव रक्षक की आवश्यकता है। इस प्रकार नाटककार ने दर्शनो का और भक्तिमार्ग का समन्वय करके, (नाटकीय योजना मे) यह सिद्ध किया है कि आत्मा विकार रहित होकर विष्णुभक्ति के कल्याणमय शासन से अनुशासित होते रहने पर ही दर्शनो के ज्ञान से लाभान्वित हो सकती है।

साधना मार्ग के सहयोगी

४०२. नाटककार ने अपने मौलिक साधना मार्ग मे विशेष सहयोगियो के रूप मे विष्णुभक्ति, वैयासिकी सरस्वती, उपनिषद् को दिखाया है। इसके अतिरिक्त विद्या, प्रबोध और निदिध्यासन भी आत्म-साक्षात्कार मे विशेष क्रियात्मक सहयोग देते है। प्रबोधचन्द्रोदय मे नाटककार ने जिस रूप में इन सहयोगियो का विवरण प्रस्तुत किया है, उसका क्रम से अब हम अध्ययन करेंगे।

४०३. **विष्णुभक्ति**—श्रद्धा और शान्ति से समन्वित विष्णुभक्ति का प्रभाव अत्यधिक होता है। कलियुग के दुष्कर्मों और व्यभिचारो के द्वारा विष्णुभक्ति का अनुयायी विकृत नही होता है। कलियुग की शक्ति को समाप्त करने की शक्ति यदि किसी मे है तो केवल मात्र विष्णुभक्ति मे ही।[2] विष्णुभक्ति सिद्धि

१. विवेक मति से कहता है—
तूष्णीं चेद्विषयानपास्य भवती तिष्ठेन्मुहूर्तं ततो
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिधामविरहात्प्राप्तः प्रबोधोदयः॥
—प्र० च०, प्रथम अंक, श्लोक ३०।

२. चार्वाक—अस्ति विष्णुभक्तिर्नाम महाप्रभावा योगिनी। सा तु कलिना

का मूल साधन है। विवेकी विष्णुभक्त यदि श्रद्धा सहित, निष्काम धर्म हो जाय, तो मोक्ष सुलभ हो जाता है।[1] मन को विषयों से विमुख करने के हेतु विष्णु के सगुण रूप की उपासना सहायक होती है। विष्णुभक्ति की कृपा से विवेक के शत्रु मारे जाते हैं। आत्मा निर्द्वन्द्व होकर मोक्ष को प्राप्त होती है।[2] विष्णुभक्ति के प्रसाद से संसार में क्या-क्या सम्भव नहीं है।[3] साधना-मार्ग के वर्णन में हम विष्णु-भक्ति के निरन्तर सहयोग संचालन पर विचार कर चुके हैं। इससे ज्ञात होता है कि विष्णुभक्ति को नाटककार ने अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान दिया है। और सर्वशक्तिमान के सगुण विष्णु रूप को आधार बनाकर श्रद्धालु, सात्विक एवं ज्ञानवान भक्त होना मोक्ष के लिए कल्याणकारी स्वीकार किया है। और श्रद्धालु सात्विक विवेकी धर्मानुयायी, तत्वज्ञानी भक्त को ही आत्म-साक्षात्कार का अधिकारी स्वीकार किया है।

४०४. **वैयासिकी सरस्वती**—कृष्ण मिश्र ने वैयासिकी सरस्वती को वैराग्योत्पत्ति के हेतु आवश्यक माना है। चंचल और राग-द्वेष के मोह में फंसे मन को शान्त और निवृत्ति की ओर उन्मुख करने का कार्य वैयासिकी सरस्वती ने सम्पन्न किया है। इसके मतानुसार ब्रह्म एक है। ब्रह्म ही सर्वव्यापक एक मात्र सत्य है। ब्रह्म से भिन्न सर्व मिथ्या है। ब्रह्म ही नित्य है।[4] जगत् क्षणिक और नश्वर है।

यद्यपि विरलप्रचारा कृता तथापि तदनुगृहीतान्वयमालोकयितुमपि न प्रभवामः तदत्र देवैर्नावधातव्यमिति।

महामोहः—(सभयमात्मगतम्) आः, प्रसिद्धमहाप्रभावा सा योगिनी स्वभावाद्विद्वेषिण अस्माकं दुरुच्छेद्या सा।

—प्र० च०, द्वितीय अंक, पृष्ठ ७२।

१. कापालिक—मूल देवी सिद्धये विष्णुभक्तिस्तां च श्रद्धानुगता सत्वकन्या
कामान्मुक्तस्तत्र धर्मोऽप्यभूच्चेत्सिद्धं मन्ये तद्विवेकस्य कृत्यम्।।

—प्र० च०, तृतीय अंक, श्लोक २६।

२. प्रशान्तारातिरगमद्विवेकः कृतकृत्यताम्।
नीरजस्के सदानन्दे पदे चाहं निवेशितः।।

—प्र० च०, अंक ६, श्लोक ३२।

३. प्रबोधचन्द्रोदय, अंक ६, पृष्ठ २४०।

४. एकमेव सदा ब्रह्म सत्यमन्यद्विकल्पितम्।
को मोहस्तत्र कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।

—प्र० च०, अंक० ५, श्लोक १५।

सिन्धु-फेन की भांति इसका अस्तित्व अस्थायी होता है—'सिन्धो फेनसमेगते वपुषि यत्पचात्मकेपचताम्।'[1] मन के प्रभाव से शाश्वत ब्रह्म रूप आत्मा-जन्म, मृत्यु जरा धर्मवाली अनुभव होती है। बुद्धिवृत्ति के प्रभाव के परिणाम-स्वरूप आत्मा नाना रूपों में भिन्न-भिन्न दिखाई देती है। जैसे सूर्य समुद्र तरंगों में अनेक दिखाई देता है। यदि मन और बुद्धि अपने प्रभाव को सग्रहीत कर शान्त हो जाय तो आत्मा अतिशय आनन्दरूप में प्रकाशित प्रतीत होती है जैसे निर्मल अनावृत्त दर्पण में ही सूर्य प्रकाशित होता है।[2] मन के मोह का कारण ममता और वासना है। स्नेह, ममता के कारण एक सम्बन्ध का बन्धन स्थापित हो जाता है। जिस बन्धन के मोह में मानव वियोग का कष्ट अनुभव करता है। जिनसे सम्बन्ध की वासना नहीं होती, उनसे मोह भी नहीं होता है। जैसे घर में बिल्ली गौरैया को खा जाती है तो दुख होता है किन्तु यदि चूहे को खाती है तो दुख नहीं होता है। यदि मानव-संसार की नश्वरता पर ध्यान दे सके तो उसका मन मोह-ममता से विरक्त हो जायेगा। गम्भीर शोक, विपत्ति आदि का स्मरण न करने से दुर्निवार चिन्ता से रहित मन को बहुत शान्ति मिलती है। मन के शान्त रह सकने के लिए ब्रह्म और विष्णु की उपासना करना आवश्यक है। ग्रीष्म ऋतु में जैसे शीतलता मिलती है उसी प्रकार केयूर कुण्डलधारी श्यामवर्ण विष्णु अथवा सहजानन्द ब्रह्म की उपासना से आत्मिक शान्ति मिलती है। जिसका वर्णन निम्न श्लोक में है।

नित्यं स्मरजलदनीलमुदारहार-
केयूरकुण्डलकिरीटधरं हरिं वा।
ग्रीष्मे सुशीतमिव वा हृदमस्तशोकं
ब्रह्म प्रविश्य भज निर्वृतिमात्मनीनाम्॥
—प्र० च०, अंक ५, श्लोक ३१।

---

१. प्र० च०, अंक० ५, श्लोक १४।

२ त्वत्संगाच्छाश्वतोऽपि प्रभवलयजरोपप्लुतो बुद्धिवृत्ति-
+ + +
र्भात्यादर्श प्रसन्ने रविरिव सहजानन्दमान्द्रस्तवात्मा॥
—प्र० च०, अंक० ५, श्लोक ३३।

३. यस्माद्विश्वमुदेति यत्र रमते यस्मिन्पुनर्लीयते
भासा यस्य जगद्विभाति सहजानन्दोज्ज्वलं यन्महः।
शान्तं शाश्वतमक्रियं यमपुनर्भावाय भूतेश्वरं
द्वैतध्वान्तमपास्य यान्ति, कृतिनः प्रस्तौमि तं पूरुषम्॥
—प्र० च०, अंक ६, श्लोक १४।

४०५ उपनिषद्—'उपनिषद्' पात्र ने अपने सिद्धान्त की चर्चा पुरुष पात्र से की है। उसके अनुसार ब्रह्म से ही ससार का उदय और निर्माण होता है। ब्रह्म ही जगत् का आदि है। अन्त मे भी जगत् ब्रह्म मे ही लीन हो जाता है। उसी ब्रह्म के प्रकाश से ससार प्रकाशित होता है। उसी से ससार को प्रेरणा और शक्ति मिलती है। उस ब्रह्म का प्रकाश उज्ज्वल और आनन्दस्वरूप है। वह नित्य, शाश्वत, शान्त, अक्रिय, अकर्ता, निर्लेप और अधिकारी है। द्वैत का नाश करके ही, ज्ञानवान विद्वान् मोक्ष के लिए ब्रह्म भूतेश्वर के निकट जाता है।[1] जीव और ब्रह्म के स्वरूपो का वर्णन उपमा द्वारा स्पष्ट करते हुए बताया गया है कि दो पक्षी एक साथ मिलकर एक वृक्ष पर बैठे हुए है, उनमे से एक पक्षी पिप्पल कोखाता है और दूसरा नही खाता है, केवल देखता रहता है। इनमे से पहला जीव है, जो समार के बन्धनो मे फसा रहता है। दूसरा अकर्ता और अभोक्ता ब्रह्म है।[1] आत्मा (जीव) ब्रह्म का ही अश है। ये ब्रह्म से अभिन्न है। अनादि माया के कारण ही जीवात्मा और ब्रह्म मे भिन्नता प्रतीत होती है। जैसे जल के अन्दर पडता हुआ प्रतिबिम्ब भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है, उसी प्रकार ब्रह्म भी आत्मा मे भ्रमवश भिन्न प्रतीत होता है। इस आत्मा का ज्ञान 'तत्वमसि' वाक्य के अर्थ के जान लेने पर होता है। 'एषोऽस्मिनेति' अर्थात् विभिन्न पदार्थ तत्वो को "यह मैं नहीं हूँ" इत्यादि पदो से विवेक के द्वारा चित्त मे समझ लेने और उन तत्वो की नश्वरता को जानने से, 'त्वमर्थ' चिदात्मा के ज्ञान होने पर 'तत्वमसि' इस वाक्य से, ससार के अन्धार को दूर करने वाली अनन्त शान्त ज्योति प्रकट हो जाती है। जिसका वर्णन निम्न श्लोक मे है :—

> एषोऽस्मीति विविच्य नेतिपदतश्चित्तेन सार्धं कृते
> तत्वानां विलये चिदात्मनि परिज्ञाते त्वमर्थे पुनः।
> श्रुत्वा तत्वमसीति बाधितभवध्वान्तं तदात्मप्रभं
> शान्तं ज्योतिरनन्तमन्तरुदितानन्दः समुद्योतते॥
>
> —प्र० च०, अंक ६, श्लोक २७।

इस प्रकार उपनिषद् जीव, ब्रह्म और मोक्ष के ज्ञान का साधन है।

---

१. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानवृक्षं परिषस्वजाते।
एकस्तयोः पिप्पलमत्ति पक्व-
मन्यस्त्वनश्नन्नभिचाकशीति॥

—प्र० च०, अंक ६, श्लोक २०।

४०६.—**विद्या**—विद्या कामादि का नाश कर देती है, आत्मा को ब्रह्मज्ञान कराने मे सहायक होती है। इसीलिए काम अपनी पत्नी रति से विद्या का परिचय देता हुआ कहता है कि हम लोगो के कुल मे विद्या नाम राक्षसी का जन्म होगा।[1] विद्या का जन्म मन मे होता है। उसके जन्म लेते ही समस्त वासनाओ का शमन हो जाता है। इस तथ्य का पता हमे काम के इस वाक्य से चलता है :—

> **तस्मादेव जनिष्यते पुनरसो विधेति कन्या यया**
> **तातस्ते च सहोदराश्च जननी सर्वं च भक्ष्यं कुलम् ॥**
> **—प्र० च०, प्रथम अंक, श्लोक १९।**

विद्या का अपने भाई प्रबोध के साथ जन्म विवेक और उपनिषद् की सहायता से होता है। इस कार्य के लिए शम और दम आदि उद्योग करते है।[2] विद्या मन के उन भ्रमो और आकर्षणो का प्रायश्चित्त के द्वारा विनाश कर देती है जो ब्रह्म को पुरुष मे दूर कर देते है। विद्या ही आत्मा को ब्रह्मैक्य की ओर ले जाती है।[3] जीव के निदिध्यासन की अवस्था मे आविर्भूत यह विद्या अन्धकार का नाश कर स्वय भी अन्तर्हित हो जाती है।

४०७ —**निदिध्यासन**—निदिध्यासन मन के निश्चल ध्यान को कहते है जिसमे विकार, दुश्चिन्ता का त्याग तथा सात्विक सत् का मनन-चिंतन होता है। प्रबोध-चन्द्रोदय मे निदिध्यासन रगमच पर पुरुष मे प्रविष्ट होने के हेतु आता है। जीवात्मा निदिध्यासन—(ध्यान) के योग्य हो जाती है, तभी विवेक और उपनिषद् का ज्ञान उसे हृदयगम होता है। जीवात्मा जब सात्विक एव निश्चल ध्यान मे लीन हो जाती है।[4] तभी प्रबोधोदय होता है। इस प्रकार विवेक की सहायता से उपनिषद् को

---

१. **"अत्रास्माकं कुले कालरात्रिकल्पा विद्यानाम राक्षसी समुत्पत्स्यत इति।"**
—प्र० च०, अंक १, पृष्ठ २३।

२. **सा खलु विवेकेनोपनिषद्देव्यां प्रबोधचन्द्रेण भ्रात्रा सम जनयितव्या। तत्र सर्व एते शमदमादयः प्रतिपन्नोद्योगाः।**
—प्र० च०, अंक १, पृष्ठ २६।

३. **तेषां ब्रह्मभिदां विधाय विधिवत्प्राणान्तिकं विषया**
प्रायश्चित्तमिव मया पुनरसो ब्रह्मैकतां नीयते ॥
—प्र० च०, अंक १, श्लोक ३१।

४. **निदिध्यासनं पुरुषोविशतिः पुरुषः ध्यानं नाट्यति।**
—प्र० च०, अंक ६, पृष्ठ २३७।

तात्विक ब्रह्मज्ञान का अनुभव करने के हेतु निदिध्यासन की अवस्था परमावश्यक है। निदिध्यासन की अवस्था वह सहायक माध्यम है जिससे आत्मा मे प्रबोधोदय सम्भव होता है। निदिध्यासन योग की मुख्य प्रक्रिया है। इससे ज्ञात होता है कि कृष्ण मिश्र ने प्रबोधचन्द्रोदय मे यद्यपि योग का पृथक् रूप से कही भी साधना के सहयोगियो के रूप मे नाम नही लिया है किन्तु साधना मे योग के उपकरणो का यथा-स्थान प्रयोग अवश्य किया है, प्रबोधचन्द्रोदय मे योग के यम नियम, शम दम आदि विवेक के सहायक दिखाये गये है।[1] विष्णुभक्ति विवेक की सहायता प्राणायाम आदि के द्वारा ही समय पर करने को कहती है।[2] करुणा, मैत्री, मुदिता, उपेक्षा तथा ऋतम्भरादि का वर्णन भी मिलता है। इस नाटक के निराकृत शास्त्रो मे योगशास्त्र की चर्चा नही है। इस प्रकार कृष्ण मिश्र ने योगशास्त्र को निराकृत न मानकर साधना का सहयोगी ही स्वीकार किया है।

४०८.—**प्रबोध**—जब मानव को शान्ति प्राप्त हो जाती है, तब शान्ति की सहायता से विवेक के द्वारा उपनिषद् का ज्ञान, चिन्तन का विषय बनता है। विवेक से ज्ञान को स्पष्ट करके ग्राह्य बनाने की चेष्टा की जाती है। मति के शान्त हो जाने पर जागृति स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओ के बाद जब तुरीयावस्था आती है, तभी प्रबोध का जन्म होता है।[3] मोह के नष्ट हो जाने और पुत्रादि की वासना के छूट जाने पर मन वैराग्य का अधिकारी होता है और परम शान्ति का अनुभव करता है। इसमे उसके पचक्लेश दूर हो जाते हैं। इसी अवस्था मे आत्मा तत्वावबोध की इच्छा करती है।[4] निदिध्यासन की अवस्था मे विद्या जब प्रकाश-विस्तार करके

---

१. प्र० च०, अंक १, पृष्ठ १८, ४१।

२. प्र० च०, अंक ४, पृष्ठ १३६।

३. मानिन्याश्चिरविप्रयोगजनितासूयाकुलाया भवं-
        च्छान्त्यादेरनुकूलनादुपनिषद्देव्या मया संगमः।
    तूष्णीं चेद्विषयानपास्य भवती तिष्ठेन्मुहूर्तं ततो
        जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिधामविरहात्प्राप्तः प्रबोधोदयः॥
                —प्र० च०, प्रथम अंक, श्लोक ३०।

४. अस्तं गतेषु तनयेषु विलीनमोहे
        वैराग्यभाजि मनसि प्रशमं प्रपन्ने।
    क्लेशेषु पंचसु गतेषु समं समीहां
        तत्वावबोधमभितः पुरुषस्तनोति॥
                —प्र० च, अंक ६, श्लोक १

मोह को ग्रसित कर अन्तर्ध्यान हो जाती है, तब प्रबोध का उदय होता है। प्रबोध का उदय होने से, क्या प्राप्त हुआ, क्या नष्ट हुआ, क्या छूट गया, किसका उदय हुआ, वस्त्रादि के समान गुथा हुआ सा, यह संसार आकाशादि क्रम से प्रकट होता है। यह सत् है या असत् है, संसार के सम्बन्ध में यह तर्क समूह नहीं उत्पन्न होता है। क्योंकि ब्रह्माकार अन्त करण, वृत्ति के सहज प्रकाश से त्रैलोक्य का मूल अन्धकार नष्ट हो जाता है, और वह 'सोऽहं' 'मैं ही ब्रह्म हूँ' का अनुभव करता है।[1] इस प्रकार मोह अज्ञान रूप संसार के सम्बन्ध में तर्क और शंकाओं के नाशपूर्वक ब्रह्मानन्द की अनुभूति ही प्रबोध का उदय है।

नाटककार के द्वारा धर्म-दर्शन-सम्बन्धी योजना का सर्वेक्षण

४०९. कृष्ण मिश्र ने प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में परमत निराकरण तथा स्वमत प्रतिपादन दोनों किया है। वे अपनी अद्वितीय प्रतिभा से सबका सयोजित चित्र नाटक में उपस्थित कर सके हैं।

४१० **योजना का स्वरूप**—धर्मदर्शनों की योजना तीन रूपों में की गई है —

१ जिन मतों को नाटककार निराधार मानते थे,[2] जिनमें तत्कालीन समाज में व्यभिचार एवं पतन के प्रसार में नाश की सम्भावना थी, उन मतों चार्वाक, जैन, बौद्ध और सौमसिद्धान्त को उन्होंने महामोह का किंकर[3] कहकर, महामोह (अज्ञान), प्रतिनायक के विस्तार में तथा विवेक (ज्ञान) प्रधाननायक के विरोध में प्रयत्नशील वर्णित किया है। महामोह प्रतिनायक की पराजय पर इन मतों को वेदविरोधी और निराधार कहकर देश-देशान्तरों में फिकवा दिया गया है।

२ वेद को मानने वाले दर्शनों (मीमांसा और तर्क विद्या) के द्वारा प्रथम तो सम्मिलित रूप में महामोह के पक्ष को पराजित कर दिया गया है। तदनन्तर उपनिषद् के यात्रा प्रसंग में मीमांसा और तर्कविद्या आदि से जीव जगत् की

---

१. किं वाप्तं किमपोहितं किमुदितं किं वा समुत्सारितं
स्यूतं किं नु विलायितं नु किमिदं किंचिन्न वा किंचन।
यस्मिन्नभ्युदिते वितर्कपदवीं नैवं समारोहति
त्रैलोक्यं सहजप्रकाशदलितं सोऽहं प्रबोधोदयः॥
—प्र० च०, अंक ६, श्लोक २९।

२. प्रबोधचन्द्रोदय, पाँचवां अंक, पृष्ठ १७७।

३. वही, तृतीय अंक, पृष्ठ १२७।

व्याख्या में विरोध होने[1] से उनकी आलोचना करके उनका भी निराकरण कर दिया गया है।

३ कृष्ण मिश्र ने अपने दार्शनिक मत के अनुसार जो धर्म दर्शन मोक्ष मे सहयोगी माने हैं, उन्होंने प्रधान नायक विवेक के सम्बन्धी तथा सहयोगी के रूप मे रगमचीय अभिनय करके, मोक्ष को सम्भव बनाया है। उपनिषद् विवेक की पत्नी है। विष्णु भक्ति, विवेक की सहायिका तथा हितैषिणी का कार्य सचालित करती है। जिनके अनुशासन से (मैत्री, मुदिता, करुणा और उपेक्षा के द्वारा चित्त विकार से मुक्त होकर वैयासिकी सरस्वती से निवृत्ति की ओर उन्मुख होकर) आत्मा को वेदान्ततत्व का ज्ञान होने के पश्चात्, प्रबोधोदय सम्भव हो जाता है।

४११. इस प्रकार नाटककार ने भारत के सम्पूर्ण धर्म-दर्शनों का अपने उद्देश्य के अनुसार व्यवस्थित सयोजन किया है। उसने धर्म दर्शनों को पात्र रूप मे नायक और प्रतिनायक के पक्ष मे सम्बन्धित करके, उनका पृथक्-पृथक् विभाजन कर दिया। नायक और प्रतिनायक के परस्पर विरोधी पक्षो मे धर्म-दर्शनो ने क्रियाशील अभिनय मे भाग लिया है। इस रगमचीय क्रियाशील अभिनय की भी तीन विशेषतायें है —

१ पात्रो का परस्पर निश्चित सम्बन्ध।

२ कथा की योजना।

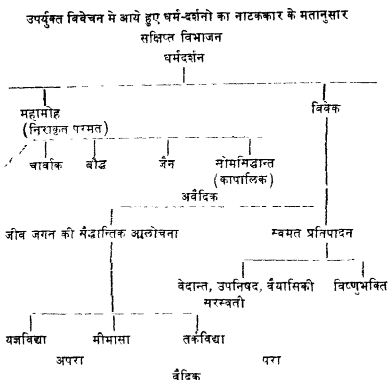
३ सिद्धान्त प्रतिपादन मे मनोवैज्ञानिक, रोचक, वाद-विवाद तथा आलोचनात्मक वार्तालापो की सुनिश्चित योजना।

इन तीनो विशेषताओ की भी सुनिश्चित साहित्यिक योजना ने स्वमत प्रतिपादन तथा परमत निराकरण को सफल बनाया है। इन सभी कारणो से प्रस्तुत नाटक आज भी धार्मिक रूपक नाटको मे सर्वश्रेष्ठ स्थान का भागी बना हुआ है।

---

१. प्रबोधचन्द्रोदय, अंक ६, पृष्ठ २१८-२३१।

उपर्युक्त विवेचन मे आये हुए धर्म-दर्शनो का नाटककार के मतानुसार
सक्षिप्त विभाजन



९. **उद्देश्य**

४१२. प्रबोधचन्द्रोदय नाटक की शास्त्रीय समीक्षा पूर्ण रूप मे कर लेने के उपरात इसके उद्देश्य पर विचार करना आवश्यक है। क्योंकि उद्देश्य मे नाटककार की अन्तरात्मा निहित होती है। उद्देश्य पर प्रकाश डाले बिना नाटक का अध्ययन अधूरा ही रह जाता है और हम नाटककार के प्रति सम्यक न्याय करने मे समर्थ नही हो सकते है। प्रस्तुत नाटक की प्रस्तावना मे सूत्रधार के द्वारा उद्देश्य का सकेत मिलता है। जिससे ज्ञात होता है कि राजा कीर्तिवर्मा का मित्र गोपाल पराक्रमी एव विद्वान था। इसकी सहायता से सम्राट को अपूर्व विजय श्री उपलब्ध हुई थी। इस गोपाल की प्रेरणा से ही (सम्भवत विजय-कीर्ति को अमर करने के हेतु) नाटक, कृष्ण मिश्र द्वारा प्रणीत हुआ था। युद्ध के अनन्तर उसके भीषण वातावरण से विरक्त, कीर्तिवर्मा को आत्मिक शान्ति मिल सके इस हेतु उसने सभा मे उस नाटक के अभिनय की आज्ञा दी थी। इस प्रकार नाटक की प्रस्तावना[1] के अनुसार युद्ध की

---

१. प्रबोधचन्द्रोदय, प्रथम अंक–प्रस्तावना, पृष्ठ ६-७।

विभीषिका से व्याकुल कीर्तिवर्मा को परम शान्ति प्रदान करने के निमित्त अभिनय के हेतु इस रचना का प्रणयन हुआ था।

४१३. नाटक के इस प्रस्तावित उद्देश्य के अतिरिक्त इस सम्बन्ध मे एक किवदती भी प्रसिद्ध है। जिससे ज्ञात होता है कि कृष्ण मिश्र वेदो एव शास्त्रो के वेत्ता तथा कल्याणकारी गुरु थे। परम हितैषी के रूप मे उनका हृदय, शिष्य के आत्मिक विकास के लिए व्यग्र रहा करता था। उनका यह प्रिय शिष्य सासारिक विषयो मे अधिक प्रवृत्त होने के कारण, वेदो और दर्शनो के ज्ञान की ओर उन्मुख नही होता था। शिष्य की हित-चिन्ता से प्रेरित कृष्ण मिश्र ने नवो रसों से और दार्शनिक ज्ञान से समन्वित सरस साहित्यिक शैली मे नाटक का प्रणयन किया था। इस किवदन्ती का सकेत, यद्यपि नाटक मे कही नही मिलता है, किन्तु फिर भी नाटक के विषय प्रतिपादन की दृष्टि से यह नाटककार की अन्त प्रेरणा को व्यक्त करने वाली प्रतीत होती है। अत इसे निस्सार या अप्रामाणिक कहना अनुचित सा लगता है। यह नाटक के हिन्दी अनुवादो[1] और टीकाओ[2] मे उद्धृत मिलती है।

४१४. प्रबोधचन्द्रोदय नाटक का समग्र रूप से अध्ययन कर लेने के पश्चात् इसका एक और उद्देश्य प्रतिध्वनित सा प्रतीत होता है। वह यह कि जो गुरु (कृष्ण मिश्र) शिष्य के कल्याणार्थ इतना उत्सुक एव व्यग्र था, सम्भवत. वह अपने युग के धार्मिक पतन से अवश्य ही सवेदित एव व्यथित रहा होगा। उसकी अन्तरात्मा की ममभेदी पीडा उसके पाण्डित्य को अवश्य धिक्कारती रही होगी। क्योकि प्रत्येक मनस्वी कलाकार के चेतन एव क्रियाशील मानस पर, अपने युग के वातावरण की प्रतिक्रिया अवश्य होती है। प्रतिभाशाली कृष्ण मिश्र उससे अछूते न रहे होगे।[3]

---

१. (क) ब्रजवासीदास--अनुवाद, पृष्ठ २।

(ख) नानकदास वही, पृष्ठ ४-७।

(ग) विजयानन्द त्रिपाठी, अनुवाद की भूमिका, पृष्ठ ६, ७।

२. (क) सटीक प्रबोधचन्द्रोदय नाटक--हें पुस्तक पुणें पेठशनवार मंहुणपुरा, यें यें रावजी श्रीधर गोंधलेकर यानी विद्वान मंडली क्या साहाय्यानें शुद्ध करून ता० २३ में सन् १८७२ ई०। इस टीका मे पात्रों के चित्र दिये हुए हैं।

(ख) प्रस्तावना--पृष्ठ १--निर्णय सागर प्रेस से प्रकाशित प्रकाश और चन्द्रिका नाम की व्याख्या।

3. "The work was written by Krishna Mishra of Mathila, one of greatest scholars and philosophers of his time, to expose, ridicule and contradict the ideas of Bhudists, Jains, Charwaks,

इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि उन्होने अपने युग के वातावरण मे व्याप्त विभिन्न मत-मतान्तरो एव दार्शनिक विचारो का चित्रण प्रबोधचन्द्रोदय मे किया है। उन्होने सभी मतावलम्बियो मे व्याप्त व्यभिचारो के रगमचीय दृश्य उसमे सयोजित किये हैं। इससे प्रबल प्रतीति होती है कि युग की धार्मिक विश्रृखलता के कारण फैले अनिष्टकारी व्यभिचारो ने, उनके मानस मे साकार रूप धारण कर लिया था। इन व्यभिचारी पात्रो के दुराचार से रक्षा के हेतु मानो विवेक, श्रद्धा, और उपनिषद् विद्या आदि पात्रो की दुर्दशा उन्हे पुकारती सी थी। जिससे कि वे युग की धार्मिक परिस्थिति को मर्यादित रूप मे सगठित देखना चाहते थे। नाटक के द्वितीय, तृतीय और षष्ठाक मे उपनिषद् की यात्रा का वृत्तान्त तत्कालीन विश्रृखल धार्मिक परिस्थितियो का सजीव चित्र प्रतीत होता है। नाटककार की मानसिक प्रतिक्रिया ने ही शैली मे अद्वितीय कलात्मकता और शाश्वत प्रभाव भर दिया है जिसने निरन्तर परवर्ती युग की शताब्दियो मे साहित्यको, दार्शनिको एव ज्ञानी पण्डितो को आकर्षित एव प्रभावित किया है।

४१५. इस भांति प्रस्तुत कृति के तीन उद्देश्य ज्ञात होते है।

१. कीर्तिवर्मा के विजयोपलक्ष्य मे अभिनय।

२ शिष्य का कल्याण।

३. धार्मिक अन्धविश्वास के पूर्ण समाज मे मर्यादा स्थापित करने के हेतु, उसकी समीक्षा और विष्णुभक्ति से समन्वित अद्वैत वेदान्त का प्रतिपादन।

इस कृति के ये तीनो उद्देश्य नाटक की तीनो मौलिक विशेषताओ की रोचक व्याख्या करते है। पहला उद्देश्य, दो सम्राटो की विजय और पराजय के मानसिक सघर्ष की, दूसरा नाटक दार्शनिक तथ्यो को प्रतिपादित करने की सरस, सरल और स्पष्ट शैली की, तीसरा तत्कालीन धार्मिक व्यभिचारो की सक्षिप्त आलोचनात्मक समीक्षा शैली की व्याख्या मिलती है। जिससे एक प्रकार से यह अनुमान होता है कि ये

Kapalikas and other sects which had taken hold of the public mind in his days, and to awaken in the people a spirit of inquiry in to the principles of Vedantic philosophy—. He felt the necessity for it, since there was then a great tendency to theism and other cognate doctrines : to check the strong current of materialism by a popular agency he wrote the work in the form of a drama illustrative of the nature and action of the mind, with its good and bad passions in play." By J. Taylor.

तीनो उद्देश्य समन्वित रूप से 'प्रबोधचन्द्रोदय नाटक' प्रेरणा स्रोत अवश्य रहे होंगे।

१०. उपसंहार

४१६. इस प्रकार उपरोक्त विपुलकाय समीक्षा के अन्तर्गत हमने 'प्रबोध-चन्द्रोदय' नाटक के बिभिन्न तत्वो का जो अध्ययन किया है, उसके आधार पर निष्कर्ष के रूप मे हम कह सकते हैं कि प्रबोधचन्द्रोदय एक 'आध्यात्मिक रूपक' नाटक है। इसके कथानक, पात्र, शैली, और भाषा मे नाटककार कृष्ण मिश्र का अपना मौलिक व्यक्तित्व समाहित है। यही कारण रहा है कि इस नाटक ने अपने उद्भव काल के बाद मे होने वाले संस्कृत के अधिकाश रूपक नाटको तथा और आगे बढने पर प्रान्तीय भाषाओ मे उद्भूत होने वाले नाटको को अपने प्रभाव से अनुप्राणित कर अपनी एक ऐसी परम्परा का प्रवर्तन किया, जिसने न केवल संस्कृत साहित्य अपितु समस्त भारतीय भाषा-साहित्य मे आध्यात्मिक दृष्टि से सम्पन्न इस नाटक को अद्वितीय स्थान पर अधिष्ठित किया है।

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी में प्रबोधचन्द्रोदय का प्रारम्भ और उसकी परम्परा

(क) हिन्दी में संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय की परम्परा प्रारम्भ होने की पृष्ठ भूमि

४१७. आध्यात्मिक ज्ञान और भक्ति मे सम्पन्न (सस्कृत) प्रबोधचन्द्रोदय नाटक का रचनाकाल ग्यारहवी ई० शताब्दी उत्तरार्द्ध सिद्ध हो चुका है। सस्कृत साहित्य मे इस नाटक के अनुकरण पर १३ वी० ई० शताब्दी से ही रचनाएँ होनी प्रारम्भ हो गई थी। किन्तु हिन्दी साहित्य मे इसका प्रभाव कुछ काल पश्चात् पडा। अब तक के अनुसधान के आधार पर, हिन्दी साहित्य मे प्रबोधचन्द्रोदय से प्रभावित रचनाएँ १६वी ई० शताब्दी से ही उपलब्ध होती हैं। यह समय हिन्दी साहित्य मे भक्तिकाल के अन्तर्गत आता है।[1] इस काल मे अव्यवस्थित धार्मिक परिस्थितियो की व्यवस्था के हेतु दार्शनिको एव भक्तो[2] ने प्रयत्न किया था। उस समय भक्ति भावना का प्राबल्य था। भक्ति भावना की प्रबलता एव प्रमुखता ने ही सम्भवत: प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के अनुवादो को प्रेरणा दी हो। हिन्दी अनुवादो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि 'प्रबोधचन्द्रोदय' के अनुवाद भक्तो और ज्ञानियो ने किये है। इन अनुवादो को प्रस्तुत करने मे उनका उद्देश्य है कि ससार मे भटकती हुई सज्जन आत्माए सहज ही ज्ञान के मार्ग पर चलने की सामर्थ्य ग्रहण

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास--भक्तिकाल, पृष्ठ ५२, पं० रामचन्द्र शुक्ल

२. काल क्रमानुसार १५वीं एवं १६वीं शताब्दी के दार्शनिकों के नाम—

(क) बल्लभाचार्य, पृष्ठ १३४।

(ख) रामानन्द, पृष्ठ १०२।

(ग) कबीर, पृष्ठ ६५-७९।

(घ) तुलसीदास, पृष्ठ १०७

(ङ) सूरदास, पृष्ठ १३९।

—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल।

कर सकें और प्रबोधचन्द्रोदय के गम्भीर दार्शनिक ज्ञान कोष से लाभ उठा सकें।[1]

४१८. इस आध्यात्मिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त साहित्यिक दृष्टिकोण से भी आधुनिक हिन्दी युग में प्रबोधचन्द्रोदय के अनुवाद मिलते हैं। क्योंकि आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रारम्भ काल मे अनुवादों की ओर लोगों का झुकाव अधिक था।[2] हिन्दी साहित्य मे अनुवादों के अभाव की पूर्ति के हेतु, सस्कृत भाषा के नाटकों के अनुवाद भी हो रहे थे। इस दृष्टि से भी प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के अनुवाद हुए।[3]

---

१. जनसाधारण के परम ज्ञान लाभ के दृष्टिकोण से—

(क) ब्रजवासीदास—पढ़ं सुनं समुझं गुनं जो कोऊ यह ग्रन्थ।
ताके उरते छटि है अहं अविद्या पन्थ ॥१६६॥
भक्ति होय भगवन्त की और विवेक प्रकास।
भक्ति बिना त्रिभुवन दुखी कह ब्रजवासीदास ॥१६७॥
—प्र० च०, अनुवाद, पृष्ठ १३४।

(ख) गुलाबसिंह—प्रबोधचन्द्रोदय नाटक सुबोध ग्रन्थ मे करौं।
अलख साधु संग को, विचार चित्त में धरौं।
सुनं पढ़ं सु जे जना, निवार मोह बन्धना।
लहै अपार मोक्ष को, टूटे समस्त फन्धना ॥५॥
—प्र० च०, अनुवाद, पृष्ठ १।

(ग) नानकदास—अतहित चित सों जो पढ़े अथवा सुने सुनाइ।
प्रेम भगति भगवान की सहजे सो जनपाइ ॥१८४।
—प्र० च०, अनुवाद, पृष्ठ ११६॥

२. भारतेन्दु का प्रथम अनुवाद रत्नावली की भूमिका—

"हिन्दी भाषा में जो सब भांति की पुस्तकें बनने के योग्य हैं, अभी बहुत कम बनी हैं, विशेष कर के नाटक तो (कुंवर लक्ष्मण सिंह के शकुन्तला) के सिवाय कोई भी ऐसे नहीं बने हैं जिनको पढ़ के कुछ चित्त को आनन्द और इस भाषा का बल प्रकट हो। इस वास्ते मेरी इच्छा है कि दो चार नाटकों का तर्जुमा हिन्दी में हो जाय तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो।"

—भारतेन्दु नाटकावली, भाग १।

३. श्री महेशचन्द्र प्रसाद ने अपने अनुवाद की भूमिका में श्रीयुत रामचन्द्र वर्मा के संस्कृत नाटकों के हिन्दी में अनुवाद किये जाने के सम्बन्ध में वक्तव्य उद्धृत

४१९—इस प्रकार प्रबोधचन्द्रोदय के हिन्दी अनुवाद १६वी ई० शताब्दी से लेकर बीसवी ई० शताब्दी तक भी मिलते है। इन आध्यात्मिक एव साहित्यिक दृष्टिकोणो से किये गये प्रबोधचन्द्रोदय के अनुवादो की सख्या अन्य नाटको के अनुवादो की सख्या की तुलना मे सर्वाधिक है।[1] कुल मिलाकर विश्वस्त सूत्रो से ज्ञात उपलब्ध और अनुपलब्ध-अनुवादो की सख्या बीस है।

४२०. अनुवादो के अतिरिक्त एक और रूपान्तरित रचनाए हुई जिनमे कथावस्तु के मनोवैज्ञानिक सघर्ष का प्रभाव था दूसरी ओर प्रबोधचन्द्रोदय के नूतन 'रूपकात्मक' नाटकीय विधिविधान (टेकनीक) से समता रखने वाले कितने ही नाटको का सृजन भी हुआ। इन नाटको मे कुछ तो स्वतत्र रचनाएँ है और कुछ रचनाएँ अशत प्रभावित कही जा सकती है। इस भाति अनुवादो के अतिरिक्त प्रबोधचन्द्रोदय से प्रभावित एव समता रखने वाली एक विस्तृत परम्परा का निर्माण हिन्दी साहित्य मे १७वीं ई० शताब्दी से लेकर बीसवी ई० शताब्दी तक हुआ। उपर पूर्व विवेचन मे हम देख चुके है कि प्रबोधचन्द्रोदय के हिन्दी अनुवाद १६वी ई० शताब्दी से प्रारम्भ होकर २० वी ई० शताब्दी तक भी उपलब्ध होते है। इससे सिद्ध होता है कि सस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय की हिन्दी परम्परा १६वी ई० शताब्दी से लेकर २०वी ई० शताब्दी तक मिलती है।

४२१. प्रबोधचन्द्रोदय की इस हिन्दी परम्परा मे रूपान्तरित रचनाएँ १७वी ई० शताब्दी से प्रारम्भ होकर १९ ई० शताब्दी तक मिलती है। ये रूपान्तरित रचनाएँ प्रबोधचन्द्रोदय के परम ज्ञान तथा मोह विवेक नामक भावनाओ के मनोवैज्ञानिक सघर्ष से प्रभावित हुई थी। इसी प्रभाव से प्रेरित होकर इनका प्रणयन हुआ था।

४२२. प्रबोधचन्द्रोदय के रूपक नाटकीय विधि-विधान (टेकनीक) से

करते हुए लिखा है—"तब ब्रजभाषा के अतिरिक्त वर्तमान हिन्दी अर्थात् खड़ी बोली में भी एक अनुवाद का होना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत हुआ।"

—भूमिका, पृष्ठ ६।

१. अनूदित नाटकों में प्रबोधचन्द्रोदय के अनुवाद सबसे अधिक हुए हैं..... आलोचक इस नाटक का नाटकीय मूल्य चाहे जो आंकें, हिन्दी के नाटकों पर इसका प्रभाव अत्यधिक पड़ा है। पूर्व भारतेन्दु युग में इसके दस अनुवाद हुए हैं।

—भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य, अध्याय १, डा० गोपीनाथ तिवारी पृष्ठ ७।

प्रभावित नाटको की रचनाए १९ वी ई० शताब्दी से लेकर २०वी ई० शताब्दी तक मिलती है। इन रचनाओं के प्रेरणा स्रोत विभिन्न प्रकार के रहे हैं। उन प्रेरणा स्रोतो का वर्गीकरण करते हुए हम कह सकते है कि ये साहित्यिक राजनैतिक धार्मिक एव सास्कृतिक थे। साहित्यिक प्रेरणा द्वारा हिन्दी साहित्य के सुधार एव प्रचार के उद्देश्य से रचनाएँ हुईं। इन रचनाओं मे उद्देश्य की पूर्ति रूपक एव प्रतीक शैली के माध्यम से हुई।[1] देश की विशेष राजनैतिक परिस्थिति ने भी रूपक एव प्रतीक शैली के प्रयोग की ही प्रेरणा दी। भारतवासी परतत्रता के बन्धन मे बधे थे। जिससे देशभक्ति की वेगवती भावनाओ को प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त करने मे देश के साहित्यकार स्वतत्र न थे तत्कालीन शासन सत्ता का यह कठोर दमन साहित्यिको के लिए एक समस्या बन गया। इस कारण वे साहित्यिक राष्ट्रीय चेतना को व्यक्त करने के हेतु रूपक शैली के प्रयोग की ओर प्रवृत्त हुए। राष्ट्र को स्वतत्र करने के लिए बलवती देशभक्ति की भावना जागृत करने, दासता के दोषो को दूर करने का उत्साह भरने का कार्य तथा राजनैतिक अन्यायो और अत्याचारो का वर्णन रूपक शैली मे ही हुआ।[2] स्वतत्रता प्राप्ति के प्रयत्न मे भारत मे धार्मिक सुधार सम्बन्धी अनेक आन्दोलन भी हुए थे। उनमे से आर्यसमाज, ब्रह्म समाज जैसे आन्दोलनो ने साहित्यिको को अन्धविश्वासो धार्मिक व्यभिचारो तथा मतमतान्तरो को दूर करने की प्रेरणा दी थी। जिससे प्रेरित होकर साहित्यकारो ने उन धार्मिक समस्याओ को रूपक शैली के माध्यम से नाटको मे स्थान दिया। धार्मिको, दार्शनिको ने अपने धार्मिक दार्शनिक दृष्टिकोणो को व्यक्त करने के लिए रूपक, प्रतीक तथा प्रतिनिधि पात्रो के प्रयोग से युक्त नाटकों का निर्माण किया।[3] परतत्र भारत मे विदेशी सत्ता की एक नयी सभ्यता सस्कृति का समागम भी देश मे हुआ था। यह सयता भौतिकवादी सभ्यता थी। इससे पराधीन भारत के आध्यात्मिक सस्कृति अनुयायियो और आस्तिको के हृदय मे चकाचौध पैदा कर भारतवासियो

---

१. (क) "घर का न घाट का"--श्री जी० पी० श्रीवास्तव
(ख) "पत्र पत्रिका सम्मेलन"--वही

२. (क) 'भारत दुर्दशा'--नाटक, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
(ख) 'स्वर्ण देश का उद्धार'--नाटक, इन्द्रविद्या वाचस्पति

३. (क) 'जीवन मुक्त नाटक'
(ख) 'श्री निम्बार्क'
(ग) 'सत्य का सैनिक'

को भारत की प्राचीन आध्यात्मिक संस्कृति जर्जरित, सकुचित एव व्यर्थ सी प्रतीत होने लगी थी। साहित्यिको ने नवीन और प्राचीन संस्कृति के इस विरोध को प्रबोधचन्द्रोदय की रूपक शैली मे ही व्यक्त किया है।[1] इस प्रकार कृष्ण मिश्र की अपूर्व रचना 'प्रबोधचन्द्रोदय, के द्वारा हिन्दी साहित्य मे एक व्यापक और विशाल परम्परा का निर्माण हुआ है।

(ख) संस्कृत 'प्रबोधचन्द्रोदय' की हिन्दी परम्परा का सामान्य सर्वेक्षण

४२३. संस्कृत के 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक ने हिन्दी साहित्य को व्यापक रूप से प्रभावित कर प्रेरित किया है। इस प्रेरणा के परिणामस्वरूप (इससे सम्बधित) अनेक रूपो मे साहित्यिक रचनाए हुई। 'प्रबोधचन्द्रोदय' के आधार पर हिन्दी में प्रस्तुत रचनाओ को हम चार श्रेणियो मे विभाजित कर सकते है। जैसे :— अनुवाद,रूपान्तर, स्वतन्त्र रूपक नाटक और अशत प्रभावित नाटक। जिन रचनाओ ने केवल अनुवाद के उद्देश्य से लिखी जाकर, मूल से अपने सम्बन्ध को बनाये रक्खा है, उन्हे हम 'अनवाद' के नाम से अभिहित करते है। रूपान्तर की श्रेणी मे वे नाटक आते हैं जो लिखे तो गये है 'प्रबोधचन्द्रोदय' की कथावस्तु के आधार पर ही, परन्तु, जो अनुवाद के साथ कुछ मौलिक अश भी रखते है। स्वतन्त्र रूपक नाटक वे है जो पात्र , कथावस्तु तथा उद्देश्य मे सर्वथा मौलिक होते हुए भी केवल शैली की दृष्टि से 'प्रबोधचन्द्रोदय' मे साम्य रखते हैं। अशत प्रभावित नाटको की श्रेणी मे वे नाटक आते है, जिनमे अशत ही रूपक शैली के पात्रो का प्रयोग किया गया है।

४२४ उपर्युक्त दृष्टिकोणो से किये गये इन चारो प्रकारो का अब हम सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करेगे।

४२५. अनुवाद—'प्रबोधचन्द्रोदय' के उपलब्ध एव अनुपलब्ध हिन्दी अनुवादो की सख्या लगभग बीस है। ये अनुवाद अविकल तथा भावानुवाद–दोनो रूपो मे हुए है। इनके नाम कालक्रमानुसार निम्न प्रकार मे है —

१	मल्हकवि	–	सन् १५८४ ई०
२	जसवन्तसिह	–	सन् १६४३ ई०
३	अनाथदास	–	सन् १६६९ ई०
४	सुरति मिश्र	–	सन् १७०३ ई०

१. 'आधुनिक हिन्दी नाटक'—डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ७४, ७५।
कामना—जयशंकर प्रसाद।

५. ब्रजवासीदास	—	सन् १७६० ई०
६. घासीराम	—	सन् १७७९ ई०
७ आनन्द	—	सन् १७८३ ई०
८ गुलाबसिंह	—	सन् १७८९ ई०
९. नानकदास	—	सन् १७८९ ई०
१०. धोकल मिश्र[1]	—	सन् १७९९ ई० (अन्य रचना का)
११. हरिवल्लभ	—	सन् १८वी ई० शताब्दी
१२. शीतलाप्रसाद	—	सन् १८७९ ई०
१३ अयोध्याप्रसाद चौधरी	—	सन् १८८५ ई०
१४ जगन्नाथ शुक्ल	—	सन् १८७३ ई० (लिपिकाल)
१५ भुवदेव दुबे	—	सन् १८९४ ई० (१८९३ ई०)
१६. कार्ष्णि गोपालदास	—	सन् १९०८ ई०
१७ महेशचन्द्र प्रसाद	—	सन् १९३५ ई०
१८ विजयानद त्रिपाठी–	—	बीसवी शताब्दी
१९. पाखण्ड बिडम्बना[2]	—	सन् १८७२ ई०
२०. जनअनन्य कृत अनुवाद	—	(समय अनिश्चित)

४२६. **रूपान्तर**--'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक के आधार पर कुछ ऐसी भी रचनाएँ हुई हैं। जिनमे मूल के अनुवाद के साथ ही मौलिक प्रतिभा का मिश्रण भी है। इन रचनाओ मे 'प्रबोधचन्द्रोदय' के मोह और विवेक के सघर्ष का प्रभाव विशेष रूप से प्रतिलक्षित होता है। इन रूपान्तरित रचनाओ का विभाजन निम्न प्रकार से है —

१ 'मोह-विवेक-युद्ध' नाम की रचनाएँ।

२ अन्य नामो से लिखी गई रचनाएँ।

१. 'मोह विवेक युद्ध' नामक रचनाये तीन हैं —

(क) मोहविवेक युद्ध--कवि जन गोपालदास

समय सवत् १६५७ (सन् १६००ई०)

(ख) ,, — कवि लालदास समय स० १७६७ (सन् १७१०ई०)

(ग) ,, — कवि बनारसीदास (समय अनिश्चित)

---

१. समय निश्चित ज्ञात नहीं है।

२. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र---एक अंक का अनुवाद।

२ अन्य नामो से की गयी रचनाएँ केवल दो है :—

(क) 'विज्ञान गीता' — कवि केशवदास (समय सन् १६१० ई०)

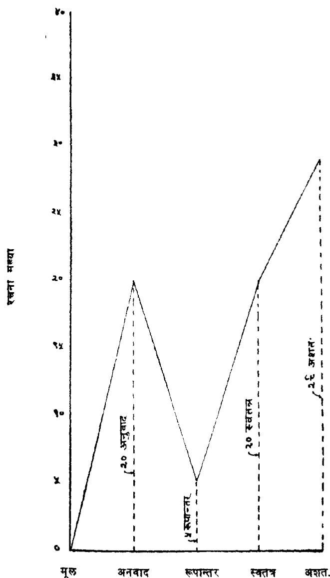
(ख) 'प्रबोधद्युमण्युदय' — प० उमादयाल मिश्र (समय सन् १८९२ ई०)

४२७. **स्वतत्र रूपक नाटक**—प्रबोधचन्द्रोदय के विधिविधान (टेकनीक) से समता रखते हुए कुछ ऐसी रचनाएँ भी प्रस्तुत हुई जिनमे मौलिक कथानक और मौलिक पात्रो की सृष्टि मौलिक उद्देश्य से की गई। स्वतत्र उद्देश्य से इन रचनाओका प्रणयन हुआ। इन स्वतत्र रचनाओ का विवरण इस प्रकार है —

१	'भारत दुर्दशा'	भारतेन्दु	सन् १८७६ ई०
२	'भारत ललना'	खग बहादुर मल्ल	सन् १९०६ ई०
३	'लीला विज्ञान-विनोद नाटक'	केशवानन्द स्वामी	सन् १९११ ई०
४	'विज्ञान नाटक'	शकरानन्द स्वामी	,,
५	'विज्ञान विजय नाटक'	,,	सन् १९१३ ई०
६	'अनोखा बलिदान'	उमाशकर	सन् १९१५ ई०
७	'मारवाडी धी'	एक जातीय हितैषी	सन् १९१७ ई०
८	'ज्ञानगुण दर्पण नाटक'	श्री शकरानन्द स्वामी	सन् १९१९ ई०
९	'स्वर्ण देश का उद्धार'	श्री इद्र विद्यावाचस्पति	सन् १९२१ ई०
१०	'मायावी'	ज्ञानदत्त सिद्ध	सन् १९२२ ई०
११.	'हिन्दू'	जमुनादास मेहरा	सन् १९२२ ई०
१२	'पत्र पत्रिका सम्मेलन'	जी० पी० श्रीवास्तव	सन् १९२५ ई०
१३	'न घर का न घाट का'	,,	,,
१४	'कामना'	जयशकर प्रसाद	सन् १९२७ ई०
१५.	'डिक्टेटर'	बेचन शर्मा 'उग्र'	सन् १९३७ ई०
१६	'छलना'	भगवतीप्रसाद बाजपेयी	सन् १९३९ ई०
१७	'मुद्रिका'	सद्गुरु शरण अवस्थी	सन् १९३९ ई०
१८	'सन्तोष कहा'	सेठ गोविन्ददास	सन् १९४५ ई०
१९	'सत्य का सैनिक'	श्री नारायण बिन्दु	सन् १९४८ ई०
२०	'भारत राज'	लक्ष्मीकान्त	सन् १९४९ ई०

४२८. हिन्दी साहित्य मे कुछ ऐसी रचनाएँ भी मिलती हैं जिनमे अशत· प्रबोध-चन्द्रोदय के विधि विधान के (टेकनीक) के प्रयोग मिलते हैं। इन रचनाओ का प्रणयन राजनैतिक सामाजिक और धार्मिक सुधार के उद्देश्य से हुआ।

प्रबोधचन्द्रोदय की परम्परा को हम निम्न रेखाचित्र द्वारा व्यक्त कर सकते हैं :—



प्रबोधचन्द्रोदय के अनुवादो के पश्चात् रूपान्तर स्वतंत्र तथा प्रासगिक रचनाओ मे मौलिकता अधिक विकसित होती गई है।

४२९. इस प्रकार हिन्दी नाटक साहित्य मे प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के आध्यात्मिक दृष्टिकोण और विधि विधान (टेकनीक) के प्रभाव से रचित तथा समता रखने वाला विशाल साहित्य उपलब्ध होता है। जिसका अधिक से अधिक अनुसन्धान करके अध्ययन करने का प्रयत्न किया गया है। किन्तु फिर भी विस्तार के हेतु अभी पर्याप्त अवकाश है।

४३०. अब हम आगे के अध्यायो मे क्रमश अनुवाद रूपान्तर स्वतत्र और अशत प्रभावित रचनाओं का उपलब्ध सामग्री के आधार पर अध्ययन करेंगे।

पंचम अध्याय

संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय के हिन्दी-अनुवादों का अध्ययन

अनुवादो का परिचय

४३१. सस्कृत 'प्रवोधचन्द्रोदय' नाटक की रचना ग्यारहवी ई० शताब्दी मे ही हो गई थी, किन्तु हिन्दी मे इसके अनुवाद पाच शताब्दी पश्चात् ईसा की सोलहवी शताब्दी से प्रारम्भ हुए। इसका प्रथम अनुवाद १५४४ ई० मे हुआ। यह अनुवाद कवि मल्ह का है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारो की प्राय यह धारणा रही है कि सन् १६४३ ई० मे महाराज जसवन्तसिह द्वारा अनूदित सस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय का अनुवाद सर्वप्रथम है। किन्तु राजस्थान सग्रहालय से उपलब्ध मल्ह कवि (१५४४ ई०) की कृति ने, इस धारणा के स्थान पर नवीन धारणा स्थापित की है। वह यह कि मल्ह कवि कृत अनुवाद सर्वप्रथम तथा जसवन्तसिह का द्वितीय है।[1]

४३२. अनेक सग्रहालयो, सस्थाओ, सभाओ, समितियो तथा विद्वानो से सम्पर्क स्थापित[2] करने पर सस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय के बारह हिन्दी-अनुवाद उपलब्ध हो सके है। लगभग आठ हिन्दी अनुवादो के सम्बन्ध मे केवल सूचना ही प्राप्त है। उनकी प्रतियाँ अप्राप्य है। इस प्रकार सस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय के उपलब्ध हिन्दी अनुवाद, कुल मिलाकर, बीस है। उपलब्ध अनुवादो के अनुवादको के नाम काल क्रमानुसार निम्न प्रकार से हैं —

१. मल्ह कवि	–	सन् १५४४ ई०
२ जसवन्तसिह	–	सन् १६४३ ई०
३ ब्रजवासी दास	–	सन् १७६० ई०
४ गुलाबसिह	–	सन् १७८९ ई०
५ नानकदास	–	सन् १७८९ ई०

---

१. मल्ह कवि कृत अनुवाद के अध्ययन मे द्रष्टव्य,

२. प्रत्येक अनुवाद के विस्तृत अध्ययन में संकेत दिया गया है।

६. घोंकल मिश्र — सन् १७९९ ई०
७ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र — सन् १८७२ ई०
८. अयोध्याप्रसाद चौधरी — सन् १८८५ ई०
९ भुवदेव दुबे — सन् १८९४ ई०
१० कार्ष्णि गोपालदास — सन् १९०८ ई०
११ महेश्चन्द्र प्रसाद — सन् १९३५ ई०
१२. विजयानद त्रिपाठी — बीसवी ई०

४३३. इस प्रकार १६वी ई० शताब्दी मे लेकर २०वी ई० शताब्दी तक जो अनुवाद हुए, उनमे से उपलब्ध उपर्युक्त बारह अनुवादो का अध्ययन आगे विस्तार से प्रस्तुत किया गया है और यहा अनुपलब्ध अनुवादो के अनुवादको के नाम ही दिये गये है —

१. अनाथदास
२ सुरति मिश्र
३. घासीराम
४ आनन्द
५ हरिवल्लभ
६ शीतला प्रसाद
७ जगन्नाथ शुक्ल
८ जन अनन्य

४३४. **ऊपर लिखे** —उपलब्ध तथा अनुपलब्ध—बीस हिन्दी-अनुवादों के अतिरिक्त, सस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय के अनुवाद अन्य भाषाओ मे भी हुए है। उपलब्ध अनुवादो का विस्तृत अध्ययन करने के पश्चात् हम अनुपलब्ध अनुवादो तथा अन्य भाषा के अनुवादो के सम्बन्ध मे विचार करेगे।

४३५. **उपलब्ध अनुवादों के प्रकार**—उपलब्ध अनुवादो का अध्ययन करने के पश्चात् हमे ज्ञात होता है कि ये शैली की दृष्टि से तीन प्रकार के है —

१ पूर्णतया गद्य
२ पूर्णतया पद्य
३. मिश्रित

(१) पूर्णतया गद्य मे उपलब्ध होने वाले अनुवादो मे पद्य का प्रयोग नही किया गया है। ये अनुवाद प्रारम्भ से अन्त तक गद्य में ही है। इस प्रकार के केवल दो अनुवाद है। एक भुवदेव दुबे और दूसरा अयोध्याप्रसाद चौधरी का है।

(२) पूर्णतया पद्यात्मक अनुवादो मे अनुवादकारो ने गद्य का प्रयोग नही

किया है। ये अनुवाद, पूर्ण रूप से पद्यात्मक शैली मे ही लिखे गये है। इनमे विभिन्न प्रकार के छन्दो का प्रयोग करते हुए पद्य मे ही, सम्पूर्ण नाटकीय कथा कह दी है। इस प्रकार के अनुवाद पाच हैं जो मल्ह कवि, ब्रजवासीदास, घोकल मिश्र, गुलाबसिह तथा नानकदास के है।

(३) तीसरे प्रकार के मिश्रित अनुवादो मे गद्य और पद्य दोनो ही प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया गया है। इनमे दोनो ही प्रकार की शैली के मिश्रित होने के कारण हमने इनको मिश्रित शैली के नाम से विभक्त किया है। इस मिश्रित शैली के पाच अनुवाद —जसवन्तसिह, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, गोपालदास, महेशचन्द्र प्रसाद तथा विजयानन्द त्रिपाठी —के है।

४३६ ऊपर लिखी तीनों प्रकार की शैलियो के अनुवाद सक्षेप मे निम्न प्रकार से है —

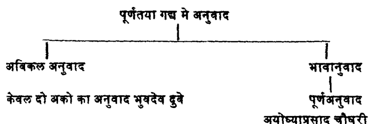
अनुवाद

१ पूर्णतया गद्य मे	२ पूर्णतया पद्य मे	३ मिश्रित
१ भुवदेव दुबे-अनु०	१ मल्ह कवि कृत-अनु०	१ जसवन्तसिह -अनु०
२. अयोध्याप्रसाद चौधरी -अनु०	२ ब्रजवासीदास-अनु०	२ भारतेन्द हरिश्चन्द्र-अनु०
	३ घोकल मिश्र-अनु०	३ कार्ष्णि गोपालदास-अनु०
	४ गुलाबसिह -अनु०	४ महेशचन्द्र प्रसाद-अनु०
	५ नानकदास -अनु०	५ विजयानद त्रिपाठी-अनु०

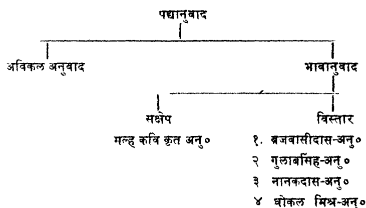
४३७ विषय प्रतिपादन की दृष्टि से, उपर्युक्त तीनो शैलियो के अनुवाद, हमे दो प्रकार के मिलते है। जिन्हे हम अविकल अनुवाद तथा भावानुवाद कह सकते है। अविकल अनुवादो मे, अनुवादको ने मूल के ही भावो का ज्यो का त्यो अनूदित कर दिया है। मूल की ही भाति इनमे गद्य और पद्य मिश्रित शैली का प्रयोग और नाटकीय सकेत है। किन्तु भावानुवादो मे मूल नाटक के भावो को सक्षेप वा विस्तार से अनूदित किया गया है। किन्ही भावानुवादो की शैली मे भी मूल नाटक की शैली से अन्तर उपस्थित हो गया है, मूल रचना नाटक के रूप मे है किन्तु ये भावानुवाद केवल पद्य बद्ध अथवा पूर्ण रूप से गद्य रूप मे भी मिलते हैं।

४३८ गद्य शैली के दो अनुवादो मे से कोई भी अविकल अनुवाद नही है। दोनो ही भावानुवाद है। इनमे से एक अनुवाद भुवदेव दुबे ने केवल दो अको का ही भावानुवाद प्रस्तुत किया है। दूसरे अयोध्याप्रसाद चौधरी ने मूल नाटक के भाव

को संक्षेप से अनूदित कर, प्रसंगवश आयी हुई एक पौराणिक कथा का विशेष विस्तार से वर्णन किया है। इस भांति गद्य शैली मे लिखे अनुवादों को हम अविकल अनुवाद तथा भावानुवाद की दृष्टि से निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं :—

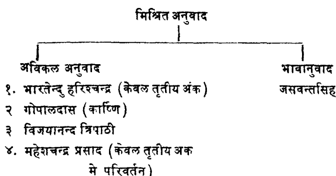


४३९. पद्यात्मक शैली मे लिखे गये अनुवाद भी सभी भावानुवाद हैं। इनमे कोई भी अविकल अनुवाद नही हैं। ये भावानुवाद पाच हैं। इनमे से मल्ह कवि के भावानुवाद मे मूल नाटक के भाव को सक्षेप से व्यक्त किया गया है। अन्य चार भावानुवादों मे अनुवादकों की प्रवृत्ति विस्तार की ओर है। अर्थात् —

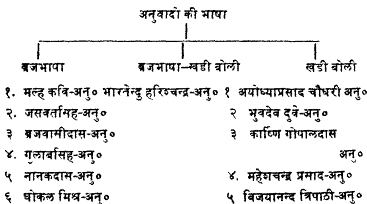


४४० गद्य-पद्य-मिश्रित शैली मे लिखे गये अनुवादो मे से चार अनुवाद अविकल अनुवाद है। ये चारो अविकल अनुवाद-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, कार्ष्णि गोपालदास, विजयानन्द त्रिपाठी तथा महेशचन्द्र प्रसाद कृत हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने प्रबोध-चन्द्रोदय के केवल तृतीय अक का अनुवाद किया है। महेशचन्द्रप्रसाद ने अविकल रूप मे अनुवाद प्रस्तुत करते हुए भी केवल तृतीय अक मे कुछ मौलिक अन्तर उपस्थित किया है। यह अन्तर मतमतान्तरों की आलोचना के प्रसग मे है और इसलिए किया गया है कि जैनमत की मूलनाटक मे की गई आलोचना की कटुता कम हो जाय और अनुवादक के समाज की धार्मिक भावना के अनुकूल बन सकें।

मिश्रित शैली मे लिखे गये अनुवादो मे से केवल एक जसवन्तसिंह कृत अनुवाद, भावानुवाद है इसमे मूल के भावो को संक्षेप से प्रस्तुत किया गया है। उपर्युक्त तथ्य निम्न विवरण से स्पष्ट है :—



४४१. **अनुवादों की भाषा**—भाषा की दृष्टि से भी उपलब्ध अनुवादो का अध्ययन आवश्यक है। क्योकि तीनो शैलियों मे लिखे गये, ये अविकल और भावानुवाद खडी बोली तथा ब्रजभाषा दोनो मे ही लिखे गये हैं। १६ वी० ई० शताब्दी से लेकर १८वी ई० शताब्दी तक लिखे गए अनुवादो मे प्राय ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है। उन्नीसवी तथा बीसवी ई० शताब्दी के अनुवाद खडी बोली के माध्यम से अनुदित है। ब्रजभाषा के अनुवाद छ है और खडी बोली के पाच, जैसा कि नीचे के वर्गीकरण से स्पष्ट है :—



४४२. ब्रजभाषा के ये अनुवाद नागरी लिपि के अतिरिक्त गुरुमुखी लिपि मे भी लिखे गये हैं। ब्रजभाषा के उपलब्ध छ अनुवादो में से पाँच तो अनुवादको द्वारा

नागरी लिपि मे ही रचित हैं। केवल गुलाबसिंह कृत एक अनुवाद के मुख पृष्ठ[1] से ज्ञात होता है कि गुलाबसिंह ने गुरुमुखी लिपि मे मूल नाटक का अनुवाद ब्रजभाषा के माध्यम से किया था। इसके अनन्तर प० गुरुप्रसाद 'उदासीन' ने ब्रजभाषा के इस अनुवाद की गुरुमुखी लिपि को नागरी लिपि मे परिवर्तित कर दिया था। इस प्रकार गुलाबसिंह द्वारा गुरुमुखी लिपि मे रचित ब्रजभाषा का अनुवाद पं० गुरुप्रसाद 'उदासीन' के प्रयत्न से नागरी लिपि मे उपलब्ध होता है।

४४३. इस प्रकार शैली, विषय प्रतिपादन, भाषा और लिपि की दृष्टि से उपलब्ध अनुवादो का वर्गीकरण कर लेने के उपरान्त अब हम इन अनुवादो की आधार-भूमियो पर विचार करेंगे।

४४४. अनुवादो का आधार—उपलब्ध बारह अनुवादो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ये सभी मूल नाटक, प्रबोधचन्द्रोदय, पर आधारित नही है। कुछ अनुवाद मूल से सम्बद्ध हैं। और कुछ ऐसे अनुवाद भी है जो मूल नाटक से सम्बद्ध होते हुए भी अन्य रचना या रचनाओ से भी प्रभावित हुए है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे अनुवाद भी है, जिनका मूल से सम्बन्ध नही है। ये प्रसिद्ध अनुवादो से प्रभावित मात्र होकर, उनके आधार पर ही लिखे गये है। इस भाति उपलब्ध आधारो के निम्न तीन प्रकार है —

१ मूल प्रबोधचन्द्रोदय का आधार।

२ मूल प्रबोधचन्द्रोदय और अन्य रचना का आधार।

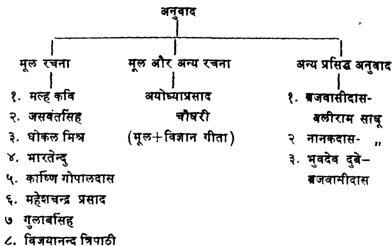
३ प्रसिद्ध अनुवाद का आधार।

मूल नाटक का आधार लेकर हिन्दी मे आठ अनुवाद लिखे गये हैं। ये अनुवाद मल्ह कवि, जसवन्तसिंह, घोकल मिश्र, भारतेन्दु, कार्ष्णि गोपालदास, महेशचन्द्र प्रसाद, गुलाबसिंह और विजयानन्द त्रिपाठी के अनुवाद है। दूसरे प्रकार का आधार लेकर, अयोध्याप्रसाद चौधरी का अनुवाद लिखा गया है। इसके प्रारम्भ मे मूल नाटक का अनुवाद है, किन्तु बाद मे केशव की प्रसिद्ध 'विज्ञान गीता' से प्रभावित होकर उससे भी कुछ अश ग्रहण किया गया है। तीसरे प्रकार का आधार लेकर हिन्दी मे तीन अनुवाद किये गये। इनमे अनुवादकों ने मूल के प्रसिद्ध अनुवादो को आधार बनाया है। मूल से इनका परिचय नही था। ब्रजवासीदास और नानकदास ने बलीराम साधु के यमन भाषा के अनुवाद के आधार पर अनुवाद किया था। भुवदेव दुबे ने ब्रजवासीदास के पद्य अनुवाद के आधार पर गद्य

---

१. देखिये—गुलाबसिंह के अनुवाद का अध्ययन। पृष्ठ...

मे लिखा है। इन्होने ब्रजवासीदास के पद्यात्मक अनुवाद के प्रथम दो अंकों को एक प्रकार से गद्य में नाटक का रूप दे दिया है। संक्षेप मे यह विवरण निम्न प्रकार है।



अब हम उपलब्ध अनुवादो का कालक्रम के अनुसार अध्ययन करेगे।

मल्ह कवि कृत अनुवाद

४४५ 'प्रबोधचन्द्रोदय' के हिन्दी अनुवादो की परम्परा का प्रारम्भ हम मल्ह कवि के अनुवाद[1] से मान सकते है। एक समय था जब हिन्दी साहित्य के इतिहासकारो ने महाराजा जसवन्तसिह कृत 'प्रबोधचन्द्रोदय' के अनुवाद को इस विषय की प्रथम रचना माना था।[2] परन्तु, अब जब कि उनसे भी पूर्व के मल्ह कवि का

---

१. मुझे यह प्रतिलिपि श्री कासलीवाल, जयपुर के सौजन्य से प्राप्त हुई।

२. (क) प० रामचन्द्र शुक्ल––हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २१२।

(ख) बाबू ब्रजरत्नदास––हिन्दी नाटक साहित्य, पृष्ठ ४६।

(ग) डा० सोमनाथ गुप्त––पूर्व भारतेन्दु नाटको का परिचय, पृष्ठ ४० तथा––हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४।

(घ) डा० दशरथ ओझा––हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास, पृष्ठ १५८, १४५।

(ङ) डा० गोपीनाथ तिवारी––भारतेन्दु नाटक साहित्य, पृष्ठ ८।

(च) बाबू गुलाबराय––हिन्दी नाट्य विमर्श, पृष्ठ १७।

अनुवाद हमें उपलब्ध हो रहा है, उपरोक्त मान्यता में परिवर्तन हो गया है। मल्ह कवि के इस अनुवाद की एक प्राचीन प्रति जयपुर के दीवान बधीचन्द जी के मन्दिर के ग्रन्थागार मे सुरक्षित है। यह ग्रन्थ ८×६ इंच के आकार वाले २५ पत्रो मे समाप्त हुआ है तथा उक्त मन्दिर के ग्रन्थागार की वेष्टन सख्या ८९९ की पुस्तक सख्या ५८९ मे रखा है।

४४६. ग्रन्थ की भूमिका मे उल्लिखित—

सोलह सै सम्वत जब लागा। तामहिं वरष एक अर्द्ध भागा।
कातिक कृष्ण पक्ष द्वादसी। ता दिन कथा जु मन में बसी॥११॥

—अनुवाद, पृष्ठ २

इन दोनों चौपाइयों के आधार पर इसका रचना काल (सन् १५४४ ई० (स० १६०१) कार्तिक माम कृष्ण पक्ष, द्वादशी सिद्ध होता है।

४४७ यद्यपि इस सम्भावना के आधार पर कि किसी प्रतिलिपिकार ने उक्त कृति को प्राचीन सिद्ध करने के लिए उपरोक्त दोनो चौपाइयो को लिख दिया हो, उपर्युक्त तिथि को प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रामाणिक रचना काल के रूप मे मान्यता नही प्रदान की जा सकती, परन्तु युग प्रधान जिनचन्द्र 'सूरि' नामक ग्रन्थ मे प्रकाशित, मल्ह कवि कृत कर्मचन्द्र बच्छावत्' का दान सम्बन्धी पद्य जो कि स० १६४९ मे लिखा गया था।[1] इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि स० १६४९ के पूर्व मल्ह कवि वर्तमान थे। इसके अतिरिक्त इनके परवर्ती बनारसीदास[2] के 'मोह विवेक युद्ध, की भूमिका मे उल्लिखित प्रबोधचन्द्रोदय के तीन अनुवादो में प्रथम स्थान मल्ह कवि को ही दिया गया है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि गोपालदास[3] जो कि पुष्ट प्रमाणों के आधार पर स० १६५७ के सिद्ध हो चुके हैं—से पुराने हैं। वस्तुत. जब तक हमें कोई पुष्ट विरोधी प्रमाण नही मिलता—तब तक उपरोक्त अनुवाद मे निर्दिष्ट रचनाकाल को न मानने मे किसी प्रकार का औचित्य नही

---

१. 'पूर्व भये सुकवि मल्ह, लालदास गोपाल'—बनारसीदास—'मोह विवेक युद्ध' की भूमिका, पृष्ठ ३,४ पर कस्तूरचन्द का सलीवाल के द्वारा निर्दिष्ट नाहटा जी का मत।

२. बनारसीदास के सम्बन्ध में उपलब्ध सामग्री की समीक्षा—छठे अध्याय 'बनारसीदास' शीर्षक में देखिये।

३. गोपालदास—के रचना के सम्बन्ध में भी—छठे अध्याय का—'गोपालदास' शीर्षक देखिये।

दिखाई पडता। इस प्रकार मल्ह कवि प्रबोधचन्द्रोदय के सर्वप्रथम हिन्दी अनुवादक है।

४४८. मल्ह कवि ने अपने अनुवाद मे जो कुछ अपना परिचय दिया है उसके अनुसार वे 'अन्तर्वेद' के रहने वाले थे, उनके गुरु का नाम 'खेमचन्द' तथा स्वय उनका एक नाम मथुरादास था। इनके पिता का रखा हुआ दूसरा नाम देवीदास था, और तीसरा नाम मल्ह कवि था। जैसा कि निम्नलिखित चौपाइयो से सिद्ध होता है —

जब बर खेमचंद गुर दीयो, तब आरंभ ग्रंथ को कीयो ।।६।।

\+ + +

मथुरादास नाम विस्तारधो, देवीदास पिता को धारधो।
अतरबेद देस मे रहै, तीजं नाम मल्ह कवि कहै।।८।।

—प्र० च०, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ १।

इन्होने अपने अनुवाद का उद्देश्य बताये हुए 'कुवरसेन जी पठनार्थ' लिखा है जिससे प्रतीत होता है कि किन्ही कुवरसेन जी के अध्ययन के लिए यह अनुवाद किया गया था। यह कुवरसेन जी कौन थे इसका कुछ भी सकेत कवि ने नही दिया है। बहुत सम्भव है यह मल्ह कवि का आश्रयदाता रहा हो।

४४९ इस अनुवाद का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षको के अन्तर्गत करेंगे—

१ **कथा**—मूल की प्रस्तावना मे सूत्रधार ने नाटक रचना का जो प्रसग बताया है उस प्रसग मे अनुवाद में बतलाए प्रसग मे अन्तर है। प्रस्तुत अनुवाद मे राजा कीर्ति वर्मा नट से शान्तरस का अभिनय करने को कहता है। इस रस के अभिनय से अनभिज्ञ नट दक्षिण देश मे जाकर एक तपस्वी की सहायता से प्रस्तुत प्रबोधचन्द्रोदय नाटक लाकर राजा को उसका सफल अभिनय दिखाता है। प्रथम अक मे काम, रति और विवेक सुमति की वार्ता मूल का भावानुवाद ही है। द्वितीय अक मे दम्भ, अहकार तथा महामोह और चार्वाक की वार्ता मूल का भावानुवाद है। मोह के पक्षपाती क्रोध, लोभ, तृष्णा, विभ्रमावती और मिथ्या-दृष्टि आदि का भी मूल का कुछ सक्षिप्त सा भावानुवाद ही है। तृतीय अक मे श्रद्धा की खोज मे तीनो से सम्बन्धित प्रसग का भावानुवाद है। मूल के तृतीय अक के भावानुवाद के अतिरिक्त मूल के चौथे अक की कथा भी इसी मे समाबिष्ट हो गई है। जैसे भैरवी विद्या का श्रद्धा को पकडने का, विष्णुभक्ति द्वारा रक्षा और विवेक को सन्देश भेजने का प्रसग। चतुर्थ अक मे विवेक विष्णुभक्ति की आज्ञानुसार सेना सुसज्जित करता है। पाचवें अंक मे सेना सुसज्जित करता हुआ विवेक काशी मे माधो की पूजा के बाद युद्ध

को जाता है, महामोह भी आता है, दोनो मे युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। छठे अक मे युद्ध समाप्त होता है, मन को सरस्वती उपदेश देती है। उपनिषद् के सहयोग से प्रबोधोदय और विद्या के जन्म का भी सक्षिप्त सकेत है। कथा के पाचवे अक की कथा छठे अक मे आ गई है। मूल नाटक मे मन और सरस्वती का प्रसग पाचवे अक मे है।

२ अंक—प्रस्तुत अनुवाद मे छ अक हैं। इन छ अको की कथा मे मूल कथा के प्रसंगो के अकानुसार अन्तर हो जाने पर भी कथा-क्रम और घटना-क्रम मे अन्तर नही है। कथा मूल के ही क्रमानुसार है। प्रत्येक अक मे समाप्ति की सूचना है[1]—जब कि प्रारम्भ की नही है।

३ वर्णन—कथा और वर्णनो मे विस्तार की ओर प्रवृत्ति नही है। वर्णन मूल के भावानुवाद है। दार्शनिक तत्वो का अनुवाद संक्षिप्त है। उपनिषद् की यात्रा का और यात्रा मे मिले विभिन्न दर्शनो का वर्णन नही है।

४ पात्र—केवल एक मौलिक पात्र 'चपला' है। मूल के ही कुछ पात्रो का प्रयोग नामान्तर से किया गया है—मूल की 'मति' प्रस्तुत अनुवाद मे सुमति है। तथा मूल का अहकार-अनुवाद का अह है। इसी प्रकार—

मूल का दम्भ—अनुवाद का डिम्भ
,, बौद्ध साधु— ,, भिखू
,, जैन धर्म— ,, खोना
,, कापालिक— ,, जगम

५ भाषा—इसकी भाषा ब्रजभाषा है। जो सरल और स्पष्ट है। उदाहरण के लिये निम्न अश को ले सकते है —

> जो रति तूं बूझति है मोहि, ब्योरो सबै सुनाऊ तोहि।
> बे विमात भैया हैं मेरे, ते सब सुजन लागें तेरे।।५१।।
> पिता एक माता द्वै गांऊ, यह ब्योरो आगे समझाऊं।
> ज्यों राघो अरु लंकापति राऊ, यों हम ऊन भयो जुध को चाऊ।।५२।।

६ शैली—प्रस्तुत अनुवाद मे दोहा और चौपाई छन्दो का प्रयोग है। अलकारो मे कवि ने कुछ मौलिक उपमाओ का प्रयोग भी किया है। जैसे—मूल मे विद्या की उपमा धुए से दी गई है। जब कि अनुवाद में कवि ने काठ से दी है। जो निम्न प्रकार से है —

---

१. इति श्री मल्ह कवि विरचिते प्रबोधचन्द्रोदय नाटके षष्ठमो अंकः समाप्तः ६, पृष्ठ ४८।

"ज्यों काठ में अग्नि उपजाई,
उपजत ही फिर काठहि खाई।"

—प्र० च०, अनुवाद, पृष्ठ ७।

७ नाटकीय संकेत—प्रस्तुत अनुवाद पूर्णतया पद्यबद्ध है। किन्तु फिर भी पद्य मे ही पर्याप्त नाटकीय सकेत दिये गये हैं। लम्बे वर्णनो, दृष्टान्तो, भाषणो और उपदेश रूप वार्तालापो का व्यवधान भी नही है। उदाहरण के लिये रगमंच की तैयारी का वर्णन दृष्टव्य है —

तब सब सभा सवारी राइ, नन्हें बड़े जू बैठे आय।
रोपी बीच जमुनिका जहां, कालबूत नरनि कस्यो तहां ॥३३॥
तामें तैं नर निकस्यो धाय, आसिका दई सभा में आय।
सभा मांहि जितनों जस करौं, कथा बढ़ै सुसरय बितरौं ॥३४॥
तब नटवें अपनी नटी बुलाई, सभा जमुनिका खोलि दिखाई।
तब नट बएणि सुनावै ताहि, कृत ब्रह्म राजा बड आहि ॥३६॥

—प्र० च०, अनुवाद, पृष्ठ ४।

नैपथ्य का प्रयोग भी कवि ने यथास्थान किया है। कामदेव के नेपथ्य मे से बोलने का स्पष्ट उल्लेख है —

जैसे पृथ्वी जीती राय, त्यों मोह बिवेक ने घल्यो खाय।
यह सुनि कोप काम परजरयो, जानो अग्नि पुंज घृतपर्यो ॥४३॥
माहि जमुनिका बोल्यो सोई, अविहत पापी भाख्यो कोई।
घूरम नैन मत तिहुंबारा, तिहूं लोक को जीतन हारा ॥४४॥

—प्र० च०, पृष्ठ ५।

कवि ने काव्य मे अभिनय संकेत भी निम्न रूप मे दिये हैं —

वस्त विचार राइ में गयो, नमस्कार करि ठाढो भयो।
परं पाय औद बिनों कराई, कौन काज हो बोल्यो राई ॥१८॥

—प्र० च०, अनुवाद, पृष्ठ ३२।

४५० मल्ह कवि का यह अनुवाद, अविकल अनुवाद न कहा जाकर भावानुवाद ही कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए पृष्ठ ३१ पर के इस अश को हम ले सकते हैं :—

भांति अनूप पटंबर आयो, मांस पिंड को ले पहिरायो।
वाको ब्रह्म बिधा तुम जानो, अंतरद्रिष्ट न कबहूं आनो ॥१७॥

—प्र० च०, अनुवाद, पृष्ठ ३१।

ये उपर्युक्त पंक्तियां मूल के पृष्ठ १४३ के इस अंश की छाया ही है :—

बालश्चित्रवुकूलमल्पमतिभिर्नार्यामिहो कल्पितं
बाह्यान्तः परिपश्यतां तु निरयो मारीति नाम्ना कृतः ।।९।।
—प्र० च०, चतुर्थ अंक।

इस प्रकार संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय का यह प्रथम भावानुवाद ही है।

'जसवन्तसिंह' कृत अनुवाद

४५१ जैसा कि हमने अभी मल्ह कवि के अनुवाद का अध्ययन करते समय देखा है, प्रबोधचन्द्रोदय के हिन्दी अनुवादो मे कालक्रम की दृष्टि से मल्ह कवि कृत अनुवाद प्रथम है। महाराजा जसवन्तसिंह का अनुवाद[1] जो अब तक प्रथम माना जाता रहा है, अब द्वितीय स्थान का अधिकारी हो गया है। इतिहासकारो के मतानुसार महाराजा जसवन्तसिंह जी का जन्म सम्वत् १६८३ (सन् १६२६ ई०)[2] और मृत्यु स० १७३५ (सन् १६७८ ई०) है।[3] इनके पिता का नाम गजसिंह था, जिनकी मृत्यु १६३८ ई० मे हुई थी।[4] यह अपने पिता के द्वितीय पुत्र थे। पिता ने इनके बड़े भाई को राज्य न देकर योग्य होने के कारण इन्ही को राज्य दिया। ये पिता की मृत्यु (सन् १६३८ ई०) के उपरान्त ही राजगद्दी पर बैठे होगे। ऐसा ऐतिहासिको का अनुमान है। लगभग ४० वर्ष तक राज्य करने के बाद सन् १६७८ मे युद्ध मे वीरगति को प्राप्त हुए।[5] वीर होने के साथ ही ये सच्चे सहृदय भी थे। इनके द्वारा निर्मित

---

१. जोधपुर महाराज के पुस्तकालय से प्राप्त प्रतिलिपि।

२. (क) 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'—पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ २११।
(ख) 'हिन्दी नाट्य साहित्य'—बा० ब्रजरत्नदास, पृष्ठ ४६।
(ग) 'पूर्व भारतेन्दु नाटक'—डा० सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ ४०।

३. 'एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इंडिया'—आर० सी० मजूमदार, भाग २, पृष्ठ ५०१।
'कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया द मुगल पीरियड, भाग ३।
'ग्लोरीज आफ मारवार एण्ड द ग्लोरियस राठोर्स—पंडित विशेश्वरनाथ रेउ, पृष्ठ ३५।

४. 'ग्लोरीज आफ मारवार एण्ड द ग्लोरियस राठोर्स—पंडित विशेश्वरनाथ रेउ, पृष्ठ २९।

५. "हिन्दी साहित्य का इतिहास"—पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ २१२।
"पूर्व भारतेन्दु नाटक"—डा० सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ ४०।

ग्रन्थो मे—भाषा-भूषण, अपरोक्ष-सिद्धान्त, अनुभव-प्रकाश, आनन्द विलास, सिद्धान्त बोध, सिद्धान्त सार और प्रबोधचन्द्रोदय आदि है। इनमे से प्रथम को छोड कर अन्य सभी न्थ आध्यात्मिक है। अन्तिम ग्रन्थ 'प्रबोधचन्द्रोदय' का हिन्दी अनुवाद है, जो कि हमारा आलोच्य विषय है।

४५२ महाराजा जसवन्तसिह कृत यह—प्रबोधचन्द्रोदय—का हिन्दी अनुवाद ब्रजभाषा के गद्य और पद्य दोनो मे है। पद्यो मे भी कवित्तो और दोहो का प्राचुर्य है। यह अनुवाद मूल ग्रन्थ का अविकल अनुवाद न कहा जाकर भावानुवाद ही कहा जायगा। प्रारम्भ का कवित्त और नट की वार्त्ता मात्र पढ कर यह भ्रम होता है कि यह मूल का अविकल अनुवाद है। किन्तु आद्योपान्त पढने पर ज्ञात होता है कि यह धारणा निर्मूल है। वास्तव मे मूल की कथा को गद्य के माध्यम से यहा पर सक्षेप मे उपस्थित कर दिया गया है जिसको पढने पर ऐसा प्रतीत होता है कि कोई सनातनी विद्वान् कथा-प्रवचन कर रहा हो। डा० सोमनाथ गुप्त ने अपनी प्रथम कृति 'नाटक साहित्य का इतिहास' मे जसवन्तसिह के अनुवाद को प्रबोधचन्द्रोदय का अविकल अनुवाद माना था, परन्तु बाद मे अपनी दूसरी कृति 'पूर्व भारतेन्दु नाटको का परिचय' मे उन्होने अपनी पुरानी धारणा को बदल दिया। उक्त ग्रन्थ के ४७ वे पृष्ठ पर उन्होने लिखा है कि—"जसवन्तसिह जी का अनुवाद सार मात्र है। प्रस्तुत अश से इसका प्रमाण मिल सकेगा। यह धारणा कि महाराज ने अक्षरश अनुवाद किया था निराधार है। अन्य अनुवादो की तरह यह भी मूल की छाया को लेकर लिखा गया है।' उदाहरण के लिए हम इसका निम्नलिखित प्रारम्भिक पद्य उद्धृत करते हैं —

कवित्त — जैसे मृग त्रिस्ना विषे जल की प्रतीत होत,
रूपे की प्रतीत जैसे सीप विषे होत है।
जैसे जाके बिन जाने जगत ए जानियत,
जाके जाने जानियत बिस्व सब तोत है।
एसो जो अखण्ड ग्यान पूरन प्रकासवान,
नित सम सत्त सुद्ध आनन्द उदोत है।
ताही परमात्मा की करत उपासना ही,
निसंदेह जानो या की चेतना ही जोत है॥१॥

"ऐसे मगल पाठ करी सूत्रधार अपनी नटी बुलाई। यह हो आग्या दीजै। सूत्रधार बोल्यो॥ दोहा॥ महाविवेकी ज्ञान निधी धीरज मूरत वान। परमप्रतापी दानि अति। नीति रीति को जान॥१॥ तिन महाराज ने आज्ञा करी हैं कि हमारे सभा के लोक है। तिनके लिए प्रबोध नाटक दिखाबऊ॥"

इस उद्धृत अश से ज्ञात होता है कि यह प्रथम श्लोक मूल का भावानुवाद है किन्तु शेष मे सक्षेप की ओर ही प्रवृति है। प्रथम और द्वितीय अक मे मूल का सक्षेप मे भावानुवाद है। तीसरे, चौथे, पाचवे और छठे अक मे केवल कथासार ही दिया गया है। मेरे पास उपरोक्त अनुवाद की उपलब्ध प्रति फुलस्केप कागज पर टाइप के रूप मे ११ पृष्ठो पर है। जिसमे से छठे पृष्ठ के आधे पृष्ठ तक द्वितीय अक की कथा समाप्त हुई है, और उसके पश्चात् शेष अको की कथा शेष पृष्ठो मे है।

४५३. इस अनुवाद के समीक्षात्मक अध्ययन मे उपलब्ध प्रमुख विशेषताएँ, जो कि मूल ग्रन्थ से इस कृति मे भाषा और भाव सभी दृष्टियो से अन्तर ला देती है —निम्नलिखित है —

१. **नाम**--जसवन्तसिंह ने मूल सस्कृत के नाटक के नाम 'प्रबोधचन्द्रोदय' के स्थान पर, अपने अनुवाद के लिए केवल 'प्रबोध' का ही प्रयोग किया है। जैसे (प्रारम्भ)—"अथ श्री गणेशायनम। अथ प्रबोधनाटक लिख्यते" तथा (अन्त) इति महाराजाधिराज महाराज श्री जसवन्तसिह जी कृत प्रबोध नाटक भाषा सम्पूर्ण।

२. **पात्रों के नाम मे अन्तर**--इस अनुवाद मे 'विष्णुभक्ति' का नाम परिवर्तित कर दिया गया है। अन्य सभी पात्र उसी मूल रूप मे है। मूलनाटक की विष्णुभक्ति का नाम प्रस्तुत अनुवाद मे 'आसतिकता' रखा गया है। 'आसतिकता' वही कार्य करती है, जो मूल नाटक मे विष्णुभक्ति करती है। उदाहरण के लिए प्रस्तुत अनुवाद का निम्न अश लिया जा सकता है — "आगे देखे तो सुश्रा मे कप सहित बोली अब मो को तौ आसतिकता ने आग्या करि है जु राजा विवेक से जाइ कहा।" इस प्रकार यह आस्तिकता मूल ग्रन्थ की विष्णुभक्ति से भिन्न नही प्रतीत होती है।

३. **दिगम्बर बौद्ध कापालिक के समीक्षात्मक संक्षिप्त वार्तालाप**--मूल सस्कृत नाटक मे शान्ति और करुणा के वार्तालाप के मध्य (क्षपणक) दिगम्बर सिद्धान्त, श्रद्धा, बुद्धागम (भिक्षु) कापालिक रूपधारी सोमसिद्धान्त आदि आते है, और अपने अपने अनुरूप व्यवहार करके प्रस्थान करते हैं किन्तु जसवन्तसिह के अनुवाद मे इन मतो का विवादास्पद वार्तालाप अनूदित नही किया गया है। जब कि द्वितीय अक मे पडितो के दम्भ और चार्वाक की वार्ता ज्यो की त्यो मूल के विस्तार सहित दी गई है। शान्ति और करुणा श्रद्धा की खोज मे तीनो मतो के साधुओ को देखती और उनके पास तामसी श्रद्धा को देख कर आगे बढ़ जाती है। इस प्रकार बौद्धाभगम, दिगम्बर और कापालिक का मत--सिद्धान्तविस्तार, साधुओ का रूप, आकार, वीभत्सता आदि कुछ भी वर्णित नही हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित अश लिया जा सकता है--"यह कहीं के सांति अक करुणा सुधा के ढूढ़वे को चली। आगे जाती डिगम्बर देख्यो। तिके तामसी सुधा देखी। तब जाम्यो की यहां सात्रुकी सुधा नही॥ फेरी आगे चली।

आगे जात बोध देख्यो। ताहु के तामसी सुधा देखी। तब जानयो कि यहां कि सात्वीकी सुधा नही। फिर आगे चली।। आगे जात कापालिक देख्यो।————(पृष्ठ ६)

४. **घटना वर्णन में अन्तर**——मूल नाटक मे श्रद्धा के लोप होने और मिलने का जो वृत्तान्त है, उससे प्रस्तुत अनुवाद मे कुछ अन्तर है। जो सम्भवत. कथा सक्षेप करने मे हुआ हो अथवा मत विशेष के आक्षेप को बचाने के हेतु हुआ हो। यह निश्चित नही कहा जा सकता है कि किस कारण से हुआ? क्योकि सक्षेप के साधारण उद्देश्य के अतिरिक्त दूसरा उद्देश्य विरोधात्मक आक्षेपो का निवारण भी एक महाराजा के लिए तर्कसगत तथ्य होना सम्भव है। मूल नाटक मे बौद्धागम, दिगम्बर और कापालिक परस्पर वार्तालाप करते हुए अपने को महामोह का किकर बनाकर जब महामोह की सहायता को तत्पर होते है और महामोह की आज्ञा से श्रद्धा को पकडवाने के सम्बन्ध मे विचार करते है तो दिगम्बर सिद्धान्त ज्योतिष से गणना करके बता देता है कि वह विष्णुभक्ति के पास है—यह पता सुनकर कापालिक श्रद्धा को पकडने के लिए महाभैरवी विद्या को भेजने के हेतु चला जाता है। तब हर्षित होकर शान्ति भी प्रस्तुत वृतान्त विष्णुभक्ति को बताने के लिए चली जाती हैं। तदनन्तर तृतीय अक समाप्त हो जाता है। चतुर्थ अक के प्रारम्भ मे मैत्री प्रवेश करके, एकाकी रूप मे मुदिता के द्वारा सुनी हुई यह सूचना कि श्रद्धा की रक्षा विष्णुभक्ति के द्वारा हुई है देती है। इतने मे भयभीत श्रद्धा स्वय प्रवेश करती है और अपनी रक्षा मे विष्णुभक्ति की सहायता की प्रशसा करती है। जसवन्तसिह के अनुवाद मे ऐसा नही होता। कापालिक के पास भी तामसी श्रद्धा के देखने के बाद शान्ति ज्योंही आगे बढती है उसे तुरन्त ही मैत्री मिल जाती है और शान्ति को बताती है कि मैंने मुदिता के मुख से सुना है कि सात्विकी श्रद्धा आसतिकता के निकट जा रही है। शान्ति और मुदिता हर्षित होकर जैसे ही चलती हैं उन्हे श्रद्धा स्वय मिल जाती है, किन्तु वह अपनी रक्षा के सम्बन्ध मे कुछ नही कहती है—"तब सान्ती और मैत्री हरख पायके चली। आगे देखे तो सृधा मे कप सहित बोली तामसी सुधा को देख। अब लो मेरो का ही ना ही गायो। ये भलि भई जु या ही जनम मे मैं तो को ही देखी। अब मौ को तो आसतिकता ने आग्याकरि है जु। राजा विवेक मां जाइ क ी।"

५. **अन्त**——आसतिकता से अन्त मे पुरुष की जो वार्ता हुई है उसमे मूल से कुछ अधिक विस्तार है। इसके अतिरिक्त मूल मे भारत वाक्य पुरुष ही कहता है[1] किन्तु प्रस्तुत अनुवाद मे सूत्रधार राजा के राज्य की मगल कामना करता है —

---

१. प्रबोधचन्द्रोदय, अंक ६, पृष्ठ २४०, २४१।

तितने सूत्रधार बोल्यो–

जो लौं गंगा को प्रवाह बहत खिति मंडल में,
सेस धरे भार ज्यों सकल ब्रह्मांड को।
ससि की किरन जो लौं पोखत हैं।
औषधनि प्रबल प्रकाश तपे बिम्ब मारतंड को।
छांडत न मरजाद अपनी उदधि जल जौ लौं
आप बल महारिषि मारकंड को॥
तेज परिवान को धन धाम सुख संतत सु
तौ लौं राज करें महाराज नव खंड को॥१॥

६. **अंकों की सूचना**––प्रारम्भ से अन्त तक कही भी अक की समाप्ति और अक के प्रारम्भ की सूचना नही है। कथा के प्रारम्भ मे यद्यपि 'अथ प्रबोध नाटक लिख्यते' लिखा है किन्तु फिर भी प्रथमाक नही लिखा है। बिना किसी सकेत के नान्दीपाठ का कवित प्रारम्भ हो जाता है। पहले, दूसरे, चौथे, पाँचवे और छठे अक के प्रारम्भ और अन्त की भी कही सूचना नही है। नाटक के अन्त मे भी छठे अक के अन्त की सूचना नही है। केवल नाममात्र समाप्ति की सूचना है। इस प्रकार एक अक की कथा समाप्ति की सूचना के स्थान पर जसवन्तसिंह कृत अनुवाद मे मूल नाटक के अनुसार द्वितीय अक की कथा का सूत्र आगे प्रारम्भ होता जाता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित अश पर्याप्त होगा :—

"राजोवाच' जो तुम एसी हमारी आज्ञा मे है तो हमारे कारज सहजे सिद्ध भए—ब्रह्म एकता को पाऊ॥ एसे कहि के चले॥ तितने दभ आयो। आय के बोल्यो। राजा महामोह ने मो को आग्या दीनी है।"

७. **पात्रों का प्रवेश एव प्रस्थान**––पात्रो के जाने का सकेत स्पष्ट दिया गया है जैसे–काम बोल्यो रति सु कह्यो। अहो प्रिये ए हमारे कुल मे श्रेष्ठ विवेकमति सहित आये हैं। ताते रहियो बनत नही। यह कहि चले।" पात्रो के प्रवेश की सूचना मे प्राय यही ,कहा गया है कि—"तितने जमनिका मे बोल्यो" अथवा "तितने दम्भ आयो, आय के बोल्यो"।

८. **शैली**––इस अनुवाद मे गद्य-पद्य मिश्रित शैली का प्रयोग है। गद्य प्रधान रचना है। गद्य प्रधान होते हुए छन्दो का मिश्रण भी है। इसमे केवल दो कवित्त छन्दों का प्रयोग है। एक कवित्त रचना के आदि मे, एक कवित्त रचना के अन्त में है। दोहो का भी यत्रतत्र प्रयोग है। जो निम्न प्रकार से है :—

पृष्ठ १ — दो दोहे (नट की उक्ति)
पृष्ठ ६ — एक दोहा (लोभ की उक्ति)
पृष्ठ ७ — चार-दोहे (वस्तु विचार, दो धीरज, एक सन्तोष की उक्ति)
पृष्ठ ८ — एक दोहा (राजा की उक्ति)
पृष्ठ ११ — छ दोहे (पुरुष का कथन)

(उपर्युक्त पृष्ठ सख्या मेरी टाइप प्रति के अनुसार है)

कुल मिलाकर १४ दोहे सारी रचना मे है। इन दोहों का प्रयोग मूल रचना के छन्दों के अनुवाद के रूप मे नही हुआ है। दो चार दोहो को छोडकर शेष दोहे पात्रो की अपनी वार्ता को अधिक प्रभावपूर्ण शैली मे व्यक्त करने के उद्देश्य से लिखे गये है।

९. भाषा—इस अनुवाद मे ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है। अनुवाद की दृष्टि से यह भावो को व्यक्त करने मे पर्याप्त समर्थ है। इसमे सरलता और सुबोधता है। परन्तु विशेष काव्यात्मक सौन्दर्य नही है।

४५४. इस प्रकार उपर्युक्त विशेषताओं से मण्डित, यह अनुवाद 'प्रबोध-चन्द्रोदय' के द्वितीय अनुवाद के रूप मे अपने समुचित स्थान का अधिकारी है।

'ब्रजवासीदास' कृत अनुवाद

४५५. ब्रजवासीदास का अनुवाद[1] प्रबोध चन्द्रोदय के हिन्दी अनुवादों मे से एक प्रसिद्ध अनुवाद है। ब्रजवासीदास का निवासस्थान वृन्दावन था। ये बल्लभ सम्प्रदाय को मानने वाले सच्चे वैष्णव थे।[2] इनका जन्म खोज रिपोर्ट के अनुसार १७५३ स० मे हुआ था।[3] इनका प्रथम ग्रन्थ 'प्रबोधचन्द्रोदय' का अनुवाद है तथा दूसरा ग्रन्थ जिसका निर्माण स० १८२७ मे हुआ, 'ब्रजविलास' नामक है। 'प्रबोधचन्द्रोदय' के अनुवाद के रचनाकाल के सम्बन्ध मे एक वर्ष का अन्तर मिलता है। इसकी रचना 'कृषि शशि धन गणपति रदन सम्मत' इस पद्य के अनुसार सम्वत् १८१७ मे हुई थी, किन्तु मान्य साहित्यकों ने इसका रचनाकाल स १८१६ मे स्वीकार किया है।[4] 'बाबू ब्रजरत्न-

१. चिरजीव पुस्तकालय आगरा से प्राप्त प्रकाशित प्रति।

२. (अ) 'हिन्दी नाट्य साहित्य'—बाबू ब्रजरत्नदास, पृष्ठ ४७।
(ब) 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'—प० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ३१९।

३. द थर्ड टर्मिनल रिपोर्ट आन सर्च फार हिन्दी मेनस्क्रिप्ट्स १९१२, १३, १४।

४. (क) पं० रामचन्द्र शुक्ल—'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृ० ३१९ मे बिना रचनाकाल दिये लिखा है 'इसके अतिरिक्त उन्होंने 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक का अनुवाद भी विविध छन्दों मे किया है।

दास' द्वारा मान्य रचनाकाल के सम्बन्ध मे एक वर्ष का अन्तर सम्भव है,। सम्भव है, मेरी प्रति और बाबू ब्रजरत्नदास जी की आधारभूत प्रति मे कोई अन्तर हो। अन्य इतिहासकारो ने भी बाबू ब्रजरत्नदास के ही आधार पर इसका रचनाकाल लिखा है। डा० गोपीनाथ तिवारी ने एक वर्ष के अन्तर से 'या' करके दो समय दिये है। किन्तु उन्होने भी आधार बाबू ब्रजरत्नदास और डा० दशरथ ओझा का ही लिया है। सम्भव है, तिवारी जी ने मेरी प्रति के समान किसी प्रति मे ग्रन्थ का रचनाकाल १८१७ सम्वत देख लिया हो। इसलिये उसे और ब्रजरत्नादास तथा डा० दशरथ ओझा द्वारा मान्य दो रचनाकालो को उन्होंने स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार डा० गोपीनाथ तिवारी के ग्रन्थ मे पुष्ट होता है कि ब्रजवासीदास की रचना की किसी और प्रति मे १८१७ सम्वत् भी है। तात्पर्य यह है कि इसके रचनाकाल के सम्बन्ध मे एक वर्ष का अन्तर अवश्य ही उपस्थित हो गया है। यह अन्तर बाबू ब्रजरत्नदास की त्रुटि से सम्भव नही प्रतीत होता। किसी लिपिकार अथवा मुद्रणकर्ता की ही त्रुटि प्रतीत होती है।

४५६. ब्रजवासीदास का यह अनुवाद भाषा, भाव और नाटकीयता की दृष्टि मे अच्छा है। इसके देखने से प्रतीत होता है कि ब्रजवासीदास एक प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे। इनके अनुवाद मे मूल नाटक की आत्मा सुरक्षित है। ब्रजवासीदास अध्यात्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे सत्सग मे उन्होने कृष्ण मिश्र विरचित प्रबोधचन्द्रोदय की प्रशसा सुनी थी। उनके समय मे बलीराम साधु भक्त के रूप मे विख्यात थे।

(ख) बाबू ब्रजरत्नदास--'हिन्दी नाट्य साहित्य' पृष्ठ ४७ में लिखा है-तीसरा अनुवाद ब्रजवासीदास कृत है, जिसका रचनाकाल सम्वत् १८१६ है--इस अनुवाद की कई हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हुई हैं।

(ग) गुलाबराय--'हिन्दी नाट्य बिमर्श'--पृ० ९७ मे लिखा है--ब्रजवासी दास का अनुवाद सम्वत् १८१६ में हुआ था।

(घ) डा० दशरथ ओझा--'हिन्दी नाटक का उद्‌भव और विकास' पृष्ठ १४५। ब्रजवासीदास कृत अनुवाद का समय १८१६ सम्वत् है।

(ङ) डा० गोपीनाथ तिवारी--'भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य', पृष्ठ ८।

"ब्रजवासीदास ने १७५९ या ६० ई० में दोहा चौपाई--अनुवाद किया।" तिवारी जी ने नोट में बाबू ब्रजरत्नदास और ओझा जी का नाम दिया है।

(च) डा० सोमनाथ गुप्त--पूर्व भारतेन्दु नाटक--पृ० ४० पर रचना-काल सम् १७५९ ई० हैं। नोट में ब्रज रत्नदास जी को ही प्राधार माना गया है।

उसने प्रबोधचन्द्रोदय का अनुवाद यमन भाषा मे किया था। अतः उस भाषा को न जानने वाले भक्तों के लिये आध्यात्मिक ज्ञान लाभ दुर्लभ था। फलस्वरूप मित्रो की प्रेरणा से ब्रजवासीदास जी ने प्रबोधचन्द्रोदय का अनुवाद लिखा यह अनुवाद उन्होने बलीराम साधु के अनुवाद से ही किया है—इसका सकेत उन्होने अपने अनुवाद के प्रारम्भ मे स्वय दिया है।[1] बलीराम के अनुवाद का कितना प्रभाव पडा है, यह तो बलीराम के अनुबाद के उपलब्ध होने पर ही कहा जा सकता है।

४५७. प्रस्तुत अनुवाद की विशेषताएँ निम्नलिखित है —

(१) **प्रारम्भ**—ग्रन्थारम्भ की वन्दना मे भगवान से अपनी शरण देने और सदैव सत्सग प्राप्त करने की कामना की गई है :—

जैसे—— चरण कमल बन्दौ रुचिर जे हरिदास अनन्य।
जिनकी कृपा कटाक्ष ते सकल देव परसन्य ॥१॥
दीनदयाल कृपाल शुचि ऐसे सन्त सुजान।
जन ब्रजबासी दासकी विनय कीजिये कान ॥७॥

---

१. द्रष्टव्य——

दक्षिनभूमिभयो एकपण्डित। भक्तिज्ञानविद्या गुणमण्डित॥
परम दयाल दीन हितकारी। जीवन को पूरण चित कारी॥
शिष्यन करैं ज्ञान उपदेशा। जनम मरन जिहि मिटैं कलेशा॥
मोहतिमिरनाशकजिमि धामा। कृष्णदासभट अस ता नामा॥

\+ + +

तेसे गुरु सुजान कीन्हो ग्रन्थ नबीन तब
कला बिदूषक खानअर्थ सिद्ध बेदान्त मय॥१४॥
नाम राख्यौ ग्रन्थ को परबोध चन्द्र उदोत।
मोतौ बाणी सस्कृत प्राकृत करि न बिचार।
ताके समुझन को चहीं बिद्या बुद्धि अपार॥१७॥
बलीराम ताको करी भाषा यमन किताब।
सोऊबिद्या अति कठिन समुझिन परै शिताब॥१८॥
मित्र एक ऐसी कही जो यह भाषा होय।
सरल होयतो सबनको सुनि सुख पावै लोय॥१९॥
तातेयह भाषा करी अपनी मति अनुसार।
सत संगत परताप ते बिपुल छन्द बिस्तार॥२०॥

——प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ २–३।

दीजं दीन दयाल मुहि बड़ो दीन जन जानि।
चरण कमल को आसरो सतसंगत की बानि॥८॥
—प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ १।

(२) **प्रश्नोत्तर**—अनुवाद मे स्थान-स्थान पर तुलसी कृत मानस के श्रोता और वक्ता की भांति कृष्णदास भट्ट और उनके शिष्य के प्रश्नोत्तर दिये गये हैं, जिससे कथा कहने और सुनने वाले का पता लगता है—जैसे,

कृष्णदास भट शिष्यसों कहत कथा परबोधि।
नट लीलाके ब्याज करिपरम तत्वमय शोधि॥२४॥
कृष्णदास भट उवाच चौ०।
सुनहु शिष्य इक कथा सुहाई। परम बिचित्र परम सुख दाई॥
कीरति ब्रह्म नाम इक भूपा। परम अनूप जासुको रूपा॥
—प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ ३–४।

पृष्ठ ८५ पर भी इसी प्रकार गुरु शिष्य का प्रश्नोत्तर है।

(३) **कथानक**—मूल 'प्रबोधचन्द्रोदय' के कथानक से इसके कथानक मे कोई अन्तर नही है।

(४) **वर्णन**—इस अनुवाद की घटनाएँ और उनका वर्णन मूल की ही भांति हैं। घटनाओं मे अन्तर अथवा सक्षेप कही नही किया गया है। वर्णनो का विस्तृत होना इस अनुवाद की विशेषता है। निम्नलिखित वर्णन विस्तृत हैं—

(क) सैद्धान्तिक मतों का वर्णन।

(ख) यम, नियम आदि का वर्णन। इसमे आठो यम और दसो नियमो का सविस्तार वर्णन किया गया है।

परन्तु वर्णनो के विस्तृत होते हुए भी मूल का सौन्दर्य अक्षत है।

(५) **पात्र**—प्रस्तुत अनुवाद के पात्र मूल के ही पात्र है। उनकी विशेषताए, कार्य व्यापार और नाम आदि सब मूल के पात्रो जैसे ही है। फिर भी कुछ विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। जैसे—

(क) विवेक की प्रधान महिषी 'मति' के स्थान पर 'सुमति' हो गई है।

(ख) विवेक जब सेना सहित प्रस्थान करता है तब वैराग्य और त्याग नाम के पात्रों से, उसका मिलन होता है। जिनका हृदय से स्वागत करने के पश्चात् वह युद्ध की ओर प्रस्थान करता है। मूल प्र० च० मे इन पात्रो का प्रवेश नही कराया गया है।

(ग) पात्रो के वेशभूषा से सुसज्जित होकर आने और उनके स्वरूप तथा

आकृति वर्णन उपयुक्त होने से उनमे सजीवता और मांसलता सी आगई है। इससे कही कहीं मूल से भी अधिक सौन्दर्य आ गया है। ऐसे पात्रो मे, जिनके कि रूप का वर्णन किया गया है, विवेक, शान्ति और विष्णुभक्ति आदि हैं।

(६) **वार्तालाप**—इस अनुवाद के वार्तालाप प्राय स्वाभाविक और पात्रानुकूल हैं। विस्तार की विशेषता के कारण-यद्यपि वे लम्बे अवश्य हो गये हैं।

(७) **अंक**—मूल की भाति इस अनुवाद मे भी छ अक है, जिनमे निम्नलिखित विशेषताए हैं —

(क) प्रत्येक के अन्त मे टक लिखा है, अक नही लिखा है।

(ख) प्रत्येक अक की समाप्ति की सूचना दी गई है किन्तु किसी भी अक के प्रारम्भ की सूचना नही दी गई है।

(ग) अक समाप्ति मे समाप्त होने वाले अको के नाम भी दिये गये है—जैसे, इति श्री प्रबोधचन्द्रोदय नाटके मोहस्वरूप वर्णनो नाम द्वितीयटक।"

(घ) प्रत्येक अक के प्रारम्भ मे नट राजा को बताता है कि हे राजन्! अब यह नट विशेष प्रकार का स्वाग बनाकर आयेगा। जैसे—द्वितीय अक पृष्ठ २९ का यह उदाहरण —

नट० दो०— तब नृपकीरत ब्रह्मसों बोल्यो नट सरदार।
राजन राजामोहने सुन्यो विबेक विचार॥१॥
ताते अपने मंत्रिनहुं आज्ञा दीन्ही मोह।
करिये यतन बिबेककीमंत्र सिद्ध नहिं होह॥२॥
ताही अतर दम्भ को आयो स्वांग सवांरि।

इसी प्रकार अन्य अकों के प्रारम्भ मे भी नट राजा से कुछ न कुछ कहता है।

(८) **पद्य**—प्रस्तुत अनुवाद पद्यबद्ध है। इसमे इन छन्दों का प्रयोग किया गया है दोहा, चौपाई, कवित्त, तोमर, सोमराजी, मुन्दरी आदि। इसके कुछ छन्दो की तुलना रामचरितमानस के 'छन्दो' से की जा सकती है। पृष्ठ ५ वाला छद मानस के अयोध्याकाण्ड के रामजन्म के समय माता कौशल्या के द्वारा राम की स्तुति मे प्रयुक्त छन्द की छाया लिये हुए है।—मानस—अयोध्या काण्ड—'भये प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी'

ब्रजवासीदास—प्र० च० अनुवाद—

अविगत अविनाशी जगत प्रकाशी रोम रोम ब्रह्मांड कई॥
सर्वा अभिरामं सब सुखधामं व्यापक परमानन्दा।

इससे स्पष्ट है कि छन्दो मे ब्रजवासीदास, तुलसी से प्रभावित रहे हैं।

(९) भाषा—इस अनुवाद की भाषा सरल, स्पष्ट और भावपूर्ण व्रजभाषा है। नाटक का अनुवाद सर्वसाधारण के हेतु भाषा मे किया गया था, जैसा कि पहले कहा गया है। अतः सरलता आवश्यक थी। सरलता के रहने पर भी भाषा मे प्रवाह एवं सरसता है। कहीं कहीं गम्भीरता का भी गुण भाषा मे दिखाई पडता है।

(१०) पात्रों की भाव मुद्रा—रगमच, वेशभूषा और नेपथ्य का सकेत आदि इस अनुवाद मे है साथ ही पात्रो की भावमुद्राओ का भी वर्णन उपलब्ध होता है :—

(क) नट-सुन्दरी छन्द—काम के बैन सुने जब ही नट। भीत ह्वो नारि सो ऐसे कह्यो हट। (पृष्ठ ९)

(ख) रति यह बात सुनी जब कानन। नयननीर पियरी भइआनन।।
परी धरनि जनु मुर्छा आई। ह्वै अचेत विह्वल अधिकाई।।
तबहीं काम अंक भरि लीन्हा। उरलगाइ साहस पुनि दीन्हा।।
(पृष्ठ १७)

रगमच के सकेत भी इसमे उपलब्ध होते है। जैसे पृष्ठ ३० पर—

दम्भ उवाच—महाराज अधिराज मोह दीन्ह यह आज्ञा।

+ + +

दोहा— सोहों नृप आयसु अकनि बसिहौं काशी जाय।
सजगहोहु औरो जुकोउ लीननृपतिकोवाय।।५।।
सुनतर्हि बानी दम्भकी नटवर परम सुजान।
वाही मजलिस मो कियो काशी इक अस्थान।।६।।

पात्रो के नेपथ्य से बोलने का भी स्पष्ट उल्लेख इस अनुवाद मे है—

तबहि स्वांग मनमथ्य को बोलि उठ्यो पट ऐन।।५५।।
(पृष्ठ ९)

तिहि अंतर स्वांग विवेक आय।
बोल्यो पटगृहते सो रिसाय।
(पृष्ठ १८)

वेशभूषा के वर्णन का मनोरम सकेत दम्भ के वेशभूषा वर्णन में दृष्टव्य है—

लम्बी धोती कटितट लसै। नामांकितजुउपरनालसै।।
टोपीजतिचटकीलीलाल। छापातिलक विराजत भाल।।
(पृष्ठ ३१)

पात्रों के प्रवेश और प्रस्थान का भी संकेत उपलब्ध होता है। जैसे—

"स्वांग रचकर सभी बीच आयो।" आदि—

पद्यबद्ध रचना होने पर भी इसमे नाटकीय सकेतो और रगमचीय अभिनय की आवश्यकताओ का ध्यान बडी सतर्कता से रक्खा गया है। काव्यमय भाषा मे ही रगमंच की सजावट, नटो का कार्यकलाप, भावमुद्रा, वेशभूषा, नृत्य तथा सगीत सभी की यथास्थान सूचना दी गई है। उदाहरण के लिये हम इस अश को ले सकते है जिसमें नाटक का अभिनय करने के हेतु राजसभा मे आकर नट अपने सहयोगियो की तैयारी का वर्णन करता है:—

दोहा — नटवर परम सुजान इक सकल कला गुण धाम।
आयो नृप दरबार में साधु समागम नाम ॥२६॥

तोमर छन्द—बहु शिष्यता के साथ। सुन्दर मनो रति गाथ।
कोउ लिये ताल मृदंग। कोउ ढोलकी मुहचक ॥

—प्र० च ०अनुवाद, पृष्ठ ४।

इस वर्णन से स्पष्ट रूप से अनुवाद में नाटकीयता झलक रही है।

(११) **अन्त**—इस अनुवाद का अन्त भी बडी ही तन्मयता और सुरुचि के साथ किया गया है। लेखक ने इस भावना के साथ इस ग्रन्थ का उपसहार किया है कि इस ग्रन्थ को जो कोई पढे और सुनेगा—उसकी अविद्या मे मुक्ति होगी—उसमे भगवान की भक्ति होगी तथा विवेक का प्रकाश होगा आदि—

पढ़ै सुनै समुझै गुनै जो जो कोऊ यह ग्रन्थ।
ताके उरते छूटि है अहं अविद्या ग्रन्थ ॥१६६॥
भक्ति होय भगवन्त की और विवेक प्रकास।
भक्तिबिना त्रिभुवन दुखी कह ब्रजबासीदास ॥१६७॥

इस प्रकार इस अनुवाद को सरल और प्रवाहपूर्ण अनुवाद कहा जा सकता है।

गुलाबसिंह कृत अनुवाद—

४५८ कविवर गुलाबसिंह ने मूल प्रबोधचन्द्रोदय का अनुवाद[१] गुरुमुखी लिपि मे किया था, जिसका उल्लेख कार्णि गोपालदास ने अपने अनुवाद की भूमिका मे किया है। इस गुरुमुखी लिपि के अनुवाद को प० गुरुप्रसाद उदासीन

---

१. इस अनुवाद की प्रकाशित प्रति श्री मोहनवल्लभ पन्त के सौजन्य से उपलब्ध हुई।

ने गुरुमुखी लिपि से नागरी मे किया जिसे स्वामी परमानन्द जी ने वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित करवाया[1]।

४५९. अनुवाद के प्रारम्भ मे प्रकाशक ने अपनी सम्मति 'विज्ञापन' के रूप मे दी है। इसमे बताया गया है कि प० गुरुप्रसाद जी उदासीन साधुबेला के निवासी थे। उन्होंने गुलाबसिंह जी के गुरुमुखी लिपि वाले अनुवाद को नागरी लिपि मे करने के साथ ही उसके नीचे प्रयत्नपूर्वक श्रुति, स्मृति और पुराणो के वचनो को उद्धृत कर टिप्पणी भी दी है।[2]

४६०. श्री गुलाबसिंह ने प्रस्तुत अनुवाद की रचना कुरुक्षेत्र मे सम्वत् १८४६ में की थी। जैसा कि अनुवाद के इस पद्य से स्पष्ट है—

६ ४ ८ १
रस बेद औ वसु चन्द संवत लोक भीतर जान ॥
नभमास भृगु पुन वासरे दशमी वदी पहिचान ॥

---

१. द्रष्टव्य—प्रकाशित पुस्तक का मुख पृष्ठ—

॥श्रीः॥
प्रबोधचन्द्रोदयनाटक।
कविगुलाबसिंहकृत
जिसको
पं० गुरुप्रसादउदासीनने गुरुमुखी अक्षरो से
देवनागरीमें टिप्पणीसहित बनाया।
तथा
मुमुक्षजनोंके हितार्थ,
श्रीमान् १०८ स्वामी परमानन्दजी ने
खेमराज श्रीकृष्णदासके
बंबई
"श्रीवेंकटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालय में
(प्रथमा वृत्ति)
छपाकर प्रसिद्ध किया।
संवत् १९६२, शके १८२७
रजिस्टरीहक्क प्रसिद्ध कर्ताने स्वाधीन रक्खा है.

२. द्रष्टव्य—अनुवाद का विज्ञापन'।

गुरु मानसिंह पदारविंद अलंबना उर ठान ।।
कुरुक्षेत्र प्राचीकूलतट यह कीन ग्रन्थ बखान ।।२२५।।
—प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ १८०।

इस पद्य से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि गुलाबसिंह के गुरु का नाम मानसिंह था। अपने गुरु का सकेत उन्होने अनुवाद मे एक स्थान पर और किया है। जैसे—

जिह अज्ञान निवारयो, दीनो मोक्ष अपार ।।
मानसिंह गुरुचरनको, बन्दौ बारंवार ।।२२४।।
—प्र० च० अनुवाद, पृ० १८०।

इस अनुवाद का नागरी लिपिकरण और टिप्पणी प० गुरुप्रसाद उदासीन ने स० १९६१ मे की। जैसा कि ग्रन्थान्त के इस श्लोक से स्पष्ट है—

इन्दुस्कन्दांकचन्द्रेऽब्दे द्वादश्यां श्रावणे तिथौ ।।
वनखण्डिप्रसादाख्यात्सम्पूर्णा टिप्पणी शुभा ।।१।।
—प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ १८०।

'अकाना वामतो गति'। के अनुसार १६९१ सख्या १९६१ को सूचित करती है। इससे स्पष्ट है कि स० १९६१ श्रावण मास की द्वादशी तिथि मे इसका नागरी लिपिकरण और टिप्पणी पूर्ण हुई थी। प० गुरुप्रसाद ने इस अनुवाद को अपने गुरु के चरणो मे समर्पित किया था—जैसा कि ग्रन्थ के अन्त मे उल्लिखित है।

४६१ अब इस अनुवाद का अध्ययन हम निम्नलिखित विशेषताओ के अनुसार करेंगे—

१. वन्दना—सर्वप्रथम गणेश वन्दना है। गुरु नानक, गोविन्द गुरु और मानसिंह गुरु के प्रति श्रद्धा व्यक्त की गई है। जैसे—

गौरीपुत्र गणेशपद, बन्दौ बारंबार ।।
कार्य कीजिये सिद्ध मम, देह सुबुद्धि उदार ।।१।।
+ +
गुरुनानक गोविन्द गुरु, जासम और न कोइ ।।
+ +
अभिवन्दन पदकमल तिन, और सदा कर दोइ ।।३।।
भारत भूमिपुनीत पद, तपोज्ञान अवतार ।।
मानसिंह गुरुको नमो, तारण करुणासार ।।४।।
—प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ १।

वन्दना के पश्चात् प्रबोधचन्द्रोदय के विषय और उद्देश्य की व्याख्या है। तदुपरान्त मूल ग्रन्थ की नान्दी का अनुवाद प्रारम्भ कर दिया गया है।

२. भाषा—अनुवाद की भाषा ब्रजभाषा है। कहीं-कहीं विशेषप्रकार के शब्दों का प्रयोग भी है। अनुवाद की टिप्पणी भी दी गई है जिसमे उनको स्पष्ट कर दिया गया है। जैसे—

"कटै चक्रधारा करै भूमिभाठं।।
—प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ १२३।

३. मूल से अतिरिक्त कथा—मूल से अतिरिक्त कथा इसमे केवल एक मिलती है और वह है—काम के यश का विस्तार—वैभव और प्रभाव वर्णन के हेतु भृंगी का काममोहित हो जाने का वर्णन पृष्ठ ९ से १२ तक है। वर्णन क्रम, मूल के अनुसार ही है। विस्तार या सक्षेप का प्रयत्न अन्य प्रसगो मे नही है।

४. मौलिक पात्रों की योजना—मौलिक पात्रो की योजना भी की गई है। जो निम्न प्रकार से है.—

कुबुद्धि मत्री—पृष्ठ ५२

महामोह जब अपने सैनिको को कार्य मे नियुक्त करता है उसी प्रसग मे, इन विभिन्न मौलिक पात्रो की योजना की गई है।

५. अंक—इस अनुवाद मे अक छ. हैं। यह मूल के क्रम के अनुसार ही है। नवीनता यह है कि प्रत्येक अक के अन्त में, आगे की कथा की सक्षेप मे सूचना दे दी गई है। जैसे तृतीय अक की समाप्ति पर —

इमकहि करुणा शांति पुन, भई सुअंतरध्यान।।
कीरतिवरमा देव पिख, भयो शुभाशुभ ज्ञान।।१६५।।
विष्णुभक्ति आगे सुनो, श्रद्धा रक्षा कीन।।
विवेकसमीप पठाइगी, होइ सकल अरि छीन।।१६६।।

इति श्रीमन्मानसिंहचरणशिक्षित गुलाबसिंह विरचिते प्रबोधचन्द्रोदयनाटके पाखंड-विडंबनो नाम तृतीयोऽकः समाप्तः।।३।। —प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ ९९।

६. अनुवाद गत सौन्दर्य—शैली के अन्तर्गत विभिन्न छन्दों की योजना है। जैसे विशेष रूप से दोहा, चौपाई, सवैया, कवित्त, छप्पय आदि की योजना है। इसके अतिरिक्त—नराज छन्द; अनंग छन्द; भुजंग प्रयात छन्द आदि प्रयुक्त हुए हैं। अनुवाद मे काव्य-सौष्ठव है। इसमे स्वतत्र प्रतिभा भी लक्षित होती है। पद्यबद्ध होने से इसमें संस्कृत के श्लोकों का सुन्दर अनुवाद हुआ है। जिनमें भावों

की सुरक्षा और भाषा का प्रवाहपूर्ण प्रयोग है। इस अनुवाद मे पात्रों का मनोवैज्ञानिक रूप मूल के अनुसार ही सुन्दरता के साथ अंकित है। उदाहरण के लिए क्रोध का यह वर्णन देखिए—

अंधकरौं वृगवंतनको श्रुतिवंतनकोंबघरोंकरडारौं ।।
धृतवंतनकोसुअधीरकरो, पुन चातरकी मति दूर निवारौं ।।
हितकार्य नाहिपिखे कबही, जिनकं उर भीतरमै पगधारौं ।।
हितआत्मको नसुने कबहीपढ्यो, जितनो क्षणमाहि बिसारौ ।।
—प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ ६०।

सन्तोष की अभिव्यजना मे आश्रम का स्वाभाविक वर्णन द्रष्टव्य है—

फलकाननमांहि अनेक मिलें, बिनखेद सदा तरुहै सुखदाई ।।
पुन नीर जहातहं पूर रह्यो, अतिशीतल पुंन नदी मधुराई ।।
मृदुसुंदर पल्लवसेज बने, बिजनाबन आप समीर झुलाई ।।
जन हा धनवंतनद्वारनमं, कृपण पुन खेद सहैं बहु आई ।।९७।।
—प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ ११५।

इस प्रकार अनुवाद मे भी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की क्षमता प्रतिबिबित है।

७. **नाटकीय योजना**—नाटकीय कार्य व्यापारो को पद्य मे सूचित किया गया है। प्रथम अक में पृष्ठ ७ पर सूत्रधार की वार्ता के पश्चात् कामपात्र नेपथ्य से बोलता है —

बीच कनातकेबात सुनीसुमनोजबली यह काननमाहीं ।।
कोपभरे मुख एहुकही नटनीचसुबोलतयोंमुखमाहीं ।।

विशेष वर्णन और परिचय आदि मे 'कवि उवाच' करके पद्यात्मक वर्णन है। जैसे— कवि उवाच—'या अवसर इक आइयो, पत्र हस्त नरआन।'—पृ० ५४ इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रस्तुत अनुवाद पद्यबद्ध शैली के अनुवादों मे से मूल का भावानुवाद है।

नानकदास कृत अनुवाद

४६२ नानकदास कृत 'प्रबोधचन्द्रोदय, के अनुवाद' की प्रतिलिपि काशी नागरी प्रचारिणी सभा मे सुरक्षित है जो कि ब्रजभाषा और नागरी लिपि में है।[1]

---

१. नागरी प्रचारिणी सभा से प्राप्त हस्तलिखित प्रतिलिपि।

एक अन्य प्रति का भी पता लगा है जो कि भाषा विभाग, पटियाला, मे सुरक्षित है। नानकदास का यह अनुवाद मूल 'प्रबोधचन्द्रोदय' से न होकर, बलीराम साधु के यमन भाषा वाले (प्र० च० के) अनुवाद का हिन्दी भाषान्तर मात्र है। इसकी सूचना नानकदास ने पुस्तक के अन्त मे दी है।[1] यह तथ्य अन्त साक्ष्य और बहि-साक्ष्य के आधार पर भी सिद्ध है। ब्रजवासीदास के अनुवाद को हम बहि साक्ष्य के रूप में ग्रहण कर सकते है। ब्रजवासीदास ने अपनी रचना के प्रारम्भ मे नानकदास को बलीराम साधु से उपकृत होने का उल्लेख किया है।[2] ब्रजवासीदास और नानकदास जी की रचनाओ मे कथाक्रम और वर्णन-प्रसगो मे साम्य पाया जाता है। वर्णन प्रसगो के साम्य से यह सिद्ध होता है कि—दोनो अनुवादको के कथन सत्य है।

४६३. नानकदास के अनुवाद का रचनाकाल (सम्वत् १८४६) सन् १७८९ ई० है। अपनी रचना के अन्त मे स्वय कवि ने इसका सकेत कर दिया है। जो निम्न प्रकार से है —

संवत सत अष्टादस अपर षष्ट चालीस।
मंघर शुक्ला पचमी पोथी पूर्ण करीस॥१९०॥
——प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ ११७।

---

१. नानकदास——अनुवाद——पृष्ठ ११६।

इह पोथी पूरण करी बलीराम हरि संत।
तांकों भाखा मों रच्यो नानकदास बिनवत॥१८१॥
हौं अल्पज्ञ अज्ञान यथा बुद्धि भाखा करी।
तुम साधू सज्ञान भूल चूक लेहु सवार के॥१८२॥

२ ब्रजवासीदास——अनुवाद——पृष्ठ ३

बलीराम ताकी करी भाषा यमन किताब।
सोऊबिद्या अति कठिन समुझिन बरे शिताब॥१८॥
मित्र एक ऐसी कही जो यह भाषा होय।
सरल होयतो सबनको सुनि सुख पावै लोय॥१८॥
तातेयह भाषा करी अपनी मति अनुसार।
सत संगत परताप ते बिपुल छन्द बिस्तार॥२०॥
नहीं चतुरनहि रसिक वर नहिंकबियुक्त उदार।
पाछी लै हरिजन कहत लैहैं साधु सुधार॥२१॥

४६४, प्रस्तुत अनुवाद और ब्रजवासीदास के अनुवाद में अनेक साम्य पाये जाते है। कृष्ण मिश्र का दोनो ने ही कृष्ण भट्ट नाम लिखा है। अनुवाद के प्रारम्भ मे, दोनो ने ही कृष्ण भट्ट के शिष्य की जो कथा कही है, उसमे समता है। इसके अतिरिक्त ये दोनो कृष्ण भट्ट के मूर्ख शिष्य की कथा समान रूप से कहकर, अनुवाद करने मे प्रवृत्त होते है। कीर्तिवर्मा के हेतु नाटक का अभिनय प्रारम्भ करने का प्रसग दोनो मे एकसा है। नानकदास के अनुवाद के पृष्ठ २,३ और ब्रजवासीदास के अनुवाद के पृष्ठ ६,७ पर यह प्रसग है। रति ने विवेक को योग्य और अधिक बलवान बताने के हेतु, यम, नियमादि के आठो प्रकारो को विस्तार से दोनो मे बताया है।[1] काम के द्वारा किया गया अपनी सेना के मत्रियो का वर्णन दोनो मे समान है।[2] पृष्ठ ३० पर ब्रजवासीदास और पृष्ठ १२ पर नानकदास के दम्भ पात्र के वर्णन मे भावसाम्य है। विवेक के युद्ध करने को तत्पर हो प्रस्थान करने के समय सैनिको के नामो के वर्णन मे समता है। जैसे—

सम दम नेम यमादि सब जे विबेक के बीर।
होहु सवार तयार सब बाहु बली रणधीर॥९१॥
—ब्रजवासीदास, पृष्ठ ८२।

सम दम यम व्रत नेम तप ब्रह्मचर्ज सतसग।
धाए सग विबेक के इह जोधा दल भंग॥१०३॥
—नानकदास, पृष्ठ ६३।

दोनो मे ही चार्वाक के द्वारा कलियुग के वर्णन मे समान रूप से विस्तार दिया गया है। दोनो अनुवाद ब्रजभाषा मे हैं। दोनो मे ही दोहा, चौपाई, छन्दो की प्रधानता है। प्रत्येक अक के प्रारम्भ और अन्त के वर्णन समान हैं। दोनो अनुवादो की ये सभी समानताए, वही हैं जो मूल से अतिरिक्त होते हुए भी समान रूप से भाव साम्य रखती है।

४६५ मूल से अतिरिक्त उपर्युक्त अनेक समानताएं होते हुए भी दोनो अनुवाद, एक जैसे नही कहे जा सकते हैं। दोनो मे ही अपनी विशेषताए हैं जो कि एक ही ग्रन्थ के, दो व्यक्तियो के द्वारा किये गये अनुवाद मे होनी चाहिए। नानक-

---

१. (क) नानकदास, पृष्ठ ७,८।
(ख) ब्रजवासीदास, पृष्ठ १४।
२. (क) नानकदास, पृष्ठ ९।
(ख) ब्रजवासीदास, पृष्ठ १४।

दास के अनुवाद में ब्रजवासीदास की भाषाशैली के समान सरस प्रवाह नहीं हैं। यद्यपि उसमें भी सरलता, स्पष्टता, एव वर्णन सौन्दर्य है। नानकदास के अनुवाद मे ब्रजवासीदास के अनुवाद से अनेक समता होने के साथ ही कुछ विशेष अन्तर भी है। नानकदास विवेक की स्त्री मति को 'बुद्धि' कहा है। जबकि ब्रजवासी दास ने 'सुमति' नाम दिया है। नानकदास ने जैन साधु को 'श्रेवरा' कहा है किन्तु ब्रजवासीदास ने 'सेवरा' ही माना है। नानकदास ने बौद्ध साधु को 'पूज' कहा है।[1]

४६६. नानकदास के इस भाषानुवाद मे पर्याप्त नाटकीयता है। रगमच, नेपथ्य, प्रवेश एव प्रस्थान का विवरण भली प्रकार है। उदाहरण के लिए ये अश लिये जा सकते हैं —

(क) आगे करी कनात इक स्वांग बनावन काज।
जाते आवें स्वांग बन देखे सकल समाज ॥१२॥
—प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ २

(ख) धीरे धीरे बोलने का स्वर संकेत—
चार वाक लग कानन मागा। हरूए हरूए भाखन लागा ॥६९॥
—प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ २९।

४६७. अनुवादक ने यत्र-तत्र स्वतत्र कवि प्रतिभा से उपमाओ का भावपूर्ण मौलिक प्रयोग भी किया है। उदाहरण के लिए, पृष्ठ अट्ठारह के प्रथम अक के दो दोहे लिए जा सकते हैं—

यत्न प्रीत परतीति बिन बिसै न आत्म योत।
खांड खांड के कहे ते कब मुख मीठा होत ॥१०३॥
सीसे माहि गुलाब है सीसे के किस काम।
इऊं जड़ कौं सूझे नही घट घट आतम राम ॥१०४॥

प्रस्तुत अंश मे आध्यात्मिक अनुभव की विशेषता उपमाओ से स्पष्ट हो गई है।

४६८. इस अनुवाद की अन्य विशेषताए प्रायः वे ही हैं, जो ब्रजवासीदास के अनुवाद में उपलब्ध होती हैं। अतः उनका पृथक् रूप से अध्ययन नहीं किया गया है।

---

१. नानकदास प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ ४१, ४४।

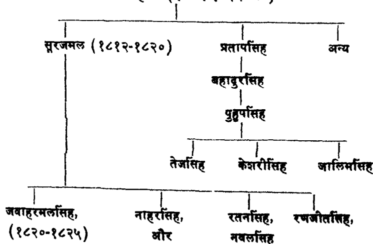
घोंकल मिश्र कृत अनुवाद

४६९ घोकल मिश्र ने प्रबोधचन्द्रोदय का पद्यानुवाद[1] विस्तार से १२० पृष्ठो मे किया है। घोकल मिश्र महाराज तेजसिंह के आश्रित थे। मुझे उपलब्ध हस्तलिखित प्रति के मुखपृष्ठ पर लिखा है कि पुस्तक श्री मयाशकर याज्ञिक के सग्रहालय से उपलब्ध हुई है।[2] घोकल मिश्र कृत अनुवाद का काल अज्ञात है। प्रतिलिपि पर रचनाकाल नही लिखा है और स्पष्ट रूप से मुखपृष्ठ पर लिखा है कि लिपिकाल अज्ञात है। घोकल मिश्र की दूसरी कृति का रचनाकाल १७९९

---

१. काशी नागरी प्रचारिणी सभा से उपलब्ध हस्तलिखित प्रतिलिपि।

२. श्री
प्रबोध चन्द्रोदय नाटक
(पद्यानुवाद)
घोंकल मिश्र कृत
(श्री तेजसिंह के आश्रित)
लिपिकाल अज्ञात
हस्त० सं० ६५१५२ पत्र सं० १–१२४ पूर्ण साइज
(श्री मयाशंकर याज्ञिक सग्रह से)



नोट—यह वंश वृक्ष मूल पुस्तक में नहीं है। श्री याज्ञिक जी से इसे बनाया है।

ई० है।[1] इससे ही अनुमान होता है कि १७९९ ई० के आसपास ही इन्होने अनुवाद भी किया होगा।

४७०. घोकल मिश्र कृत इस अनुवाद की विशेषताओ का अध्ययन हम निम्न प्रकार से करेंगे:—

१. **प्रारम्भ**—घोकल मिश्र ने शिवशकर, गणेश और नृसिंह आदि की वन्दना करने के पश्चात् अपने आश्रयदाता राजा तेजसिंह के वश का सक्षिप्त परिचय देकर प्रताप का वर्णन किया है। जो प्रथम और द्वितीय पृष्ठ के दोहो मे द्रष्टव्य है।

२. **उद्देश्य**—नृपश्री तेजसिंह ने कवि को अनुवाद की प्रेरणा दी थी जिसका सकेत कवि ने सम्मान सहित पृष्ठ दो पर नवे और दसवे छन्द मे किया है।

३. **मूल से समता**—प्रस्तुत अनुवाद प्रबोधचन्द्रोदय का पूर्ण पद्यबद्ध अनुवाद है। घटनाओ का क्रम, और पात्रो का प्रयोग मूल की ही भाति है। यह अनुवाद प्रबोधचन्द्रोदय का भावानुवाद है। इसमे भावो को सुरक्षित करने मे कवि समर्थ रहा है। कही-कहीं कवि को वर्णन मे अधिक सफलता प्राप्त हुई है उदाहरण के लिए क्षमा का यह वर्णन है —

> **क्रुद्ध जो कोऊ करे मुसकान मंद निवारिये।**
> **होय जो परवेस तो परसन्न चित्त निहारिये।।**
> **बहु बोल में कुसली वचन कहिये वही सुवडाइये।**
> **ताडन विषें निज पाप छेदनमानि कें सचटाईये।।९०।।**
> **—प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ ७१।**

४. **विस्तार प्राप्त वर्णन**—अनुवाद के पृष्ठ १२ से १३ तक काम ने रति से जो वार्तालाप किया है, (छन्द ९२ से छन्द १०१) वह मूल से अधिक विस्तृत है। रति के विवेक द्वारा कुलनाश का कारण पूछे जाने पर, काम उसे अपने प्रभाव का विस्तार से वर्णन सुनाता है। इस आत्मप्रशसा मे नास्तिकों का, ससार भ्रमित व्यक्तियो का तथा चार्वाक का वर्णन मूल से अतिरिक्त और विस्तृत है। प्रस्तुत विस्तृत वर्णन अनुवाद के दूसरे अक से लेकर, पहले अक के वार्तालाप मे जोड दिया गया है। इससे इस कथन की कही-कही पुनरावृत्ति (पृ० २८ छन्द ७९, ८०) सी हो गई है। इसके अतिरिक्त कोई अंश विस्तृत नही है।

५. **शैली**—यह अनुवाद पूर्णतया पद्यबद्ध रचना है। इसमें विभिन्न प्रकार

---

१. **भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य—डॉ० गोपीनाथ तिवारी, पृष्ठ ९।**

के छन्दों का प्रयोग है। जैसे—छप्पय, दोहा, अनुगीत, छन्द, भुजंगी छन्द, त्रिभगी छन्द, सोरठा, मुक्तादास छन्द, कवित्त अनुमाहिनी गीत, तोटक, कद छन्द, नील छन्द, पद्धरी छन्द और आभीर आदि छन्द हैं। अनुवाद की भाषा ब्रजभाषा है। इस ब्रजभाषा मे स्थान-स्थान पर विशेष अवसरानुकूल ध्वन्यात्मक शब्दो का प्रयोग है। जैसे पृष्ठ ५३ से छन्द १०८ मे क्रोध का भाव झलक रहा है—

कापालिक सुनि बैन अगनि ज्वाला सम फुक्किय।
अरे पाप रे पाप बंत कट कटु वच कुक्किय।।
परम ब्रह्म सों कहत इंद्र जालिक नहि सक्किय।
सो दुसात्मता सहि न परत बहु बार जू बक्किय।
इमि कहि कराल करवाल कर लई जू हाल सटक्कि कें।
पुनि रटिय औरहूं क्रुद्ध करि सभयद बंम कहुक्कि कें।।१०८।।

इस प्रकार क्रोध या उत्साह के भावो के अनुवाद मे प्राय फुक्किय, कुक्किय, सक्किय, वक्किय आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

५. **नाटकीय सकेत**—प्रस्तुत अनुवाद मे पर्याप्त नाटकीय सकेत दिये गये है। उसमे पात्रो के प्रवेश, प्रस्थान, वेशभूषा, नेपथ्य, गृहआवास या रग सज्जा का वर्णन दिया गया है। जैसे पृष्ठ चार पर छन्द बाईस और तेईस मे नट और नटी का वर्णन है।

४७१. इस प्रकार घोकल मिश्र का अनुवाद नाटकीय सकेतो मे सम्पन्न, पद्यबद्ध शैली मे ब्रजभाषा का भावानुवाद है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत अनुवाद

४७२. भारतेन्दु जी ने सस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के तृतीय अक का अनुवाद 'पाखण्ड विडम्बना' नाम से १८७२ ई० मे किया था। इस अनुवाद का नाम मूल ग्रन्थ के तीसरे अक के नाम पर है। क्योकि सस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय के तृतीय अक मे पाखण्डो का वर्णन है।[1] जिससे ज्ञात होता है कि स० प्र० च० के तृतीय अक का नाम ही 'पाखण्ड विडम्बना' है। अतः भारतेन्दु जी ने तृतीय अक का अविकल अनुवाद प्रस्तुत करते हुए, अनुवाद का नाम भी 'पाखण्ड विडम्बना' रख दिया है। इस भाति यह प्रबोधचन्द्रोदय के तृतीय अक का अविकल अनुवाद

---

१. निर्णय सागर प्रेस से प्रकाशित सं० प्रबोधचन्द्रोदय, पृष्ठ ९८।

ही है जैसा कि हिन्दी के अनेक विद्वानो ने स्वीकार किया है।' भारतेन्दु जी का प्रस्तुत अनुवाद सरस एव सजीव है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के अनेक अनुवादो मे से सर्वाधिक सजीवता एवं पूर्णता इसी अनुवाद मे है। इसमे मूल का सौन्दर्य मानो मुखरित हो उठा है। भारतेन्दु जी एक शाश्वत कलाकार थे। वह युग-प्रणेता साहित्यकार, प्रतिभाशाली कवि और मौलिक नाटककार थे। ब्रजभाषा और खडी बोली दोनो के सधियुग मे होने के कारण, दोनों पर उनका विशेष अधिकार था। युग सृष्टा होने के कारण वे सामाजिक जीवन से अनभिज्ञ न थे। समाज के साधु सन्यासियो के जीवन की भाषा और सकेतो से भी परिचित थे। साथ ही उनमे सर्वजन कल्याण चाहने वाली, श्रद्धालु एव भक्त आत्मा भी थी। 'पाखण्ड विडम्बना' का अनुवाद उसी आत्मा से स्पन्दित एव उपर्युक्त विशेषताओ से सुशोभित हुआ है।

४७३ कृष्ण मिश्र कृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के अन्य सभी अनुवादो की तुलना मे इस अनुवाद की सर्वप्रमुख विशेषता तो यही है कि साधु सन्यासी की भाषा मे अन्य पात्रो की भाषा से अन्तर उपस्थित कर दिया गया है। हिन्दी के किसी भी अनुवादक का ध्यान इस विशेषता की उपयोगिता की ओर नही गया। इस भाषान्तर के प्रयोग से अनुवाद मे सजीवता एव रोचकता का तो सचार हुआ ही, साधुओ की अवस्था का जो कलात्मक चित्रण उपस्थित हो सका है उसका चित्रण भारतेन्दु जी के व्यक्तित्व से ही सुलभ था। साधुओं के जीवन की मूर्खता, विलासिता, तथा व्यभिचार तत्कालीन समाज को भी जर्जरित कर रहे थे। जिससे कि श्रद्धा की दुर्दशा हो रही थी। श्रद्धा की

---

१. (क) हिन्दी नाट्य साहित्य—बाबू ब्रजरत्नदास, पृष्ठ ६१।
(ख) हिन्दी नव रत्न—मिश्रबन्धु, पृष्ठ ४९०।
(ग) हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ४००।
(घ) भारतेन्दु नाटकावली, पृष्ठ ७९।
(ङ) हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास—डा० सोमनाथ गुप्त, पृ० ३१-३२।
(च) आधुनिक हिन्दी साहित्य—डा० वार्ष्णेय, पृष्ठ २६२।
(छ) हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास—डा० दशरथ ओझा, पृष्ठ १९४।
(ज) भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य—डा० गोपीनाथ तिवारी पृष्ठ २३४, २३५।

व्यथा एवं शान्ति की पुकार से भारतेन्दु का भी हृदय मर्माहित हुआ था। दूसरी भाषा का प्रयोग करके भारतेन्दु जी ने प्रत्यक्ष मे तो अनुवाद ही किया था किन्तु उससे उनका वास्तविक उद्देश्य—(उनके हृदय का क्षोभ और समाज की धार्मिक दुर्दशा के चित्रण) प्रतिध्वनित होता है।[1] अनुवाद के निवेदन मे उन्होंने स्पष्ट कर दिया है[2] कि किसी वैमनस्य की भावना से यह अनुवाद नही किया गया। ईश्वर से विमुख पाखण्ड का एक दृश्य उन्होने सच्चे श्रद्धालु हृदय से चित्रित किया है।

४७४. साधुओ की अटपटी भाषा के अतिरिक्त गद्य मे खडी बोली और पद्य मे ब्रजभाषा का प्रयोग करके भी, नाटक मे सरस प्रवाह का सचार हुआ है। गद्य की भाषा व्यवस्थित है। पद्य की भाषा मे माधुर्य है।[3] अनुवाद मे पर्याप्त नाटकीयता है। मूल नाटक के अनुसार ही प्रवेश प्रस्थान आदि के अभिनयात्मक सकेत पृथक् ही दिये गये है। इस प्रकार एक अक का अनुवाद होते हुए भी प्रस्तुत अनुवाद अन्य सभी अनुवादो की तुलना मे भाषा विशेष के प्रयोग द्वारा रचना कौशल की दृष्टि से, सर्वप्रथम स्थान का अधिकारी है।

अयोध्या प्रसाद चौधरी कृत अनुवाद

४७५. अयोध्याप्रसाद चौधरी का एक अनुवाद[4] गद्य शैली मे उपलब्ध होता है। 'स्वर्ग के सोपान' रूप प्र० च० के इस अनुवाद को उन्होंने अपने गुरु की आज्ञा

१. "भला इससे पाखण्ड का विडम्बन क्या होना है ? यहां तो तुम्हारे सिवा सभी पाखण्ड है, क्या हिन्दू क्या जैन ? क्योंकि मै तुमको पूछता हूं कि बिना तुमको पाये मन की प्रवृत्ति ही क्यो ?" —भूमिका।

२ "तो इससे यह न करना कि मने किसी मत की निन्दा के हेतु यह उल्था किया है क्योकि सब तुम्हारा है इस नाते से तो सभी अच्छा है और तुमसे किसी से सम्बन्ध नहीं इस नाते से सभी बुरे है ।" —भूमिका

३. शान्ति—(सोच से) मेरी प्यारी मां कहा हैं ? जल्दी मुझे अपना मुखड़ा दिखा। हा !

जो वन मे सरितान के तीर, जहां बहे सीतल पौन सुहाई।
देवन के घर मे, ऋषि के घर मे जिन अपनी आयु बिताई।।
सज्जन के चित्त में जो रही, हिय मे जिन पुन्य की बेल बढ़ाई।
सो परिवाय पलडिन के कर, गाय ज्यो बाधि के राखे कसाई।।
अब मै भी जी के क्या करूंगी ?

अयोध्या प्रसाद चौधरी कृत अनुवाद

४. काशी नागरी प्रचारिणी से उपलब्ध हस्तलिखित प्रतिलिपि।

से हिन्दी में किया था। इसकी सूचना अनुवाद के मुखपृष्ठ[1] से ज्ञात होती है। उस पर अयोध्याप्रसाद चौधरी और उनके गुरू का सक्षिप्त परिचय तथा प्रकाशन काल भी दिया है। उसके अनुसार प० देवीदीन जी इटावा जिले के कस्बा लखना के रहने वाले थे। उन्होंने नार्मल स्कूल आगरा मे अध्यापन कार्य किया था। अध्यापन काल मे उनके एक प्रतिभाशाली शिष्य, (यही अनुवादक अयोध्याप्रसाद चौधरी) थे। ये मल्हौसी बासी के रहने वाले थे। ग्रन्थ का प्रकाशनकाल उसके मुख पृष्ठ पर १८८५ लिखा है। प्रकाशनकाल के कुछ पूर्व ग्रन्थ रचना का अनुमान किया जा सकता है। 'निवेदन'[2] मे अनुवाद का यह लेख कि समयाभाव के कारण, उन्होने अनुवाद सक्षेप मे किया। यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि ग्रन्थ प्रकाशन के कुछ ही पूर्व उसकी रचना हुई थी। दूसरे पुस्तक का प्रकाशन विल्लोचपुरा आगरा के ही प्रेस मे हुआ था इससे भी यही प्रतीत होता है कि अयोध्याप्रसाद चौधरी ने अपने आगरा निवासत्व काल मे ही, इसकी रचना की और वहीं से इसे छपवाया भी। अत इस ग्रन्थ का रचनाकाल, इसके प्रकाशनकाल से कुछ पूर्व मान लें तो सन् १८८४ या ८५ ई० का सिद्ध होता है।

---

१ प्र० च० अनुवाद का मुख पृष्ठ——

प्रबोध चन्द्रोदय : नाटक

(हिंदी भाषा गद्य में)

जिसको कस्बा लखना जिला इटावा निवासी पंडित देवीदीन अध्यापक नार्मल स्कूल आगरा ने अपने विद्यार्थी अयोध्या प्रसाद चौधरी मल्हौसी वासी से बनवाया और प्रकाशित किया।

सुख सम्पति अरु भक्ति प्रद नाशक तम अज्ञान।
पढ़हु चित्त दै ग्रंथ यह सत्य स्वर्ग सोपान।।

आगरा

मतबअ अबुल उलाई मुहल्ला बिल्लौचपुरा में गफूर बख्श के प्रबंध से छपा।

भाद्रपद सं० १९४२ वि०

सितम्बर १८८५ ई०

प्रथम बार २५०

पुस्तक

२. निवेदन !

प्रिय पाठकगण ! यद्यपि इस नाटक में समयाभाव और विस्ताराभाव के कारण विशेष रोचकता नहीं आयी तथापि आप लोगों का समय व्यर्थ न जायेगा।

——ग्रन्थकार

४७६. डा० गोपीनाथ तिवारी ने अपनी पुस्तक[1] मे श्री **अयोध्याप्रसाद चौधरी और देवीदीन के दो पृथक्-पृथक् अनुवाद माने हैं। किन्तु** वास्तव मे ऐसा **नही है।** प० देवीदीन जी ने अपने शिष्य अयोध्याप्रसाद से अनुवाद करवाया था। अतः प्रेरक और कर्त्ता तो दो अवश्य है किन्तु अनुवाद एक है दो नही।

४७७. अब हम प्रस्तुत अनुवाद का अध्ययन निम्न प्रकार से करेगे —

१ **प्रारम्भ**--मगलाचरण मे अनुवादक ने गणेश और अद्वैत ब्रह्म की वन्दना की है।

२ **भाषा शैली**--यह अनुवाद गद्य मे है। इसमे पद्य का प्रयोग नही है। इसकी भाषा खडी बोली हिन्दी है। जो सरल और बोल चाल की होने पर भी सुव्यवस्थित है। जैसे मोह—मत्री तुम आकर अभी सब सेना सजाओ, और चलो युद्ध करके विवेक को जीत लो।

मत्री—महाराज सब सेना तो तय्यार ही है।

मोह—तो जल्दी चलो (सब गये)।

३ **पात्र**--इस अनुवाद मे काम और रति के वार्तालाप मे मूल से भावसाम्य है। इसके अतिरिक्त विवेक और मति का वार्तालाप भी समता रखता है। इसमे दम्भ और अहकार की वार्ता मूल से सक्षिप्त कर दी गई है। दम्भ और अहकार की इस वार्ता के बीच मे ही जैन धर्मी अपने व्यभिचारपूर्ण व्यवहार का वर्णन करता है, जब कि मूल मे श्रद्धा की खोज के प्रसग मे जैन मत का वर्णन है, इस वार्ता मे नही है। श्रद्धा शान्ति, उपनिषद, विष्णुभक्ति आदि मूल पात्रो का प्रयोग नही हुआ है। न इनसे सम्बन्धित काय व्यापार का ही सकेत किया गया है। मूल की भाति पात्रो की मनोवैज्ञानिक योजना नही है। मूल से अतिरिक्त शील, झूठ, सत्य, सतसग, नम्रता, गर्व आदि ऐसे पात्रो का प्रयोग भी हुआ है जिनके दर्शन मूल मे नही होते हैं।

४. **वर्णन प्रसग**--इसमे, मूल के वर्णन प्रसगो मे भी अतर कर दिया गया है। मूल मे कीर्तिवर्मा को विजय के पश्चात्, युद्ध से विरक्त होने के कारण आत्मिक शान्ति देना, नाटक का उद्देश्य बताया गया है। किन्तु प्रस्तुत अनुवाद मे विषयो मे लिप्त कीर्तिवर्मा को ज्ञान देने का उद्देश्य वर्णित है। मूल की भाति मतमतान्तरो और दर्शनो का वर्णन भी नही है। मोह और विवेक के युद्ध की योजना भी मूल की भाति नही है। इसमे मोह और विवेक के पक्ष का वाक्युद्ध होता है। वाक्युद्ध

---

१. भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य—डा० गोपीनाथ तिवारी, पृष्ठ २३४-३५।

में मोह के सब साथी भाग जाते हैं। तत्पश्चात् मोह की पराजय और विवेक की विजय हो जाती है। मूल के अतिरिक्त कुछ वर्णन विज्ञान गीता के प्रभाव से भी प्रभावित हैं। जैसे गाधि की कथा तथा श्रीमन्नारायण की भक्ति का उपदेश आदि।

५. **अंक**--नाटक मे कुल मिलाकर छ अक है। पाच अक साधारण है। छठा अक बहुत लम्बा है। जिसमे पाच गर्भांक है। प्रथम अक मे प्रस्तावना भी है। इसमे सूत्रधार और नटी राजा कीर्तिवर्मा का और नाटक के नाम का परिचय भी देते हैं।

६. **नाटकीयता**--इस अनुवाद को नाटकीय रूप देने की चेष्टा की गई है। इसमे पात्रो का प्रवेश प्रस्थान, भावमुद्रा और अभिनय सकेत, यथा स्थान दिये गये है। कथोपकथन–उपदेशात्मक भाषण के समान हैं, उनके लम्बे होने के कारण, नाटकीयता मे बाधा पडी है। सम्भवत: यह विज्ञान गीता का प्रभाव है, जिससे व्यवधान उपस्थित हो गया है।

४७८. यह अनुवाद मूल का अविकल अनुवाद नही है। मूल के एक अक का तथा कुछ वार्तालापो का भावानुवाद कहा जा सकता है, शेष पर केशवदास की 'विज्ञान गीता' का प्रभाव है।

४७९. इस अनुवाद मे 'विज्ञान गीता' मे समता रखने वाले तथा उस पर आधारित वर्णन प्रसग अनेक हैं। 'विज्ञानगीता' मे जिस प्रकार मूल के एक अक की कथा 'तीन प्रभावो' मे वर्णित है, उसी से समता रखते हुए प्रस्तुत अनुवादक ने भी, प्रथम अक की कथा के तीन विभाजन, प्रस्तावना–प्रथम अक तथा द्वितीय अंक के रूप मे किये है। प्रस्तावना मे सूत्रधार का प्रसग प्रथम अक मे काम और रति का तथा द्वितीय मे विवेक और मति का प्रसग है। जबकि मूल मे ये सब प्रसग एक ही अक मे सम्मिलित है। दूसरे प्रस्तुत अनुवाद की 'मिथ्यादृष्टि' का चित्रण मूल की अपेक्षा 'विज्ञान गीता' की 'मिथ्या दृष्टि' से समता रखता है। मूल मे मिथ्यादृष्टि को महामोह केवल कार्य सौंपने के हेतु बुलाता है और उसे कार्य के हेतु आज्ञा देता है। वह उस समय प्रसन्नता से कार्य सम्पन्न करने को तत्पर हो जाती है जिससे उसके हावभाव से प्रभावित महामोह उससे विलासमात्र करता है। उदाहरण के लिए मूल का महामोह और मिथ्यादृष्टि का प्रसग पृष्ठ ९० और ९३ पर है। 'विज्ञान गीता' मे मूल का यह प्रसग इस प्रकार नही है। उसमे मिथ्यादृष्टि को महामोह की पटरानी के रूप में वर्णित किया गया है। मिथ्यादृष्टि शृगार किये हुए दास दासियो से सेवित बैठी रहती है, मोह उसके पास जाकर उसे देश-विदेशो मे व्याप्त अपना वैभव सुनाता है। जिसको सुनकर मिथ्यादृष्टि उसे शुभ परामर्श देती है। 'विज्ञान गीता' मे यह प्रसग निम्न प्रकार से है :—

देखि सबै पाखण्ड पुर, अपनी सिगरी सृष्टि।
रावर मांझ गए जहां, रानी मिथ्या दृष्टि ॥९॥
दुराशा जहां तृष्णिका देह धारे।
दुहूं ओर बोऊ भले चौंर ढारें।

राजा—अनुकूल—आय कछू देखति दुचिताई।
लोकनि में यद्यपि प्रभुताई॥
एक विवेक सुमोमन सारे॥१३॥
कौन भांति वह जीतन पाऊँ।
बूझि बूझि देखे हम मंत्री॥

रानी—तोमर—सुनि राज राज विचारु।
वह शत्रु दोहनिहारु॥
सहसा न दीजं दांउ।
यह राजनीति प्रभाउ॥१५॥

राजोवाच—कहा कामिनी तें कही बात मोसों।
× × ×
में जितने तीरथ लए, तितने कहौं बखानि।
× × ×
बर्तत झूठ प्रधान हमारे।
× × ×
क्रोध बड़ो वलपत्ति है मेरे॥
× × ×
अग्रेसर कलि कहत है, अपने चित्त विचार।
× × ×
राखत लोभ भंडार भरेई।
× × ×
है भ्रम भेद वशीठ सयाने।
× × ×
काम महा इक सोदर मेरे॥
× × ×
नाम कृतघ्न पिता त्रिय तेरो।
× × ×
स्वामि बात विश्वास घातम मित्र दोखति देखि।
× × ×
ब्रह्म दोष महाबली सुतते जन्यो बलि बच्छ॥

—प्रभाव पांच-छः, पृष्ठ २१-२७।

'विज्ञान गीता' के इस उपर्युक्त प्रसग के अनुसार ही अनुवाद मे भी मिथ्यादृष्टि महामोह की महारानी के रूप मे महामोह के साथ सिहासन पर विराजमान होकर, शुभ परामर्श करती है। यह परामर्श भी 'विज्ञानगीता' से समता रखता है। यह समता स्पष्ट करने के लिए हम अनुवाद का निम्न उदाहरण ले सकते है .—

(स्थान राज सभा)

मोह महाराज भी महारानी मिथ्यादृष्टि समेत सिहासन पर बैठे—

मोह—प्रिय देखो अब सब तीर्थों मे मेरे सैनिक वीर विराजमान हैं, मानो उनमे मेरा अधिकार हो गया। × × ×

रानी—हे! आर्यपुत्र काशी जीतना कठिन है। × × ×

महराजा—हे प्यारी तुम उनका बल क्या वर्णन करती हो। मेरे योद्धाओ के बल की गति तुम कुछ नही जानती, सुनो बधु विरोध मेरा बडा मत्री और झूठ मेरा प्रधान है। कलियुग हराबुल और क्रोध सेनापति है। कामदेव मेरा सहोदर भाई है। व्यभिचार उसका पुत्र है।—लोभ भण्डारी है। भ्रम और भेद ये दोनो बड़े दूत—तुम्हारा पिता कृतघ्न है—स्वामिघात, विश्वासघात और मित्र द्रोह ये उसके पुत्र तेरे भाई हैं। ब्रह्मदोष तेरा पुत्र है।

—प्र० च० अनुवाद, चतुर्थ अक, पृष्ठ ९।

तीसरे मोह और विवेक की ओर से दूत भेजने का प्रसग भी अनुवाद मे 'विज्ञान गीता' के समान ही है। मूल मे यह प्रसग इस प्रकार नही है। 'विज्ञानगीता' मोह, भ्रम और भेद नाम के दूतों को विवेक के पास भेजता है। उसी प्रकार प्रस्तुत अनुवाद मे भी भेजा गया है। चौथे प्रस्तुत अनुवाद मे महामोह और विवेक के युद्ध मे, जिन सैनिको का परस्पर विरोध वर्णित हुआ है, यह भी मूल की अपेक्षा 'विज्ञान गीता' के विरोधी पात्रो से समता रखता है। जैसे—

अनुवाद			विज्ञानगीता		
क्रोध		—शील	क्रोध	—	सहनशील
काम	—	वैराग्य	राग	—	विराग
गर्व	—	नम्रता	गर्व	—	प्रणयनय
झूठ	—	सत्य	असत्य	—	सत्य

इस प्रकार अनुवाद और विज्ञानगीता के पात्र समता रखते है जबकि मूल मे क्रोध को क्षमा ने तथा काम को वस्तुविचार ने जीता है। प्रस्तुत अनुवाद मे विज्ञान-गीता से समता रखता हुआ पांचवा प्रसंग है, गाधि की कथा का विस्तार से वर्णन। मूल नाटक मे यह प्रसग नही है। 'विज्ञान गीता' और अनुवाद के इस वर्णन प्रसग मे समता देखने के लिए दोनों में से केवल एक एक उद्धरण ही पर्याप्त होगा। जैसे—

मूड़ि शिखा उपवीत उतारो।
गावह जाइ चढ़ाइ संवारो ।।
मुंडनईश शिखा जब जानी।
× × ×
आइ अकाश भई नभवानी ।।
भूतल भूप न भूलहु कोई।
ब्राह्मण गाधि चंडार न होई ।।
वाणी अकाश सुन भ्रम भाग्यो।
राजहि को ऋषि ब्राह्मण लाग्यो।
आशिष दै वन गाधि गएऊ ।।

—विज्ञान गीता, पृष्ठ ६९।

नाई—(मूडते हेतु चोटी पकडता है इतने मे आकाशवाणी हुई) हे राजा। भूलो मत यह गाधि नाम ब्राह्मण ही है। (सबने सुनी)

राजा—(अचभे से दौडकर ब्राह्मण के पैरो पर पडता है) विप्रवर महाशय। बिना जाने अपराध क्षमा कीजिये, मैंने आपसे बहुत कटु वचन कहे है।

गाधि—महाराज बढ़ो प्रसन्न रहो ।++

—प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ २१।

४८० इस प्रकार इस उपर्युक्त समता को दृष्टि मे रखते हुए हम कह सकते है कि यह अनुवाद मूल की अपेक्षा विज्ञानगीता से अधिक समता रखता है।

भुवदेव दुबे कृत अनुवाद

४८१ भुवदेव दुबे का अनुवाद गद्य शैली मे है। यह अनुवाद १९वी ई०शताब्दी मे लिखा गया है। किन्तु रचनाकाल की निश्चित सूचना अनुवाद से नही मिलती है। अनुवाद के प्रथम प्रकाशन काल से ही, रचनाकाल का अनुमान किया जा सकता है। अनुवाद का प्रथम प्रकाशन-काल उसके मुख पृष्ठ पर १८९४ ई० लिखा हुआ है। इसके पश्चात दूसरे पृष्ठ पर सन् १९९३ ई० भी दिया हुआ है। इससे अनुमान होता है कि अनुवाद १८९३ ई० के आसपास ही नाट्य रसिकों के विनोदार्थ किया गया था। डा० गोपीनाथ तिवारी ने 'भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य' नामक पुस्तक मे पृ० २३५ पर, प्रस्तुत अनुवाद का रचनाकाल १८९६ ई० दिया है। किन्तु १८९३-९४ ई० की नवलकिशोर प्रेस से मुद्रित प्रति मुझे उपलब्ध हुई है। यह सन् अनुवाद के प्रथम सस्करण के प्रकाशन का काल है। अतः रचनाकाल सन् १८९३ ई० के कुछ पूर्व का तो होना सम्भव भी है, बाद का नहीं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि १८९६ ई० का दूसरा संस्करण डा० तिवारी को उपलब्ध हुआ होगा और वास्तव मे रचनाकाल १८९३ ई० के लगभग ही है।

४८२ डा० तिवारी ने सूचना दी है कि केवल प्रथम अक का अनुवाद ही उपलब्ध होता है। इससे डा० तिवारी को द्वितीय सस्करण उपलब्ध होने का प्रमाण अधिक पुष्ट होता है। क्योकि मेरी प्रति मे प्रथम और द्वितीय—दो अको का अनुवाद दिया हुआ है। डा० सोमनाथ गुप्त ने भी भुवदेव दुबे के द्वारा प्रथम दो अंको के अनुवाद का, दो भागो मे उपलब्ध होना स्वीकार किया है। डा० गोपीनाथ तिवारी की पुस्तक मे 'भुवदेव दुबे' के स्थान पर 'भवदेव दुबे' लिखा हुआ है। सम्भवत ऐसा प्रेस त्रुटि के कारण हुआ है।

४८३ भुवदेव दुबे का यह अनुवाद मूल नाटक से सम्बन्धित नही है। इस अनुवाद का आधार मूल नाटक न होकर, ब्रजवासीदास कृत ब्रजभाषा का अनुवाद है। भुवदेव दुबे ने नाट्य रसिको के विनोदार्थ, ब्रजवासीदास के ब्रजभाषा के पद्यानुवाद को, खडी बोली हिन्दी के 'गद्यानुवाद मे परिवर्तित कर दिया है। प्रस्तुत अनुवाद मे ब्रजवासी के अनुवाद से प्रसगो मे तो समानता है ही, साथ ही यत्र तत्र शब्दो और वाक्यो मे भी समानता मिलती है। दोनो अनुवादो के प्रारम्भ मे केवल इतना अन्तर है कि जैसा मगल पाठ ब्रजवासीदास ने दिया है वैसा दुबे जी ने नही दिया है। ब्रजवासीदास ने अपने अनुवाद मे, जहा से नटो आदि की सूचना देकर अभिनय प्रारम्भ होने का वर्णन किया है। वही से प्रस्तुत गद्यानुवाद प्रारम्भ हुआ है। दोनो ही अनुवादो के प्रारम्भिक अशो के उद्धरणो से, यह धारणा सप्रमाण स्पष्ट हो जायगी। दोनो के अनुवादो के उद्धरण निम्न प्रकार से हैं —

ब्रजवासीदास कृत अनुवाद का प्रारम्भ—

चरण कमल बन्दो रुचिर जे हरि दास अनन्य।
जिनकी कृपा कटाक्ष ते सकल देव परसन्य।।१।।

+ + +

नटउवाच० चतु पदीछन्द—

ए मृगननी कोकिल नैनीमन हरणी मन प्यारी।
आज भई इक गिरा गगन में अति अद्भुत सुखकारी।
जो शिर भारहुतो वह ममको महा दुखद अति भारी।
सो गिरिगयो सुनत श्रवणन अब सोवें पाय पसारी।।३२।।

—प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ १ से ५।

भुवदेव दुबे कृत अनुवाद का प्रारम्भिक अंश—

(कीर्त ब्रह्मराजा गुपालमजी साधु समागम नट समाज)

वार्ता—कीर्तब्रह्म महाराज की सभा में साधु समागम नामी नट अपर मित्र

सहायक रूपयौवन गर्वित पुरुष स्त्री सहित सपूर्ण वीणा मृदग सितार आदि यत्र लेकर प्रवेश करते गान करने लगे पश्चात् नट कहता है।

नट—(भुजा उठाकर कहता है) अहो समस्त तत्रीगणहो किंचित् समय पर्यंत यत्रो को मौनकरके श्रवणकरो (फिर निज स्त्रीसे कहता है) है मृगनैनी कोकिलबैनी मेरी प्रिया आज महान् सुखदायक एक अद्भुत आकाशवाणी हुई है जिसके श्रवण करते ही मेरे शिरपर से अभिमान का भार गिर गया जिससे अब मैं पाय फैलाकर सुख पूर्वक सोता हूँ—

—प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ १।

४८४ प्रस्तुत अनुवाद की भाषा खडी बोली हिन्दी है। यह गद्य शैली मे लिखा गया है। इसमे पर्याप्त नाटकीयता भी है। रगमच का सजाव, पात्रो का प्रवेश, व्यवहार और अभिनय सकेत ब्रजवासीदास के अनुवाद की भाति होते हुए भी, नाटकीय ढग से ही दिये गये हैं। ब्रजवासीदास के अनुवाद मे रगसकेत पृथक नही है, पद्यबद्ध काव्य मे ही है। भुवदेव दुबे का गद्यानुवाद होने से अभिनय सकेत पात्र कथन से पृथक् कोष्ठक मे कर के दिये गये है। जिसमे नाटकीयता पर्याप्त मात्रा मे आ गई है। ब्रजवासीदास के नाटकीय सकेतो के उदाहरण, ब्रजवासीदास के अनुवाद के अध्ययन मे दे दिये है। प्रस्तुत अनुवाद का उदाहरण कुछ तो इसके प्रारम्भिक अश के उद्धरण मे आ गये है। अब एक दो उदाहरण ही पर्याप्त होगे —

(अहकार और दभकी इतनी बातचीत होते ही मोहका स्वाग परदे के अदर मे प्रगट हुआ आगे उसके एक चोबदार आय पुकार कर कहिने लगा कि सब स्त्रीपु प हो सावधान होकर सुनो अब महाराजधिराज मोहराज का आगमन होता है इस हेतु तुम सब शृगार कर गलियो की धूल दूरकर सुगध सीच गृह गृह के दरवाजो को सवारो उसी समय मोहराज सुदर वस्त्र पहिने रत्नजटित मुकुट दिये छत्र धूमता हुआ बडे राजसी ठाटबाटसे जहा दभादिक थे उसी स्थानपर एक ऊँचे सिहासनपर आयकर बैठगये + +)

—प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ ३३।

४८५ इस प्रकार इन उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि प्रस्तुत अनुवाद मे भावभगिमामय अभिनय हैं। डा० सोमनाथ गुप्त ने अपनी कृति 'पूर्वभारतेन्दु नाटको का परिचय' मे अनुवाद को गद्य सवाद माना है, जिसमे नाटक-प्रणाली का प्रयोग अधिक है।[1] परन्तु अनुवाद को पढने पर डा० सोमनाथ गुप्त की धारणा

१. "परन्तु यह अनुवाद नहीं है और न रूपान्तर ही है। जिस प्रकार आत्माराम जी का प्रबोधचन्द्रोदय नाटक छन्दबद्ध संवाद है उसी प्रकार यह गद्य संवाद है। इसमें नाटक प्रणाली का अवलम्बन अधिक किया गया है।" —पृष्ठ ४५।

निर्मूल प्रतीत होती है। क्योंकि उपरोक्त अनुवाद ब्रजवासीदास के अनुवाद के आधार पर गद्य नाट्य शैली में किया गया है। साथ ही इसमें नाटकीयता का अस्तित्व भी भरपूर है। इस प्रकार नाट्य रसिको के हेतु तत्कालीन गद्य शैली में लिखा गया, यह ो अको का अनुवाद है।

कार्ष्णि गोपालदास कृत अनुवाद

४८६ कार्ष्णि गोपालदास ने मूल का अविकल अनुवाद किया है।[1] जिससे इसमे गद्य पद्य मिश्रित शैली का प्रयोग हुआ है। अनुवाद प्रारम्भ करने से पूर्व गोपालदास ने, दान देकर पुस्तक छपवाने वाले को धन्यवाद दिया है। क्योंकि प्रस्तुत अनुवाद को भक्त रामनरायण जी ने स्वद्रव्य से धर्मार्थ छपवाया था। भूमिका मे गुलाबसिह के अनुवाद का सकेत करते हुए, अपने अनुवाद की रचना प्रणाली पर भी प्रकाश डाला है। अनुवादक का परिचय, अनुवाद के अन्त मे एक पृष्ठ पर सस्कृत भाषा के श्लोको मे दिया हुआ है। ये मथुरा के निवासी थे। इनके गुरु 'श्री-मत्परमहमोदासीन शिरोवतस स्वामिज्ञानदास' थे।

४८७ प्रस्तुत अनुवाद की रचना सन् १९०८ ई० मे हुई थी। रचनाकाल के सम्बन्ध मे रचना के अन्त मे लेखक ने लिखा है —

> शर रस अंक मृगांकमें, महाविपिन करवास।
> माघमास मे ग्रन्थ यह, विरचा मथुरा पास।।५।।
>
> —प्र० च०, अनुवाद, पृष्ठ २०५।

इससे स्पष्ट होता है कि सम्वत् १९६५ (१९०८ ई०) मे, इसकी रचना की गई थी।

४८८. यह अनुवाद मूल का अविकल अनुवाद है। अत इसके विवरण और कथा प्रसग आदि मूल के ही अनुसार हैं। अनुवादक ने लिखा भी है :—

> मूल ग्रन्थ मे नियम जो, सो सब इसमें जान।
> न्यून अधिककुछनहि किया, लख प्रतिबिम्ब समान।।४।।
>
> —प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ २०५

४८९ प्रत्येक अक के प्रारम्भ की सूचना जैसे 'अथ द्वितीयऽङ्कः' दी गई है। अक की समाप्ति पर उसका नाम भी दिया गया है। जैसे—

"इति श्रीप्राकृतप्रबोधचन्द्रोदयनाटके कामादिप्रभाववर्णनं नाम द्वितीयोऽङ्कः सम्पूर्णः।।२।।"

४९०. प्रकृत अनुवाद मे मूल के भाव अपने मूल रूप मे ही व्यक्त हुए हैं।

---

१. चिरंजीव पुस्तकालय आगरा से प्राप्त प्रकाशित प्रति।

भावो के वर्णन में से हम ऐसे अनेक उदाहरण ले सकते हैं। जैसे क्रोध ने अपना, जो परिचय दिया है, उसके पद्यात्मक भाषानुवाद मे, मूल की मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता सुरक्षित है, जो निम्न प्रकार से है :—

करू भुवन को बधिर,
सकल जग अधा करहूं।
चित को करूं अचेत,
धीर का धीरज हरहूं॥
जिससे हित नहिं सुनत,
न निज कर्त्तव्य दिखावे।
पण्डित को भी पठित,
शास्त्र पुन याद न आवे॥२९॥

—प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ ६२-६३।

उपर्युक्त उद्धरणो से स्पष्ट है कि अनुवादक मूल के भाव सौन्दर्य को व्यक्त करने मे समर्थ रहा है।

४९१. अनुवाद मे यत्र तत्र टिप्पणिया देकर भी अर्थ को विशेष रूप से स्पष्ट किया है। मूल नाटक मे पुरुष पात्र विष्णुभक्ति से वार्ता करते हुए ही अतिम भरत वाक्य कह देता है। किन्तु इस अनुवाद मे, सूत्रधार ने भरत वाक्य कहा है। भरत वाक्य दोनो मे ही समान है। भरत वाक्य के अनन्तर अनुवादक ने मूल नाटक की प्रसशा मे कुछ पक्तिया लिखी है। अनुवाद की भाषा के सम्बन्ध मे स्वय अनुवादक के ये शब्द हैं — "इस कारण सर्वसाधारण पुरुषो के उपयोगी नही होने से ब्रजभाषा मे किया है, इस ग्रन्थ मे मूल गद्य की गद्य भाषा, पद्य की पद्य भाषा की है, अर्थात् एक मूल श्लोकका अर्थ एक ही भाषाछन्द मे रक्खा है। इस अवतरण से ऐसा प्रतीत होता है कि इस अनुवाद की भाषा ब्रजभाषा होगी। परन्तु इसके गद्य और पद्य दोनो की ही भाषा खडी बोली हिन्दी प्रतीत होती है —

कृष्णमिश्र की सुरगिरा, क्षीरसमुद्र समान
कृष्णकृपासे मथनकर, काढ़ा रत्न महान॥

—प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ २०४।

इस प्रकार यह प्रबोधचन्द्रोदय का अविकल अनुवाद है।

महेशचन्द्र प्रसाद कृत अनुवाद

४९२. महेशचन्द्र प्रसाद का अनुवाद[१] "प्रबोधचन्द्रोदय' का गद्य पद्यात्मक अविकल अनुवाद है। इसके तीसरे अक मे रूपान्तर के भी दर्शन होते हैं। अनुवाद

१. महेशचन्द्र प्रसाद से भेंट रूप में प्राप्त प्रकाशित प्रति।

के मुख पृष्ठ से यह ज्ञात होता है कि इस अनुवाद का प्रकाशन १९३५ ई० में हुआ था, अतएव इसका रचनाकाल भी लगभग यही होगा, यह मानना उचित होगा। यह अनुवाद खड़ी बोली हिन्दी में है और जैसा कि पहले कहा गया, इसका रूप गद्य पद्यात्मक है। तात्पर्य यह कि मूल नाटक की विशेषताओ को इसमें लाने का प्रयास किया गया है। अनुवाद के प्रारम्भ में ही अनुवादक ने 'नाटक के पात्रगण' शीर्षक में पात्रो की सूची, उनका परिचय तथा आपसी सम्बन्धो को स्पष्ट कर दिया है। अपनी भूमिका में उन्होंने संस्कृत के मूल ग्रन्थ का सामान्य परिचय तथा प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्बन्ध में प्रबोधचन्द्रोदय के अंग्रेजी अनुवादक जे० टेलर की कतिपय सम्मतियो को उद्धृत किया है, साथ ही अपने कथन के प्रामाण में श्री शंकराचार्य के ग्रन्थो तथा गीता के कुछ श्लोकों को उपन्यस्त किया है। यही पर उन्होने 'प्रबोधचन्द्रोदय' की कुछ टीकाओ और अनुवादो की ओर भी संकेत किया है।

४९३. इस अनुवाद का उद्देश्य जैसा कि, अनुवादक ने स्वयं अपनी भूमिका में बतलाया है,[1] युग के प्रभाव में बहते और चार्वाक या भौतिक मत को अपने मस्तिष्क में प्रश्रय देने वाले विद्यार्थियों को अध्यात्म का ज्ञान कराना और उसके द्वारा उनके नैतिक उत्थान की कामना करना है।

४९४. अपनी युग परिस्थिति के अनुकूल महेशचन्द्र प्रसाद ने अपने अनुवाद में उदार दृष्टिकोण रखा है। इसका प्रमाण यह है कि मूल प्रबोधचन्द्रोदय के तीसरे अंक का अनुवाद करते समय, पर्याप्त सावधानी बरती है। उक्त अंक में जैन मत, बौद्ध मत और कापालिक मत को कृष्ण मिश्र ने कुछ दूसरी ही दृष्टि से देखा है, अर्थात् इन मतो के सम्बन्ध में उनका रुख कुछ आलोचनात्मक रहा है। परन्तु अनुवादक ने इस बात को ध्यान में रख कर कि यदि मूल का अविकल अनुवाद किया गया तो सम्भव है, जैनो या बौद्धो को कुछ आपत्ति हो। उक्त अंक के अनुवाद में आलोचनात्मक अंश का अनुवाद नही किया। इन सभी बातो का उल्लेख उन्होने अपनी भूमिका में किया है[2] जिससे कि उनके उदार दृष्टिकोण का परिचय मिलता है।

४९५. तृतीय अंक के अनुवाद में निम्नलिखित विशेषताएँ हैं —

(१) दिगम्बर मत प्रवेश नही करता, न उसके मत की आलोचना ही की गई है। उसके स्थान पर यहा कापालिक है।

(२) बौद्धागम भी रंगमंच पर प्रवेश नही करता। उसके मत की आलोचना भी नही की गई है।

---

१. देखिये—भूमिका, पृष्ठ ६।

२. देखिये—भूमिका, पृष्ठ ११।

(३) बौद्धागम के स्थान पर एक वैष्णव महन्त प्रवेश करता है। वह बौद्ध धर्म की आलोचना के स्थान पर कृष्ण की रास-लीला का वर्णन करता है। किन्तु महन्तो के पाखण्डो एव व्यभिचारो का विस्तृत वर्णन नही किया गया है।

(४) प्रारम्भ मे दिगम्बर के स्थान पर कापालिक प्रवेश करता है जो उसके स्थान पर अपने मत के सम्बन्ध की बातो को कहता है। इसके बाद करुणा और शान्ति बात करने लगती हैं। इतने मे महन्त आता है। वह अपनी विशेषताएँ बताता है, फिर कापालिक से पूछता है। कापालिक और महन्त की बातचीत मूल के कापालिक और क्षपणक की बातचीत जैसी ही है। यहाँ बौद्धागम का कार्य कापालिक के शिष्य से लिया गया है।

(५) वार्तालाप भी सक्षिप्त ही किये गये हैं। जैसे—शान्ति और श्रद्धा का वार्तालाप, बौद्धागम के परिचय मे नही दिखाया गया है। उनके स्थान पर कापालिक शिष्य ही कहता है।

(६) श्लोको को प्रसगानुसार आगे पीछे भी किया गया है। सब श्लोकों और उनकी कुल सख्या मूल के ही समान है।

(७) जैन और बौद्ध साधुओं का विरोधी वार्तालाप नही दिखाया गया।

(८) कापालिक मत का वर्णन मूल की ही भाति विस्तार मे हैं।

(९) अन्त मे मूल की ही भाति महन्त और कापालिक अपने को महामोह का ककर बताकर श्रद्धा का हरण करते है।

४९६. **अनुवाद की अन्य विशेषताए**— प्रस्तुत अनुवाद मे निम्नलिखित अन्य विशेषताएँ दीख पडती है —

अनुवाद मे मूल के भाव को मूल रूप मे ही व्यक्त किया गया है। उदाहरण के लिए इस नान्दी को लिया जा सकता है :—

मध्य दिवस रवि-रश्मि बीच जल-बीचि सुहावे।
अनिल, अनल, जल, नभ-थल त्यो त्रैलोक्य रचावे ॥
जिस प्रभु का अज्ञान, पुनः वह लय को पावे।
लहे ज्ञान ज्यों भ्रम न हार हर-हार सतावे ॥
अमल और आनन्द-घन, अमल हृदय से गम्य की।
करते चारु उपासना, हम उस ज्योति सुरम्य की ॥ १॥

—प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ १।

इसमे मूल की नान्दी का भाव बिल्कुल स्पष्ट हो गया है। इसके अतिरिक्त कुछ मौलिक पात्र भी प्रयुक्त हुए हैं—जैसे महन्त। इसके अतिरिक्त मूल के दिगम्बर और

बौद्धागम इसमें नहीं आते हैं। मूल के श्लोकों के अनुवाद के लिए विविध छन्दो की योजना की गई है। जैसे—मुकुन्द, चकोर, मतगयन्द, वासन्ती, अनग शेखर, हरिगीतिका, विजया और स्पेन्सर छन्द आदि। नाटकीय सकेत भी पर्याप्त मात्रा मे हैं। अनुवाद गद्य पद्यात्मक है। गद्य भाषा सुव्यवस्थित खडी बोली है। पद्यो मे कहीं कही प्रवाह का अभाव सा प्रतीत होता है। परन्तु अधिकाश मे अनुवादक, मूल की स्वाभाविकता को बनाए रखने मे समर्थ रहा है। इस भांति खडी बोली का यह अविकल अनुवाद अपनी युगपरिस्थिति के अनुसार सक्षिप्त परिवर्तन से युक्त है।

विजयानन्द त्रिपाठी कृत अनुवाद

४९७. विजयानन्द त्रिपाठी जी ने प्रबोधचन्द्रोदय का अनुवाद[1] काशी नरेश श्री प्रभुनारायण सिंह देव शर्मा के प्रीत्यर्थ किया था, जिसका कि सकेत इसके मुख पृष्ठ पर है। इसी मुख पृष्ठ से यह भी सूचित होता है कि ठाकुरदास चीफ इसपेक्टर ने बनारस स्टेट प्रेस से इसे मुद्रित कराया था।[2] इस अनुवाद के प्रारम्भ मे अनुवादक ने अपनी भूमिका मे नाटककार कृष्ण मिश्र की जीवनी-जन्मस्थान, समय और जीवन की विशेष घटनाओ के सम्बन्ध मे प्रकाश डाला है[3] जिसकी चर्चा हम कृष्ण मिश्र के जीवन के सम्बन्ध मे विचार करते हुए, कर चुके है। अनुवादक ने अपने पूर्वजो से सुनी हुई इस घटना का उल्लेख किया है कि प्रस्तुत नाटक का अभिनय बनारस के महाराजा द्विजराज ईश्वरी नारायण सिंह सी० एस० आई के समय मे हुआ था।

४९८. प्रस्तुत अनुवाद का उद्देश्य अनुवाद के ही शब्दो मे यह है "अपनी मातृभाषा पुष्टि के हेतु आवश्यक जान पडता है कि इसका हिन्दी अनुवाद दिया जाय। इसमे यथासाध्य मूल मे गद्याश का गद्य और पद्याश का पद्य मे अनुवाद करने का प्रयत्न किया गया है।" भूमिका मे नाटक की सक्षिप्त कथा भी लिखी है। खेद है कि इस प्रकार समीक्षात्मक भूमिका लिखने पर भी अनुवादक ने अनुवाद का रचनाकाल नही दिया है। इसके मुद्रणकाल का उल्लेख भी इसमे नही है। बनारस मे जिन व्यक्तियो ने इनको देखा था, उनका कहना है कि वे १९५८ मे जबकि उनकी अवस्था ७० वर्ष के लगभग थी—दिवगत हुए थे। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि उक्त अनुवाद की रचना उन्होने अपनी ५० वर्ष की अवस्था मे अर्थात् १९३८ ई० के लगभग किया होगा।

---

१. काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्राप्त हस्तलिखित प्रति।

२. देखिए मुख पृष्ठ।

३. देखिए—भूमिका, पृष्ठ १०।

४९९. प्रस्तुत अनुवाद की भाषा हिन्दी खड़ी बोली है। भाषा सरल एव सुस्पष्ट है। इस अनुवाद को गद्य-पद्य-मिश्रित अविकल अनुवाद कहा जा सकता है। गद्य की भाषा सुव्यवस्थित है। पद्य की भाषा मे पर्याप्त प्रभाव एव प्रवाह है। हिन्दी खडी बोली के अनुवादो मे एक मात्र यही अनुवाद है जिसे पूर्ण और अविकल अनुवाद कहा जा सकता है। एक अनुवाद महेशचन्द्र प्रसाद का भी है। किन्तु उसमे महेशचन्द्र प्रसाद ने जैन और बौद्ध धर्म के वैमनस्य को मिटाने के हेतु, कुछ मौलिक परिवर्तन कर दिये है। जिससे उसे पूर्णतया अविकल अनुवाद नही कहा जा सकता है। प्रस्तुत, अनुवाद मे अनुवादक ने कोई ऐसा परिवर्तन विस्तार या सक्षेप नही किया है अत हिन्दी खडी बोली का एक ही यह अविकल अनुवाद है। अविकल अनुवाद के रूप मे हम मूल के पृष्ठ ४ ५, पर सूत्रधार के कथन मे साम्य देख सकते हैं :—

"सूत्रधार—बहुत बढाने से क्या ? जिस के चरण कमल की आरती राजाओ के मुकुटमणियो के ज्योतियो द्वारा हुआ करती है, और जिसे प्रचड शत्रुओ के वक्ष-स्थल विदारण के लिये साक्षात् नृसिंहावतार और बडे-बडे राजाओ के एकार्णव मे से सुधा के उद्धार करने में साक्षात वाराहावतार कहना चाहिये-और जिसके कीर्तिलता पल्लव से दिग् विलासनियां शोभायमान हैं।

—प्र० च० अनुवाद, पृष्ठ १७।

५००. छ अको मे यह अनुवाद है। हस्तलिखित प्रति के कुल मिलाकर ८२ पृष्ठ है। जिसमे एक ओर लिखा है। इनमे से १६ पृष्ठो मे अनुवादक ने विस्तृत भूमिका दी है। अनुवाद ७९ पृष्ठों तक है। अनुवाद के पश्चात् प० देवीप्रसाद जी को सुधार के हेतु धन्यवाद है। दो पृष्ठो मे कृष्ण मिश्र की वशावली का वर्णन सस्कृत मे दिया हुआ है। और अन्तिम पृष्ठ पर उस वशावली का चित्र दिया है। यह वशावली अनुवादक की कल्पना से ही नि सृत प्रतीत होती है। क्योकि इसके लिए विशेष ऐतिहासिक प्रमाण नही दिए गए हैं। इस अनुवाद के प्रत्येक अक का आरम्भ और अन्त मूल की ही भाति है। नाटकीय सकेत गद्य मे मूल की भाति (कोष्ठक आदि मे) दिये गये हैं। इस प्रकार हिन्दी खडी बोली का यह एक अविकल अनुवाद है।

५०१. **उपलब्ध हिन्दी अनुवादों के अध्ययन का निष्कर्ष**—इस प्रकार 'प्रबोधचन्द्रोदय' के उपलब्ध हिन्दी अनुवादो के उपर्युक्त अध्ययन मे हमने यह देखा है कि कुछ अनुवाद काफी अच्छे और कुछ साधारण कोटि के रहे हैं। इनमे से कुछ मे, जहा, प्रबोधचन्द्रोदय के अविकल अनुवाद की प्रवृत्ति जागरूक रही है वहा कुछ मे, उसके अशत और भावानुवाद की ओर झुकाव रहा है। नाटक की दृष्टि से परीक्षण करने पर इनमे से कुछ ही नाटक कहे जायगे। फिर भी इस बात को ध्यान में रखते हुए कि

आज से कुछ वर्ष पहले जबकि इन अनुवादों का बोलबाला था, भाषा का रूप लगभग वैसा ही था जैसा कि इन अनुवादो मे उपलब्ध होता है। हम अनुवादको को इस दोष से मुक्त कर सकते है।

५०२. एक बात जो कि सामान्य रूप से इन सभी अनुवादो मे दिखाई देती है यह है कि इन सभी ने यथासम्भव प्रबोधचन्द्रोदय के भावो की सुरक्षा करते हुए उसके नाटकीय तत्वो का समाहार अपने अपने अनुवादो मे अनुवादको ने किया है। इस दृष्टि से वे सभी धन्यवाद के पात्र है। यद्यपि कुछेक नाटको मे 'प्रबोधचन्द्रोदय की कुछ घटनाओ और वर्णनो का अनुवाद नही किया गया है और किन्ही उपरोक्त स्थलो पर अपनी ओर से घटनाओ और वर्णनो का सयोजन हुआ है, परन्तु अनुवादको के सामने उनकी जो परिस्थितिया थी, उनके प्रकाश मे यदि हम इस तथ्य को देखे तो कदाचित वे उसके लिए क्षम्य होगे।

अनुपलब्ध अनुवादों के सूचना स्थल

५०३. अनुसधान काल मे कुछ अनुवाद उपलब्ध न हो सके। केवल उनके सम्बन्ध मे सूचनाए ही मिल सकी है। जिनसे ज्ञात होता है कि मूलनाटक से, ये अनुवाद अवश्य हुए थे। किन्तु आज अनुपलब्ध है। अत इन अनुवादो के सूचना-स्थलो का विवरण—इस अध्याय के आरम्भ मे अनुपलब्ध अनुवादो की सूची मे दिये क्रम के अनुसार हम नीचे देगे।

अनाथदास कृत अनुवाद

५०४. सर्वप्रथम अनाथदास के अनुवाद के सूचना स्थलो के अध्ययन का क्रम प्राप्त है। अनाथदासजी का जन्म १६४०ई० मे हुआ था।[1] प्र०च०का अनुवाद इनकी तीसरी कृति है।[2] इस अनुवाद का रचनाकाल सन् १६६९ ई०[3] और प्रकाशनकाल सन् १८८३ ई० है।[4] इसका प्रकाशन नवल किशोर प्रेस से हुआ है। डा० सोमनाथ गुप्त ने 'पूर्व भारतेन्दु नाटक साहित्य' मे पृ० ४१-४४ पर इस अनुवाद का उद्धरण विस्तार से दिया है। अनुवाद के मुख पृष्ठ के उद्धरण[5] से यह ज्ञात होता है कि

१. पूर्व भारतेन्दु नाटको का परिचय—डा० सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ ४१।

२. थर्ड ट्रैनियल रिपोर्ट ओन सर्च फार हिन्दी मैनिस्क्रिप्ट्स (सन् १९१२-१३-१४)—श्यामबिहारी मिश्र।

३. हिन्दी नाट्य साहित्य—बाबू ब्रजरत्नदास, पृष्ठ ५५।

४. पूर्व भारतेन्दु नाटकों का परिचय—डा० सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ ४१।

५. मुख पृष्ठ

प्रबोधचन्द्रोदय का गुरुमुखी बोली मे तर्जुमा का अनुवाद बहुत पहले हुआ होगा। इसी गुरुमुखी बोली के तर्जुमे का अनुवाद या उल्था अनाथदास जी ने बड़े परिश्रम से किया है। गुरुमुखी बोली का तर्जुमा करने वाले का नाम इसमे नही लिखा है। इसके अतिरिक्त महात्मा आत्माराम परमहस जी ने अनाथदास के अनुवाद को 'सम्पूर्ण लोगो के उपकारार्थ' छपवाया था। इस सम्बन्ध मे डा० सोमनाथ गुप्त की धारणा मेरे निष्कर्ष से भिन्न है। उनका विचार है कि—" महात्मा अनाथदास कृत अनुवाद गुरुमुखी बोली मे है और नवलकिशोर प्रेस से जो पुस्तक प्रकाशित हुई है वह उक्त पुस्तक का सरल देसी भाषा के दोहो मे रूपान्तर है। जिसके लेखक परमहस महात्मा आत्माराम जी हैं। "किन्तु उद्धृत अश की इस पंक्ति से कि —"साधारण बोली मे एक तर्जुमा सस्कृत का गुरुमुखी बोली मे बनाया गया" स्पष्ट है कि अनाथदास से पूर्व कोई गुरुमुखी बोली का अनुवाद हुआ था। गुरुमुखी बोली से उसका परिवर्तन अनाथदास जी द्वारा होने का सकेत प्रस्तुत पक्ति मे है कि "जिसका महात्मा अनाथदास ने बडा परिश्रम करके उल्था किया था। उसके पश्चात् वही शब्द से तात्पर्य" अनाथदास कृत अनुवाद से है। तदुपरान्त 'महात्मा आत्माराम जी' के द्वारा 'छापे-खाने मे' से तात्पर्य है कि महात्मा आत्माराम जी ने इसे नवलकिशोर प्रेस के छापे-खाने मे छपवाया था। 'छापेखाने मे' शब्द के आगे केवल 'छपवाया' शब्द न होने से डा० सोमनाथ गुप्त का यह शका कर लेना कि आत्माराम जी भी इस कृति के रचयिता थे। निराधार प्रतीत होता है। मेरी धारणा की पुष्टि अन्य स्थान से प्रकाशित अनुवादो के मुख पृष्ठ के उदाहरण से भी होती है जैसे कार्ष्णि गोपालदास के अनुवाद को रामनारायण जी ने धर्मार्थ छपवाया था। उसके मुख पृष्ठ का सकेत निम्न प्रकार से है —

प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक

प्रसिद्ध नाटक संस्कृत जिसमें महाविवेक और महामोह की लड़ाई में महाविवेक के जय पाने का वर्णन है।

जिसका उल्था बृजवासीदास महात्मा का नाटक ब्रजभाषा की अनेक छंदों में प्रसिद्ध और मशहूर है।

उसके सिवाय साधारण बोली में एक तर्जुमा संस्कृत का गुरुमुखी बोली में बनाया गया जिसको महात्मा अनाथदास कवि ने बड़ा परिश्रम करके उल्था किया था,

वही, महात्मा आत्माराम परमहंस जी के द्वारा सरल दे, (देसी भाषा) के दोहों में संपूर्ण लोगों के उपकारार्थ,

लखनऊ नवलकिशोर के छापेखाने में अक्तूबर सन् १८८३ ई०।

ओ३म्
(श्रीवृन्दावनविहारिणे नमः)
प्रबोधचन्द्रोदय
नाटक
श्रीमत्परमहंसोदासीनशिरोवतंस स्वामि-
ज्ञानदासशिष्य कार्ष्णि गोपालदास
विनिर्मित
कार्ष्णीश्वरदासीयटिप्पणीसमुद्घाटित
जिसको
राज्य भरतपुर जयश्री ग्रामनिवासी
नन्दराजवंशोद्भव भक्त रामनारायणजी ने
स्वद्रव्यव्ययसे धर्मार्थ
"लक्ष्मीनारायण" यन्त्रालय
मुरादाबाद मे
छपाकरके प्रकाशित किया,
प्रथमावृत्ति, सन् १९१०

५०५ अनाथदास कृत अनुवाद के मुख पृष्ठ के विवरण के अतिरिक्त अन्त साक्ष्य भी अनाथदास कृत होने के प्रमाण की पुष्टि करते है। अनुवाद के अन्दर प्रसगवश रचयिता के रूप मे अनाथदास जी का ही नाम है। आत्माराम जी का नाम अनुवाद के अन्दर कही नही है। स्वय डा० सोमनाथ गुप्त ने भी अपनी धारणा को अनिश्चित मानते हुए, इस तथ्य को सप्रमाण स्वीकार किया है।[1] अत प्रस्तुत अनुवाद का अनाथदास कृत होना ही नि सन्दिग्ध है। अनाथदास कृत अनुवाद मे सवाद और वर्णन प्रधान है। डा० सोमनाथ गुप्त ने अनाथदास कृत अनुवाद के अध्यायो की सूची निम्नप्रकार से दी है —

१. "परन्तु पुस्तक के अन्दर पढ़ने से मालूम होता है कि प्रस्तुत पुस्तक अनाथदासकृत भी है क्योंकि १५वें अध्याय के अन्त में आता है—"अनाथदासकृते दुविधा निवारण" × × × पुस्तक के अन्त में भी पुस्तक का १२ दिनों में समाप्त होना और अवध-नरेश की कृपा से अनाथ द्वारा वर्णन—आदि उल्लेख हैं। उससे भी यही प्रतीत होता है कि पुस्तक के मूल लेखक अनाथदास जी हैं।"

—डा० सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ ४२।

१. अध्याय विवेक आनन्द और दुख की उत्पत्ति।
२. ,, प्रवृत्ति परिवार वर्णन।
३ ,, निवृत्ति परिवार वर्णन।
४. ,, मनसिज मन भ्रमण।
५ ,, वस्तु विचार काम युद्ध वर्णन।
६ ,, धैर्य, क्रोध, क्षमा सवाद वर्णन।
७ ,, लोभ सन्तोष युद्ध वर्णन।
८ ,, दम्भ सत्य युद्ध वर्णन।
९ ,, गर्व शील सवाद।
१०. ,, धर्माधर्म सवाद।
११. ,, न्याय कुन्याय युद्ध।
१२ ,, मोह सेना वर्णन।
१३ ,, नृप विवेक सेना वर्णन।
१४. ,, मोह विवेक युद्ध वर्णन।
१५. ,, अनाथदास कृते दुविधा निवारण।
१६ ,, वाणी वैराग मन संवाद।
१७ ,, वेद वाणी मन सवाद।
१८ ,, श्रवण मनन निज ध्यासन वर्णन।
१९ ,, परोक्षापक्ष बन्ध मुक्ति वर्णन।
२०. ,, परोक्ष अपरोक्ष की कथा।
२१, २२, २३ ,, तत्पद और मोपद का भेद, उपनिषद देवी मन सवाद असपद निरूपण।
२४ ,, बोधप्राप्ति।
२५ ,, अनाथदास जी का वर्णन, कौन थे और क्या थे ? ग्रन्थ समाप्ति आदि।

अनुवाद के इन अध्यायो के शीर्षको से ज्ञात होता है कि यह एक सवाद रचना के रूप मे है, जो प्रबोधचन्द्रोदय के कथासार पर आधारित है। अध्यायो और विवरणो के स्वतत्र रूप मे मिला देने के कारण इसे प्र० च० का रूपान्तर स्वीकार किया जाय तो विशेष अत्युक्ति न होगी। किन्तु अनुवाद उपलब्ध न होने से हम निश्चित मत नही द सकते। अन्य विद्वानो की धारणाओ के अनुसार ही हमने भी अनुवादो के अन्तर्गत ही इसका अध्ययन किया है। डा० सोमनाथ गुप्त के अतिरिक्त अन्य विद्वानों ने प्रबोधचन्द्रोदय के अनुवादकारों मे अनाथदास जी का नाम दिया है। जैसे—

१. बाबू ब्रजरत्नदास—'हिन्दी नाट्य साहित्य', पृष्ठ ५५।
२. डा० दशरथ ओझा—'हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास', पृ० १४५।
३ डा० गोपीनाथ तिवारी—'भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य', पृ० ८।
४ थर्ड टर्मिनल रिपोर्ट आन सर्च फार हिन्दी मैनिस्क्रिप्ट्स—१९१२, १९१३, १९१४, श्यामबिहारी मिश्र, पृष्ठ १७, नोटिस न० ७, रिपोर्ट के सकेत से यह ज्ञात होता है कि अनाथ कृत अनुवाद की एक प्रति प० सकटाप्रसाद अवस्थी, कटरा जिला सीतापुर मे सुरक्षित है। जिसका कागज देशी है, पृ० ६७ हैं। यह ग्रन्थ ७×४½ इच के आकार मे सम्पन्न हुआ है। प्रत्येक पृष्ठ पर २२ पक्तिया हैं। श्लोको की सख्या १४७५ है। वह प्राचीन प्रति है। निर्माणकाल १६६९ ई० और लिपिकाल अज्ञात है। इस ग्रन्थ की उद्धृत प्रारम्भिक पक्तिया, डा० सोमनाथ गुप्त द्वारा उद्धृत अश की प्रारम्भिक पक्तियो से समता नही रखती है। उदाहरण के रूप मे डा० सोमनाथ द्वारा उद्धृत् प्रारम्भिक पक्तिया द्रष्टव्य हैं —

बोध चन्द्र के उदय को, नाटक सरस सुग्रन्थ।
तेहि छाया भाषा, करी, प्रकट मुक्ति को पन्थ।।
सब ग्रन्थन को अर्थ ले, कहों ग्रन्थ अभिराम।
सत गुरु पद शिर नाय के, वर्णों तिनके नाम।।
कछुक रीति वासिष्ट की, कछु गीता की उक्ति।
कछु कछु अष्टावक्र पुनि, कहो बेद की उक्ति।।

रिपोर्ट मे उद्धृत प्रारम्भिक पक्तियाँ निम्न प्रकार से है :—

श्रीगणेशाय नमः। दोहा। गंग जमुन गोदावरी सिन्धु सरस्वती सार। तीरथ सबं अनाथ जंह गोविन्दज विस्तार ।।१।। श्रीगुर सुखमगल करन आनन्द तंहां बसन्त। कीरति श्री हरिदेव की मुखभरि सदा कहन्त। ।।२।। मुक्ति जुक्ति बरनन करों श्रीगुरुपरम उदार। जिनको कृपा कटाक्ष ते गोपद यह संसार।।३।।

५०६. दोनो के उद्धृत अश की इन प्रारम्भिक पंक्तियो मे अन्तर होने पर भी रचना के अन्त मे प्राप्त होने वाला दोहा दोनो मे समान है। डा० सोमनाथ गुप्त ने अनाथदास की कृत्ति मे से जो दोहा रचनाकाल के सम्बन्ध मे उद्धृत किया है वह इस प्रकार है —

सवत सत्रह सो षट् विंशति निरधार।
आश्विन मास रचना रची सारासार विचार।।

रिपोर्ट की अन्तिम पक्तियो मे रचनाकाल का दोहा निम्न प्रकार से है —

संवत सत्रासो गये वष्ट विस निरधार।
आस्वन मास रचना रची सारासार विचार ॥५५॥

खोज रिपोर्ट मे दी हुई प्रति मे और डा० सोमनाथ गुप्त की प्रति मे अन्तर होने से ज्ञात होता है कि सम्भवत यह अन्तर प्रतिलिपिकारो ने कर दिया हो। इन दोनों मे से कौनसी मूल प्रति है यह कहना कठिन है। क्योकि आज दोनो ही अनुपलब्ध है।

सुरतिमिश्र कृत अनुवाद

५०७. सुरति मिश्र को भी हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिको ने प्रबोधचन्द्रोदय का अनुवादक स्वीकार किया है। इनके सम्बन्ध मे बाबू ब्रजरत्नदास ने 'हिन्दी नाट्य साहित्य, मे पृष्ठ ४७ पर जो सक्षिप्त विवरण दिया है, उसी के अनुसार अन्य साहित्यिको ने भी परिचय दिया है। बाबू ब्रजरत्नदास ने सक्षिप्त विवरण मे लिखा है कि—'प्रबोधचन्द्रोदय नाटक का इनका अनुवाद नाटक के रूप में न होकर काव्य रूप मे हुआ है। आरम्भ मे केवल ९ दोहे है, तथा पूरा नाटक २८४ ककुभा छदो मे अनूदित है। गद्य का नाम भी नही है पर कविता बहुत अच्छी है।" इसी आधार पर विवरण प्रस्तुत करने वाले विद्वानो के नाम यो है:—

१ डा० सोमनाथ गुप्त—'हि० ना० सा० का इति०', पृष्ठ २२।
२ डा० दशरथ ओझा—'हिन्दी नाटका का उद्भव और विकास', पृ० १५८।
३ डा० गोपीनाथ तिवारी—'भा० का० ना० सा०', पृष्ठ ८।

डा० दशरथ ओझा ने सुरतिमिश्र को अनुवादक तथा उनका रचनाकाल १७०३ ई० से १७४३ ई० स्वीकार किया है।

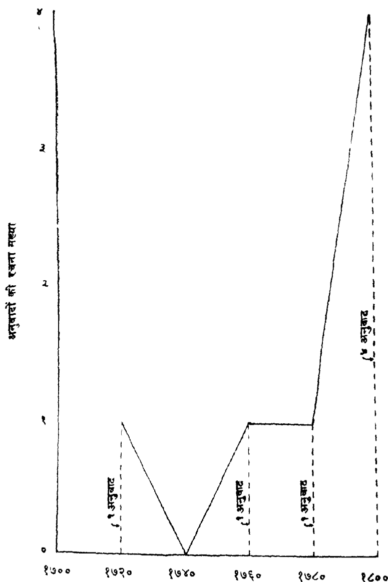
घासीराम कृत अनुवाद

५०८. घासीराम ने प्रबोधचन्द्रोदय का अनुवाद किया था। इनका अनुवादकाल सन् १७७९ ई० है। "राजस्थान मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज-चतुर्थ भाग" नामक रिपोर्ट मे नाहटा जी ने घासीराम को प्रबोधचन्द्रोदय का अनुवादक मानते हुए उनके अनुवाद काल का सकेत दिया है।

आनन्द कृत अनुवाद

५०९. आनन्द कृत प्रबोधचन्द्रोदय के अनुवाद का रचनाकाल सन् १७८३ ई० है। बाबू ब्रजरत्नदास ने (हि० ना० सा०, पृ० ५९) लिखा है—"आनन्द ने दोहे चौपाई मे इसका अनुवाद किया। यह काशी निवासी थे और अपने अनुवाद का नाम स्वनाम पर (नाटकानन्द) रखा था। भाषा पर इनका अच्छा अधिकार ज्ञात होता

१८वी ई० शताब्दी मे सबसे अधिक आठ अनुवाद हुए। इस शताब्दी के (बीस वर्षों) प्रत्येक दो दशक में रचित इन अनुवादो का रेखाचित्र निम्न प्रकार से है :—



हरिवल्लभ १८वी ई० शताब्दी मे लिखा गया किन्तु वर्ष अनिश्चित होने से रेखाचित्र मे प्रदर्शित नही किया जा सकता है।

है। यह वैष्णव भक्त थे।" इसी कथन के आधार पर अन्य साहित्यिको ने भी आनन्द की प्रबोधचन्द्रोदय के अनुवादको मे गणना की है। जैसे—

१. डा० सोमनाथ गुप्त—'पूर्व भारतेन्दु नाटक साहित्य', पृ० ४१।

२ डा० दशरथ ओझा—'हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास', पृ० १५८।

३ डा० गोपीनाथ तिवारी—'भारतेन्दुकालीन नाटक साहित्य, पृष्ठ ८।

हरिवल्लभ कृत अनुवाद

५१० श्री अगरचन्द नाहटा जी ने हरिवल्लभ कृत प्रबोधचन्द्रोदय के अनुवाद को १८वी शताब्दी का बताया है। अनूप सस्कृत लाइब्रेरी मे इसकी एक प्रति सुरक्षित है (राजस्थान मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज—चतुर्थ भाग)। डा० गोपीनाथ तिवारी ने 'भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य' मे पृ० ९ पर हरिवल्लभ कृत अनुवाद का १८ वी शताब्दी मे होना स्वीकार किया है।

पं० शीतला प्रसाद कृत अनुवाद

५११ प० शीतलाप्रसाद कृत अनुवाद का रचनाकाल सन् १८७९ ई० माना जाता है। इनके अनुवाद और इसके रचनाकाल की सूचना निम्न विद्वानो ने दी है :—

(१) डा० सोमनाथ गुप्त ने 'हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास' मे पृष्ठ ८५ पर प० शीतला प्रसाद जी को अनुवादक स्वीकार किया है।

(२) डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' मे पृ० २६३ पर इनका सक्षिप्त परिचय दिया है। जिससे यह अनुवाद की अपेक्षा टीकाकार प्रतीत होते है। वार्ष्णेय जी ने लिखा है—१८७९ सन् मे शीतला प्रसाद ने 'प्रबोधचन्द्रोदय नाटक' सस्कृत और भाषा मे टीका तथा व्याख्या सहित प्रकाशित किया। इस कृति के अनुपलब्ध होने से निश्चित नही कहा जा सकता है कि वास्तविकता क्या है। अन्य विद्वान् प० शीतलाप्रसाद को अनुवादक ही स्वीकार करते है।

(३) डा० गोपीनाथ तिवारी ने 'भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य' मे प० शीतलाप्रसाद जी को प्रबोधचन्द्रोदय का अनुवादक ही स्वीकार किया है।

५१२ इस प्रकार प० शीतलाप्रसाद प्रबोधचन्द्रोदय के अनुवादक या टीकाकार दोनो मे से एक अवश्य थे।

जगन्नाथ शुक्ल कृत अनुवाद

५१३ डा० वार्ष्णेय ने 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' मे पृ० ४३ पर जगन्नाथ शुक्ल के अनुवाद का सकेत करते हुए उसका लिपिकाल सन् १८७३ ई० बताया है।

उनके सक्षिप्त विवरण से ज्ञात होता है कि इसका प्रकाशन ज्ञान रत्नाकर यत्रालय से हुआ था। ये सम्भवत फोर्ट विलियम कालेज के पडित थे।

जन अनन्य कृत अनुवाद

५१४ इस अनुवाद का पता बाबू ब्रजरत्नदास को लगा था। उन्होने रचना-काल आदि का सकेत न करते हुए' केवल इतना ही लिखा है कि 'जन अनन्य कृत अनुवाद का और भी पता चलता है।" यही सूचना अन्य साहित्यिको ने भी इसी आधार पर दे दी है। जैसे—

१. डा० सोमनाथ गुप्त—'पूर्व भारतेन्दु नाटक साहित्य', पृष्ठ ४१।

२. डा० दशरथ ओझा—'हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास', पृष्ठ १४५।

३. डा० गोपीनाथ तिवारी—'भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य', पृ० ९।

५१५ इस प्रकार यत्रतत्र प्राप्त सूचनाओं से ज्ञात होता है कि उपलब्ध १२ अनुवादो के अतिरिक्त आठ अनुवाद और हुए थे, जो आज सहज सुलभ नही है। उपलब्ध एव अनुपलब्ध अनुवादो की सख्या बीस है। यह सख्या प्रबोधचन्द्रोदय का महत्व और प्रभाव प्रतिपादित करती है।

५१६. प्रबोधचन्द्रोदय के हिन्दी अनुवादो के अनुसधान काल मे हिन्दी के अतिरिक्त भी अन्य भाषाओ के अनुवादो का पता चला है। अन्य भाषाओ के अनुवाद इस प्रकार है —

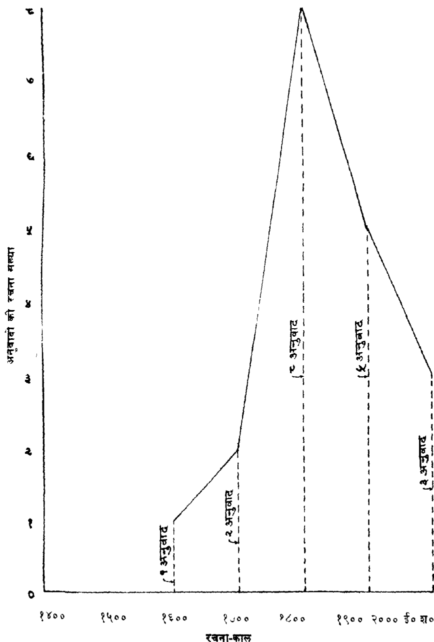
१. **तामिल भाषा**—वेंकटराम देवज्ञ का तामिल भाषा मे अनुवाद प्राप्त होता है। जो पिलानी पुस्तकालय, पु० न० $\frac{\text{T M 822}}{\text{K 893. P.}}$ पर सुरक्षित है। वहा के एक प्रोफेसर श्री एम० बी० पन्त के सौजन्य से उपलब्ध हो सका है। इस अनुवाद का प्रकाशन सन् १९११ ई० मे हुआ था। अनुवाद वेकटेश भट्टी के पुत्र थे और पुटकोट्टै नामक गाव के थे। अनुवाद की भूमिका मे वेंकटराम देवज्ञ ने लिखा है कि सर्वसाधारण के लाभ के लिए द्रविण भाषा मे यह अनुवाद किया है। विष्कम्भक, प्रवेशक एव सधियो सहित यह अविकल अनुवाद है। इसके साथ एक टीका भी है जिसका नाम दीपम् है। यह दीपम् सस्कृत भाषा की टीका चन्द्रिका और प्रकाश नाम की व्याख्या के आधार पर है। छ० अको सहित यह अनुवाद २१७ पृष्ठ का है। इस अनुवाद की प्रशसा महापडित ब्रह्म श्री मन्नार्गुडी राजुशास्त्रीगल ने की है।

२ **तेलुगु भाषा**—तेलुगु भाषा के इस अनुवाद के सम्बन्ध मे पाडु-रगराव के 'हिन्दी और तेलुगु का नाटक साहित्य' से ज्ञात होता है।[1] यह अनुवाद सन् १४८०

---

१. हिन्दी अनुसंधान गोष्ठी की शोध प्रबन्ध प्रदर्शनी—दिल्ली से प्राप्त। (सन् १९५९)

प्रत्येक शताब्दी मे उपलब्ध एवं अनुपलब्ध अनुवादो की रचना सख्या का रेखाचित्र :—



नोट —१९ अनुवादो का रेखाचित्र है, क्योंकि जन अनन्य कृत अनुवाद का रचनाकाल अज्ञात है।

ई० मे नदिमल्लमा और घन्टसिगमा नामक दो व्यक्तियो ने सम्मिलित प्रयत्न से संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय को प्रबन्धकाव्य के रूप मे अनूदित किया था। इस अनुवाद मे भाव सौन्दर्य और मौलिकता का पुट भी है। तेलुगु भाषा मे प्रबोध-चन्द्रोदय की रूपक शैली के अनुकरण पर नाटक भी लिखे गये। कोचनपिल्लकन कौवा की 'हम विजयम्' महत्वपूर्ण और कलात्मक रचना है। आर्य नारायण मूर्ति का 'भारत सूर्योदय' और काल्लकूरि नारायण राव का 'चिन्तामणि' रूपक शैली मे ही प्रणीत है।

३ **मलायलम भाषा**—मलायलम भाषा मे प्रबोधचन्द्रोदय के तीन अनुवाद हुए है। जिनका उल्लेख केरल साहित्यचरितम्।[1] नामक पुस्तक मे २२५ पृष्ठ पर मिलता है। एक अनुवाद कुम्मम् पल्ली रामनपिल्लैआशान ने प्रबोधचन्द्रोदय के नाम से किया। इनका जीवनकाल मलायलम सम्वत् १०२१ से १०८७ (ई० सन् १८४६-१९१२) माना जाता है। दूसरा अनुवाद शकुण्णिमेनन ने मलायलम् सम्वत् १०६८ (ई० सन् १८९३) मे किया था। तीसरा अनुवाद सी० ए० नानुवैया शास्त्री ने, जिनका समय मलायलम सम्वत् १०२५ से १०८८ (ई० सन् १८५०-१८१३) माना जाता है, प्रबोधचन्द्रोदय भाषा नाटकम् नाम से किया था।

४ **बगला भाषा**—बगला भाषा के अनुवाद की सूचना भोलानाथ शर्मा के 'बगला साहित्य की कथा' पृष्ठ १३६ से ज्ञात होती है। यह अनुवाद श्री विश्वनाथ न्याय रत्न ने नाटक के रूप मे ही किया था। अनुवाद के रूप मे यह बंगला भाषा का पहला नाटक है। इसका रचनाकाल सन् १८३९ ई० है। यह रचनाकाल के २३ वर्ष बाद सन् १८७१ ई० मे प्रथम बार प्रकाशित हुआ था।

५ **फारसी भाषा**--फारसी भाषा के एक अनुवाद का सकेत डा० सोमनाथ गुप्त ने 'हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास' मे इतिहास[2] के आधार पर किया है। जिससे ज्ञात होता है कि शाहजहा के समय मे मुशी कन्वासीदास ने प्रबोधचन्द्रोदय का अनुवाद 'गुलजारे हाल' के नाम से किया था। बलीराम साधू ने भी यमनभाषा अर्थात् फारसी भाषा मे एक अनुवाद किया था। जो सम्भवत बहुत प्रसिद्ध रहा था और हिन्दी अनुवादों के हेतु प्रेरणास्रोत बना। हिन्दी अनुवादक व्रजवासीदास और

---

१. **डा० सीता भट्ट के सौजन्य से ज्ञात--**

Kerala Sahitya Charitram

By Rao Sahib Mahakaviulloors Parameswara Aiyer, Part VI–VII, January 1957.

२. **हिस्ट्री ऑफ शाहजहां--डा० बनारसीदास, पृष्ठ २२७।**

मानकदास ने इसी के आधार पर हिन्दी अनुवाद किया था। इस सम्बन्ध में ब्रजवासी के शब्द यों हैं :—

बलीराम ताकी करी भाषा वमन किताब।
× × ×
ताते यह भाषा करी अपनी मति अनुसार।।

६ **गुरमुखी लिपि**—प्रबोधचन्द्रोदय का एक अनुवाद गुरमुखी लिपि के माध्यम से (गुरमुखी बोली मे) ज्ञानदास साधू ने किया था। श्री सत्यपाल गुप्त ने ज्ञानदास साधू के अनुवाद का परिचय 'पेप्सू प्रदेश की हिन्दी प्रगति' पुस्तक मे दिया है। किन्तु भाषा के सम्बन्ध मे इससे विशेष ज्ञात नही होता कि गुरुमुखी के माध्यम से उन्होने किस भाषा मे अनुवाद किया था। उसी विवरण के अनुसार इस अनुवाद का रचना-काल सन् १७८९ ई० है। यह अनुवाद ज्ञानसाधू ने अपने शिष्याओ के पठनार्थ किया था। इन दो, शिष्याओ का नाम श्रीमती रतनकौर और शीलाबाई था।

७ **अंग्रेजी भाषा**—अंग्रेजी भाषा मे जे० टेलर महोदय का अनुवाद प्रसिद्ध है। महेशचन्द्र प्रसाद के हिन्दी अनुवाद की भूमिका मे इसका परिचय यों है —"बम्बई सरकारी सेना के एक अंग्रेज डाक्टर द्वारा यह अनुवाद बम्बई के तत्कालीन लाट सर जेम्स मकिनतोष की प्रेरणा से सन् १८११ ई० मे, अर्थात् सवा सौ साल पहले किया गया था और इन्ही लाट महोदय को समर्पित हुआ था।" इस अनुवाद की एक प्रति बम्बई की सेन्ट्रेल लाइब्रेरी मे सुरक्षित है।

८ अन्य योरोपीय भाषाएँ—फ्रेंच भाषा मे प्रबोधचन्द्रोदय का एक अनुवाद हुआ है। जिसे G Deveze महोदय ने 'Le Lever de La Lune de La Counaissance' नाम से किया था। रूसी भाषा मे Kovalevsky महोदय ने प्रबोधचन्द्रोदय के नाम से ही अनुवाद किया था। T W. Boissevaın महोदय ने (Dutch) डच भाषा मे 'Maansopgang der outwakıng' नाम से प्रबोध-चन्द्रोदय का अनुवाद किया। Th Goldstucker महोदय ने 'Die Geburt des Begriffs' नाम से तथा Dr. Bernhard Hırzel, Zurıch ने 'Erken-ntnısmondaufgang' नाम से जर्मन भाषा मे अनुवाद किया।[1]

५१७ इस प्रकार अन्य भाषाओं मे प्रस्तुत किये गये, इन कतिपय अनुवादो से सूचित होता है कि प्रबोधचन्द्रोदय का स्वागत हिन्दी अनुवादकों द्वारा ही नही, अन्य भाषाओ के विद्वानो द्वारा भी हुआ। और इस ग्रन्थ का प्रभाव तथा विस्तार व्यापक रूप ले रहा है।

---

१. 'Prabodha Candrodaya—A philosophical and theological analysis—by Dr. (Miss) Sita Bhatt.

षष्ठ अध्याय

हिन्दी रूपान्तरों का सामान्य अध्ययन

५१८. आगे चलकर हिन्दी मे 'प्रबोधचन्द्रोदय' के ही आधार पर कुछ ऐसी रचनाओ का उद्‌भव हुआ, जिन्हे न तो हम स्वतत्र मौलिक रचनाओ की श्रेणी मे रख सकते है और न जिन्हे अनुवाद ही माना जा सकता है। इन रचनाओ मे कही तो मूल का अविकल अनुवाद मात्र है और कही रचनाकारो की मौलिकता से प्रसूत कुछ मौलिक कथानक और सवाद आदि भरे पडे हैं। हमे यदि इनका नामकरण ही करना है तो जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, इन्हे हम 'प्रबोधचन्द्रोदय' के 'रूपान्तर' का अभिधान' प्रदान कर सकते हैं। इस कोटि की रचनाओ की अद्यावधि उपलब्ध सख्या ५ है। इनमे तीन रचनाएँ तो 'मोहविवेक युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध हैं, जिनके रचयिता कालक्रमानुसार लालदास, गोपालदास और कवि बनारसीदास माने जाते है। अन्य दो रचनाओ मे एक तो हिन्दी साहित्य के प्रख्यातनामा महाकवि और आचार्य केशवदास की 'विज्ञान गीता' प्रसिद्ध है, जो कि 'प्रबोधचन्द्रोदय' के अनुवाद के रूप मे हिन्दी साहित्य मे विश्रुत है। परन्तु जैसा कि हम 'विज्ञान गीता' के अध्ययन मे देखेगे वह अनुवाद न होकर 'रूपान्तर' ही है। इसकी रचना सम्वत् १६६७ (सन् १६१०) मे की गई थी। दूसरी रचना—जिसके रचयिता उमा दयाल मिश्र हैं "प्रबोधद्युमण्युदय" के नाम से प्रसिद्ध है। यह आधुनिक रचना है। इसका निर्माणकाल सन् १८९२ है। इसमे कुछ स्थलो पर तो 'प्रबोधचन्द्रोदय' का अविकल अनुवाद उपलब्ध होता है, यहाँ तक कि शब्दो की आवृत्ति तक पाई जाती है और कुछ स्थलो पर लेखक ने मौलिक कल्पना का सहारा लेकर कथानक को एक नयी दिशा देने का प्रयास किया है। इसलिये इसे भी हम 'प्रबोधचन्द्रोदय' का अनुवाद-मात्र न मानकर उसके 'रूपान्तरो' की ही श्रेणी मे मानते हैं।

५१९. अब हम पहले 'मोह विवेक युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध तीनों रचनाओ का सामान्य अध्ययन प्रस्तुत करेंगे और उसके पश्चात विज्ञान गीता तथा प्रबोधचन्द्रोदय का।

जन गोपाल का 'मोह विवेक युद्ध'

५२०. दादू सम्प्रदाय के जन गोपाल ने 'मोह विवेक युद्ध' के नाम से 'प्रबोध-चन्द्रोदय' का एक रूपान्तर किया है। इनकी इस रचना मे दादू सम्प्रदाय का स्पष्ट उल्लेख है।[1] 'दादू सम्प्रदाय का इतिहास' मे स्वामी मगलदास ने अनेक पुष्ट प्रमाणो के आधार पर इनका समय स० १६५० से १७३० तक माना है।[2] इधर 'रसवन्ती' मे प्रकाशित एक लेख मे अगरचन्द जी नाहटा ने किसी खोज विवरण के आधार पर दादू पन्थी जन गोपाल का समय स० १६५७ सिद्ध किया है।[3] नाहटा जी ने किस खोज विवरण के आधार पर उपर्युक्त तथ्य को निर्णीत किया है, इसका उल्लेख उन्होने नही किया है। इधर हमे इस 'मोह विवेक युद्ध' की एक प्रति मिली है—श्री कासलीवाल के द्वारा—जो कि 'दादू महाविद्यालय' जयपुर (राजस्थान) मे सुरक्षित मूल प्रति की प्रतिलिपि है। इसकी मूल प्रति का परिचय प्रस्तुत प्रति-लिपि के ऊपरी भाग मे यो दिया गया है "गुटका न० १७, पत्र सख्या ५८६, आकार ६¾ × ५ इच, भाषा हिन्दी। लेखनकाल स० १९२८, प्राप्ति स्थान—दादू महाविद्यालय, जयपुर (राजस्थान), मोह विवेक, जन गोपाल कृत, पत्र सख्या २३८ से २५८ तक"। एक दूसरी प्रति का सकेत काशीनागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट भाग १, सन् १९२३-२५, पृष्ठ ७०९ मे मिलता है। इसमे उक्त प्रति का नाम 'मोह विवेक सम्वाद' दिया गया है। इसके परिचय मे बताया गया है कि इसमे देशी कागज का प्रयोग किया गया है। इसकी पत्र सख्या—५ तथा आकार १२ × १० इच है इसमे २३० अनुष्टुप छन्द तथा पचास पृष्ठ है। इसका लिपिकाल सम्वत् १८४० (सन् १७८३ ई०) है। इसकी प्राप्ति ठाकुर बच्चसिह, ग्राम उमराव, पोस्ट आफिस मिद्धौली—जिला सीतापुर (अवध) मे हुई है। इस प्रति के जो निर्देश रिपोर्ट मे दिये गये है—वे जयपुर वाली प्रति मे मिल जाते है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ये दोनो ही प्रतियाँ किसी पुरानी प्रति की प्रतिलिपि है। ऐसा मान लेने पर यह भी सिद्ध हो जाता है कि जयपुर वाली प्रति मे जो ग्रन्थ का लेखनकाल

---

१. जुगि जुगि सत अनत है, हू शबहिन को दास।
   दादू गुर परसाद तै, अविगति पुरवै आस ॥८॥

   —मोह विवेक युद्ध, पृ० २।

२. दादू सम्प्रदाय का इतिहास—स्वामी मंगलदास, पृष्ठ ७६।

३. 'रसवन्ती' में प्रकाशित अगरचन्द जी नाहटा का 'एक महत्वपूर्ण अनुपलब्ध हिन्दी ग्रन्थ की प्राप्ति' शीर्षक लेख।

सम्वत् १९२४ दिया गया है वह मूल पुस्तक की प्रतिलिपि का ही काल हो सकता है, न कि मूल प्रति का। क्योंकि प्राप्त प्रमाणो के आधार पर दादू पन्थी–स्वामी मगलदास और अगरचन्द्र जी नाहटा, जनगोपाल को, काफी पहले का सिद्ध कर चुके हैं, जैसा कि हम पहले देख चुके है।

५२१. इस रूपान्तर मे प्रारम्भ मे निर्गुण की ही स्तुति की गई है। उसमे ब्रह्म को अनन्त ज्योति ही स्वीकार किया है। इसके कथानक मे मोह विवेक सबधी युद्ध का ही वर्णन-विस्तार है। विवेक की विजय के पश्चात् ग्रन्थ ममाप्त हो जाता है। मोह और विवेक के युद्ध वर्णन के ढग मे अन्तर कर दिया गया है। मूल मे मोह और विवेक की सेना पृथक पृथक तैयार होती है। ये मोह और विवेक जब अपने-अपने सैनिकों की नियुक्ति करते है तब ही सैनिक अपनी विशेषताओं का परिचय दे देते है। और युद्ध का वर्णन तो अप्रत्यक्ष रूप मे कर दिया जाता है। किन्तु गोपाल कृत इस रूपान्तर मे मोह और विवेक के योद्धा परस्पर द्वन्द्व युद्ध के हेतु एक एक करके सम्मुख आते हैं। जब विवेक के पक्ष का सैनिक अपनी विशेषताएँ बताता है तो उसके विरोधी डर कर भाग जाते हैं। मोह और विवेक मे भी द्वन्द्व युद्ध कराया गया है। जैसा कि मूल मे नही होता है। इस रूपान्तर मे, मोह अपने सैनिक गर्व के साथ तथा विवेक अपने सैनिक दीनता के साथ परस्पर द्वन्द्व युद्ध करते है। यह द्वन्द्व युद्ध मनोवैज्ञानिक एव प्रभावशाली है। इसमे मोह और विवेक के जिन विरोधी बाणो की चर्चा की गई है, वे वास्तव मे कवि की प्रतिभा और सूक्ष्म विवेचन के परिचायक है। मोह और विवेक ने द्वन्द्व युद्ध मे जिन बाणो का प्रयोग, एक दूसरे के विरोध मे किया, वह निम्न प्रकार से है.—

मोह	विवेक
निद्रापाश	जागृत सकति
अलस बाण	चैतन बाण
अविद्या बाण	विद्या बाण
ससे बाण	निरसशे बाण
सन्देह गदा	निसन्देह
विभ्रम चक्र	(विवेक के पास तक न पहुँचा पहले ही नष्ट हो गया)

इस प्रकार इन बाणों से किये गये द्वन्द्व मे विवेक की विजय हुई : अनेक उपाव मोह करि हार्‌यौ। न्रिपति बवेक हरि बोट उबार्‌यौ (पृष्ठ १२, छन्द १३) मूल रचना के पाचवें अक मे श्रद्धा विष्णुभक्ति को बताती है कि युद्ध में क्रम से वस्तु-

विचार ने काम को, क्षमा ने क्रोध को, सन्तोष ने लोभ को हराया। प्रस्तुत रूपान्तर में भी इन्हीं पात्रों का, इसी क्रम से द्वन्द्व युद्ध वर्णित है। इस द्वन्द्व मे इन पात्रो मे रूपान्तर मे जो अपनी विशेषताएँ बतायी हैं ये मूल से साम्य रखती हैं। जैसे क्षमा का कथन जो रूपान्तर मे पृ० ८ पर छन्द ३, ४, ५ मे है, मूल की क्षमा के पृ० १५१ श्लोक १८ से साम्य रखता है। रूपान्तर मे क्षमा का कथन निम्न प्रकार से है—

अगनिबांन क्रोध जद डार्‌यो।
सो तो खिमा स्वांति सो मार्‌यो।।३।।
बहुरयो क्रोध दई झुकि गारी।
खिमा कहै सब चूक हमारी।।
क्रोध क्रोध करि मारिण धायो।
खिमा हसी अर माथो नायो।।४।।
अगिनत बांन जु क्रोध चलाये।
खिमा निकटि येको नहीं आये।।
ज्यूं जल मांझ अगनि बूझि जाई।
जहां खिमा तहां कहा बसाई।।५।।

मोह के साथ गर्व नाम का सैनिक, विवेक के विरोध मे युद्ध करता है। इस गर्व नामक पात्र का कथन (पृ० ११, छन्द ४-५) मूल[1] के लाभ नामक पात्र के कथन से मिलता सा प्रतीत होता है।

५२२ जनगोपाल के इस रूपान्तर मे विवेक की विजय के उपलक्ष्य मे उसके पक्ष की प्रसन्नता का वर्णन है। उसके अनन्तर मन, नाश को प्राप्त मोहादिको के हेतु दुःखी एव सन्तप्त होता है। मूल मे मन की इस सतप्तावस्था को शान्त करने के हेतु वैयासिकी सरस्वती उपदेश देती है किन्तु इस रूपान्तर मे सरस्वती का कार्य 'श्रद्धा' ने सम्पादित करके मन को शान्त और वैरागी बनाया है। मूल 'प्रबोध-चन्द्रोदय' मे पुरुष को उपनिषद् के उपदेश से ब्रह्म ज्ञान होता है किन्तु इसमे विवेक ने ही मन को ब्रह्मज्ञान कराने मे सहयोग दिया है। यह ब्रह्मज्ञान का उपदेश गम्भीर दार्शनिक विवेचनात्मक नही है। यह सम्पूर्ण रूपान्तर पद्यबद्ध है। इसमे दोहा और चौपाई छन्दो का प्रयोग किया गया है। यह रूपान्तर केवल वर्णनात्मक कथा काव्य है, नाटकीय सकेत विशेष नही है। सवाद और द्वन्द्व युद्ध के वर्णन प्रसंगो में

---

१. प्रबोधचन्द्रोदय, द्वितीय अंक, श्लोक ३०, ३१, ३२।

नाटकीयता रोचकता सी आगई है किन्तु नाटकीय योजना के अनुकूल वर्णन क्रम और विशेष संकेत नहीं हैं। अन्त मे हम कह सकते हैं कि जनगोपाल का यह 'मोह विवेक युद्ध' रूपान्तर मूल के मनोवैज्ञानिक मानसिक द्वन्द्व को, सरल ब्रह्मज्ञान के साथ–ब्रजभाषा मे रखने मे सफल हुआ है।

लालदास का 'मोह विवेक युद्ध'

५२३. कवि लालदास कृत 'मोह विवेक युद्ध' का ज्ञान हिन्दी संसार को काफी पहले हो चुका है। परन्तु इस 'मोह विवेक युद्ध' का रचनाकाल क्या है ? यह एक विषम समस्या है। क्योकि जब तक इस बात का पता न लग जाय कि प्रस्तुत रचना का रचयिता लालदास कौन है ? तब तक इस अनबूझ पहेली का हल निकालना सरल नही प्रतीत होता। यहाँ हम प्रस्तुत कृति के रचनाकाल और उसके रचयिता के वर्तमानत्व काल के सम्बन्ध मे उपलब्ध सामग्रियो के प्रकाश मे कुछ प्रकाश डालने और एक सीमा तक निर्णय करने का प्रयास करते हैं।

५२४ आजतक की खोजो के आधार पर हिन्दी साहित्य मे छ लालदास नामक लेखको का पता लग चुका है जिनका विवरण यो है —

१ बीकानेर के प्रसिद्ध हिन्दी-अनुसन्धाता श्री अगरचन्द नाहटा जी के पुस्तकालय मे 'मोह विवेक युद्ध' की एक पुरानी प्रति है, जो सम्वत् १७६७ की है। इसके रचयिता लालदास हैं।

२ कवि बनारसीदास ने अपने 'मोह विवेक युद्ध' मे अपने उपजीव्य तीन कवियो मे 'लालदास' को दूसरा स्थान दिया है–'पूरब भए सुकवि मल्ह लालदास गोपाल– (मोह विवेक युद्ध–बनारसीदास, पृष्ठ ९)

३ काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में तीन लालदास नामक कवियो का उल्लेख है। प्रथम लालदास का अस्तित्व सम्वत् १७२२ (१६६६ई०) मे बतलाया गया है। ये मूल निवासी तो बरेली के थे, परन्तु बाद मे अयोध्या मे रहने लगे थे। दूसरे लालदास को आगरा का बताया गया है। ये अकबर के समकालीन और सम्वत् १६४३ (सन्१५८६) के लगभग वर्तमान थे। ये जाति के वैश्य और ऊधवदास के पुत्र थे।[1] इधर हमे नागरी प्रचारिणी सभा काशी की एक खोज रिपोर्ट[2] ऐसी मिली है जिसमे लालदास कृत 'ज्ञान विवेक मोह' नामक ग्रन्थ का सकेत किया गया है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल सन् १६७५ ई० रिपोर्ट मे बताया

---

१. वीर वाणी—मई अंक में—'हिन्दी में मोह विवेक युद्ध संज्ञक' रचनाएं (रवीन्द्र कुमार जैन), पृष्ठ २०९।

२. खोज रिपोर्ट सन् १९२३–२५।

गया है। सते यह प्रतीत होता है कि ये लालदास सन् १६७५ ई० के लगभग वर्तमान थे।

४. एक लालदास का पता हमे श्री परशुराम चतुर्वेदी के 'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा' नामक ग्रन्थ से चला है। श्री चतुर्वेदी जी के मतानुसार ये लालदास अलवर राज्य के रहने वाले थे। इनका जन्म सम्वत् १५९७ तथा मृत्यु सम्वत् १७०९ मे मानी जाती है। चतुर्वेदी जी के शब्दों मे "सन्त लालदास काव्य रचना भी करते थे। इनकी 'वाणी' के कुछ अश इधर उधर सग्रह ग्रन्थो मे देखने मे आते है। इन्होंने गेय पद लिखे हैं जो इनकी सूक्ष्म बुद्धि और गहन अनुभूति के परिचायक हैं।'[1]

५२५ स्पष्टता और विवेचन की सुविधा के लिये हम इन छओ लालदासो का विवरण उनके समय के साथ क्रमश यो दे सकते है ——

१ लालदास – वर्तमान समय सम्वत् १७६७ (सन् १७१०)।
२ ,, (नाहटा जी के अनुसार)—सम्वत् १६७० (सन् १६१३) के पूर्व।
३ ,, सम्वत् १७२३ (सन् १६६६) के लगभग।
४ ,, सम्वत् १६४३ (सन् १५८६ के लगभग)
५ ,, सम्वत् १६७५ (सन् १६१८)
६ ,, स० १५९७--१७०९ तक (सन् १५४०--१६५२)

इनका विवेचन करने के प्रसग मे हम सर्वप्रथम नाहटा जी की प्रति वाले लालदास प्रथम को ले सकते है, किन्तु आज के दिन 'मोह विवेक युद्ध" नामक जो ग्रन्थ मिल रहा है, उसके रचयिता यही लालदास माने जाते है, इसलिये इनके सम्बन्ध मे हम बाद मे ही विचार करेगे। दूसरे लालदास जिनका सकेत बनारसीदास ने अपने 'मोह विवेक युद्ध' मे किया है नाहटा जी के अनुसार सन् १६१३ के पूर्वके है क्योकि बनारसीदास ने 'मोह विवेक युद्ध' की रचना सन् १६१३ के लगभग की थी। परन्तु जब तक यह न प्रमाणित हो जाय कि 'मोह विवेक युद्ध' के रचयिता बनारसीदास और प्रसिद्ध जैन कवि बनारसीदास एक थे, तब तक इसके आधार पर लालदास का समय निर्णीत नही किया जा सकता। तीसरे लालदास—जो अयोध्या के निवासी थे और सन् १६६६ के लगभग वर्तमान बताए गये है के नाम से किसी ग्रन्थ की न तो उपलब्धि हुई है और न इस सम्बन्ध मे कोई सूचना ही मिली है। इसलिए 'मोह विवेक युद्ध' के रचयिता ये नही माने जा सकते है। चौथे कवि लालदास जो

१. परशुराम चतुर्वेदी—'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा', पृष्ठ ४०४,४०६।

आगरा के निवासी तथा सन् १५८६ के लगभग वर्तमान माने गये हैं, के एक 'इतिहास-भाषा' नामक ग्रन्थ का उल्लेख अवश्य मिलता है, अन्य किसी ग्रन्थ का उल्लेख इनके नाम से नहीं मिलता है। दूसरी बात यह है कि ये लालदास प्रस्तुत 'विवेक-मोह युद्ध' के सन् १७१० के बहुत पहले के हैं इसलिए उसके रचयिता कभी नहीं हो सकते। पाचवे लालदास जो कि सन् १६७५ मे वर्तमान थे-के सम्बन्ध मे हमे थोड़ा विचार करना है। हम अभी देख चुके हैं कि इनके नाम से एक पुस्तक 'ज्ञान-विवेक मोह' की सूचना मिलती है। यहाँ यह सम्भावना करना कि इसी पुस्तक की प्रतिलिपि सन् १७१० मे होकर उसका नाम 'मोह विवेक युद्ध' रखा गया—कुछ अस-गत सा है, क्योकि यदि ऐसा होता तो दोनो प्रतियो मे किसी प्रकार का अन्तर नही पाया जाना चाहिए था। परन्तु 'ज्ञान विवेक मोह' और 'मोह विवेक युद्ध' की केवल कुछ पंक्तियो को छोड़कर और कोई समता इन दोनो मे नही मिलती। अधिक सम्भावना इस बात की, की जा सकती है कि 'ज्ञान विवेक मोह' के आधार पर ही किसी कवि ने सन् १७१० मे 'मोह विवेक युद्ध' की रचना की हो, इसके साथ ही यह भी सम्भावना की जा सकती है कि १७१० ई० के कवि का नाम लालदास न रहा हो, उसने अपनी कृति को प्रसिद्ध करने के उद्देश्य से उसका सम्बन्ध सन् १६७५ मे वर्तमान लालदास से जोड़ दिया हो। मेरी इस धारणा की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि अवध के एक लालदास ने सम्वत् १७३४ (सन् १६७७) मे 'अवध-विलास' नामक ग्रन्थ की रचना की है, जिसको स्वर्गीय श्री नाथूराम जी प्रेमी ने 'मोह विवेक युद्ध' का रचयिता माने जाने की सम्भावना की है। 'ज्ञान विवेक मोह' की प्रति अवध (सुल्तानपुर) मे मिली है।[1] और अवध विलास' का रचयिता स्वय अवध से परिचित दीखता है। इसके अतिरिक्त इन दोनों का समय भी प्राय: एक ही है—१६७५ और १६७७ई०। इसलिए यह अनुमान करना कि ये दोनो कवि एक ही रहे हो, उचित ही प्रतीत होता है। साथ ही स्वर्गीय श्री प्रेमी जी की यह सम्भावना कि 'अवध विलास' के रचयिता का कोई 'मोह विवेक युद्ध' शायद रहा हो—ठीक उसी रूप मे तो नही, परन्तु 'ज्ञान विवेक मोह' के लालदास के नाम से मिल जाने के कारण आंशिक रूप से अवश्य ही सत्य रही है। छठे लालदास, जिनका कि उल्लेख परशुराम चतुर्वेदी ने किया है—का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नही होता, परन्तु समय लगभग वही मिलता है। फिर भी मोह विवेक युद्ध' मे रचनाकार के रूप मे इन्हे प्रतिष्ठित करने का हमे कोई पुष्ट प्रमाण नही मिलता। इसलिए

---

१. नाथूराम प्रेमी, अर्द्ध कथानक पर निर्दिष्ट—मिश्रबन्धु विनोद, द्वितीय भाग, पृष्ठ ५०७, द्वितीय संस्करण। पृष्ठ २२।

इसके सम्बन्ध मे हम कुछ नही कह सकते। परन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में राम की भक्ति के महत्व का प्रतिपादन होने से इस सन्त लालदास की, उसके रचयिता के रूप मे सभावना ता की ही जा सकती है।

५२६ अब रह जाते है, प्रथम लालदास– जिनके कि नाम से प्रस्तुत ग्रन्थ मिल रहा है। अभी पाचवे लालदास के विवेचन के प्रसग मे जैसा कि कहा गया है, अधिक सभावना इस बात की प्रतीत होती है कि सन् १७१० मे इस ग्रन्थ की रचना किसी कवि ने अपने से पूर्व के लालदास के 'ज्ञान विवेक मोह' के आधार पर की हो। और उसको प्रसिद्ध करने के उद्देश्य से प्रसिद्ध लालदास से सम्बद्ध कर दी हो। ऐसा इसलिए क्योंकि 'मोह विवेक युद्ध' मे ज्ञान विवेक मोह' की कुछ पक्तियाँ ज्यो की त्यो उद्धृत मिलती हैं तथा सन् १७१० के लगभग किसी लालदास के होने का कोई पुष्ट प्रमाण नही मिलता।

५२७. प्रस्तुत ग्रन्थ की जो हस्तलिखित प्रति हमे नाहटा जी ने भेजी है, उसमे कुल १६ पेज है। यह पेज छोटे कापी के नाप के हैं। जैसा कि बताया गया है, ग्रन्थ प्रबोधचन्द्रोदय का रूपान्तर है। इसमे मोह विवेक की सेना का वर्णन, उनका परस्पर युद्ध और अन्त मे विवेक की विजय का वर्णन मात्र किया है। प्रबोध-चन्द्रोदय मे प्रभावित होते हुए भी इसमे मौलिकता का पुट है।

५२८. इसके अध्ययन मे हमे प्रबोध चन्द्रोदय से अतिरिक्त अनेक मौलिक विवरण मिलते है। इसके प्रारम्भ मे, निर्गुण ब्रह्म के वर्णन के अनन्तर भगवान राम के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए, कवि ने गुरु की वन्दना की है। कवि के गुरु का नाम परमानन्द था (दोहा ६, पृष्ठ १)। कवि ने परिचय देकर, शरीर को 'काशी नगरी' से रूपक बाधते हुए लिखा है कि तीन गुण तीनो काल, दस इन्द्रियों, दस दिशाओं मे बने दस दरवाजे आदि है। और यह माया का ही उत्पात है। मोह का विवरण भी मौलिक रूप से करते हुए कवि ने बताया है कि माया से उत्पन्न मोह का तीनो पुरो (लोको) मे विस्तार है। अज्ञान देश उसकी राजधानी है। आलस्य उसका महल है। आशा पटरानी है। हिंसा पुत्री है। कुमति सखी है। छूत लौडी है। लौडा लालच है। रोग शोक और सशय तीन मित्र है। अधर्म की ध्वजा है। कलह के बाजे बजते है। दम्भ का छत्र है। छल का चवर है। कपट वजीर है। पाखड मत्री है। काम, क्रोध, गर्व और लोभ उसके उपाय है जो महामोह की निरन्तर सहायता करते है। विवेक के सम्बन्ध मे भी कवि ने एक मौलिक रूपक उपस्थित किया है। विवेक निर्मल साध नगर का प्रधान है। वह निरजन कमलाकत निर्गुन, निर्मल आदि अनन्त है। तिलक उसकी ध्वजा है। धर्म, धीरज और ज्ञान उसके उमराव हैं। विष्णुभक्ति के बाजे बजते हैं। वह आनन्दमहल मे

निवास करता है। उसके आठ पुत्र सत्य, शील और संतोष आदि हैं। सत्ता, क्षमा, दया और शुभकार चार पुत्रियाँ हैं। शान्ति सखी है। शुचिकर्मा अनुराग मंत्री है। उसकी प्रेम रूपी सभा मे वैराग्य बैठता है। गुणो का उसका चवर है। ऐसे स्वाभाविक सिंहासन पर वह बैठता है। व्रत उसका वजीर है। तप सग खवास है। निर्भय मत्री है और उसका मत्र प्रकाश है। वेद, यश, सुख, चैन आदि उसकी कीर्ति है। स्नान आदि पवित्र आनन्ददायक कर्म हैं, शुभ वाणी है। इस प्रकार विवेक के राज्य और उसके सम्बन्धियो की विशेष रोचक योजना है। क्रोध के वर्णन मे कवि ने जीवन में अनुभूत क्रोध की भावना का वर्णन, मनोवैज्ञानिक ढंग मे ही किया है। जैसे —

जब उर अंतर प्रगटे आइ, कांपे देह धर हरं थाई ॥३६॥
टेढ़ी भौंह अरक्तं नैन, अशुभ बचन मुखि बोलं बैन।
जरे 'हुदो' मुखि निकसं झाल, रोम रोम प्रति दीवा प्रजाल ॥३७॥

\+ \+ \+

क्रोध ही ते नर नरकिहि जाइ, तिर्जग जोनि अवतरे आइ।
सिद्धि आज यह विनसे क्रोध, सब फल जाहि न पावं सोध ॥
—मोहविवेक युद्ध, पृष्ठ ४, ५।

५२९ 'प्रबोधचन्द्रोदय' के अहकार नामक पात्र के स्थान पर, कवि ने गर्व नामक पात्र का वर्णन किया है। यह पात्र अन्य 'मोह विवेक युद्ध' मे भी मिलता है। इस रूपान्तर के कुछ पात्रो के द्वन्द्व युद्ध मे मूलप्रबोधचन्द्रोदय से कुछ साम्य के साथ अन्तर भी है। जैसे ——

मोह-विवेक युद्ध	मूल-प्रबोधचन्द्रोदय
काम से ज्ञान का द्वन्द्व युद्ध	'काम' से वस्तुविचार का
क्रोध से क्षमा का द्वन्द्व युद्ध	क्रोध से क्षमा
लोभ से संतोषका का द्वन्द्व युद्ध	लोभ से संतोष
मोह से विवेक का द्वन्द्व युद्ध	+ +

प्रस्तुत ग्रन्थ मे काम से ज्ञान का द्वन्द्व युद्ध कराया गया है जब कि मूल मे काम से वस्तुविचार का द्वन्द्व युद्ध होता है। कवि ने मोह और विवेक का भी परस्पर द्वन्द्व युद्ध का वर्णन किया है। मूल मे केवल मोह के साथियो के नष्ट हो जाने से ही विवेक की विजय हो जाती है, उनके परस्पर द्वन्द्व युद्ध का वर्णन नहीं है। रूपान्तर के 'ज्ञान' पात्र के वार्तालाप मे मूल के वस्तुविचार से साम्य है। मूल प्रबोधचन्द्रोदय में इससे समता रखता हुआ, वस्तुविचार का कथन पृष्ठ १४२ पर है। इसी प्रकार

क्षमा का क्रोध के प्रति जो कथन है, वह मूल के चतुर्थ अंक पृष्ठ १५१ के श्लोक १८ से भाव साम्य रखता है।

५३०. यह रूपान्तर पूर्ण रूप से पद्य मे सम्पादित है। इसमे दोहे और चौपाई छन्द का प्रयोग है। गद्य का प्रयोग नही है। इस काव्य रूपान्तर मे नाटकीय संकेत विशेष नही है। इसकी भाषा ब्रजभाषा है। भावो को व्यक्त करने मे इसकी भाषा समर्थ है। सरलता और सरसता इसकी प्रधान विशेषताएँ है।

५३१. लालदास के इस रूपान्तर मे इनके पूर्ववर्ती गोपालदास के 'मोह विवेक युद्ध' से निम्नलिखित स्थलो पर समता दिखायी पड़ती है।

पृ० सं० गोपालदास	पृ० सं० लालदास
१ वपु बानारशी घंड ब्रह्मंडा। याही मैं दीशे नव खंडा। चौदह तीनि लोक इक ईश। सुरग नरक शब बिसवाबीश ॥५॥	१ काया कासी नगरी नाउ, त्रिगुन त्रिकाल त्रिविध को ठाउ। दस दरवाजे दस दिसि बने, + + तीनि लोक आहि तहा सर्व, दानव ेव जछ गवर्व।
१ शनकादिक नारद सुख ध्याऊ।	१ सुख नारस के पग परो,
३ कुटनी कुमति शदा शंगि रहै।	२ कुमत सखी ताकँ सग रहै,
३ पाखंड मत्री कपट प्रधान।	२ कपट बजीर असत्त खवास, पाखड मत्री वान्यौ तास।
३ अध्रम धजा फरहरे ार।	२ अधर्म धुजा गहै अग्यान,

५३२. इसी प्रकार अन्य स्थलो पर समता पाई जाती है। इससे यह अनुमान होना स्वाभाविक है कि लालदास किसी न किसी रूप मे जनगोपाल से अवश्य प्रभावित रहे होंगे।

कवि बनारसीदास का 'मोह विवेक युद्ध'

५३३ लालदास और दादू पन्थी जनगोपाल के पश्चात् 'प्रबोधचन्द्रोदय' के रूप में बनारसीदास की 'मोह विवेक युद्ध' नामक रचना आती है। ये बनारसी दास प्रसिद्ध जैन कवि बनारसीदास से अभिन्न हैं या भिन्न—इस विषय मे विद्वानो मे मतभेद है। परन्तु जैसा कि हम पूर्व मे कह आए हैं, अन्तःसाक्ष्य और बहिःसाक्ष्य के प्रमाणो के आधार पर अधिकाश विद्वानो की दृष्टि मे प्रसिद्ध जैन कवि बनारसीदास से भिन्न ही हैं। इसलिए इनके समय का निर्णय करने के लिए जैन कवि का

आधार ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं। हम देखते हैं कि बनारसीदास ने मल्ह कवि, लालदास और गोपाल के नाम लिए हैं।[1] हम अभी सिद्ध कर चुके हैं कि प्रसिद्ध दादू पंथी जनगोपाल विक्रम संवत् १६५० से १७३० के बीच मे वर्तमान थे। लालदास भी स० १६३२ मे अपनी रचना कर चुके थे। इसलिए इन लोगो का उल्लेख करने के कारण बनारसीदास इन लोगो के बाद के किसी भी समय के हो सकते है। इसके अतिरिक्त इनके समय का निर्णय करने के लिए कोई प्रमाण उपलब्ध नही है। इतना अवश्य है, अपने ग्रन्थ मे जैन धर्म का उल्लेख करने के कारण कोई जैन कवि ही होगे।

५३४ इनके 'मोह विवेक युद्ध' की जो प्रति हमारे पास है वह वि० नि० २४८१ मे वीर पुस्तक भण्डार जयपुर से प्रकाशित है। जैसा कि बनारसीदास ने स्वय कहा है। उपर्युक्त तीनो कवियो के ग्रन्थो का सक्षेप किया है। सारे ग्रन्थो को पढने पर ७-८ ही ऐसे पद मिले है जो बनारसीदास के अपने कहे जा सकते हैं। अन्य पद विशेषकर गोपालदास के मोह विवेक से उद्धृत किये हैं। एक पद लालदास के मोह विवेक मे भी मिलता है। इसलिए इस ग्रन्थ का भी वर्ण विषय प्राय वही है जो गोपालदास और लालदास के 'मोह विवेक युद्ध' के रहे हैं। जब हम यह दिखलाने का प्रयास करेंगे कि बनारसीदास के 'मोह विवेक युद्ध' से किसमे कितनी समता है। बनारसीदास के 'मोह विवेक युद्ध' का निम्नलिखित पद्य —

> सहज सिंघासन बैसि विवेक, सुर नर मुनि कीयो अभिषेक।
> विमल बजायो भगति निसाण, सब कोऊ पावं सुख दान ॥१०९॥
>
> —मोह विवेक युद्ध, पृष्ठ १९।

लालदास के 'मोह विवेक युद्ध' के निम्नांकित पद्य कुछ अन्तर के साथ बिल्कुल समता रखता है :—

> सहज सिंहासन बैठि विवेक, सुर नर मुनि कीनो अभिषेक।
> विमल बाजे भगत नीसान, सबको पावै सुख को दान॥
>
> —पृष्ठ १६

---

१. पूरब भएसु कवि मल्ह, लालदास गोपाल।
मोह विवेक किएसु तिन्ह, बाणी वचन रसाल ॥२॥
तिनि तीनहु ग्रंथनि महा, सुलप सुलप संधि देख।
सारभूत संक्षेप अब, सोधि लेत हौं सेष ॥३॥ —पृष्ठ ९।

५३५. **गोपालदास की रचना से समता विषमता**—जनगोपाल दादू पन्थी थे। अतएव 'प्रबोधचन्द्रोदय' मे प्रतिपादित मतान्तरो एव सिद्धातो का समावेश उन्होने अपनी रचना मे नही किया है। केवल मोह और विवेक के युद्ध प्रसग को मूल कृति से लेकर अपनी मौलिक प्रतिभा से पद्यबद्ध कर दी है। इन्ही का अधिक अनुसरण बनारसीदास ने किया है। परन्तु कही कही गोपाल ने अपने सिद्धान्त के अनुसार भक्ति का सकेत दिया है—वहां बनारसीदास ने जिन भक्ति का समावेश कर दिया है। इसलिए यह आसानी से कहा जा सकता है कि बनारसीदास जितना गोपालदास से प्रभावित हुए उतना अपने पूर्ववर्ती और किसी कवि से प्रभावित नही हुए। गोपाल कवि के नौ दोहो को छोडकर दसवे छन्द से बनारसीदास ने सग्रह करना प्रारम्भ किया है। गोपाल कवि ने प्रारम्भ के नौ दोहो मे निर्गुण ब्रह्म का वर्णन किया है और अन्त मे दादू मत का सकेत दिया है। दसवे छन्द से मोह विवेक वश परम्परा का परिचय प्राप्त होता है। इसी छन्द से अनुकरण भी है। जैसे —

अन अंछवा अंछवा मन भयौ।
निर्वति प्रर्वति कै घरि गयौ।
निर्वति जायो पूत बमेक। (विवेक)
महा मोह माया के येक॥१०॥

—जनगोपाल—'मोह विवेक युद्ध', पृ० २।

अनइ छाइ छामन भयो। निर्वत्ति प्रवत्ति कं घरू गयो॥३॥
निर्वत्ति जायो पुत्र विवेक। महा मोह माया के एक॥४॥

—बनारसीदास 'मोह विवेक युद्ध' ९।

दोनो मे कितनी समता है यह इसमे स्पष्ट है। गोपालदास की रचना के कही-कहीं आठ दस छन्दो को छोड कर उसके आगे से पुन: छन्दो को बनारसीदास ने लिया है जिससे उनकी रचना कुछ सक्षिप्त हो गई है। वर्णनसाम्य सम्पूर्ण रचना मे इसी प्रकार का है जैसा कि प्रस्तुत दसवे और चौथे छन्दो के उदाहरणो से व्यक्त है। कही-कही गोपाल कवि रचना के तत्सम्बन्धी भक्ति सिद्धान्त के स्थान पर बनारसीदास ने अपने सिद्धान्त को ला बिठाया है —

भाव भगति भजन उमराव।
सहज शील हरि करै सहाव॥
धीरज मंत्री सुकित परधान।
प्रेम पयादो संगि ही जान॥३॥

—जनगोपाल 'मोह विवेक युद्ध' पृ० ३

गोपाल के इस छन्द का रूपान्तर बनारसीदास ने इस प्रकार किया है.—

भाव भगति भजन उमराऊ, सहज सील जिन करै सहाऊ।
धीरज मंत्री सुकित प्रधान, प्रेम पयादो संगि ही जान ॥२१॥

—पृष्ठ ११

५३६. गोपाल कवि ने जहां छन्दों में अपना नाम 'जनगोपाल' दिया है, उन छन्दों को आवश्यकतानुसार या तो बनारसीदास ने परिवर्तित कर दिया या छोड़ दिया है। जैसे :—

अविभचारणी भगति जहां, गुर गोव्यंद सहाइ।
जन गोपाल फल का नहीं, तहां पं कछ न बसाइ ॥१३॥

—पृ० ४

बनारसीदास ने उक्त पंक्तियों को निम्न प्रकार से परिवर्तित किया है :—

अविभचारिणी जिन भगति, आतम अंग सहाय।
कहै काम ऐसी जहा, मेरो तहां न बसाय ॥३२॥ —पृष्ठ १२

५३७. इस प्रकार जनगोपाल की रचना से बनारसीदास की रचना मे विशेष अन्तर नही है। गोपाल कवि की रचना से पृथक् पंक्तियाँ बनारसीदास की रचना में कुछ ही है.—

पृष्ठ ९ पर सातवें छन्द की एक पंक्ति।

पृष्ठ १० पर नौ, दस और ग्यारह छन्द।

पृष्ठ १२ पर छन्द ३९ की अन्तिम पंक्ति तथा छ० ४० पूर्व।

पृष्ठ १३ पर छन्द ४७, ४८ और ४९ है।

उपर्युक्त विशेषताओ के आधार पर बनारसीदास कृत रचना गोपाल कवि की रचना से अपूर्व साम्य रखती है, यह हम नि.सकोच कह सकते है।

तीनों 'मोह विवेक युद्धों' में समानता

५३८. पूर्वोक्त तीनों 'मोह विवेक युद्ध' का समीक्षण कर लेने के पश्चात् जब हम इन तीनो मे कहाँ कितनी समता है, देखेंगे। नीचे लिखी बातें तीनों मे समान रूप से मिलती हैं :—

१. गर्व नामक पात्र का प्रयोग।

२. मोह और विवेक की सेना के वीरो का परस्परा वाग्युद्ध।

३ मोह और विवेक का परस्पर युद्ध।

४ तीनों मे ही गद्य का प्रयोग नही है। कविता है।
५. काम के द्वन्द्वयुद्ध की वार्ता मे भाव साम्य।

केशवदास की 'विज्ञान गीता'

५३९. हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध महाकवि केशवदास ने 'प्रबोधचन्द्रोदय' का एक रूपान्तर किया है, जिसका नाम 'विज्ञान गीता' है। कवि ने केवल 'प्रबोध-चन्द्रोदय' के कथानक का आधार लेकर अपने आश्रयदाता के प्रसन्न करने के लिये, अपनी कल्पना से ज्ञानोपदेश का वर्णन किया है।' प्रबोधचन्द्रोदय' का अनुवाद तो कही-कही ही है। वस्तुत केशव का उद्देश्य नाटक नही अपितु काव्य लिखना था क्योंकि 'विज्ञान गीता' को नाना पौराणिक आख्यानो और आध्यात्मिक उपदेशो से युक्त बनाकर—एक काव्य का रूप दिया गया है। तात्पर्य यह है कि 'विज्ञान गीता' का रूप एक काव्य का है, नाटक का नही। उन्होंने इसके प्रारम्भ मे नट और सूत्रधार का प्रवेश न कराकर, शिव और पार्वती के सवाद के द्वारा अपने आश्रयदाता के यश का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

५४०. यह इक्कीस प्रभावों मे विभक्त है। भाषा शुद्ध ब्रज है। 'प्रबोध-चन्द्रोदय' के मोह और विवेक के सघर्षात्मक कथानक का आधार लेकर लिखा जाने के कारण आचार्य शुक्ल जी ने भी अपने इतिहास (पृष्ठ १८३) मे लिखा है कि यह सस्कृत के 'प्रबोधचन्द्रोदय' के ढग की पुस्तक है। 'विज्ञान गीता' के प्रारम्भ मे कवि ने छप्पय छन्द मे मगालचरण किया है। उसमे जिसे निगम नैति नैति भाखता है उस अनादि एव निरजन ज्योति को उन्होने प्रणाम किया है। उसके अनन्तर सवैया छन्द मे 'हर' और 'गुर' को प्रणाम किया है। इसके अनन्तर उन्होने वश का परिचय दिया है, जिसके अनुसार ये वेदव्यास वश के सनाढ्य ब्राह्मण काशीनाथ के पुत्र थे। तदुपरान्त अपने आश्रयदाता वीरसिंहदेव की प्रशसा की है। ग्रन्थ का उद्देश्य, इसके अनन्तर बताते हुए केशव कहते है कि राजा वीरसिंह देव के हृदय मे अध्यात्म ज्ञान की जिज्ञासा जागरित हुई। उसका समाधान करने के लिए उन्होने केशवदास

---

१. एक समय नृपनाथ, सभामध्य बैठे सुमति।
बूझी उत्तम गाथ, कवि नृप केशवदास से ॥२७॥
+ + +
कहिये किहि भांति विकार नशावै।
जिव जीवतहीं परमानंद पावै ॥३१॥

—विज्ञान गीता, पृष्ठ ७

से कहा 'हरि भक्ति और गंगा स्नान करते हुए भी जनसाधारण का चित्त विकार रहित क्यो नही हो पाता।' सी जिज्ञासा का समाधान केशव दास ने भागवत् और गीता के आधार पर मोह और विवेक के ुद्ध के माध्यम से 'विज्ञान गीता' की रचना की थी।

५४१. इस ग्रन्थ का प्रकाशित सस्करण जो हमारे पास है उसमे १२५ ृ हैं और सर्ग के रूप पूरा ग्रन्थ २५ प्रभावों मे विभक्त है जैसा कि कह आए हैं। प्रत्येक प्रभाव के आदि और अन्त मे उसके प्रारम्भ और समाप्त होने की सूचना दी गई है। जैसे—आदि की सूचना प्रथम प्रभाव के समाप्त होने पर इस प्रकार है —

विशद द्वितीयप्रकाश में, यह वर्णिबो प्रकाश।
कलह काम रतिको चिर, मत्रविनोद विलास ॥१॥
—विज्ञान गीता, ृष्ठ ८

इसी प्रकार प्रथम प्रभाव के अन्त मे—"**इति श्री चिदानदमग्नायां विज्ञानगीतायां श्रोशिश पार्श्वस्थप्रश्नवर्णननामप्रथमः प्रभावः ॥१॥**" दिया गया है। सभी प्रभावों के आदि और अन्त मे यही क्रम अपनाया गया है।

प्रस्तुत विज्ञान गीता में 'प्रबोधचन्द्रोदय' से अनूदित अंश—

५४२. केशवदास ने यद्यपि 'विज्ञान गीता' को मौलिक बनाने का प्रयास किया है तथापि वह पूर्ण मौलिक हो नही सकी है। उसमे 'प्रबोधचन्द्रोदय' के कुछ अश का अनुवाद भी है। अनूदित अश निम्नलिखित हैं —

(१) द्वितीय प्रभाव के पृष्ठ ९ पर—

संतत मोह विवेक को, सुनियतु एकै वंश।
वंश कहा गजगामिनी, एकै पिता प्रशंश ॥११॥
ईश माय विलोकि के उपजाइयो मन पूत॥
सुंदरी तिहि द्वै करी तिहि ते त्रिलोक अभूत।
एक नाम निवृत्ति है जग एक प्रवृत्ति सुजान।
वंश ै ताते भयो यह लोक मानि प्रमान॥

---

१. एक समय नृपनाथ, सभामध्य बैठे सुमति।
बूझी उत्तम गाथ, कवि नृप केशवदास से॥२७॥
+ + +
चित्त न तजत विकार न्हात नर यद्यपि गंगा॥२८॥
—विज्ञान गीता, पृष्ठ ७।

ये छन्द—'प्रबोधचन्द्रोदय' के निम्नलिखित अश के अनुवाद है —

"काम:—आ: प्रिये, किमुच्यत एकमुत्पत्तिस्थानमिति। ननु जनक एवास्मा-कर्मामनः। तथाहि

तस्य च प्रवृत्तनिवृत्ती द्वे धर्मपत्न्यौ।

—प्रथम अंक, पृष्ठ २०-२१।

इसी प्रकार निम्नलिखित अश भी तत्तत स्थलो से अनूदित हैं:—

तृतीय प्रभाव पृष्ठ ११, १२, १३।

सातवा प्रभाव पृष्ठ ३२।

आठवा प्रभाव पृष्ठ ३४, ३५।

नवा प्रभाव पृष्ठ ४१, ४५, ४६।

तेरहवा प्रभाव पृष्ठ ६०।

—आदि अनेक स्थल

५४३. उपर्युक्त अनुवाद के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनो ग्रन्थो में पर्याप्त समता है। ये समताए निम्न है —

दोनो मे अध्यात्म का विवेचन है। दोनो मे ही आत्मज्ञान से मुक्ति मानी गई है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, आदि मोक्ष मे बाधक माने गये है। अज्ञान रूपी मोह पर, निवृति और सत्य ज्ञान–मोक्ष के ये तीन हेतु दोनों मे प्रतिपादित किये गये है। मोहविवेक युद्ध कुछ समानता के साथ दोनो मे है। कथाक्रम भी लगभग समान है। भावात्मक कथानक का आधार दोनो मे लिया गया है। विवेक के जीत जाने पर–सरस्वती का मन को समझाना, वैराग्य का उदय, निवृत्ति मे मन की नियुक्ति, उपनिषद् से वार्तालाप, श्रद्धा की खोज मे पाखण्डो का वर्णन, श्रद्धा के मिल जाने पर विवेक की तैयारी और चढाई आदि दोनों मे समान ही है। पात्र भी दोनो मे समान ही हैं। उपनिषद के द्वारा उपदेश दिया जाना दोनो मे है। यह प्रसग भावानुवाद है। इसी प्रकार यात्रा आदि का वर्णन भी दोनो मे समता रखता है।

५४४ इतना होने पर भी दोनो मे अन्तर भी पर्याप्त मात्रा मे है। वे अन्तर निम्न है.—

शैली—विज्ञान गीता की रचना काव्य शैली मे है जो कि कवि केशव के लिए स्वाभाविक थी। सके गूढ़ रहस्यो के वर्णन के लिए भी विस्तृत वर्णन आवश्यक था – जो कि हुआ है। इसके विपरीत प्रबोधचन्द्रोदय नाटकीय शैली मे है।

नाम—गीता से प्रभावित होने के कारण केशव ने अपनी रचना का नाम 'विज्ञान

गीता' रखा, जबकि कृष्ण मिश्र ने नाटकीय नियमो का अनुसरण करते हुए उद्देश्य के आधार पर अपने नाटक का नाम 'प्रबोधचन्द्रोदय' रखा ।

पात्र—पात्रो के प्रयोग में भी अन्तर है। जिस पूर्णता के साथ भावतात्विक और मनोवैज्ञानिक पात्रो का प्रयोग 'प्रबोधचन्द्रोदय' मे है वैसा 'विज्ञान गीता' मे नही है। इसमे विवेक और मोह जैसे पात्र भी लौकिक पात्रो के रूप मे दिखाए गये हैं। इनके नामो मे भी परिवर्तन हो गया है, जैसे–प्रबोधचन्द्रोदय का 'पुरुष', विज्ञान गीता का 'जीव' हो गया है। इसी प्रकार प्रबोधचन्द्रोदय की उपनिषद के स्थान पर विज्ञान गीता मे 'वेद सिद्धि' की सृष्टि की गई है।

कथा—कथा यद्यपि लगभग समान है, किन्तु प्रबोधचन्द्रोदय के प्रारम्भ मे जो नाटकीय विकास का कथानक है, उसका विज्ञान गीता मे अभाव है। इसके अतिरिक्त सामयिक पाखण्डो के वर्णन–ज्ञानोपदेश और राजनैतिक दावपेच के विस्तार मे केशव की कथा क्षीण एव विशृखल हो गई है। प्रबोधचन्द्रोदय की कथा मे यह बात नही है।

५४५. केशव ने विज्ञान गीता मे 'प्रबोधचन्द्रोदय' से अतिरिक्त मौलिकता दिखलाई है। शरद् वर्णन, वर्षा वर्णन तथा राजनैतिक वर्णन केशव के अपने वर्णन है। इसके अतिरिक्त तीन स्तोत्र भी इन्होंने इसमे दिये है। इसके अतिरिक्त तत्कालीन धार्मिक आडम्बरो का वर्णन, गीता का ज्ञानोपदेश, भागवत् एव अन्य पुराणों की कथाए, नवधा भक्ति और ब्राह्मणो की पूज्यता आदि का प्रतिपादन भी केशव का अपना है। शिव, पार्वती, पाखण्ड, सन्यासी, सती, भ्रम, वसुकला, नारी, वेश, उद्यम, राजधर्म, धीरज और सत्सग जैसे कुछ मौलिक पात्रो का भी केशव ने प्रयोग किया है। हिन्दी के प्रकृति के अनुकूल उन्होने नवीन छन्दो की भी योजना की है। नवीन छन्द ये हैं। सवैया, सोरठा, दोहा, कामरूप-माला, विजय, दोधक, रूपमाला, हरिगीतिका, मधु, सुन्दरी, भुजगप्रयात, तोटक, सरस्वती, गीतिका, तारक, नलिनी, चंचरी, और नाराच। इन छन्दों की योजना प्रबोधचन्द्रोदय मे नही है। इसी प्रकार इनके सवाद के सवाद भी मौलिक है जो कि प्रश्नोत्तर की शैली में हैं। विज्ञान गीता मे अनेक सवाद आए हैं जैसे—

शिव शिवा संवाद

राजा वामन एवं शची का संवाद

५४६. **निष्कर्ष**—महाकवि केशवदास साहित्यिक प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे। किन्तु उनकी इस रचना में कोई सौन्दर्य विशेष नही है। इस रचना को कवि ने

साधारणजनो के लिए हिन्दी मे बडे ही सकोच के साथ लिखा था।[1] इसीलिए कवि साधारण वर्णन और गीता के उपदेश ही दे सका। गीता और भागवत के मन्थन से उत्पन्न ज्ञानराशि को सुव्यवस्थित ढग से वह नियोजित न कर सका। ऐसा प्रतीत होता है कि विवश होकर यह रचना कवि को करनी पडी। अन्यथा ऐसे वर्णनो को स्थान न देता। वस्तुत यदि इसकी रचना को कवि ने मौलिक रूप दिया होता तो यह उत्कृष्ट रचना होती।

प० उमादयाल मिश्र का 'प्रबोधद्युमण्युदय'

५४७. 'प्रबोधचन्द्रोदय' के रूपान्तर के रूप मे उमादयाल मिश्र ने सन् १८९२ मे 'प्रबोधद्युमण्युदय' नामक आध्यात्मिक नाटक की रचना की। इसका कथानक मूल कथानक के आधार पर ही है फिर भी कुछ रूपान्तरित हो गया है। प० उमादयाल मिश्र के पिता का नाम प० मानादीन मिश्र था, जो कि उरई के हाई स्कूल के सस्कृताध्यापक प० मन्नूलाल जी के ज्येष्ठ भाई थे। इसकी सूचना हमे ग्रन्थ के मुखपृष्ठ से मिलती है।

५४८ इस ग्रन्थ की भूमिका मे पूर्व ही ग्रन्थकार ने एक लम्बा मगलाचरण दिया है, जिसमे ईश्वर के विभिन्न रूपो के वर्णन के उपरान्त वह असीम सत्ता को प्रणाम करता है—

> शैव सकल जाको निशिवासर शिवशिव नाम पुकारें।
> बेद तत्व के जानन वाले जाको ब्रह्म उचारें॥
> \+ \+ \+
> बौद्ध लोग जाको बुध कहि के प्रेमाधिक उपजावें।
> \+ \+ \+
> जे कबीर के शिष्य जगत मे जाको साहिब बोलें।
> नानकशाही जाहि रैन दिन वाह गुरू मुख खोलें।
> जाको मुसल्मीन अल्लह अरु खुदा सदा बतलाते।
> जाको इंग्लिस्तान निवासी गाड ईशु कहि गाते।

---

१. मूढ़ लहै जो गूढ़मतु, अमित अनंत अगाधु।
भाखाकरि ताते कह्यो, क्षमियो बुध अपराधु॥८॥
—विज्ञान गीता, पृष्ठ ४

महा प्रभु चैतन्य कृष्ण जिहिं बंगाली नित ध्यावें।
और बहुत पंथाई जाको जो बहु नाम बतावें।
+ + +
उमा मिश्र मन वचन कर्म्म से ताकहं शीश नवाऊं।

ऐसा प्रतीत होता है कि उमादयाल मिश्र मे सभी धर्मों एव सम्प्रदायो के प्रति सहिष्णुता की भावना थी। यही कारण है कि उन्होंने अपने समय के सभी मतमतान्तरो को अपने विस्तृत मगलाचरण मे स्थान दिया है। प्रस्तुत मगलाचरण मे सस्कृत के 'हनुमन्नाटक' के अधोलिखित श्लोक की छाया स्पष्ट है.—

'य शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो'

इस मगलाचरण के पश्चात् लेखक ने एक विस्तृत भूमिका लिखी है। जिसमे समसामयिक मतमतान्तरो के विरोध से उत्पन्न वैमनस्य के प्रति दुख प्रकट करने के उपरान्त सभी का भाई के समान एक हो रहने की प्रेरणा दी गई है। तदनन्तर लेखक ने प्रस्तुत 'रूपान्तर' के लिखने की प्रेरणा के सम्बन्ध मे बताया है कि किस प्रकार पण्डित गयाप्रसाद जी और मुशी महावीरप्रसाद जी ने लेखक को समाज को सत्प्रेरणा देने के लिए एक पुस्तक लिखने की प्रेरणा दी थी। उसी प्रेरणा का मधुर फल 'प्रबोधचन्द्रोदय' के रूप मे समाज के समक्ष प्रस्तुत हुआ। भूमिका के अन्त मे दिये गये समय सन् १८९२ ई० से अनुमान होता है कि प्रस्तुत रचना का रचनाकाल सन् १८९२ ई० ही रहा होगा।

५४९. प्रबोधचन्द्रोदय' मे कुछ अशो मे यह रूपान्तर अपनी मौलिकता प्रकट करता है। प्रथम अक की रचना नाटककार ने स्वतत्र एव मौलिक रूप से, तत्कालीन लोकरुचि एव रगमचीय परम्परा के अनुकूल की है। इसमे गीतो को प्रमुखता दी गई है। अन्य अको मे कही-कही अविकल अनुवाद और कही सक्षिप्त भावानुवाद है। मतमतान्तरो एव दृष्टान्तो का विस्तार कही नही है। प्रथम अक के प्रारम्भ मे नान्दी के रूप मे एक सस्कृत श्लोक की अवतारणा की गई है। इस नान्दी के पश्चात् सूत्रधार प्रवेश करता है जो अभिनय के हेतु प्रस्तुत नाटक का नाम बताता है। साथ ही वह नट को बुलाकर, अभिनय के द्वारा—उपस्थित विद्वन्मण्डली को प्रसन्न करने की आज्ञा देता है। इतने मे नेपथ्य मे से ध्वनि आती है कि यह मेरा पुत्र, मेरा धन, मेरा स्थान है:—

मम धन ये पितु मातु यह सुन्दर मम प्रान।
भ्रा अग्रज औ अनुज यह मम उत्तम यह थान॥

सूत्रधार इस वचन पर इस आशय से कि इस स्वप्नवत् ससार मे कौन मेरा धन, मेरा पिता आदि कह रहा है—आक्षेप करता है और स्वय नट के पास चला जाता है। तत्पश्चात् जीव अपने मित्रवर्ग के साथ रगभूमि मे प्रवेश करता है और नेपथ्य मे पढे हुए दोहे को एक बार पुन. पढकर ब्राह्मण वश (नाटककार) का परिचय देता है। परिचय के अन्त में कथा का प्रारम्भ इस प्रकार से होता है कि जीव प्रसन्नतापूर्वक अपना परिचय देता है। तत्पश्चात् मित्रवर्ग उससे बाग मे चलकर बहार, देखने के लिए कहता है। जीव मित्रो के साथ बाग मे टहलता है। वे सब पहले बाग की शोभा का वर्णन करते और फिर उपवन की बहार का आनन्द लेते हुए विरह की रागिनी का इस प्रकार आलाप करते हैं —

कोयलिया कूकत आधी रात।
कारी कारी घटा देखि के निशि दिन जिय घबड़ात।

इसी प्रकार नेपथ्य से ध्वनि आती है—विवेक की विजय नही, मोह की विजय ही सम्भव है। इसके पश्चात् एक मित्र काम और रति की शोभा का वर्णन करता है और उनके आने की सभावना बताकर वह मित्रमण्डली चली जाती है। यहा प्रथम अक समाप्त हो जाता है। द्वितीय अक मे काम और रति प्रवेश करते है। इनका प्रवेश और वार्तालाप 'प्रबोधचन्द्रोदय' की ही भाति है। इस रूपान्तर के प्रथम अक मे मूल कृति से अन्तर लाने की दृष्टि से गीतो और भजनो की योजना की गई है। जो सम्भवत लोकरुचि को ध्यान मे रखकर की गई है। लोकरुचि के ही लिए विप्रलम्भ शृगार के गीतो से कामदेव के प्रवेश के प्रसग को सम्बन्धित करने की योजना है। नाटककार ने अपनी मौलिक सूझ से तत्कालीन लोकरुचि के अनुकूल गीतो के माध्यम से काम और रति के प्रसग का शृंखलाबद्ध करके प्रारम्भ किया है।

५५०. प्रबोधकुसुमोदय में प्रबोधचन्द्रोदय से अनूदित अंश—मौलिक अशो के अतिरिक्त इस रूपान्तर मे 'प्रबोधचन्द्रोदय' से कई स्थलो पर अविकल अनुवाद भी किया गया है। उदाहरण के लिए हम अधोलिखित अश को ले सकते हैं :—

काम—शास्त्रोत्पन्नविवेक निश्चित केवल बुधजनो के हृदय में तभी तक रहता है जबलो इन्दीवराक्षी कमलनयनी की विशिख दृष्टि बाणमरिस, भृकुटी धनु से उन पर नही पडती है।। सुन्दर रम्य स्थान—सुनयनी मनमोहनी नवयौवना स्त्री छोटे-छोटे पौधे जिन पर मदमत्त गुजार करते हुए भ्रमर शोभा दे रहे हैं—मल्लिका इत्यादि नाना प्रकार की मनोहर लतायें- -और सुगधित मन्द मन्द वायु—और सुन्दर

चांदनी रात्री—ये सब मेरे शस्त्र हैं—जिनके वश सर्व संसार होता है तो फिर विवेक की क्या सामर्थ्य है ?।।

(पृष्ठ १२-१३)

यह अंश 'प्रबोधचन्द्रोदय' के प्रथम अंक, श्लोक ११–१२ का अविकल अनुवाद है। इसी प्रकार 'प्रबोधद्युमण्युदय' के तृतीय अंक, पृष्ठ १६–१७ का, विवेक और मति का वार्तालाप, आदि प्रबोधचन्द्रोदय के तत्त्त प्रसंगों से अविकल रूप मे अनूदित हैं। कुछ स्थलों पर अनुवाद के साथ ही साथ मौलिकता भी है। जैसे—प्रबोधचन्द्रोदय के द्वितीय अंक मे मोह—अपनी सेना की तैयारी करता है। परन्तु 'प्रबोधद्युमण्युदय' के पंचम अंक मे यह प्रसंग आता है। यह मूल की अपेक्षा सक्षेप मे है। इसमे अधर्म नामक नये पात्र की योजना भी की गई है। प्रबोधचन्द्रोदय के चतुर्थ अंक मे राजा विवेक की सेना की तैयारी का वर्णन है किन्तु 'प्रबोधद्युमण्युदय' के षष्ठ अंक मे विवेक अपनी सेना को तैयार करता है। यहा सेना के वर्णन मे वस्तुविचार और क्षमा का वर्णन विशेष है। इस प्रसंग में मूल की छाया का ही आभास होता है। इसी प्रकार अन्य अनेक स्थलों पर प्रबोधचन्द्रोदय का अनुवाद कुछ रूपान्तर के साथ मिलता है।

५५१. अन्त मे हमे प्रस्तुत रूपान्तर मे अनेक विशेषताए मिलती हैं। इसकी भाषा ब्रजभाषा का पुट लिए हुए खड़ी बोली है। सम्पूर्ण ग्रन्थ गद्य मे है। कहीं-कहीं पद्यों की योजना है। प्रथम और पंचम अंक मे कुछ संस्कृत श्लोक और भजन आदि भी सयोजित है। प्रबोधचन्द्रोदय के विभिन्न अंकों की कथा का अपनी सुविधा के अनुसार-पृथक् पृथक् अंकों मे कर लिया गया है। बौद्ध, जैन और कापालिक मतों का वार्तालाप नहीं रखा गया है। विदूषक, अधर्म और सत्य आदि कुछ नए पात्रों का आयोजन किया गया है। इसके अतिरिक्त मूल के कुछ पात्रों—जैसे—श्रद्धा, विष्णुभक्ति, मैत्री, करुणा और मुदिता आदि का प्रयोग इसमे नहीं किया गया है। इसमे कोई भी मत सम्बन्धी आलोचनात्मक विवेचन नहीं है। सामयिक परिस्थिति का सामान्य वर्णन ही है। वार्तालापों मे साधारण नाटकीयता है। उपदेश के प्रसंग मे तथा समाज के दोषों के वर्णनप्रसंग मे, वार्तालाप आवश्यकता से अधिक लम्बे हो गये हैं (पृ० २९, ३५, ३६)। प्रस्तुत नाटक में सात अंक हैं। इसमे पर्याप्त नाटकीय संकेत दिये गये हैं। पात्रों के प्रवेश, प्रस्थान और नेपथ्य आदि की योजना की गई है। इस रूपान्तर का प्रथम अंक मौलिक है, सातवां अंक मूल की छाया लेकर लिखा गया है। मध्य के पाच अंक मे मूल रचना से कहीं तो ज्यों की त्यों अनुवाद कहीं सक्षेप मे संवाद और विवरण ले लिया गया है। इस प्रकार यह प्रबोधद्युमण्युदय, प्रबोधचन्द्रोदय का अपने युग की साहित्यिक एवं धार्मिक

विशेषताओं से युक्त, एक रूपान्तर है। जिसे साधारण सामयिक रचना कहा जा सकता है।

५५२. **उपसंहार**—इन प्रसिद्ध कवियो के रूपान्तरो के अतिरिक्त एक और रचना का सकेत मिलता है। उसके रचयिता है दामोदरदास और उसका नाम 'मोह विवेक' है। परन्तु यह रचना उपलब्ध नही होती। अपितु केवल सूचना मात्र मिलती है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की सन् १९२९–३१ की खोज रिपोर्ट पृ २१३, सख्या ७५ पर इस ग्रन्थ का परिचय दिया गया है। इस ग्रथ का विषय 'मोह विवेक' की कथा है। खोज रिपोर्ट मे इसका आदि व अन्त दिया हुआ है। यह भाग किसी भी 'मोह विवेक' नामक रचना के एतत्सम्बन्धी भाग से समता नही रखता है। अत यह नही कहा जा सकता कि किस रचना के प्रभाव मे आकर दामोदरदास ने उनका प्रणयन किया था और न निश्चयपूर्वक यही कहा जा सकता है कि यह रचना उनकी मौलिक कृति है। खोज रिपोर्ट मे इस ग्रन्थ के जो आदि और अन्त के अश दिये गये है उनमे कथा का पता नही चल पाता, केवल विषय के नाम पर रिपोर्ट मे मोह विवेक की कथा लिखा है, जिसके आधार पर यही अनुमान किया जा सकता है कि अन्य रचनाओ की तरह इसमे भी मोह और विवेक का युद्ध वर्णित होगा।

५५३. अध्ययन किये गए इन पाच रूपान्तरो मे जो सबसे मुख्य बात देखने को मिलती है, वह है मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण। प्रतीत होता है कि 'प्रबोधचन्द्रोदय' के अन्तर्द्वन्द्व के इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ने हिन्दी मे रूपान्तरो की इस धारा को प्रवाहित किया।

सप्तम अध्याय

प्रबोधचन्द्रोदय की हिन्दी परम्परा के स्वतंत्र रूपक नाटक

५५४. अनुवादो और रूपान्तरो के अतिरिक्त हिन्दी-साहित्य मे कुछ ऐसे भी नाटक उपलब्ध होते है, जो शैली की दृष्टि मे 'प्रबोधचन्द्रोदय' से अनुप्राणित होते हुए भी, पात्र, वस्तु और उद्देश्य की कल्पना मे पूर्णरूपेण मौलिक है। इन्ही रूपक-नाटको को हमने चौथे अध्याय मे प्रबोधचन्द्रोदय की परम्परा मे आविर्भूत स्वतन्त्र रूपक नाटक माना है। हिन्दी साहित्य मे भारतेन्दु युग से अद्यावधि पर्यन्त इस श्रेणी के अनेको रूपक-नाटक प्रस्तुत हुए। ये नाटक अपने विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए या यो कहिये कि तत्तद्युगो मे जाग्रत मानव-जीवन की ज्वलन्त समस्याओं का समाधान करने के हेतु साहित्य के रगमच पर अवतीर्ण हुए। इस दृष्टि से इन नाटको का हम समस्या-नाटक भी कह सकते है, परन्तु जैसा कि डा० नगेन्द्र ने कहा है,[1] इनके पात्र अपना निजी व्यक्तित्व न रखकर लेखको की मान्यताओं के प्रतीक-रूप मे ही आए है, अतएव इन समस्या-नाटको को भी हम एक प्रकार से रूपक शैली के ही नाटक मानते है।

५५५. अब हम इन नाटको के विशिष्ट-अध्ययन की पृष्ठभूमि के रूप मे इनके उद्देश्यो, कथानको और पात्रो के स्वरूप पर यहाँ सक्षिप्त विचार प्रस्तुत करना चाहते हैं।

५५६ **उद्देश्य**—जैसा कि अभी कहा है, इन नाटकों का प्रणयन युगीन समस्याओ का समाधान करने के हेतु हुआ। इसलिए इनकी रचना के मूल मे नाना प्रकार के उद्देश्यो की सत्ता परिलक्षित होती है। कुछ नाटको का उद्देश्य यदि समाज मे व्याप्त दोषो को निरस्त कर उसका परिष्कार करना है तो कुछ का प्राच्य और प्रतीच्य सस्कृति के सम्मिलन से उत्पन्न हुई अव्यवस्था का समाधान करना है, कुछ का उद्देश्य यदि धार्मिक सम्प्रदायों मे व्याप्त दुराचारो का परिहार कर अपने-

१. डा० नगेन्द्र—आधुनिक हिन्दी नाटक, पृष्ठ ७४।

अपने दृष्टिकोण को सार्वजनिक मत के रूप मे प्रतिष्ठित करना है तो दूसरो का उद्देश्य ुग की समस्याओ की पृष्ठभूमि में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को अग्रसर करना है, इसी प्रकार कुछ का लक्ष्य यदि हिन्दी साहित्य के अशान्त वातावरण के समुद्र मे आन्दोलित साहित्य की नौका को शोभा-दिशा-निर्देश देकर उसे सत्पथ की ओर प्रेरित कर सम्पूर्ण अगो से परिपुष्ट देखने की अभिलाषा है तो कुछ का उद्देश्य देश की राजनैतिक परिस्थितियो का साहित्य के माध्यम से मनोरम चित्रण करना है। स्पष्टत इस प्रकार रूपक शैली के इन नाटको मे उद्देश्य की विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। इन विभिन्न उद्देश्यो के आधार पर उपरोक्त नाटको को हम निम्नलिखित रूप मे विभाजित कर सकते हैं —

१ आध्यात्मिक
२ साहित्यिक
३ मनोवैज्ञानिक
४ सामाजिक
५ राजनैतिक
६ सास्कृतिक

उद्देश्यो पर आधारित इसी विभाजन को सम्मुख रखकर हम इन रूपक-नाटको का विशिष्ट अध्ययन अगले पृष्ठो मे प्रस्तुत करेंगे, अतएव तत्तत् प्रकरणो के पूर्व, इन छ प्रकारो की सामान्य प्रवृत्तियो का सक्षिप्त दिग्दर्शन कराया जायगा, इसलिए यहाँ पर इनके सम्बन्ध मे अधिक कहना ठीक नही।

५५७. **कथानक**—कथानक का विकास उसका रूप तथा आकृति और प्रकृति विशेषकर ग्रन्थो के उद्देश्य पर निर्भर रहा करती है। ऊपर हमने देखा है कि इन रूपक-नाटको के प्रणयन मे एक से अधिक उद्देश्यो का आधार लिया गया है, अत यह स्वाभाविक था कि इनके कथानक भी बहुविध हो जाते। वैसे तो खोज करने पर इन नाटको के कथानको के कितने ही रूप देखे जा सकते है, परन्तु स्थूल रूप से हम उपरोक्त पाँच उद्देश्यो के समानान्तर छ प्रकार के ही कथानक मानते है। किस प्रकार के नाटको मे किस प्रकार के कथानक का प्रयोग किया गया है, इस सम्बन्ध मे उद्भूत जिज्ञासा का समाधान तो यद्यपि इन नाटको के विशिष्ट अध्ययन मे ही उपलब्ध होगा, तथापि यहाँ भी इस सम्बन्ध मे थोड़ी चर्चा कर देनी आवश्यक है—उद्देश्यो के आधार पर कथानको का विवरण यो दिया जा सकता है।

५५८. **आध्यात्मिक**—इस प्रकार के नाटको में कथानको मे बहुधा सत् और असत् प्रवृत्तियो का सघर्ष दिखाया गया है। इस सघर्ष में असत् प्रवृत्ति की पराजय

और सत प्रवृत्ति की प्राय विजय होती है। किसी-किसी में आत्मा और माया का सघर्ष दिखा कर आत्मा को विजयी दिखाया गया है। उदाहरण के लिए 'मायावी' नाटक को लिया जा सकता है जिसमे उपरोक्त प्रकार के सघर्ष मे आत्मा को विजयी सिद्ध किया गया है। किसी किसी मे सामाजिक दशा के दिखाने के व्याज से तत्कालीन साधुओं की व्यभिचारशीलता का भी वर्णन है– जैसे सत्य का सैनिक मे।

५५९. **साहित्यिक**—इस श्रेणी मे नाटको के कथानको मे समाज का पत्रिकाओ के सम्बन्ध मे मतभेद होना, अछूतोद्धार तथा ईसाई मत के प्रचार सम्बन्धी समस्याओ को स्थान दिया गया है। किसी मे हास्यरस की दुर्दशा का चित्रण भी दिया गया है—जैसे 'पत्र पत्रिका सम्मेलन' मे।

५६०. **मनोवैज्ञानिक**—इस प्रकार के नाटको मे मन का असतुष्ट होना, उसका विलास मे लिप्त होना तथा विलास के समाप्त हो जाने पर जीवन का व्यवस्थित होना आदि चित्रित किया गया है। किसी किसी मे पात्र-विशेष की परिवर्तित मानसिक वृत्तियो का भी रोचक चित्र उपस्थित किया गया है, जैसे—"सन्तोष कहाँ" के मनसाराम की मानसिक वृत्तियो का।

५६१ **सामाजिक**—सामाजिक नाटको के कथानको मे कलि और धर्म के सघर्ष के माध्यम मे नारियो के सौभाग्य और दुर्भाग्य का सघर्ष दिखाया गया है, साथ ही भारत की स्त्रियों मे जागरण की वृद्धि होना तथा भारतमाता की प्रार्थना का भी अकन हुआ है। एक नाटक मे कलियुग मे घासलेट घी के प्रचार की पृष्ठ भूमि मे एक मारवाडी परिवार का रोचक वर्णन भी है–जैसे 'मारवाणी घी' मे।

५६२. **राजनैतिक**—इस कोटि के नाटको के कथानको मे प्राय भारत की स्वतन्त्रता के लिए तडप ही प्रमुख रूप से मिलती है। इसके लिए नारी का त्याग और वीरता, भारत की दुर्दशा, स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सघर्ष आदि का वर्णन किया गया है। भारत के स्वतन्त्र होने की भावना से लिखे गये किन्ही नाटको मे देश के स्वतन्त्र होने का भी उल्लेख है–जैसे, "हिन्दू" मे। किसी किसी मे अन्तर्राष्ट्रीय सघर्ष का भी चित्र है।

५६३. **सांस्कृतिक**—सास्कृतिक नाटको के कथानको मे अधिकतर भौतिकता और आध्यात्मिकता के संघर्ष मे आध्यात्मिकता को विजयी दिखाकर उसके द्वारा ससार के दु:खादि की शान्ति की कामना की गई मिलती है।

५६४. इस प्रकार विभिन्न उद्देश्य के नाटको में निम्नकोटि का ही कथानक दिखाई पडता है।

५६५. **पात्र**—इसके पूर्व के पात्रों का सामान्य अध्ययन किया जाय, उद्देश्य

के आधार पर नाटको के सभी पात्रो का परिगणन कर देना आवश्यक है। इन नाटको मे प्रयुक्त पात्र निम्नलिखित है --

५६६. **आध्यात्मिक नाटकों मे**--मन (नट), विषय वासना (नटी), विज्ञान (राजा), प्रज्ञा (रानी), जीव (वृद्ध), शम (सिपाही), श्री गुरु के मत्री-सन्तोष, सत्सग, विचार, ज्ञान, विवेक, वैराग्य (द्वारपाल), समता (दफ्तर), सेना--दभ, तितिक्षा, श्रद्धा, उपरति, समाधान।--विज्ञान (महाराज), प्रज्ञा (रानी), वैराग्य, दया, वेद, सत्सग अज्ञान, काम, आलस्य, दम्भ, प्रवृत्ति, मुमुक्षु, विज्ञान, प्रज्ञा, उपनिषद वेद, अभय, निवृत्ति, विश्वास, विवेक, क्षमा, भक्ति, समाधान, निदिध्यासन। विज्ञानदेव, लीलादेवी, धनदास, अमीरी, जगत्कुमार, अहकार, लोभ, मै, मन विचार, फकीरी, सत्सग। सरलसिह (शुद्ध आत्मा), मायावी (मायाजाल), अन्तसराम (अन्त करण), मनसाराम (मन), ज्ञानानन्द, बुद्धि, फैशन, मदिरा। ओकार, सोहम, ईश, रसमूल, चिन्ता, माया। सत्व, रज, निवृत्ति, वैराग्य, ब्रह्मचर्य, ज्ञान, विवेक, विश्वास, भक्ति, प्रज्ञा, सरलता, विरक्ति, अभीप्सा, तम, प्रवृत्ति, माया, अहम्, क्रोध, लोभ, काम, वासना, आसक्ति, मोह और सशय है।

५६७. **साहित्यिक नाटको में**--समाजराय, जनताराय, पाठकमल, सफाईराय, भारती, शिक्षा, चाद। हास्य, समाज, साहित्य, चाद, मतवाला, गालमाल, श्रीवेकटेश्वर, भारतमित्र, ग्राम गजट--समाचार पत्र, प्रकृति, कला, स्वाभाविकता, भारतमाता, शिक्षा, माधुरी, सरस्वती, प्रभा, गल्पमाला, मनोरमा, मोहिनी आदि पात्र हैं।

५६८. **सामाजिक नाटको के पात्र**--कलियुग, दुर्भाग्य, रोग, क्रोध, मूर्खता, कलह, निद्रा, वैधव्य, विधवा-विवाह, सौभाग्य, धर्म पतिव्रत, उत्साह, उद्यम, विद्या लक्ष्मी, एकता भारतमाता कलियुग, अधर्म, पाखण्ड, वैर, विरोधी लाभ, मोह, स्वार्थपरता, फूट, अपव्यय, फिजूलखर्ची, मदिरा, जुआ, सत्य और धर्म हैं।

५६९. **मनोवैज्ञानिक नाटको के पात्र**--बलराज, विलास चन्द्र, नवीन चन्द्र, कल्पना, कामना, मनमाराम, और नीतिव्रत है।

५७०. **राजनैतिक नाटको मे**--भारत, भारतभाग्य, सत्यानाश, रोग, फूट, डाह, लोभ, भय, मदिरा, आलस्य, अन्धकार, शोक, अनुमार्जन, निबलता, भारतदुर्दैव, डिस्लायल्टी, बगाली, महाराष्ट्री, एडीटर, कवि, नेकी, बदी, दुर्जन, धर्म, क्रूर, धर्मप्राण, कर्मदास, अनन्तप्रभा, धनदास। पृथ्वीमाता, हिन्दू, स्वतन्त्रता, प्राचीनता, एकता, परतन्त्रता, फैशन, नवीनता, अन्यायसिह, दुर्भिक्ष, रोगराज, अत्याचार, स्वार्थराज, धनहरण, दमनसिह, खिलाफत खां, राजमतसिह, सत्यपाल, उद्योगानन्द, सुधारचन्द, प्रेमसिह। जानबुल, अकिलसाम, पेरी, डिक्टेटर, बकवादी, विप्लव।

भारतराज, धर्मराज, कर्मराज, मित्रराज, श्रद्धा, विज्ञानबाला और पश्चिमी बाला हैं।

५७१. **सांस्कृतिक नाटकों के पात्र**—लीला, विलास, कामना, सन्तोष, क्रूर, दुर्वृत्त, प्रमाद और दम्भ हैं।

५७२. सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करने पर उपरोक्त सभी पात्रों को इन तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है —

१ रूपक

२ प्रतीक

३ प्ररूप

५७३. **रूपक-पात्रों** को पांच उपविभागों में विभाजित किया जा सकता है—(क) प्रकृतितत्व, (ख) नैतिक तत्व, (ग) आध्यात्मिक, (घ) मनोवैज्ञानिक और (ङ) अन्य।

(क) प्रकृति तत्व—रूपकपात्रों के अन्तर्गत उपरोक्त पात्रों में से निम्नलिखित पात्र आते है—कलियुगराज, निद्रा, रोग, कलियुगराज, रोग, और रोगराज।

(ख) नैतिक तत्व—रूप पात्रों के अन्तर्गत निम्नलिखित पात्र आते हैं—विषयवासना, शम, तितिक्षा, दम, समता, फकीरी, फैशन, मदिरा, सरलता, विरक्ति, बलराज, नीतिव्रत, एकता, सत्य, मूर्खता, कलह, पतिव्रत, विधवा विवाह, सत्य, अधर्म, पाखण्ड, विरोध, अपव्यय, मदिरा, जुआ, फिजूलखर्ची, सत्यानाश, मदिरा, आलस्य, अन्धकार, अश्रुमार्जन, निर्बलता, नेकी, बदी, दुर्जन, क्रूर, एकता, फैशन, नवीनता, अत्याचार, दुर्वंच और क्रूर।

(ग) आध्यात्मिक—पात्रों के अन्तर्गत निम्नलिखित पात्र आते हैं—मन, विज्ञान, प्रज्ञा, जीव, ज्ञान, सत्संग, वैराग्य, उपरति, विचार, विज्ञान, प्रज्ञा, वैराग्य, वेद, सत्संग, अज्ञान, मुमुक्षु, विज्ञान, प्रज्ञा, उपनिषद, वेद, भक्ति, निदिध्यासन, निवृत्ति, विज्ञान लीलादेवी, जगत्कुमार, धर्म, मन, विचार, सत्संग, सरलसिंह, मायावी, अन्तसराम, मन्शाराम, ज्ञानानन्द, ओंकार, सोहम्, ईश, रसमूल, माया, सत्व, रज, निवृत्ति, वैराग्य, ब्रह्मचर्य, ज्ञान, भक्ति, प्रज्ञा, तम, प्रवृत्ति, माया, धर्म, धर्म, धर्म, और धर्मराज।

(घ) मनोवैज्ञानिक—पात्रों की श्रेणी में निम्नलिखित पात्र आते हैं—सन्तोष, विवेक, श्रद्धा, समाधान, दया, काम, दम्भ, प्रवृत्ति, अभय, विश्वास, विवेक, क्षमा, समाधान, अहंकार, लोभ, बुद्धि, चिन्ता, अभीप्सा, विवेक, विश्वास, अहम्, क्रोध, लोभ, काम, वासना, आसक्ति, मोह, संशय, हास्य, प्रकृति, कल्पना, कामना, नवीनचन्द्र, विलासचन्द्र, मनसाराम, क्रोध, उत्साह, उद्यम, वैर, लोभ, मोह, स्वार्थ-

परता, फूट, क्रूर, डाह, लोभ, भय, शोक, स्वार्थराज, श्रद्धा, विलास, कल्पना, सन्तोष, दम्भ और प्रमाद।

(ङ) अन्य—पात्रो की श्रेणी मे निम्नलिखित पात्रों की गणना होती है—अमीरी, समाजराय, जनताराय, पाठकमल, सफाईराय, भारती, शिक्षा, वाद समाज, साहित्य, वाद, (मासिकपत्र), मतवाला, गोलमाल, (हास्यपत्र), भारतमित्र ग्राम गजट, कला, स्वाभाविकता, भारतमाता, शिक्षा, माधुरी, सरस्वती, प्रभा गल्पमाला, मनोरमा, मोहिनी, भारतमाता, दुर्भाग्य, सौभाग्य, वैधव्य, विद्या, लक्ष्मी भारत, भारतभाग्य, भारतदुर्दैव, डिसलायल्टी, अनन्तप्रभा, पृथ्वीमाता, हिन्द, स्वतन्त्रता, प्राधीनता, परतन्त्रता, दुर्भिक्ष, भारतराज, कर्मराज, और लीला।

५७४. **प्रतीक पात्र**— प्रतीकपात्र वे हैं जो गुणो, भावो तथा समस्याओ के प्रतीक रूप मे नाटककारो की मान्यताओ का रूप धारण करके आए है। उपरोक्त पात्रो मे प्रतीक पात्र निम्नलिखित है—धनदास, कर्मदास, धनदास, अन्याय सिंह, धनहरण, दमनसिंह, खिलाफतखाँ, राजमतसिंह, सत्यपाल, उद्योगानन्द सुधारचन्द, प्रेमसिंह, जानबुल, अकलिस्ताम, पेरी, डिक्टेटर, बकवादी, विप्लव और मित्रराज।

५७५. **प्ररूप (टिपिकल) पात्र**—इस श्रेणी मे वे पात्र आते हैं, जो वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं। उपरोक्त पात्रों मे से प्ररूप पात्र निम्नलिखित है—बगाली, महाराष्ट्री, एडीटर, कवि, विज्ञान वाला और पश्चिमी वाला।

पात्रों की पुनरावृत्ति

५७६. उपर्युक्त विभाजन के आधार पर रूपक नाटको के सभी पात्रो का एक सामान्य विवेचन हो जाने पर अब हमे यह देखना है कि इनमे से किस पात्र का कितने नाटकों में प्रयोग हुआ तथा उसका प्रथम आगमन किस नाटक मे हुआ। क्योकि बहुधा ऐसा देखा जाता है कि किसी एक नाटक मे आए हुए किसी महत्व-पूर्ण पात्र की आवृति बाद के नाटको मे होती चली गई है। इस सन्दर्भ मे हम पहले उन पात्रो को लेते हैं जिनका प्रयोग सभी नाटकों मे से केवल दो नाटको मे हुआ है। इसके बाद हम यह देखेंगे कि उनका सर्व प्रथम प्रयोग कहाँ हुआ है।

५७७. दो नाटको मे प्रयुक्त पात्र ये है— अहकार, आलस्य, एकता, कामना, काम, क्रोध, कलियुगराज, क्रूर, वाद, दम्भ, धनदास, प्रवृत्ति, फैशन, फूट, भक्ति, भारतमाता, भारत, मन, मनसाराम, माया, मोह, लीला, वासना, विचार, वैराग्य, वेद, विश्वास, शिक्षा, श्रद्धा, सन्तोष, सतसग, समाधान, समाजराय और स्वार्थपरता।

५७८. इनमें से भारत, आलस्य और फूट नामक पात्रो का 'भारतदुर्दशा' नाटक मे, एकता, कलियुगराज, क्रोध और भारतमाता का 'भारतललना' मे, मन, विषय वासना, सन्तोष, सत्सग, समाधान, श्रद्धा और विचार का 'विज्ञान-नाटक' मे, लीला देवी, धनदास और अहकार का 'लीला विज्ञान विनोद' मे, वैराग्य वेद, काम, दम्भ और प्रवृत्ति का 'विज्ञान विजय नाटक' मे मोह और स्वार्थपरता का 'मारवाडी घी' मे विश्वास और भक्ति का 'ज्ञानगुण दर्पण' मे, क्रूर का 'स्वर्ण, देश का उद्धार' मे, फैशन का 'हिन्दू मे, मनसाराम का 'मायावी मे, समाज, शिक्षा-और वाद का 'पत्र पत्रिका सम्मेलन' मे, कामना का 'कामना' मे, माया का 'मद्रिका' मे, सर्वप्रथम प्रयोग हुआ है।

५७९. तीन नाटको मे प्रयुक्त होने वाले पात्र केवल तीन है—मदिरा, राग और विवेक। इनमे 'मदिरा' और 'राग' का 'भारत दुर्दशा' मे तथा 'विवेक' का 'विज्ञान नाटक' मे सर्वप्रथम प्रयोग हुआ है।

५८०. चार नाटकों मे प्रयुक्त होने वाले पात्र भी केवल तीन हैं—प्रज्ञा, लोभ और विज्ञान। इनमे मे 'लोभ' का 'भारत दुर्दशा' मे तथा विज्ञान और प्रज्ञा का 'विज्ञान नाटक' मे सर्वप्रथम प्रयोग हुआ है।

५८१. पाच नाटकों मे केवल एक पात्र प्रयुक्त हुआ है—धर्म उसका सर्वप्रथम प्रयोग हुआ है भारत ललना' मे।

पात्रो में एक रूपता

५८२. विभिन्न नाटकों मे प्रयुक्त इन पात्रों मे कुछ ऐसे भी पात्र है, जो केवल नाममात्र के लिए भिन्नता रखते है, परन्तु अभिप्राय उनका एक ही है। ऐसे पात्रों की सूची निम्नलिखित है—

अज्ञान—तम—अन्धकार
अहकार—प्रमाद
अपव्यय—फिजूलखर्ची
अन्यायसिह—अत्याचार—दमनसिह
आसक्ति—प्रवृत्ति
उपरति—निवृत्ति—वैराग्य—विरक्ति
उद्यम—उद्योगानन्द
दुर्जन—दुर्वृत्त
धनदास—धनहरण—लोभ
धर्म—धर्म प्राण

नवीनचन्द्र—नवीनता
भारतमाता—भारत
मन—मनसाराम
काम—विषयवासना—विलासचन्द्र
विज्ञान—ज्ञान—विज्ञानानन्द
विचार—विवेक
सत्य—सत्यपाल

प्रबोधचन्द्रोदय के पात्रो से समता

५८३. इस प्रकार इन नाटको मे प्रयुक्त पात्रों का सामान्य सर्वेक्षण करने के उपरान्त हमे यह भी देख लेना चाहिये कि इन पात्रो की सस्कृत-प्रबोधचन्द्रोदय के पात्रों के साथ कितनी समता और विषमता है। अध्ययन करने पर जैसा कि अभी दिखाया गया है, इन नाटको मे कुछ ऐसे पात्र मिलते है, जो 'प्रबोधचन्द्रोदय' के पात्रो से नाम सादृश्य रखते है, और ठीक उसी अर्थ मे प्रयुक्त हुए है, जिसमे कि 'प्रबोधचन्द्रोदय' मे रूपक नाटको और प्रबोधचन्द्रोदय के सदृश-पात्रो की तालिका निम्नलिखित है—विवेक, सन्तोष, वैराग्य, निदिध्यासन, मोह, काम लोभ, दम्भ, अहकार, मन, श्रद्धा, उपनिषद, क्षमा और कलियुग।

५८४. अब हम उद्देश्य क्रम मे इन नाटको का सामान्य अध्ययन प्रस्तुत करेगे।

आध्यात्मिक

५८५. इन नाटको का उद्देश्य ज्ञान का प्रतिपादन और मुक्ति का उपाय बतलाना है। इन नाटको मे समाज का चित्र खीचते हुए कही-कही दाम्भिक साधुओ का यथार्थ चित्र अकित किया गया है। इन नाटको की सख्या ७ है—

१—विज्ञान नाटक
२—विज्ञान विजय नाटक
३—ज्ञान गुण दर्पण
४—लीला विज्ञान विनोद
५—मायावी
६—मुद्रिका
७—सत्य का सैनिक

५८६. इनमे से प्रथम तीन एक ही नाटक के भाग हैं, फिर भी क्योकि इनका

नामकरण अलग-अलग है, इसलिए अध्ययन के लिए हम इन्हें अलग-अलग लेंगे। अब हम क्रम से इन नाटकों का सामान्य अध्ययन आरम्भ करते है।

१. विज्ञान नाटक

५८७. यह एक आध्यात्मिक नाटक है। इसकी रचना स्वामी शकरानन्द ने की है। रचनाकाल का पता नही है, किन्तु इसकी चतुर्थ-आवृत्ति सन् १९११ मे हुई थी।

५८८. यद्यपि शैली की दृष्टि से यह प्रबोध-चन्द्रोदय से प्रभावित है, फिर भी इसे स्वतन्त्र नाटकों की श्रेणी मे रखा जा सकता है। इसके पात्र शम, सन्तोष, जीव, सत्सग, विचार और विवेक आदि हैं। इन रूपक पात्रो के प्रयोग के कारण ही यह नाटक रूपक नाटकों की श्रेणी मे आता है। इसी प्रकार इस श्रेणी के अन्य नाटकों मे भी है।

५८९ इस नाटक का उद्देश्य—आत्मिक ज्ञान और विज्ञान स्वरूप ब्रह्मानन्द मे आत्मा का लय होना है।

५९०. कथानक—इसका कथानक कल्पित आध्यात्मिक कथानक है। अपने पति के साथ सती होती हुई एक रानी मन्त्रियों के द्वारा रोकी जाती है, परन्तु बिना रुके वह मन्त्रियों और पण्डितो के पूछे हुए प्रश्नो का उत्तर देती है। इस दृश्य को अपनी पत्नी प्रज्ञा के साथ विज्ञान राजा देख रहा था। राजा के द्वारा यह प्रश्न करने पर कि तुम भी मेरे वियोग मे इसी प्रकार सती होगी। प्रज्ञा कहती है कि वह भी वियोग की अग्नि मे जल मरेगी। इसके अनन्तर जीवराम नामक दुःखी व्यक्ति को गुरु उपदेश देता है। शम और सन्तोष आदि ने जीव को ससार चक्र से बचकर, सत्पथ पर चलने का उपदेश देते है। विचार और विवेक के समझाने पर जीव को तग करने वाला दुष्ट मन भाग जाता है। इसके अनन्तर विज्ञान प्रज्ञा की परीक्षा लेता है। प्रज्ञा पति वियोग मे अग्नि मे जलकर मर जाती है। विज्ञान इससे बहुत दुःखी हो जाता है। उसी समय श्मशान मे प्रविष्ट होकर एक साधु विज्ञान को तत्व ज्ञान का उपदेश देता है, जिससे उसमे सच्चे ज्ञान का उदय हो जाता है। फलस्वरूप उसे ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हो जाती है।

५९१. पात्र—इसमे दो प्रकार के पात्रो का प्रयोग हुआ है—रूपक और प्रतिनिधि। रूपक पात्रों मे भी 'विषय वासना, दम' तितिक्षा और समता नैतिक तत्वात्मक हैं, शम, विज्ञान, प्रज्ञा, जीव, ज्ञान, सत्सग, बैराग्य, उपरति और विचार आध्यात्मिक तथा मन, सन्तोष, विवेक, श्रद्धा और समाधान, मनोवैज्ञानिक पात्र हैं।

५९२ पात्रो के स्वरूप का परिचय—नाटको के पात्रो के परिचयात्मक वाक्यों से होता है।

५९३. नैतिक तत्वात्मक—विषय वासना—यह नटी के रूप मे चित्रित की गई है। नाटककार ने वासना को मन की पत्नी, राग और द्वेष की बहन, तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहकार की बुआ माना है, जिनके अभाव मे इसका विनाश हो जाया करता है।[1]

५९४. दम और तितिक्षा को महाराज विज्ञान के सैनिक और समता को उसके दफ्तर के रूप मे चित्रित किया गया है। नाटककार ने इनका स्वरूप परिचयात्मक कोई विवरण नही दिया है।

५९५. आध्यात्मिक पात्र—विज्ञान—यह पात्र प्रस्तुत नाटक का नायक है। नाटकार की मान्यता मे यह शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा है। प्रज्ञा के कथन का अपने शब्दो म अनुवाद करते हुए उसने कहा है कि आत्मा का स्वरूप तो एकान्तत शुद्ध है, अतएव प्रवृत्ति और निवृत्ति उसके धर्म न होकर नश्वर शरीर के धर्म है।[2]

प्रज्ञा—यह नायक विज्ञानराज की पत्नी और नाटक की नायिका है। इसने अपने आपको कर्तव्याकर्तव्य को विचार करने वाली बुद्धि के रूप म व्यक्त किया है। इसका विचार है कि शरीर का कारण जीव के पुराने कर्म है, जीव की चेष्टाए उन्ही कर्मो के द्वारा ही निर्दिष्ट होती रहती है।[3]

जीव—एक सासारिक मानव के रूप मे चित्रित किया गया है। यह मन को

---

१. नटी—(रोती हुई) हाय बड़ा ही अनर्थ हुआ, मेरा मन रूप नट मर गया मै तो लुट गई मुझ वासना रूपी नटी के राग द्वेष रूप, जो भाई है हाय उनके बैठने तक को स्थान नहीं रहा और काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहकार जो मेरे भतीजे वे हाय अब वह भी मुझे मुख नहीं दिखलावेंगे।—आशा, तृष्णा, निन्दा, शंका, कल्पना आदि जो मेरी सहेली थी. . . तुच्छ होकर सब से छुट गई।

—पृष्ठ ३०, ३१

२. विज्ञान राज.—प्रवृत्ति निवृत्ति शरीर का धर्म है, आत्मा में नहीं है, आत्मा शुद्ध है और वास्तव मे विचार किया जावे तो प्रवृत्ति निवृत्ति और शरीर यह सब केवल मन ही की कल्पना है। पृष्ठ १९४

३. प्रज्ञारानी—यह शरीर प्रारब्ध करके रचा गया है, इस वास्ते जब तक शरीर बना रहता है तब तक प्रारब्धानुसार चेष्टा किया करता है। प्रारब्धानुसार प्रवृत्ति निवृत्ति शरीर का धर्म है। पृष्ठ १९०

अपना दास मानता है, किन्तु उसके प्रबल होकर अपने ऊपर आधिपत्य करने के कारण यह बहुत ही दुखी होता है।[1]

शम—यह नाटक मे एक सपाही के रूप मे है, जो कि इन्द्रियों के उपशमन के रूप मे चित्रित किया गया है। यह लोगों को वैराग्य रूपी खड्ग से मोह को मारने तथा सन्तो से आत्मा को पवित्र करने का उपदेश देता है।[2]

सत्संग, विचार और ज्ञान—ये विज्ञान के मन्त्री है। इनके स्वरूप का परिचय नाटक मे नही लगता है।

वैराग्य—यह द्वारपाल माना गया है। इसका कोई कथन नही है।

उपरति—यह सैनिक मानी गई है। इसके भी स्वरूप का कोई परिचय नही है।

मन—इस नाटक मे यह नट के रूप मे चित्रित किया गया है—आध्यात्मिक दृष्टि से यह चैतन्यस्वरूप आत्मा का अंश है—जो कि विकास के लिए मन रूपी नट का रूप धारण कर लेता है।[3]

५९६. **मनोवैज्ञानिक पात्र**—सन्तोष—यह भी विज्ञानराज के मत्री के रूप मे चित्रित किया गया है। यह मन मे भोगों की तृष्णा न करने के लिए कहता है, ताकि वह दुःखी न हो।

विवेक—यह प्रस्तुत नाटक का द्वारपाल है। यह मन को भोग से विमुख होने के लिए कहता है, ताकि जीव अपने आनन्द रूपी दुर्ग मे रह सके।

श्रद्धा, समाधान—इनको नाटककार ने विज्ञान की सेना मे परिगणित कर दिया है।

५९७. **प्रकृत पात्र**—साधु—ज्ञानवान सत् उपदेशक के रूप में चित्रित किया गया है। इस नाटक मे आध्यात्मिक दृष्टान्त प्रचुरता के साथ दिये गये है। इस प्रकार अमूर्त आध्यात्मिक पात्रों के प्रयोग से मंडित यह एक आध्यात्मिक रूपक नाटक है।

---

१. जीव—(सिर धुनकर) हाय बड़ा ही अनर्थ हुआ, कि इस मन रूप मेरे दास ने मेरा नाक में दम कर दिया और महादुखी कर दिया . . .। पृष्ठ ७१

२. शम—(रोता हुआ) आत्मज्ञान विचार बंदे क्यों मुख मोड़े तू संत सभा से। खड्ग बैराग सम्हार बंदे। मोह बली सब से अधिकाई—विवेक तमाचा मार बंदे। पृष्ठ ७७

३. नट—"चैतन्य अंश अस्ति-भाति-प्रियरूप नटशाला परम सुखदायक है और वही चैतन्य आत्मा विकास के निमित्त मन रूप नट होकर अपने आप इस सभा में आकर उपस्थित हुआ हूँ।" (पृ० १६)

यह नाटक पाच अको मे विभाजित है--पृष्ठ २१४ है। इसमे दृष्टान्तों का अधिक प्रयोग किया गया है। नाटकीयता का अभाव है क्योंकि भाषण अधिक लम्बे हैं।

२. विज्ञान विजय नाटक

५९८ इसकी रचना स्वामी शकरानन्द ने ही की है। इसका रचनाकाल सम्वत् १९७० (सन् १९१३ ई०) है। इसकी भी शैली रूपकात्मक है। अतएव रूपक नाटक की गणना मे सम्मिलित हो सकता है।

५९९ 'उद्देश्य'—इस नाटक का उद्देश्य आत्मा के अहकारादि विकारो पर विजय और सैद्धान्तिक प्रतिपादन है, जिसको कि नाटककार ने अपनी रचना कुशलता मे सिद्ध सा कर दिखाया है।

६००. 'कथानक'—इस नाटक के कथानक मे सत् और असत् का सघर्ष और उसमे सत् की विजय और असत् की पराजय दिखाई गई है, जैसा कि इस श्रेणी के नाटको मे प्राय होता है। विरोधी राजा के दरबार मे क्रोध और लोभ आदि विज्ञान के विरोध की योजना बनाते हैं। उधर विज्ञान की सभा मे उद्योग और विवेक आदि अज्ञान के प्रतिरोध का उपाय ढूँढने का प्रयास करते हैं। अज्ञान के पक्ष की प्रकृति के द्वारा वचित दया के द्वारा महाराज विज्ञान के प्रकृति के पक्ष मे किये जाने की चेष्टा वैराग्य के द्वारा रोक ली जाती है। उधर अज्ञान अपने भटो को प्रोत्साहित कर उन्हे युद्ध के लिए प्रेरित करता है। विज्ञान का, अज्ञान को हराने का प्रयत्न करते समय एक जिज्ञासु मिल जाता है, जिसको वह ज्ञान का उपदेश देता है और तत्पश्चात् मत्री से अज्ञानादि के विषय मे पूछता है। मत्री के यह कहने पर वे सब भाग गये, वह जाकर विश्वनाथ की पूजा करता है। अन्त मे महाराज विज्ञान की सभा मे 'वेद' के द्वारा अपनी निर्दोषता का प्रश्न पूछे जाने पर विज्ञान उसकी निर्दोषता को सिद्ध करता है, तथा सत्सग के कहने मे प्रजा को ज्ञान का उपदेश करता है। इसके बाद नट और नटी के वार्तालाप के द्वारा 'नाटक' की प्रशसा की जाती है और नाटक की समाप्ति हो जाती है। तात्पर्य यह कि इसके कथानक मे उपदेश का आधिक्य है।

६०१. पात्र—इसमे दो प्रकार के पात्रो का प्रयोग किया गया है—(१) आध्यात्मिक और (२) मनोवैज्ञानिक। आध्यात्मिक पात्र—विज्ञान, प्रज्ञा, वैराग्य, वेद, सत्सग, अज्ञान।

विज्ञान—यह प्रस्तुत नाटक का नायक और महाराजा है। इसका स्वरूप नित्य शुद्ध-बुद्ध चैतन्यात्मक आत्मा का है। इसकी अन्य विशेषताए पहले नाटक के समान ही है।

प्रज्ञा—यह विज्ञान की पत्नी और नाटक की नायिका है। इसका स्वरूप बुद्धि का है।

वैराग्य—यह विज्ञानराज का मन्त्री है। इसका स्वरूप नाटककार की मान्यता मे ससार के सभी विषयो से निवृत्ति रूप है। इसका कहना है कि बिना वैराग्य के शुष्क ज्ञान निरर्थक है क्योंकि वैराग्य के अभाव मे प्रवृत्ति के प्रभाव से स्वरूप का आवरण हो जाता है।[1]

वेद—इसको प्रस्तुत नाटक मे एक ब्राह्मण के रूप मे उपस्थित किया गया है। यह अपने को सत्य, विद्या और परलोक का सीधा तथा निष्कण्टक मार्ग बताता है।[2]

सत्सग—इसे नाटक मे विज्ञान के चोपदार के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। यह अपना कर्तव्य सभी सदस्यो को विज्ञानदेव के सम्मुख करने को बताता है।[3]

अज्ञान—यह प्रस्तुत नाटक का प्रतिनायक है। इसकी यह मान्यता है कि इस सृष्टि की उत्पत्ति अज्ञान से ही हुई है और उसी के आश्रित है तथा वही इसका भोक्ता है। इसीलिए विज्ञान के द्वारा सृष्टि पर अपना आधिपत्य जमा लेने से उसे घोर दुख है।[4]

---

१. "अर्थात् बिना वैराग्य शुष्क ज्ञान निरर्थक है बस इतने में शत्रुओ का सब मन्तव्य सिद्ध हो जायगा। क्योंकि वैराग्य के शिथिल होते ही प्रवृत्ति के प्रभाव से स्वरूप का आवरण हो जाता है, इस कारण विज्ञानी पुरुष वैराग्य को सर्वकाल मे प्रधान मानते हैं।"

—तीसरा अक, पृष्ठ २९।

२. "यह सभी कोई जानता है कि वेद सत्य विद्या और परलोक का निष्कण्टक सीधा मार्ग है।"

—छठा अंक, पृष्ठ १५४।

३. "हे सर्वप्रजागण! मुझ सत्संग का जो कर्तव्य था कि 'आप लोगों को श्रीमद् विज्ञानदेव के सन्मुख करना' सो मैं पालन कर चुका।"

—छठा अंक, पृष्ठ १६०।

४. "अज्ञान—यह जगत मुझ (अज्ञान) से तो उत्पन्न हुआ है, मेरा ही आश्रित है और मुझे ही सर्वप्रकार से इसका अधिकार है फिर इस विज्ञान दुष्ट ने हमारा सर्वराज क्यो हर लिया है..."

—प्रथम अंक, पृष्ठ १५।

मनोवैज्ञानिक पात्र—दया, काम, दम्भ, प्रवृत्ति।

दया—दया को विज्ञान अपनी माता समझता है। यह अपने आपको विज्ञान की हितकारिणी के रूप मे व्यक्त करती है।[1]

काम—यह प्रतिनायक अज्ञान का महामन्त्री है। इसका स्वरूप मनुष्य मे वासना की प्रवृत्ति है। यह अपने को बडा ही प्रबल समझता है और कहता है कि जब वह काशी मे प्रवेश करेगा तो वहा के सभी व्यक्ति मदनातुर हो जायेंगे।[2]

दम्भ—यह महाराज अज्ञान का चोबदार है। इसका कहना है कि जब वह काशी मे पहुचेगा तो वहा के ब्राह्मणों की ऊपरी वेशभूषा ही धार्मिक रह जायगी, उनके अन्दर तो दम्भ का ही राज होगा।[3]

प्रवृत्ति—यह अपने आपको अज्ञान की परिचारिका बतलाती है। यह दया को अपनी ओर आकर्षित कर वैराग्य को शिथिल करना चाहती है, ताकि अज्ञान की विजय हो जाय।[4]

---

१ "दया—सो मुझको बड़ी भारी चिन्ता इस समय यह है कि उधर शत्रुओ का दल समुद्र की भाति उमड़ रहा है इधर आप स्वय स्वरूप मे मग्न है।"

—तृतीय अक, पृष्ठ ३२।

२. काम—और मैं तो प्रतिज्ञा कर के कहता हू कि जिस समय मैने काशी में प्रवेश किया तो बड़े बडे ढुंगधारी, सन्यासी, ब्रह्मचारी सब मेरे ही चेले हो जायंगे अर्थात् वेदाध्ययन, शास्त्र विचार और योगाभ्यास त्याग कर मदनपरायण ही सब दीखेंगे।"

—तृतीय अंक, पृ० २०-२१।

३. "दम्भ—स्वामिन्, जिस समय मैने काशी में पैर जमाया, उसी समय से गंगा घाटो पर बैठे हुए ब्रह्मचारी, ब्राह्मणो के हाथो में माला, गोमुखी और माथे पै तिलक ही तिलक शेष होंगे और अन्दर में राज्य करूंगा।"

—तृतीय अंक, पृष्ठ २१।

४. "दया—विज्ञान की माता उपनिषद् की दासी दया से मेरा बड़ा प्रेम और सहचार है। उस दया के द्वारा विज्ञान को जिस समय मैंने अपनी (प्रवृत्ति की) ओर खींचा और वैराग्य शिथिल हुआ, बस फिर तो अज्ञान का ही डंका चारों ओर बजेगा—यह काम ही कितना है।"

—तृतीय अंक, पृष्ठ १९।

६०२. पृष्ठ १९८ मे लिखे गए इस सात अको के नाटक मे आध्यात्मिकता की कथा चलती है। इसमे विशेष नाटकीयता नही है।

३. ज्ञानगुण दर्पण नाटक

६०३. विज्ञान नाटक का तीसरा भाग (पृ० ६) 'ज्ञानगुण दर्पण नाटक' है। यह प्रबोधचन्द्रोदय की शैली मे लिखा स्वतंत्र रूपक नाटक है। सन् १९१९ मे इसकी रचना श्री शकरानन्द ने की थी। मुक्तिलाभ के उद्देश्य से ही ज्ञानादि अनेक पात्रो को लेकर रूपक नाटक बना है। कथानक कल्पित है। प्रारम्भ से अन्त तक मोक्ष सम्बन्धी ज्ञान वार्ता है। ज्ञान के आवश्यक गुणो और प्रक्रियाओ को पात्र का रूप दे दिया गया है।

६०४. इसके पात्र मुमुक्षु, विज्ञान, प्रज्ञा, उपनिषद, वेद, अभय, निवृत्ति, विश्वास, विवेक, क्षमा, भक्ति, समाधान और निदिध्यासन आदि पात्र हैं। पात्रो का स्वरूप वैसा ही है, जैसा कि पूर्व के दो भागो मे इन पात्रो का है। दस अको और ५२८पृष्ठो मे इस विस्तृत नाटक के अध्ययन से ज्ञात होता है, स्वामी जी ने ज्ञान को जनसाधारण के हेतु सरल भाषा मे रखने का श्रेष्ठ कार्य किया है। संस्कृत के उदाहरण भी दिये हैं। पात्रो के प्रवेशादि योजना तथा परस्पर के सम्बन्ध बना देने से ज्ञानवार्ता शुष्क एव नीरस नही हुई है। कुछ नाटकीयता का पुट आ जाने से ज्ञानवार्ता सरल, रोचक और ग्राह्य हो गई है।

४ लीला विज्ञान विनोद

६०५. 'प्रबोधचन्द्रोदय' की शैली पर श्री स्वामी केशवानन्द ने सम्वत् १९६८ (सन् १९११) मे 'लीला विज्ञान विनोद' नामक नाटक की रचना की। इसमे रूपक पात्रो का प्रयोग किया गया है, इसलिए यह भी एक रूपक शैली का नाटक है।

६०६- उद्देश्य—सक्षेप मे इसका उद्देश्य ज्ञान का प्रतिपादन और मानव की प्रवृत्ति को मोक्ष की ओर उन्मुख करना है।

६०७ कथानक—इसके कथानक तीन प्रमुख विशेषताएँ हैं—(१) कल्पित कथानक, (२) पूर्ण रूपकला, (३) असत् प्रवृत्ति का विरोध और उसका शमन सत् प्रवृत्ति के द्वारा कल्याण का उदय। सक्षेप मे इसकी कथा इस प्रकार है—लीला देवी और विज्ञान देव का मिलन होता है। विज्ञानदेव, धनदेव और अमीरी तथा मन और फकीरी का विवाह करके उन्हे क्रमश चिन्तानगर और निश्चिन्त नगर-को भेज देता है। धनदेव और अमीरी दुःखी तथा मन तथा फकीरी अपने सम्बन्ध

से सुखी होते है। धनदेव और मन दोनों विज्ञानदेव से मिलने आते हैं। धनदेव भरी सभा मे विज्ञानदेव को अपना दु ख बताता है। विज्ञानदेव उसे अपनी पत्नी और पुत्र को लाने के लिए कहता है। उधर मन फकीरी के साथ विज्ञानदेव और लीलादेवी से मिलता है। विज्ञान मन के पुत्र विचार को लाने का आदेश देता है। सबके आने पर विज्ञानदेव विचार और जगतकुमार को मिल कर रहने के लिए कहता है। इसके बाद वे सब मिलकर ऋषीकेश जाते है। वही आकर उनसे धर्म आदि मिलते है। और उनमे धर्म सम्बन्धी वार्तालाप होता है। वे सबके सब पुन विज्ञानदेव और लीलादेवी से मिलते है। अन्त मे अमीरी फकीरी म विलीन हो जाती है, तथा फकीरी मन मे और धन धर्म मे लीन हो जाता है तथा धर्म और धैर्य मन मे, जगत्कुमार विचार मे, विचार मन मे, और मन विज्ञान मे लीन हो जाता है। इसके बाद सूत्रधार और नटी नाटक की प्रशसा कर विदा होते हैं और नाटक समाप्त हो जाता है।

६०८ पात्र—इसमे निम्न प्रकार के पात्र प्रयुक्त हुए हैं—तत्व रूपक, आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, प्रतीक और अन्य।

तत्वरूपक—पात्र इसमे केवल एक है। फकीरी निवृत्ति की प्रतीक है और विज्ञानदेव तथा लीलादेवी पुत्री है। इसकी प्रशसा में विज्ञान कहता है कि यह सर्वोपरि है और महानुभावो की सभा मे सशोभित होगी।[1]

आध्यात्मिक पात्र—विज्ञान, लीलादेवी, जगतकुमार, धर्म, मन, विचार, सत्सग।

विज्ञान—यह नाटक का नायक है। यह आत्मा के रूप मे चित्रित है, क्योंकि लीला देवी के द्वारा कहे हुए आत्मा के लक्षणो को अपने मे बताता है।[2]

लीलादेवी—यह विज्ञान की पत्नी है। यह अपना परिचय देती हुई कहती है कि उसका निवास ब्रह्मलोक मे है तथा उसकी जाति अनिर्वचनीय है। (पृ० १३)

---

१. "विज्ञान. . .जो निवृत्ति रूप फकीरी हुई है सोई सर्वोपरि है। यही बड़े बड़े महानुभावो की सभा मे सत्कार पाती हुई मातृ-पितृ-पुत्र के गौरव को फहराती हुई धवल ध्वजा हो सर्वोत्कृष्ट शोभायमान होगी।"

—द्वितीय अंक, पृष्ठ १८।

२. "लीला—हे देव! जरा, मरण, मान, अपमान, हर्ष, शोक, क्षुधा, पिपासादि रोग जिसमे न हो और मलमूत्र से रहित शुद्ध देह वाले योग्य पति को मैं वरूंगी।

विज्ञान—"देवी! ऐसे गुणी तो विज्ञान देव ही हैं।"

—पृष्ठ १४।

जगत्कुमार—यह धनदेव और अमीरी का लड़का है। यह ससार का रूपक है। पडित जी इसकी विशेषता बताते हैं कि यह बाल्यावस्था मे खेल खेलेगा, युवावस्था मे भोग भोगेगा और वृद्धावस्था मे सन्तो के साथ ज्ञानी बनेगा।

(पृष्ठ ३०)

धर्म—यह धन देव का पिता है। अपना परिचय देता हुआ यह कहता है कि उसका नाम धर्म है और वह धन का पिता है।[1]

मन—यह विज्ञान की पुत्री फकीरी का पति है। यह अपना स्वरूप बताते हुए कहता है कि वह फकीर है। उसके शत्रु और मित्र कोई नही है।

(पृष्ठ ४०)

विचार—यह मन और फकीरी का पुत्र है। इसका कहना है कि ससार के दुखो का एकमात्र कारण अहकार है। इस अहकार के नाश से सम्पूर्ण दुखो का नाश हो जाता है।

सत्सग—इसे एक गायक के रूप मे चित्रित किया गया है। यह लोगो को सन्तो का सग करने और आत्मज्ञान करने की प्रेरणा देता है।

(पृष्ठ ५९)

मनोवैज्ञानिक पात्र—अहकार और लोभ आते है।

अहकार—यह धनदेव का चोपदार है।

लोभ—यह धनदेव का मन्त्री है। यह जगत्कुमार के जन्म के उपलक्ष्य मे धनदेव के खजाना लुटा देने से बहुत चिन्तित होता है।[2]

अन्य पात्रो मे केवल अमीरी है—इसका विवाह धनदेव के साथ किया गया है।

प्रतीक पात्र—इस श्रेणी मे केवल एक पात्र है। धनदेव, जो कि धनी व्यक्तियो का प्रतीक है। यह विज्ञान का दामाद और अमीरी का पति है। इसका कहना है

---

१. धर्म—(दीनता से) . . . मेरा नाम धर्म है, मै धन का पिता हूँ और यह धैर्य उसकी माता है उनके देखे बिना बहुत दिवस हुए हैं. . .।"

—पृष्ठ २६।

२. लोभ—(मन ही मन) आज यह भली आफत लगी वह तो खुशी के मारे पागल हो खजाना लुटाये देते हैं। अगर लड़का कल ही मर गया तो कैसी होगी . . .।

—पृष्ठ २९।

कि अमीरो के कोई माता-पिता नही होते। अतएव यह दीन-दुखि ो के समाचार तक नही सुनना चाहता।'

६०९ यह नाटक १४४ पृष्ठो मे है। इसमे ८ अक हैं। पूरे नाटक मे ज्ञान का ही प्रतिपादन है, नाटकीयता विशेष नही है।

५. मायावी

६१० श्री ज्ञानदत्त सिद्ध ने सन् १९२२ मे 'प्रबोधचन्द्रोदय' की शैली पर 'मायावी' नाटक की रचना की। इसमे रूपक पात्रो का प्रयोग किया गया है, अतएव यह रूपक नाटक है।

६११ उद्देश्य—इस नाटक का उद्देश्य मानव को सदाचार के व्यवहार और आत्मिक सुधार से ज्ञानवान बनाना है।

६१२ कथानक—इसके कथानक मे तीन विशेषताए है—कल्पित, पूर्ण रूपकता और आत्मा और माया का विरोध। मानव के सूक्ष्म अन्तर्जगत का कथानक है। मायावी, मन, बुद्धि और ज्ञान आदि को पात्र का रूप देकर सासारिक आकर्षणो और माया मोह के कारण अनुभव किये जाने वाले दुखो का वर्णन है। मन ससार की माया मे फसकर आत्मा को भी दुखी कर देता है। सद् बुद्धि और ज्ञान से सच्चा कल्याण हो जाता है, प्रस्तुत नाटक के कथानक का साराश यही है।

६१३ पात्र—इसमे तीन प्रकार के पात्र है—नैतिक, फैशन, मदिरा, आध्यात्मिक—सरलसिह, मायावी अन्तमराम, मन्साराम और ज्ञानानन्द। मनोवैज्ञानिक—बुद्धि—इन पात्रो का सक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार से है —

फैशन—यह मायावी की भगिनी है। यह मायावी कहती है कि उसे उसका (फैशन) का पूरा भरोसा है।

मदिरा—यह भी मायावी की सगिनी है। इसका कहना कि मदिरा काम को शीघ्र करेगी।

सरलसिह—यह आत्मा का रूपक है। यही नाटक का नायक है। यह फैशन

१.—चोबदार! सुनो हम अमीर हैं, दर्शनो द्वार पर शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गध—मैथुन सिपाहियो का दो दो घटे का पहरा बोल दो और आज्ञा दो कि कोई सत, ब्राह्मण, भूखा-नगा, दीन-दुखी, अंदर आ हमें न सतावे, और बग्घी, टमटम, चुरट, हाथी, घोड़े, पर सवार हो तो उसे न रोको, बेखटके आकर हमसे मिलने दो। (पृष्ठ २५)

और मदिरा से इतना प्रभावित हो गया है कि अपनी पत्नी बुद्धि से कहता है कि तुम चाहो तो चली जाओ, पर मैं इन्हें नहीं छोड सकता।[1]

मायावी—यह विषयवासना और मायाजाल की रूपक है। एक पात्री के रूप मे इसका अंकन किया गया है। यह अन्तसराम और सरलसिंह को नष्ट कर देना चाहता है। इसीलिए यह सरलसिंह की दोनो लड़कियो के विषय मे चिन्ता करते हुए कहता है कि वे यदि दोनो मुझे मिल गई तो फैशन और मदिरा के द्वारा उन्हे पकडवा लूंगा।[2]

अन्तसराम—यह अन्तःकरण का रूपक और आत्मा सरलसिंह का स्वामिभक्त मत्री है। सरलसिंह के राज्य के नष्ट हो जाने पर यह इस बात के लिए स्वामी ज्ञानानान्द से दुःख प्रकट करता है कि राज्य का भ्रंश हो गया, राजा मोहान्ध होकर बन्धन मे पड गया, और प्रजा पर अत्याचार ढाए गये।[3]

मनमाराम—यह मन का प्रतीक और सरलसिंह का दुष्ट मन्त्री है। यह मायावी मे बातचीत करते हुए कहता है कि बस फैशन और मदिरा को महाराज सरलसिंह को वश में कर लेने दो, तुम्हारी जीत, फिर तो निश्चय है।[4]

ज्ञानानन्द—यह ज्ञान का प्रतीक और प्रस्तुत नाटक का एक योगी पात्र है। यह अन्तसराम को धैर्य देता हुआ कहता है कि सुख के पीछे दुःख और दुःख के पीछे

---

१. सरल सिंह—(फैशन तथा मदिरा को) ठहरो! तुम कहीं मत जाओ! (बुद्धि से)...तुम मेरा अनादर कर रही हो।...चाहे मेरे प्राण भी चले जांय पर मैं इनको नहीं छोड़ सकता! (पृष्ठ २०)

२. मायावी—(स्वगत)...यह बेटा अन्तसराम से जलता है। उसको किसी तरह चौपट कर देना चाहता है।...हां! क्या वाकई सरलसिंह की छोकरियां वैसी ही हैं जैसी देश में सुनकर आया हूं वैसी ही हसीन है? जो यह बात सच निकली तो बस फ़ैशन और मदिरा को इधर छोड़ कर उनको उधर ले भगूंगा। (पृष्ठ २४)

३. अन्तसराम—महाराज! राज्य भ्रष्ट हो गया। राजा मोहान्ध हो कर बन्धन में पड़ गया, प्रजा अत्याचारों से पिस गई। इष्ट मित्रों को कारावास हो गया। (पृष्ठ ४७)

४. मनसाराम—बस यही कि महाराज को दोनों स्त्रियें (फैशन मदिरा) अच्छी तरह से वश में कर लें। जितना जल्दी काम बन जाय उतना ही अच्छा। (पृष्ठ ३)

सुख आया करते हैं। इसलिए महाराज के राज्य भ्रंश की चिन्ता तुम्हें न करनी चाहिये।[1]

बुद्धि—यह बुद्धि की रूपक और सरलसिंह की पत्नी है। यह सरलसिंह से कहती है कि शुभ सम्मति देना ही उसका कर्तव्य है।[2]

६१४. यह नाटक तीन अंकों और ६५ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। इसमें नाटकीयता पर्याप्त है।

६. मुद्रिका

६१५. श्री सद्‌गुरुशरण अवस्थी ने 'मुद्रिका' नाटक की रचना सन् १९३९ में की थी।

६१६. उद्देश्य—इसका उद्देश्य आध्यात्मिक ज्ञान का विश्लेषण, मतमतान्तरों में समन्वय का स्थापन, नारी और पुरुष की समान योग्यता की समस्या का समाधान करना है।

६१७. कथानक—इसका कथानक कल्पित है तथा पूर्ण रूप से रूपक है। ओंकार सोहम् और ईश्वर आदि को पात्र रूप देकर आध्यात्मिक तथ्यों का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। एक ही शक्ति के सम्बन्ध में उसके अनेक व्याख्याकारों में मतभेद उपस्थित होता है जिससे उनमें द्वेष और कलह होती है और उनका नाश हो जाता है। इस बात को नाटकीय रूप दे रंगमंच पर प्रदर्शित करने में लेखक सफल हुआ है। नारी और पुरुष में समता है या नहीं? इस समस्या को भी मनोवैज्ञानिक ढंग से सुलझाने की चेष्टा की गई है। मुद्रिका के सूक्ष्म एवं प्रतीकात्मक कथानक में नाटककार ने अद्वितीय सफलता प्राप्त की है। वास्तव में उसकी कला के समूचे सौन्दर्य की ठेस, रसिकों को तिलमिला देने के लिए पर्याप्त है।"

६—भूमिका।

६१८. पात्र—इसमें दो प्रकार के पात्र पाए जाते हैं—आध्यात्मिक, मनो-

---

१. ज्ञानानन्द—इतने विकल मत बनो! सुख के पीछे दुख और दुख के पीछे सुख आया ही करता है। परमात्मा की लीला अपार है। संसार में भले बुरे का ध्यान वही रखता है। (पृष्ठ ४७)

२. बुद्धि—यह कैसे? शास्त्र में लिखा है कि रोग के समय, विषय वासना की प्राप्ति के मोह में, पुरुष अपना कर्तव्य भूल जाय तो स्त्री को चाहिए कि समयोचित शिक्षा दे। (पृष्ठ २०)

वैज्ञानिक। आध्यात्मिक पात्र—ओंकार, सोहम्, ईश, रसमूल और माया। मनोवैज्ञानिक पात्र—इसमे केवल 'चिन्ता' है। इनका संक्षिप्त परिचय नीचे है—

ओंकार—यह गृहपति शकुक का पुत्र है। मुद्रिका इसी को समर्पित की जाती है। ओंकार के साथ उसके पिता की बातचीत मे अन्य अनेक सिद्धान्तो का उद्भव होता है।

सोहम्—यह ओंकार और माया का पुत्र है। यह धर्म-प्रणेता के रूप मे स्वीकार किया गया है। इसका सिद्धान्त है कि विना ज्ञान के मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती। उस परमतत्व का निरूपण करने के लिए बुद्धि और विवेक की परमावश्यकता है।[1]

ईश—यह ओंकार का मध्यम पुत्र है। इसकी भी मान्यता धर्मप्रणेता के रूप मे मान्य है। इसका सिद्धान्त है कि ससार की मधुर और मनोरम मूर्तियो मे ईश्वर की पूजा न करनी चाहिये, क्योंकि वे तो उस परम तत्व के चिन्ह मात्र है। वस्तुतः इनके उत्पादक, सचालक और प्राण दायक की उपासना करनी चाहिए।[2]

रसमूल—यह ओंकार का कनिष्ठ पुत्र है। इसे भी धर्म-प्रणेता माना गया है। यह स्वय को अपने पिता के वेग का स्फूर्तिमय कण समझता है तथा मुद्रिका प्रदान की घटना के द्वारा सभी भाइयो से अपने को योग्य समझता है।[3]

माया—यह ओंकार की पत्नी है। यह परमेश्वर की माया के रूप मे चित्रित की गई है।

---

१. सोहम्—"परब्रह्म सबकी माया दूर करे। बिना ज्ञान मुक्ति नहीं होती। उस परमतत्व के परिस्थिति-निरूपण के लिए बुद्धि और ज्ञान के क्रमिक परिष्कार की आवश्यकता है। ब्रह्म को अपने से पर, अपने से पृथक, समझने वाली बुद्धि मायाप्लुत है। विश्व की अनेक रूपता में एक रूपता...उज्ज्वल विकसित परिस्थिति का चिन्ह है। द्वैत का भास अज्ञान दर्पण का प्रतिबिंब है। (पृष्ठ २९)

२. ईश—"विश्व के प्रखर और उग्र रूपो अथवा स्निग्ध और मधुर मूर्तियों को ही ईश्वर समझ बैठना और उनकी पृथक्-पृथक् अर्चना करने लगना वैसे ही ना समझी है जैसे व्यक्ति को न पूज कर उसके केशों, करों और नेत्रों को पूजा जाय। (पृष्ठ २५)

३. रसमूल—"बंधुओ! जीवन-संग्राम से भागने के लिए मैं तुम्हें शिक्षा नहीं देता। जीवन-संग्राम की घुस पैठ के योग्य बनाने के लिए मैं तुम्हें शिक्षा देता हूं। (पृष्ठ २१)

चिन्ता—यह ओकार की बहन और घकुक की पुत्री है। यह स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार दिये जाने की पक्षपातिनी है। इसका कहना है कि स्त्रियाँ क्यों हेय समझी जाती है जब कि उनमे भी वही रजवीर्य वर्तमान है, जोकि पुरुषो मे।[1]

६१९. यह नाटक 'एकाकी' है। इसमे आठ दृश्य और बासठ पृष्ठ है। नाटकीयता पर्याप्त है।

७. सत्य का सैनिक

६२०. इस नाटक के रचयिता हैं श्री नारायणप्रसाद बिन्दु। इसका प्रकाशन १९४८ ई० मे हुआ था।

६२१. उद्देश्य—इसका उद्देश्य आध्यात्मिक विकास, व्यभिचारी साधुओं का दोषवर्णन, माया की वासना का नाश और ज्ञान की विजय तथा साधारण सासारिक जनो को मोक्ष का उपाय बतलाना है।

६२२. कथानक—इसमे मानस के विकारो के संघर्ष की सूक्ष्म कथा के साथ सासारिक जीव 'विजय' की कथा प्रधान रूप से है। विजय सांसारिक जीवन मे भोग-विलास के प्रति विरक्ति अनुभव करता है। वह अपने जीवन मे आध्यात्मिक शान्ति एवं परम ज्ञान की प्राप्ति के लिये व्याकुल एवं व्यथित होता रहता है। अन्त मे उसकी आध्यात्मिक ज्ञान की पिपासा इतना प्रबल रूप धारण कर लेती है कि वह गृह और सम्बन्धियो को त्याग कर चला जाता है। कुछ दिनों की अशान्तिपूर्ण खोज एवं साधना के पश्चात् उसमे मुक्त पुरुष के लक्षण देदीप्यमान होने लगते हैं। वह मुक्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त प्रासगिक रूप से साधुओ के व्यभिचार एवं परस्पर विरोधों के भी दोषो का वर्णन है।

६२३. पात्र—इसमे अनेक प्रकार के पात्र प्रयुक्त हुए है। नैतिक पात्र—सरलता और विरक्ति है। आध्यात्मिक पात्र—सत्व, रज, निवृत्ति, वैराग्य, ब्रह्मचर्य, ज्ञान, भक्ति, प्रज्ञा, तम, प्रवृत्ति, माया हैं। मनोवैज्ञानिक पात्र—अभीप्सा, विवेक, विश्वास, अहम्, क्रोध, लोभ, काम, वासना, आसक्ति, मोह और सशय। इसका सक्षिप्त वर्णन निम्न है —

सरलता—यह मनुष्य की एक स्वाभाविक प्रकृति के रूप मे चित्रित की गई है। ज्ञान इससे कहता है कि ईश्वर सरलता से ही प्रसन्न होता है। इसलिए वह मनुष्य को भक्त बनना सिखा दे।[2]

---

१. चिन्ता—"स्त्रियां क्यों हेय समझी जाती हैं? हम दोनों में तो एक ही रजोवर्म वर्तमान है।" (—पृष्ठ ८)

२. सरलता—"अपनी कुटिया में। छोटी सी सरलता को पूछता ही कौन है?

विरक्ति---यह वैराग्य की सहायिका के रूप में चित्रित की गई है। यह वैराग्य के यह पूछने पर कि तुम क्यों आयी हो, कहती है कि मैं उसकी सहायता करने आयी हूँ।

सत्य---यह सतोगुण का रूपक पात्र है। यह अपने को योग के लिये बताता है।[1]

रज---यह रजोगुण का प्रतीक है। यह सत्य से कहता है कि उसकी बातें उसे न जाने क्यों अप्रिय लगती है ? (पृष्ठ ५)

निवृत्ति---यह सत्य की पत्नी है। इसका कहना है कि जहां सत्य है वहीं उसका मन लगता है, अन्यत्र नहीं ।[2]

प्रज्ञा---यह ज्ञान से इस बात का अनुरोध करती है कि साधकों को सीधा समर्पण का मार्ग सिखाया जाय ।[3]

तम---यह तमोगुण का प्रतीक है। यह सत्य से कहता है कि रज तो अभिमानी है, पर तुम भी कम अभिमानी नहीं हो। सत्य के चले जाने पर यह रज से मिल कर विश्व पर राज्य करने की बात करता है।[4]

वैराग्य---यह सत्यदेव के एक सेवक के रूप में चित्रित किया गया है। ज्ञान के यह पूछने पर कि पृथ्वी पर तुम्हारा आना किसलिए हुआ, यह उत्तर देता है कि उसका पृथ्वी पर आना इसलिए हुआ है कि वह मनुष्य को सत्य की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने की शिक्षा दे सके।[5]

ज्ञान---छोटी सी सरलता ! जानती हो भगवान् छलछिद्र से कैसे भागते हैं ? देवि ! तुम मनुष्य को भक्त सजना नहीं, भक्त बनना सिखाओ।"

(---पृष्ठ २५)

१. सत्य---"नहीं नहीं ऐसा मत कहो। मेरा जन्म योग के लिए है, भोग के लिए नहीं।" (पृष्ठ ९)

२. निवृत्ति---"जहां आप (सत्य) हैं वहीं सर्वसुख है और जहां आप नहीं हैं वहीं है घोर यंत्रणा।" ---(पृ० १०)

३. प्रज्ञा---क्या ही अच्छा होता यदि साधक को सिखाया जाता समर्पण सीधा और प्रकाशपूर्ण मार्ग . . . । ---(पृ० २३)

४ दुर्गंध युक्त केश, मैले में कुचैले वेश तम का प्रवेश। उसके प्रवेश करते ही चारों ओर स्याही पड़ जाती है। सत्य निष्प्रभ हो जाता है।

तम---(रज का हाथ पकड़ कर) आओ रज हम और तुम दोनों मिल कर विश्व में राज्य करें। ---(पृ० ६)

५. वैराग्य---". . .मेरा पृथ्वी पर आना, मनुष्य को वह शिक्षा देने के लिये

ब्रह्मचर्य—यह भी नाटक का एक पात्र है। इससे यह प्रश्न करने पर कि क्या इस दरबार मे उसका कोई स्थान नहीं, भक्ति उत्तर देती है कि उसी का बलबी और विद्युत् ही सबका आधार है। (पृ० २७)

ज्ञान—सत्य की सेना का नेतृत्व इसी के हाथ मे है। ज्ञान सबको उनके उचित कर्तव्य को करने का आदेश देता है। यह वैराग्य से कहता है कि उन साधकों के पास जाने के लिये जिनके कि मन मे सत्य की इच्छा नहीं उदित हुई है—उसे तब तक प्रतीक्षा करनी होगी, जब तक कि इच्छा का उदय न हो।[1]

भक्ति—यह भी एक पात्र है। इसके लिये ज्ञान कहता है कि वह सबके लिए अपना दरवाजा खोल दे तथा मरुभूमि की तप्त छाती पर मन्दाकिनी की शीतल धारा बहा दे। (पृ० २६)

प्रवृत्ति—यह रज से कहती है कि उसका कुछ लोगों की दृष्टि मे यही दोष है कि वह लोगों को सिखाती है कि भोग ही जीवन है और प्रेम ही जीवन का उपभोग है।[2]

माया—यह क्रोध आदि को प्रोत्साहन देती है और सत्य से कहती है कि देखूगी कि मेरा मुकाबला कौन करता है।[3]

अभीप्सा—मनुष्य की एक चित्तवृत्ति के रूप मे इसका चित्रण हुआ है। इसके यह पूछने पर कि वह क्या करे भक्ति उसे आदेश देती है कि वह ससार मे जाकर ज्योति जगा दे।[4]

विवेक—यह भी नाटक का एक पात्र है। वैराग्य के यह पूछने पर कि तुम

हुआ है जिससे कि वह सत्य की बेदी पर अपना सर्वस्व होम करने के लिये तत्पर हो सके।" —(पृ० १७)

१. ज्ञान—प्रतीक्षा करनी होगी—जब तक उसके विकास का समय न आये, प्रतीक्षा करनी होगी. . .यहीं से आरम्भ होगा स्वर्ग के साथ नरक का घोर सग्राम, अमृतत्व का मृत्यु के साथ घोर सघर्ष।" (पृ० १७, १८)

२. प्रवृत्ति—मेरा यही एक दोष है कि मैं लोगो को सिखाती हू, भोग का सुनहला पल ही जीवन है, प्रेम मदिरा का पान ही जीवन का उपभोग है। (पृ० ७)

३. माया—देखूगी-देखूंगी कैसे वह (सत्य) पृथ्वी पर सत्य का विस्तार करता है।

४. अभीप्सा—भीतर ही भीतर सुलगने वाली अभीप्सा का अगड़ाई लेते हुए प्रवेश : तो मुझे क्या करना चाहिए। (पृ० २७)

क्या सोच रहे हो, विवेक उत्तर देता है कि जिनका द्वार वासना ने बन्द कर दिया है वहां उसका प्रवेश कैसे होगा—वह यही सोच रहा है। तब उसे वैराग्य मार्ग बताता है।[1]

विश्वास—वैराग्य इसको आदेश देता है कि वह ऐसा कुछ कर दिखाए जिससे लोगो को इस बात का पता लग जावे कि विश्वास पहाड को भी हिला सकता है, वही मोक्ष तथा मुक्ति है।[2]

अहम्—यह माया के दरबार का प्रधान मन्त्री है और काम आदि को ज्ञान का गर्व चूर्ण करने को कहता है। (पृ० १०)

क्रोध—यह अहकार से मनुष्य को जलती आग मे दौड पडने के लिये उकसा देने को कहता है।[3]

लोभ—यह अहकार का सेवक है। यह उससे कहता है कि स्वार्थ के ताण्डव मे विश्व को जलाने के लिये ही उसका पृथ्वी पर अवतार हुआ है।[4]

काम—यह अहकार का सेनापति है। अहकार के यह पूछने पर कि क्या वह ज्ञान का गर्व चूर्ण कर सकेगा, वह कहता है कि इसीलिए तो उसका जन्म हुआ है। (पृ० १०)

वासना—अहकार वासना को माया के राज्य की नीव बताता हुआ कहता है कि वही मनुष्य के भीतर भोगैषणा का सोता प्रवाहित कर सकती है।

(पृ० १४)

मोह—अहकार के यह प्रश्न करने पर कि जब मनुष्य वासना के वश मे हो

---

१. विवेक—उसके बाद

वैराग्य—उसके बाद उसे त्याग के चरणो में भोग की, परमार्थ के चरणों में स्वार्थ की बलि चढ़ाने की शिक्षा देना? (पृ० १९)

२. वैराग्य विश्वास से कहता है—ऐसा कुछ कर दिखाना होगा जिससे उसके जी में बैठ जाय कि विश्वास पहाड़ को भी हिला सकता है, विश्वास ही मोक्ष है, विश्वास में ही मुक्ति है। . . ." (पृ० २१)

३. क्रोध—तूफान उठा दूंगा। मनुष्य को जलती-जलती आग में दौड़ पड़ने के लिये उकसा दूंगा। (पृ० ११)

४. लोभ—(सोल्लास) स्वार्थ के तांडव से विश्व को खांडव की तरह दहन करने के लिए ही तो मैं भूतल पर भेजा गया हूं और यदि आप लालसा से कह दें कि वह मेरा साथ दे तो मैं मानव हृदय में वह आग लगा दूं जिसे प्रलय की वर्षा भी बुझा सके। (पृ० ११)

अधर्म मे लगेगा तो वह क्या करेगा ? मोह उत्तर देता है कि वह उस समय मनुष्य के हृदय मे प्रवेश कर महारानी (माया) की ध्वजा फहरायेगा।[1]

सशय—यह अहकार के राज्य के खुफिया विभाग का अध्यक्ष है। अहकार इसे आदेश देता है कि वह इस बात का पता लगाये कि उसके राज्य मे कहा पर क्या होता है ? (पृ० १२)

आसक्ति—यह अहकार से कहती है कि जहा वह रहेगा वही आसक्ति भी रहेगी। (पृ० १३)

६२४. पाचअको का यह आध्यात्मिक नाटक १५४ पृष्ठों मे समाप्त हुआ है। इसमे नाटकीयता पर्याप्त मात्रा मे है। भाषा की दृष्टि से इसे श्रेष्ठ कहा जा सकता है।

साहित्यिक नाटक

६२५. इन स्वतन्त्र रूपक नाटको मे केवल दो ही साहित्यिक नाटक मिलते है। पहला है 'न घर का न घाट का' और दूसरा है 'पत्र-पत्रिका सम्मेलन'। इन दोनो के रचयिता होने का श्रेय प्राप्त है श्री जी० पी० श्रीवास्तव को। इन नाटको का सामान्य परिचय नीचे दिया जा रहा है।

१. न घर का न घाट का

६२६. इस नाटक की रचना श्री जी० पी० श्रीवास्तव ने की है। इसकी छठी आवृत्ति १९५१ ई० मे हुई है।

६२७. उद्देश्य—इसका उद्देश्य विशुद्ध साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का नैतिक सुधार हरिजनो की दुर्दशा और ईसाइयो के प्रचार का विरोध करना आदि है।

६२८. कथानक—इसका कथानक कल्पित तथा रूपक है। समाजराय पत्र-पत्रिकाओं की तीव्र आलोचना करते हैं। जनताराय उससे सहमति व्यक्त करते है किन्तु पाठकमल सहमत नही होते। समाजराय और जनताराय घृणा व्यक्त करते हुए चाद के दफ्तर मे पहुँचते हैं। चाद को पहले से ही चिन्तित देखकर सभा होती है जिसमे जनताराय पच बनते हैं। विचार-विमर्श के बाद जनताराय फैसला देते हैं कि चांद ने स्त्रियों के लाभ के लिए यह कार्य किया है। यह अनुचित नही, किन्तु लाभदायक है। समाजराय को हारकर लौटना पडता है। समाजराय

---

१. मोह—"उनके हृदय मे प्रवेश कर महारानी की जयध्वजा फहराऊंगा।" (पृ० १२)

जब घर आते हैं तब उनकी स्त्री भी चाद के शिशु अक की प्रशसा करती हुई उन्हे घर से निकल जाने के लिए कहती है। दूसरी तरफ भगी सडका और नालियो को गन्दा करने वालो को बुरा-भला कहते हैं। इसी समय समाजराय मुँह मे पट्टी बांधे आता है। उसे देखते ही वे भगी अपने अछूत जीवन से दुखी होकर झाड छोडकर, ईसाई सम्प्रदाय मे मिल जाने की इच्छा व्यक्त करते हुए, भाग जाते हैं। रूपक पात्रो के आधार पर मौलिक कथानक की कल्पना करके नाटककार ने समाज के साहित्यिक स्तर का चित्रण सफलता के साथ किया है और रुचि परिष्कार की चेष्टा भी की है।

६२९. पात्र—इसमे निम्नलिखित प्रकार के पात्रो का प्रयोग हुआ है। तत्व-रूपक वर्ग के अन्य पात्र—समाजराय, जनताराय पाठकमल, सफाईराय, भारती, शिक्षा, चाद। इन पात्रो का सक्षिप्त परिचय देखिए—

समाजराय—यह समाज का रूपक पात्र है। इसको इस बात का बहुत दुख है कि आधुनिक साहित्य मे साहित्यिको और सम्पादको ने मिलकर अश्लीलता की नदी प्रवाहित कर दी है। यह चांद के शिशु अक को अश्लीलता का भण्डार कहता है।[1]

जनताराय—यह जनता का रूपक पात्र है। यह समाजराय के द्वारा चाद के ऊपर बिगडने पर उससे कहता है कि जब बेचूटकी वालो ने आपका बाल उखाड लिया था तब भी आप क्यों नहीं बोले थे ? (पहला दृश्य)

पाठकमल—यह सामान्य पाठको का रूपक पात्र है। यह समाजराय के यह कहने पर कि आज को पत्र-पत्रिकाओ मे गन्दगी भरी रहती है, उससे कहता है जब शादी आदि मे तुम्हे गालियां दी जाती है तब तुम नाक-भौ नही सिकोडते परन्तु साहित्य मे गन्दगी के नाम पर इतना बिगड रहे हो। (पहला दृश्य)

सफाईराय—यह सफाई का दरोगा है। इसका म्युनिस्पल मेम्बर से कहना है कि भगियो के आलस्य के कारण नगर की सफाई नहीं हो पा रही है। इसमे हमारा क्या दोष ? (दृश्य ३)

भारती—यह समाजराय की पत्नी है। तथा भारतीय स्त्रियो का रूपक है। भारती इस बात के लिए चाद की प्रशसा करती है कि उसने शिशु अक निकाल कर स्त्रियों का अमित कल्याण किया है। (दृश्य ४)

---

१. समाजराय—चल् तेरे सम्पादको और ग्रन्थकारो की दुम मे धागा। कम्बख्तों ने आजकल अश्लीलता के नाबदान के नाबदान बहा दिये हैं।...आज लाइब्रेरी जाना भी पड़ा तो नाक में पट्टी बांध कर गया। (पहला दृश्य)

शिक्षा--यह भारती की सहेली है। इसका कथन है कि जब उसकी आख और दोनो कान खुल जायेगे तो किसी की सामर्थ्य न होगी कि वह ज्ञान को उन तक जाने से रोक सके। (दृश्य ४)

चांद--यह एक पत्रिका है। वह शिशु अंक के प्रकाशन पर बिगडने वाले समाजराग पर यह कहकर चोट करती है कि यदि ऐसे अंकों का प्रकाशन न किया जाय तो स्त्रिया अज्ञानता के अन्धकार मे डूबती-उतराती रह जायेगी।

६३०. यह 'एकाकी' नाटक है। इसमे पाच दृश्य है। अभिनय की दृष्टि से श्लाघ्य रचना है।

२. पत्र-पत्रिका सम्मेलन

६३१ इस नाटक की रचना श्री जी० पी० श्रीवास्तव ने सन् १९२५ ई० मे की यह एक रूपकात्मक प्रहसन है।

६३२ इसका उद्देश्य साहित्यिक विषय का प्रतिपादन, हिन्दी मे हास्यरस की स्थिति का दिग्दर्शन साहित्य के अन्य अग, उपन्यास और नाटकों की अवस्था का चित्रण तथा तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओ की स्थिति का चित्रण करना है।

६३३. कथानक--इसका कथानक पूर्णतया मौलिक कल्पना-प्रसूत और रूपकात्मक है। हास्य और उसकी स्त्री प्रकृति के वार्तालाप से कथानक का प्रारम्भ होता है। प्रकृति हास्य को पत्र-पत्रिकाओ-सम्मेलन मे न जाने पर उलाहना देती है। हास्य कहता है कि वह रोना नही जानता, उसने तो हसना ही सीखा है। और बिना रोए कोई किसी की बात नही सुनता है। इतने मे कला वहा आकर शिक्षा द्वारा अपनी नाक काटे जाने के अपने अपमान को उन्हे सुनाती है। कला के अपमान का बदला लेने के हेतु प्रकृति हास्य को सम्मेलन मे भाग लेने के लिये दृढता के साथ प्रोत्साहित करती है। तभी स्वाभाविकता वहा पहुचती है और अपने पति 'भाव' का पत्र हास्य को देती है। उसमे शिक्षा की निन्दा और स्वाभाविकता को शरण देने की प्रार्थना की गई है। इसके पश्चात् हास्य सम्मेलन मे जाने को तत्पर हो जाता है। वह कौन से पत्र और पत्रिकाओ को सम्मेलन मे चलने के लिए कहता है। परन्तु जब कोई जाने को तैयार नही होता तब वह अकेला ही वहा जाता है। समाज भारतमाता से सम्मेलन के हेतु रुपया मागता है। परन्तु भारतमाता जब अपनी गरीबी का हाल उसे सुनाती है तब वह उसे मारता है। चाद वहा आ भारत मां को बचा कर जब समाज को पीटने लगता है तब भारतमाता समाज को पीटने नही देती--फलस्वरूप चाद को लौटना पडता है। हास्य को सम्मेलन मे जाते समय रास्ते मे माधुरी और सरस्वती मिलती है। दोनो अपरिचित अवस्था में हास्य की

ओर आकर्षित होते है। किन्तु जब उन्हे उसका परिचय मिलता है तब उसे तिरस्कृत करती हैं और चली जाती है। तभी सम्मेलन का मन्त्री हास्य को समाजगाय का सम्बन्धी समझकर, सम्मेलन मे सबधित पत्र देकर अपनी उपस्थिति के लिए असमर्थता व्यक्त करके चला जाता है, किन्तु हास्य सम्मेलन के आवश्यक पत्रों को वही भूल कर प्रसन्नता से सम्मेलन मे आ जाता है। साहित्य सभापति के आसन पर ओघते हुए दिखाई देते है। हास्य मन्त्रीपद से, मनमाने ढग से, भाषण देने लगता है, क्योंकि सामान तो वह बाहर ही भूल आया था। वह अपने भाषण मे नौकरानी शिक्षा के द्वारा स्वामिनी कला की नाक काटे जाने की आलोचना करता है। अपने भाषण के बाद वह साहित्य को जगाकर पूछता है कि क्या यह तुम्हारे सोने का समय है? साहित्य के अपना भाषण मागने पर वह कहता है कि वह तो छपने चला गया। वह सभा मे यह कहकर कि सभापति का भाषण बाद मे होगा नाटकमल का भाषण करा देता है। नाटकमल्ल अपनी दुर्दशा का वर्णन करता है तब उसे सान्त्वना दे कर बै ा देता है। इसके बाद उपन्यासराम अपनी दुखद गाथा का गान करते हैं और तत्पश्चात् उपाधि वितरण होता है। इस प्रकार उपाधि वितरण के पश्चात् प्रहसन का अन्त हो जाता है।

६३४. पात्र—इसमे रूपक पात्र प्रयुक्त हुए है। मनोवैज्ञानिक पात्र—हास्य और प्रकृति है। अन्य रूपक पात्र—समाज, साहित्य, चाद, मतवाला, गोलमाल, भारतमित्र, ग्राम गजट, शिक्षा, माधुरी, सरस्वती, प्रभा, गल्पमाला, मनोरमा मोहिनी आदि। इनमे से हास्य प्रकृतिक तथा साहित्य जो कि मुख्य पात्र है, उनका सक्षिप्त परिचय निम्न है —

हास्य—यह प्रकृति का पति है। यह साहित्य मे अपना आदर न होने से दुखी होता है।[1]

प्रकृति—यह हास्य की पत्नी और कला की सहेली है। यह सब लोगो को

---

१. प्रकृति—क्योंकि वह भी पत्र-पत्रिका सम्मेलन में जा रहे हैं और तुम टस से मस नहीं होते..... ।

हास्य—मुझे भी क्या कोई खुशामदी टट्टू समझ रखा है कि "मान न मान बड़ी खाला सलाम।"

प्रकृति—यह कैसे जानते हैं? ....

हास्य—अरी श्रीमतीजी, वहीं नहीं, बल्कि इस हिन्दुस्तान में कहीं भी नहीं है। (पहला दृश्य)

पत्र-पत्रिका सम्मेलन मे जाते देखकर हास्य को भी वहां जाने के लिए प्रोत्साहित करती है। (पहला दृश्य)

साहित्य—यह पत्र-पत्रिका सम्मेलनका सभापति है और सम्मेलन मे बैठकर ऊघता रहता है। जब हास्य के द्वारा यह जगाया जाता है तब यह अपना भाषण मागता है जिसके उत्तर मे हास्य कहता है कि वह तो छपने के लिये गया है।[1]

और पात्रो का परिचय—'मतवाला', और 'गोलमाल', हास्य पत्र हैं। 'बगवासी', 'श्री वेंकटेश्वर', 'भारतमित्र', और 'ग्राम गजट', समाचार पत्र हैं। 'चाद' मासिक पत्रिका है। 'कला', 'स्वाभाविकता', प्रकृति की बहने हैं। 'भारतमाता' समाज की मा है। 'शिक्षा'-कला की नौकरानी है। 'सरस्वती' और 'प्रभा' मासिक पत्रिका हैं। 'नाटकमल',[2] और 'उपन्यास' आदि साहित्य के अग नाटक और उपन्यासो के रूपक पात्र है।

६३५. यह 'एकाकी' प्रहसन है। इसमे तीन दृश्य हैं।

मनोवैज्ञानिक नाटक

६३६. मानव मन के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करने के उद्देश्य से भी कुछ नाटक 'प्रबोधचन्द्रोदय' की शैली पर लिखे गये, जिन्हे हम 'रूपकशैली के मनोवैज्ञानिक नाटक कह सकते हैं। ऐसे मनोवैज्ञानिक नाटक हिन्दी मे केवल दो मिलते हैं। जिनके नाम है—'छलना' और 'सन्तोष कहां?' इन नाटको मे मानव जीवन की विविध पृष्ठभूमियो मे उसके मन के विभिन्न स्तरो के सूक्ष्म विश्लेषण की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। इनका उद्देश्य साधारणतया भौतिक जीवन की अपेक्षा आध्यात्मिक जीवन को श्रेष्ठतर प्रतिपादित करना है। अब हम इन नाटको का सामान्य अध्ययन प्रस्तुत करने की चेष्टा करेंगे।

---

१. साहित्य—(साहित्य का सभापति के आसन पर ऊघते हुए दिखाई देना) (चौंक कर) हां अच्छा लाओ मेरा व्याख्यान दो पढ़ दूं।" (तीसरा दृश्य)

२. नाटकमल—(प्लेटफार्म पर आ कर) मै अपनी दुर्दशा भला किस मुंह से बयान करूं? आखिर मेरी सूरत भी हो तब तो। नाटककारों ने उसे ऐसी बिगाड़ी है कि वह देखने काबिल ही नहीं रही।...सीन-सीनरी की चकाचौंध, पोशाक की जगमगाहट में, पाउडर की लीप-पोत में, संगीत की झंकार में—मेरी असलियत की थाह नहीं पाते।" (तीसरा दृश्य)

१. छलना

६३७. श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने 'छलना' नामक रूपक नाटक का प्रणयन सन् १९३९ ई० में किया था।

६३८ उद्देश्य—इसका उद्देश्य मनोवैज्ञानिक समस्याओं का चित्रण कर आदर्श की स्थापना है।

६३९. कथानक—इसका कथानक कल्पित और पूर्ण रूपकात्मक है। मनोवैज्ञानिक एवं भावात्मक पात्रों की कथा इसमें चित्रित है। आदर्शवादी बलराज की स्त्री का नाम 'कल्पना' है। कल्पना अपने पति से सन्तुष्ट नहीं हो पाती है। अभावों को दूर करने की चेष्टा में बलराज बम्बई चला जाता है। 'कल्पना' कुछ दिनों तक 'विलास' के साथ ऐश्वर्य में जीवन व्यतीत करती है किन्तु उसे शान्ति और सुख नहीं मिलता। अन्त में बलराज उसके पास पुनः लौट आता है और विलास स्वेच्छा से आत्महत्या कर लेता है। प्रासंगिक रूप से एक, जगेसर, चम्पी और सूर जैसे निम्न स्तर के व्यक्तियों की भी कथा मुख्य कथा के साथ चलती है।

६४० पात्र—इसमें रूपक पात्रों का प्रयोग पाया जाता है। नैतिक पात्र-बलराज है। मनोवैज्ञानिक पात्र—कल्पना, कामना, नवीनचन्द्र और विलास चन्द्र हैं। अब हम इन पात्रों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे :—

बलराज—यह इस नाटक का नैतिक पात्र और नायक है। इसे हम आत्मा का रूपक कह सकते है। इसका कहना है कि मनुष्य की आत्मा का विलास के साथ कुछ ऐसा सम्बन्ध है कि आदर्श के स्पर्शमात्र से उसका विलास गायब हो जाता है।[1]

कामना—यह एक जज की पुत्री और कल्पना की सखी है। इसके सम्बन्ध में 'नवीन' का कहना है कि वह किसी को तंग नहीं करती। वह तो साक्षात् प्रगति की देवी है। उसके बिना मनुष्य उन्नति ही नहीं कर सकता है।[2]

कल्पना—यह बलराज की पत्नी है। यह आध्यात्मिक संस्कृति की अपेक्षा भौतिक सभ्यता को अधिक चाहती है। नित्यप्रति का इसका जीवन केवल

---

१. बलराज—(गम्भीरता से) प्रतीत होता है, मनुष्य की आत्मा के साथ विलास का ऐसा ही कुछ सम्बन्ध है। आदर्श का सम्पर्क होते ही वह अन्तर्ध्यान हो जाता है। (पृ० १२१)

२. नवीन—चुपके से कामना की ओर इशारा करके। कामना किसी को तंग नहीं करती। वह तो प्रगति की देवी है। कामना के बिना मनुष्य की रति कहां है। यह बात दूसरी है कि कोई व्यक्ति उसे अपनाकर निद्रित हो उठे। (पृ० ११७)

अनन्त भोगो की कल्पना मे बीतता है। अतएव इसे सन्तोष नही होता। इसका कहना है कि शारीरिक भोग से परे कोई आत्मा का भी आनन्द है, यह एक भ्रम की वस्तु है।'

नवीनचन्द्र—यह फिल्म कम्पनी का अभिनेता है और नवीनता का रूपक है। यह नित्य प्रति कामना किया करता है। इसका कहना है कि मानव की प्रगति का केन्द्र तो कामना ही है। (पृ० ११७)

विलासचन्द्र—यह एक नवयुवक और कालेज की बी० ए० कक्षा का छात्र है। यह आधुनिक भौतिक सभ्यता को मानने वाला है। यह मनाुष्य को आगे बढने के लिए उसमे असन्तोष का होना आवश्यक मानता है, क्योंकि असन्तोष के अभाव मे मनष्य मे आगे बढने का भाव पैदा हो ही नहीं सकता।'

६४१ इस नाटक मे तीन अक और छ दृश्य और १२१ पृष्ठ है। इसमे पर्याप्त नाटकीयता है।

२. सन्तोष कहा ?

६४२. 'सन्तोष कहाँ' नामक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक रूपक नाटक के रचयिता हिन्दी साहित्य के प्रख्यात नाटककार श्री सेठ गोविन्ददास जी है। इस नाटक का प्रथम प्रकाशन सम्वत् २००२ (सन् १९५५) है।

६४३ उद्देश्य—इसका उद्देश्य भौतिक सभ्यतामय जीवन से जायमान असन्तोष के दूर न होने की मनोवैज्ञानिक समस्या का समाधान करना है।

६४४ कथानक—मनमाराम नामक एक युवक अपनी अवस्था से ऊँचे उठते उठते मिनिस्टर तक बन जाता है। किन्तु मित्र नीतिव्रत के यह प्रश्न करने पर कि क्या वह अपने पद से सन्तुष्ट है ? वह पूर्ण विश्वास के साथ कोई उत्तर नही दे पाता है और शीघ्र ही विरक्ति का अनुभव करने लगता है। अन्त मे उसे सेवाकार्य मे ही सन्तुष्टि एव शान्ति मिलती है। इस वैज्ञानिक एव भौतिक सभ्यता के युग मे परिश्रम से साधनोपलब्धि हो जाने पर भी कहीं न कही से असन्तोष की रेखा मानव के विचारशील मन को व्यथित करती है। इसी असन्तुष्टि की मनोवैज्ञानिक समस्या को सुलझाने के हेतु रूपक कथानक की कल्पना की गई है, और इसी दृष्टि-

---

१. कल्पना—यह एक भ्रम है। शारीरिक भोग से परे आत्मिक आनन्द नाम की कोई वस्तु संसार में है, मैं नहीं जानती। (पृ० ३४)

२. विलासचन्द्र—किन्तु यदि मनुष्य मे असन्तोष न हो, तो वह उन्नति कैसे करे—आगे बढ़ने का भाव ही कैसे उसमे आये ? (पृ० १५)

कोण से कथानक में परिवर्तित परिस्थितियों की सफल नाटकीय योजना है। यह पूर्ण रूप से कल्पित और रूपक है तथा इसमें मन की सात्विक प्रकृति तथा अस्थिर भौतिक सन्तुष्टि के संघर्ष का चित्रण मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि में किया गया है।

६४५ पात्र—इसमें रूपक पात्रों का प्रयोग हुआ है। नैतिक पात्र—नीतिव्रत है। मनोवैज्ञानिक पात्र—मनसाराम है। इन पात्रों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है —

नीतिव्रत —यह नायक मनसाराम का मित्र है। यह नीति का उपदेश देकर मनसाराम के अन्तर्जगत की उथल-पुथल को शान्त करता है। इसका कहना है कि वह मनसाराम के सभी कष्टों को जानता है। परन्तु उसे कष्टों का सामना तो करना ही पड़ेगा, क्योंकि कष्टों का सहना ही जीवन का लक्षण है।[1]

मनसाराम—यह इस नाटक का नायक है। इसको एक सांसारिक मन के रूप में चित्रित किया गया है। यह बहुत ही अध्यवसायी, अध्ययनशील और परिश्रमी है, परन्तु कभी सन्तुष्ट नहीं होता है। अतएव यह नीतिव्रत से कहता है कि यद्यपि उसने काफी अध्ययन किया है फिर भी न जाने क्यों सन्तोष नहीं होता है।[2]

६४६ इस नाटक में पाच अंक और ८७ पृष्ठ है। नाटकीयता पर्याप्त मात्रा मे है।

सामाजिक नाटक

६४७ हिन्दी साहित्य मे 'प्रबोधचन्द्रोदय' की रूपक शैली मे कुछ ऐसे नाटक भी लिखे गये जिनमे समाज के दोषों एवं नारी जीवन की कठिनाइयों का मर्म-स्पर्शी चित्रण किया गया है। इन नाटकों को हम 'सामाजिक रूपक' नाटक के नाम से अभिहित कर सकते है। ऐसे नाटक दो उपलब्ध हुए है—'भारत ललना', और 'मारवाडी घी'। जैसा कि इनके नामों से स्पष्ट है, एक सामान्य नारी जीवन की जटिल समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है, और समाज मे व्याप्त

---

१. तुम्हारी अड़चनें, तुम्हारे कष्ट मैं जानता हूं मनसाराम! लेकिन अड़चनों और कष्टों का सामना करना यही तो जीवन है। दो ही वर्षों में इस तरह घबड़ा कर किसी चीज को छोड़ देना . . . । (पृ० ५८)

२. मनसाराम—खैर, अब यह तो तुम बहुत आगे बढ़ गये, पर मैं भी इतना मानता हूं कि मैंने पढ़ा है (कुछ रुक कर) पर नीतिव्रत। मुझे अपने इस अध्ययन से भी सन्तोष नहीं है। (पृ० ५)

बुराइयों का दिग्दर्शन करा कर उन्हे दूर करने का प्रयास करता है। इन नाटकों का सामान्य अध्ययन नीचे किया जा रहा है।

१. भारत ललना

६४८ इस नाटक की रचना महाराजाधिराज कुंवरलाल खगबहादुर मल्ल ने की है। इसका द्वितीय प्रकाशन सन् १९०६ मे हुआ था।

६४९ उद्देश्य—इस नाटक का उद्देश्य भारत दुर्दशा का चित्रण तथा नारी दुर्दशा का चित्रण कर उसके सुधार की ओर लोगों को प्रेरित करना है।

६५० कथानक—यह कथानक पूर्ण रूप से कल्पित और रूपकात्मक है तथा इसमे नारी के दुर्भाग्य और सौभाग्य के संघर्ष का चित्रण है। कथा इस प्रकार है—कलिराज की सभा मे सौभाग्य और दुर्भाग्य दोनो आते है। कलिराज सौभाग्य को भारत छोड़ने और दुर्भाग्य को भारत की स्त्रियों पर साम्राज्य करने की आज्ञा देता है। दुर्भाग्य, मूर्खता, रोग और कलह आदि के सहयोग से स्त्रियों मे अपने राज्य का विस्तार करता है। उधर सौभाग्य धर्म, विद्या और लक्ष्मी आदि के साथ भारत से प्रस्थान करने का प्रयास करता है। भारतमाता अपनी पुत्रियों की दशा देख दुःखी होती है तभी सौभाग्य भारत माता से विदा लेने के हेतु उनके पास आता है। उसे जाता देखकर भारतमाता की पुत्रियां भारतमाता से प्रार्थना करती है कि वे सब उसको आज्ञा का पालन करेंगी। अतएव सौभाग्य आदि को यहां से नहीं जाना चाहिये। किन्तु वह अपनी विवशता व्यक्त करता है। अन्त मे वे सब ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह अपने भक्तों की भारत ललना का भी उद्धार करे।

६५१ पात्र—इसमे तत्वरूपात्मक वर्ग के पात्र प्रयुक्त हैं प्रकृतितत्व पात्र—कलियुगराज, और निद्रा। नैतिकतत्व पात्र—एकता, मूर्खता, कलह, पतिव्रत, विधवा विवाह। आध्यात्मिक पात्र—धर्म। मनोवैज्ञानिक पात्र—क्रोध, उत्साह, उद्यम। अन्य पात्र—भारतमाता, दुर्भाग्य, सौभाग्य, वैधव्य, विद्या, लक्ष्मी। प्रमुख पात्रों का क्रमशः सामान्य परिचय नीचे दिया जा रहा है। अन्य पात्रों का परिचय अन्य नाटकों में आ ही चुका है।

कलियुगराज—कलियुगराज राजसिंहासन पर विराजमान—मुकुट पहने राजवेश मे दिखाये जाते हैं। यह अपने राज्यविस्तार केलिए सौभाग्य और दुर्भाग्य मंत्रियों को आज्ञा देते हैं। (प्रथम दृश्य)

निद्रा—निद्रा रोग की पत्नी और उसकी सहायिका है। उसकी कृपा से सब घर नष्ट हो जाते हैं। (द्वितीय दृश्य)

एकता—भारत की स्त्रियों मे एकता न होने से, दुखी हैं। अतः एकता भारत से विदा होना चाहती है। (तीसरा दृश्य)

मूर्खता—यह मूर्खता का रूपक है। यह कहती है कि उसमे प्रत्येक मे ऐसा घर बना लिया है कि लोग भूतप्रेतों तक को देवता मानने लगे है।

कलह—यह झगड़े का रूपक है। यह अपना प्रभाव बताता हुआ कहता है कि स्त्रियो के कारण आज भाई भाई आपस मे लड रहे है, यह उसी का प्रताप है।

पतिव्रत—पतिव्रत भारत के दुराचार और व्यभिचार से दुखी होता है। (तृतीय दृश्य)

विधवा विवाह—विधवा विवाह वैधव्य नामक पात्र से कहता है कि विधवाओ के विवाह से धार्मिक लाभ नहीं समझना। उसका उपहास करता और इसे अधर्म ही बताता है। (द्वितीय दृश्य)

धर्म—यह मनुष्य की धार्मिकता के रूप मे चित्रित किया गया है। भारत को विद्या, वीर, धैर्य, सुख और सम्पत्ति से विहीन होते देख इसे बड़ी तीव्र वेदना होती है और यह कहता है कि हाय—अब भारत अनाथ होने जा रहा है।

क्रोध—यह क्रोध का रूपक पात्र है। इसका कहना है कि यह उसी का प्रताप है कि स्त्री पति को लात मारने और अपने पुत्र को खा जाने के लिए तत्पर हो जाती है। (द्वितीय दृश्य)

दुर्भाग्य—यह मनुष्य के दुर्भाग्य के रूप मे अंकित किया गया है। इसका कहना है कि यद्यपि उसका पुरुषो पर उतना प्रभाव नहीं पडा है, क्योंकि वे लोग विद्या और सभ्यता आदि को नहीं छोड रहे, किन्तु निपट गँवार स्त्रियों मे तो उसने अपना अभूतपूर्व प्रभुत्व जमा लिया है। (प्रथम दृश्य)

सौभाग्य—यह मानव के सौभाग्य के रूप मे रंगमंच पर अवतीर्ण होता है। भारत को छोडते हुए इसे असीम वेदना होती है और यह अपने आप कहने लगता है कि मुझे आज अपनी प्यारी भारतभूमि को छोडना पड रहा है। (प्रथम दृश्य)

वैधव्य—यह स्त्रियों के विधवापन का सूचक है। इसमे वह अपना बड़ा भारी पराक्रम समझता है कि स्त्रियों के मन मे उसने बाल्य विवाह और वृद्ध विवाह की प्रवृत्ति को अंकुरित किया। (द्वितीय दृश्य)

विद्या—यह लक्ष्मी से कहती है कि बहिन! क्या कहूं, जो भारत एक दिन पातिव्रत, सत्य, धर्म और तपस्या के लिए सारे विश्व मे विख्यात था—आज उसी भारत मे इनका कोई नाम लेनेवाला नहीं रहा। (तृतीय दृश्य)

लक्ष्मी—यह देश की समृद्धि की रूपक है। यह विद्या से कहती है कि जैसा वह कह रही है ठीक है और वह उसका समर्थन करती है। (तृतीय दृश्य)

६५२ इस एकाकी नाटक मे चार दृश्य है। नाटकीयता की दृष्टि से उच्च कोटि का नाटक है।

२. मारवाड़ी घी

६५३ 'मारवाडी घी' नामक इस रूपक नाटक का रचयिता एक ऐसा व्यक्ति है जो अपना नाम न लिख कर, एक जातीय हितैषी मारवाडी लिखना अधिक पसन्द करता है। सभवत इसका कारण समाज का भय रहा होगा। इस नाटक का प्रथम प्रकाशन भारत की महानगरी कलकत्ता सन् १९१७ मे हुआ था।

६५४ उद्देश्य—इसका सामान्यत सामाजिक—सुधार की पृष्ठभूमि मे वनस्पति घी के दोषो का वर्णन कर उसे छोड़ने के लिए जनता का प्रेरित करना है।

६५५ कथानक—इसका कथानक कल्पित और रूपकात्मक है। कथा इस प्रकार है—नायक कलियुग अपने सभासदो—अधर्म, मोह, अन्याय विरोध और फूट आदि को कार्यभार सौप कर अपना प्रभाव व्यापक बनाने का आदेश देता है। प्रति नायक धर्म अपने सहयोगी सत्य के साथ दुःखी होकर भटकता है। लाभ के कारण व्यापारियो ने घी मे चर्बी मिलाकर अपने व्यापार को बढा लिया है। जिससे समाज मे कलियुग के व्यापक प्रभाव का अनुमान होता है। जब नर्तकिया नृत्य करती हुई कलियुग की जय बोलती है उस समय नेपथ्य मे एक ध्वनि आती है कि विजय धर्म की ही होगी। स्वार्थी कितना ही प्रयास करे, उन्हे विजय कभी नही मिलेगी। यही पर कथानक का अन्त हो जाता है। इसके तृतीय अक मे 'मारवाडी घी' और कलयुग के दोषो का वर्णन है।

६५६ पात्र—इसमे तत्व रूपक वर्ग के नीचे लिखी श्रेणिया का प्रयोग किया गया है। प्रकृतितत्व पात्र—कलियुगराज। नैतिकतत्व पात्र—सत्य, अधर्म, पाखण्ड विरोध, अपव्यय, मदिरा, जुआ, फिजूलखर्ची। आध्यात्मिक पात्र—धर्म। मनोवैज्ञानिक पात्र—लोभ, मोह, स्वार्थपरता, फूट। इन पात्रो का सामान्य परिचय क्रमश दिया जा रहा है —

कलियुग राज—यह इस नाटक का नायक है। यह कहता है कि लोगो की बुद्धि मारी गई है जो मुझे ससार से निकालना चाहते है। परन्तु मुझे इसका कोई भय नही है। क्योकि मेरे हाथ मे राजदण्ड है। (पृष्ठ ८)

सत्य— यह सच्चाई के रूप मे चित्रित किया गया है। यह धर्म से कहता है कि लोग स्वार्थपरता से प्रेम कर खाद्य वस्तुओ मे अखाद्य पदार्थों का मिश्रण कर रहे हैं। इसलिए मैं तो यहा नही रहूगा। (पृष्ठ २९)

अधर्म— यह पात्र साक्षात अधर्म का रूपक है। यह कहता है कि वह दिनरात इसी चिन्ता में पड़ा रहता है कि लोग लोक-धर्म की दुहाई देकर उसे छोड़ना चाहते है, वह क्या करे ?[1]

पाखण्ड— यह पात्र ढोंग का रूपक है। यह विरोध और फूट के साथ कहता है कि उसने सभी के घर में डेरे डाल दिये है। अब तो प्रतिनिधि बनकर प्रतिनिधियों के साथ चाहे जहां चला जाता है। (पृष्ठ ४२)

विरोध— यह लोगों में विरोध की भावना का बीज बोता है। इसमें भी उपर्युक्त कथन को कहा है।

अपव्यय— यह लोभीराम और फिजूलखर्ची का पुत्र है। यह अपनी माता के साथ साथ रहता है।

मदिरा—यह जुआ की बहिन और कलियुग की सहायिका है। यह कहती है कि अत्याचार, अन्याय और अधर्म करने से समर्थों को दोष नहीं लगता। (पृष्ठ ३३)

जआ— यह मदिरा का भाई है। यह अपनी बहन से कहता है कि सरकार के कानून और जासूसियों से वह तंग आ गया है। (पृष्ठ ३३)

फिजूलखर्ची— यह अपव्यय की माता और लोभीराम की पत्नी है। यह अपने पति की सहायता करती है।

धर्म— यह नैतिक तत्व के रूप मे चित्रित किया गया है। चारो तरफ अधर्म के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर यह घबड़ा कर कहता है कि कहा जाय और क्या करे। (पृष्ठ २७)

लोभ— यह कलियुग से कहता है कि वह तो जी-जान से अपने काम मे लगा हुआ है। परन्तु कुछ लोगों ने उसके बने बनाए घर को ढहा दिया। अन्तत, ता उसे सफलता मिलकर रहेगी। (पृष्ठ १२)

मोह— यह पात्र-कलियुग से कहता है कि उसने कई रंग बदले, लोभ और अधर्म के साथ कितना ही प्रयास किया, परन्तु उसको उद्योग मे सफलता नहीं मिली है। महाराज के प्रताप से अब की बार उसके फन्दे से कोई बच नहीं पाएगा। (पृष्ठ १२)

---

१. स्वार्थपरता अधर्म के लिए कहता है—कहिए जनाब ! संसार को नचाने वाले धर्म को गिराने वाले। आज क्या सोच रहे हैं ?

अधर्म—लोक ! धर्म की दुहाई दे देकर हमें बुरी तरह दुत्कार रहे हैं। (पृष्ठ १५)

स्वार्थपरता— यह मनुष्य की स्वार्थी प्रवृत्ति का रूपक है। यह फूट के साथ अधर्म की इस आज्ञा को कि महाराज नाराज हैं, अतः उन्हें वामना करने के लिए निर्लज्जा देवी के साथ-लोगो के मकानों पर डेरा डालना चाहिये—स्वीकार कर लेती है। (पृष्ठ १८)

फूट—यह लोगो मे फूट की भावना को जन्म देती है। यह विरोध और पाखण्ड के साथ मे कहती है कि उसने सनातनियों और समाजियो मे झगडा मचा दिया है। उनमें खूब नोटिसबाजी हो रही है। (पृष्ठ ४२)

६५७. इस नाटक मे तीन अक है और चौरासी पृष्ठ हैं। नाटकीयता पर्याप्त है।

राजनैतिक नाटक

६५८. इन्ही रूपक नाटको की परम्परा मे हिन्दी मे कुछ ऐसे भी नाटक लिखे गये, जिनमें अपने समय की राजनैतिक स्थिति का विशद चित्रण किया गया है—ऐसे नाटको को हम "राजनैतिक रूपक नाटक" कह सकते है। हिन्दी के कुछ रूपक—"भारत दुर्दशा," "अनोखा बलिदान," "स्वर्ण देश का उद्धार," "हिन्दू," "डिक्टेटर" "भारतराज"। इन नाटको का सामान्य अध्ययन नीचे दिया जा रहा है।

१. भारत दुर्दशा

६५९. भारतेन्दु जी ने 'भारत दुर्दशा' नामक रूपक नाटक की रचना १८७६ ई० मे की थी। कदाचित् उनकी नाट्य कृतियो मे यही कृति सबसे पहली है।

६६०. उद्देश्य—इसका उद्देश्य देशभक्ति की पृष्ठभूमि मे उस समय की राजनैतिक एव भारत की दुर्दशा का चित्र उपस्थित कर भारतभूमि की उद्धार की प्रेरणा लोगो मे जागरित करना था।

६६१. कथानक— इसका कथानक कल्पित-रूपकात्मक और विरोधी परिस्थितियो के सघर्ष का चित्रिन करने वाला है। कथा इस प्रकार है— एक योगी, गौरवमय अतीत वाले भारतवर्ष की तात्कालिक वेदनामयी दशा का वर्णन करता है। वह इतना दुःखी हो जाता है कि अन्तत मूर्च्छित होकर गिर पडता है। उसी अवस्था मे उसे आशा और निर्लज्जता रंगमच पर से ले जाती हैं। उधर भारतदुर्दैव अपने सैनिको की सहायता से भारत के विनाश की योजना बनाता है अतएव फूट, डाह, लोभ, असन्तोष, भय, उपेक्षा, दुर्भिक्ष, स्वार्थपरता, अति

वृष्टि और अनावृष्टि आदि अपने सैनिको को उपद्रव मचाने के लिए भेज देता है। रोग आलस्य, और मदिरा आदि भी उसे उसके काम मे सहयोग देते है । उधर सात देश भक्तो की गोष्ठी मे भारत दुर्दैव से भारत की रक्षा के सम्बन्ध मे विचार-विमर्श होता है। अभी योजना नही बन पाई थी कि उन्हे भारत दुर्दैव का विरोध करने के अपराध मे "डिस्लायल्टी" पकड ले जाता है। इसके बाद भारत-भाग्य भारत को जगाने का प्रयास करता है। परन्तु जब वह नही जागता तो आत्म-हत्या करके मर जाता है।

६६२ पात्र—इसमे रूपक पात्र प्रयुक्त हुए है । रूपक—प्रकृतितत्व पात्र—रोग है। नैतिकतत्व पात्र—सत्यानाश, मदिरा, आलस्य, अन्धकार, अधर्मार्जन, निर्बलता है। मनोवैज्ञानिक पात्र—फूट, डाह, लोभ, भय, शोक हैं । अन्य पात्र—भारत, भारतभाग्य, भारत दुर्दैव, और डिस्लायल्टी है। प्ररूप पात्र—बगाली, महाराष्ट्री एडीटर, कवि है । इनमे से कुछ प्रमुख पात्रो का परिचय नीचे दिया जा रहा है।

रोग— यह अपनी बडाई करता हुआ कहता है कि उसका प्रभाव इतना बडा है कि सारा ससार उससे डरता है। वह कुपथ का मित्र और पथ्य का शत्रु है।[1]

सत्यानाश— यह अपना परिचय देता हुआ कहता है कि उसका नाम सत्यनाश है, वह राजा के पास आया हुआ है। लाखो वेश धारण करके उसने इस देश को चौपट कर डाला।[2]

मदिरा— यह अपना परिचय देती हुई कहती है कि वह सोम की कन्या है। ससार की चार जातियों हिन्दू, बौद्ध, मुसलमान और क्रिस्तान मे उसकी चाल सूनिया-सोमपान, वीराचमन, शराबुनतहूरा और बायटेजिग वाइन के नाम से व्याप्त है।

आलस्य—यह कहता है कि दुनिया मे आकर मनुष्य को हाथ पैर नही हिलाना चाहिये । कही जाने के बजाय मर जाना कही अच्छा है।

अन्धकार— यह अहर्निश कलियुग और मोहराज की जै बोलता रहता है। नाश की सामग्री कलह, अविद्या आदि की यह जै जै कार करता है।

---

१. रोग— मेरा प्रभाव जगत विदित है। कुपथ का मित्र और पथ्य का शत्रु मै ही हूं . . . ।

२. सत्यानाश फौजदार—हमारा नाम है सत्यानास आए हैं राजा के हम पास।
घर के हम लाखों ही भेस। किया यह चौपट सारा देश।

अश्रुमार्जन— यह आसुओ को पोछने के रूप मे चित्रित है।

निर्बलता— यह भारतवासियो की निर्बलता के रूप मे अकित है।

भारत—यह भारतवर्ष का रूपक है। दिल्ली की भूमि का वर्णन करता हुआ यह कहता है कि यह वही भूमि है जिसमे श्रीकृष्ण के दूत बन कर आने पर भी दुर्योधन ने कहा था कि बिना युद्ध के सुई का अग्र भाग भी नही दूगा।

भारत दुर्दैव— यह भारत के अभाग्य के रूप मे चित्रित किया गया है। यह अपना वर्णन करता हुआ कह रहा है कि मै ईश्वर के कोप से उत्पन्न होकर भारत मे आया हू, यदि हिन्दू को छार कर दू-तभी मै उत्तम हूगा-अन्यथा नीच हू।

डिस्लायल्टी— यह अग्रेजी सरकार की खुफिया पुलिस का रूपक है। एक स्थान पर गोष्ठी करते हुए सात देश भक्तो से यह कहती है कि वह उनको गिर-फ्तार करेगी, क्योकि वे लोग सरकार के विरुद्ध षडयत्र रच रहे है।

६६३ इस नाटक मे छ अक है।

२. अनोखा बलिदान

६६४. इस नाटक के रचयिता है श्री प० उमाशकर सरमडल जो कि खडवा (सी० पी०) के निवासी है। इसकी रचना सन् १९१५ ई० मे हुई थी।

६६५. उद्देश्य—इसका उद्देश्य सच्चा त्याग, कठोर परिश्रम, सच्चरित्रता और स्वतन्त्रता प्राप्ति है।

६६६ कथानक—इसका कल्पित आशिक रूपक है। इसमे सत् और असत का सघर्ष भी है। सती नारी सुशीला दुर्मति के अधीन नही होती। जीवन के सभी सुखो का परित्याग कर वह अतिम समय तक स्वत्व को बचाने का प्रयास करती है। अन्त मे दुर्मति परास्त होती है। सुशीला के पुत्र मनोहर को राज्य मिलता है। सब सुखी होते है। यह कथानक राजनैतिक, स्वतत्रता और सत्यता पर आधारित है।

६६७ पात्र—इसके नैतिकतत्व पात्र—नेकी, बदी और दुर्जन है। सुशीला आदि साधारण पात्र है।

नेकी— यह मनुष्य की सद्वृत्तियो की परिचायिका है, यह जगत्पिता के प्रति कहती है कि वह कितना दयालु है। अपने दुराचारी और दुष्ट व्यक्तियो पर पिता से भी ज्यादा प्यार करती है। वे मनुष्य धन्य है जो सच्चे हृदय से उस परमपिता का ध्यान करते है। (पृष्ठ २)

बदी— यह 'बुराई की रूपक है। यह नेकी से कहती है कि ससार का भाग्य

मेरे बाएं हाथ में और उसकी कुंजी दाहिने हाथ में है। तुम सब स्वर्ग की आशा से संसार को नरक बनाए हुए हो। (पृष्ठ २)

दुर्जन—यह दुष्ट मनुष्यों का प्रतिनिधि है। यह सुरेन्द्र से कहता है कि अरे, धर्म के पागल! तू क्या समझ कर संसार के सुखों से विमुख है। तेरी एक हाँ पर सारा राजसी वैभव तेरे चरणों पर लौटने लगेगा। (पृष्ठ ८)

इसके अन्य पात्र मानव रूप में ही है इसलिए उन पर विचार करने का कोई प्रसंग नहीं है।

६६८. इस नाटक में तीन अंक और ११६ पृष्ठ है।

३. स्वर्ण देश का उद्धार

६६९. इस प्रसिद्ध रूपक नाटक की रचना प्रो० इन्द्र विद्या वाचस्पति ने की है। इसकी रचना सन् १९३१ में हुई थी।

६७०. उद्देश्य—इसका उद्देश्य राजनैतिक समस्या का हल, देशभक्ति का प्रचार, भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति की प्रेरणा देना, अन्याय और अन्याचारों का अन्त करना है।

६७१ कथानक—इसका कथानक कल्पित, रूपकात्मक और सघर्षात्मक है। कथा इस प्रकार है—धर्मप्राण नामक देशभक्त, देश भक्ति के अपराध में जेल भेज दिया जाता है। न्यायाधीश देशभक्त को अपराधी होने में शंका करता है। इस पर राज्य का मन्त्री न्यायाधीश को भी अपदस्थ कर देता है जिससे राज्य में अत्याचार और अन्यायों की वृद्धि हो जाती है। एक प्रासंगिक कथा भी है-धनदास लोभ के कारण अपनी कन्या का विवाह नहीं करता है। अन्यायी मत्री धनदास को राज्य का खजाञ्ची बना देता है। उधर धनदास की कन्या अनन्तप्रभा घर से निकल कर देश जागृति के कार्य में लग जाती है। अपदस्थ न्यायाधीश राजा, दीवान और मत्री के विरोध में प्रजा को विद्रोही बना देता है। राजा और मत्री कैद में जाते है। वहा धर्मप्राण और अनन्तप्रभा का मिलन होता है। धर्मप्राण के हाथ में स्वतन्त्र देश का नेतृत्व आता है। देश में अन्याय और अत्याचार का अन्त होकर शान्ति फैलती है।

६७२ पात्र—इसके पात्र अनेक प्रकार के हैं। नैतिकतत्व पात्र—'क्रूर' है। आध्यात्मिक पात्र—'धर्म' है। अन्य पात्र–अनन्तप्रभा है। प्रतीक पात्र—धर्मदास, धनदास है। नीचे इन पात्रों का सामान्य परिचय दिया गया।

क्रूर—यह क्रूरता एवं कठोरता का रूपक है। इसका कहना है कि लोगो की यह धारणा कि धर्म सबसे अधिक बली है, बिलकुल मिथ्या है। क्योंकि इतिहास

और समय ने सिद्ध कर दिया है कि धर्म घर मे पालने की चीज है न कि व्यवहार मे लाने की। (पृष्ठ २)

धर्म—यह नैतिक पात्र है। यह कहता है कि वह कभी निर्बल नही हुआ। पहले ही जैसी मिठास आज भी उसमे बसती है। उसी प्रकार वह पहले की भांति कडवा भी है। वह पहले की भाति नर्म, कठोर और शक्तिशाली भी है।

(पृष्ठ २)

अनन्त प्रभा—यह धनदास की पुत्री है। साक्षात् देशभक्ति की प्रतिमूर्ति है। यह महात्मा कर्मदास से कहती है कि उसके माता पिता कुछ तो राजभय से और कुछ लोभ के कारण उसको कष्ट देने मे किसी प्रकार का सकोच नही करते। उसके ऊपर अत्याचार प्रतिदिन बढता जा रहा है वह क्या करे? (पृष्ठ ७)

धर्मदास—यह 'कर्म' का प्रतीक है और इस नाटक मे एक महात्मा के रूप मे चित्रित किया गया है। यह अनन्त प्रभा का ढाढस बधाता हुआ कहता है कि अत्याचारी का अत्याचार स्वय खण्डित हो जायगा। तप मे बडा बल होता है। उससे पत्थर भी पिघल जाता है। अतएव तुम सहन करती जाओ। सकल्प शालिनी और दृढ भावना वाली होने के कारण अन्त मे तेरी ही विजय होगी।

(पृष्ठ ७-८)

धनदास—यह 'धन' का प्रतीक है और महालोभी है। भिक्खू के द्वारा आधा मकान लिखने को विवश कर दिये जाने पर यह कहता है कि जिस धन के लिए बेटी को घर से निकाला, जिस धन के लिए चचा को विष देकर मार डाला-उसी को आज यह बदमाश मुझसे छीने ले जा रहा है। (पृष्ठ ४४)

६७३ इसमे तीन अक और ७८ पृष्ठ है।

४. हिन्दू

६७४ श्री जमनादास मेहता ने 'हिन्दू' नामक, रूपक नाटक की रचना सन् १९२२ मे की थी।

६७५ उद्देश्य—इसका उद्देश्य भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए प्रेरणा देना अन्याय और फैशन का विनाश, एकता की स्थापना और देशभक्ति का प्रचार करना है।

६७६ कथानक—इसका कथानक पूर्ण रूप से कल्पनाप्रसूत, रूपकात्मक और परतन्त्रता और स्वतन्त्रता के सघर्ष को चित्रित करने वाला है। कथा इस प्रकार है—परतन्त्रता और स्वतन्त्रता मे विरोध होता है। स्वतन्त्रता के लिए, देशभक्त, सुधारचन्द, प्रेमसिंह, और उद्योगानन्द आदि प्रयास करते हैं। अन्त में

भारत स्वतन्त्र हो जाता है। इसके साथ ही फैशन, नवीनता, अन्याय, कूट और स्वार्थ का नाश हो जाता है।

६७७. पात्र—इसके पात्र रूपक और प्रतीक है। प्रकृतितत्व पात्र—रोगराज है। नैतिकतत्व पात्र—एकता, फैशन, नवीनता, अत्याचार है। मनोवैज्ञानिक पात्र—स्वार्थराज है। अन्य पात्र—पृथ्वीमाता, हिन्द, स्वतन्त्रता, प्राचीनता, परतन्त्रता, दुर्भिक्ष है। प्रतीक पात्र—अन्यायसिंह, धनहरण, दमनसिंह, खिलाफत खा, राजमतसिंह, सत्यपाल, उद्योगानन्द, सुधारचन्द और प्रेमसिंह है। कुछ प्रमुख पात्रों का परिचय नीचे दिया जा रहा है—

एकता—यह हिन्दुओं की एकता की प्रतीक है। जब अत्याचार स्वतन्त्रता को पकड़ना चाहता है तब यह कहती है कि सावधान हो-और स्वतन्त्रता से क्षमा मांगो। (पृष्ठ ८२)

फैशन—यह अपना परिचय देता हुआ कहता है कि उसका नाम फैशन है और उसका काम बूढ़े को जवान और इन्सान को हैवान बना देना है। (पृ०१९)

अत्याचार—यह भारत में हुए अत्याचार का रूपक है। यह स्वतन्त्रता से कहता है कि अब वह सहन नही कर सकता है इसलिए वह उसके ऊपर वार करना चाहता है। (पृ० ८२)

पृथ्वीमाता—यह पृथ्वी की रूपक है।

स्वतन्त्रता—यह स्वतन्त्रता का रूपक है। यह परतन्त्रता से कहती है कि यह देश इतने दिनों तक रोग आदि से तेरे ही कारण आक्रान्त रहा है। अब तू क्यों नही छोड़ेगी। (पृष्ठ ८)

परतन्त्रता—यह स्वतन्त्रता के वचन का खण्डन करती हुई कहती है कि वह भारतवर्ष को अपने चगुल से कभी नही छोडेगी। (पृष्ठ ९)

दुर्भिक्ष—यह अकाल का रूपक है। यह नाटक मे भारत की दुर्दशा का करुण चित्र प्रदर्शित करता है।

६७८. यह नाटक तीन अंको और ११२ पृष्ठो मे समाप्त हुआ है।

५ डिक्टेटर

६७९ 'डिक्टेटर' नामक का रूपक नाटक के रचयिता पाण्डे बेचनशर्मा 'उग्र' है। इस नाटक का प्रकाशन सन् १९३७ मे हुआ था।

६८० उद्देश्य—इसका उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का वर्णन और जनता के आदर्श राज्य की स्थापना है।

६८१. कथानक—इसका कथानक कल्पित, रूपकात्मक और संघर्षात्मक

है। इसमे विभिन्न राष्ट्रों की विचारधाराओ का सघर्ष दिखाकर अन्त मे सम्पूर्ण विश्व मे एक राज्य के स्थापित होने की कामना की गई है जिसमे जनता का राज्य होगा, गरीब और दुःखी जनता स्वतन्त्र और सुखी रहेगी।

६८२ पात्र—इसमे प्रतीक पात्र का प्रयोग हुआ है। ये प्रतीक पात्र—जानबुल, अकिलसाम, पेरी, डिक्टेटर, बकवादी, विप्लव है। इन पात्रो का सक्षिप्त परिचय नीचे दिया गया है—

जानबुल—यह ब्रिटिश साम्राज्य शाही का प्रतीक है। यह विप्लव के सम्बन्ध मे कहता है कि ये महोदय साम्राज्यवाद का नाश चाहते है और गरीबो को बादशाह बनाने की धुन मे इधर उधर फिर रहे है। (प्रथम अक का दूसरा दृश्य)

अकिलसाम—यह पूजीवाद अमेरिका का प्रतीक है। अकिल और जानबुल के बीच मे जब बकवादी जो कि हिन्दुस्तान की जनता का प्रतीक है-बोलने लगता है तो यह कहता है कि गुलाम इण्डियन हमारे बीच मे क्यो बोलने लगा।

(प्रथम अक का दूसरा दृश्य)

पेरी—यह फ्रास के प्रजावादी का प्रतीक है। यह विप्लव से कहता है कि आप धीरे धीरे बोलिये। क्योंकि गाली देने मे तर्क का प्रभाव घट जाता है।

(प्रथम अक का दूसरा दृश्य)

डिक्टेटर—यह जर्मनी के बलवादी का प्रतीक है। यह एक सुन्दरी से कहता है कि वह पहाड मे दबा हुआ ज्वालामुखी है। उसकी ज्वाला अब ठण्डी हो चुकी है, लावा बह गया है, राख भी उड गयी है। वह इस समय पूर्ण रूप से पराजित हो गया है। (प्रथम अक तीसरा दृश्य)

बकवादी—यह भारतवर्ष का प्रतीक है। अकलसाम के यह कहने पर कि यह गुलाम इडियन बीच मे क्या बोलता है। यह उत्तर देता है कि क्योंकि हिन्दुस्तानी भी जनता माता का एक पुत्र है, इसलिए वह भी बोलने का अधिकारी है। (प्रथम अक दूसरा दृश्य)

विप्लव—यह साम्यवाद का प्रतीक है। यह भारतमाता से कहता है कि अब उसका विश्व साम्राज्य का शासन पुत्र के नाम से नही, माता के नाम से हो। जनता पर जनता का ही राज्य करना चाहिये।

६८३ प्रस्तुत नाटक मे तीन अक है।

६. भारतराज

६८४. श्री लक्ष्मीकान्त मुक्त, ने सन् १९४९ मे रूपक शैली में भारतराज नामक नाटक का प्रणयन किया।

६८५. उद्देश्य—इसका उद्देश्य राजनैतिक चेतना का जागरण और भारत की दशा का चित्रण करना है।

६८६ कथानक—इसका कथानक कल्पित, रूपकात्मक और सघर्षात्मक है। कथा इस प्रकार है। भारत मे हिन्दू एक होने का प्रयत्न करते है। किन्तु उनके आपसी झगडे से भारत मे अग्रेजो का राज्य स्थापित हो जाता है। सन् १८५७ मे अग्रेजो के विरुद्ध भारी युद्ध होता है किन्तु सत्य के अभाव मे भारतवासियो की पराजय होती है। अन्त मे श्रद्धा देवी सन्देश देती है कि सत्य की साधना से भारत को पुन ज्ञान, विज्ञान और शक्ति की प्राप्ति होगी।

६८७. पात्र—इसमे मुख्यत रूपक पात्रो का प्रयोग हुआ है। आध्यात्मिक पात्र-धर्मराज, मनोवैज्ञानिक पात्र—श्रद्धा है। अन्य पात्र—भारतराज, कर्मराज है। प्रतीक पात्र—मित्रराज है। प्ररूप पात्र—विज्ञानवाला, पश्चिमी बाला है। इन पात्रो का सामान्य परिचय नीचे दिया जा रहा है —

धर्मराज—यह हिन्दू विश्वासो का प्रतीक है। भारतराज के श्रद्धा को यह आश्वासन दिये जाने पर कि उसे घबडाना नही चाहिये क्योकि धर्मराज उसकी एक टाग से भी रक्षा करेगा। धर्मराज स्वीकार कर लेता है।

श्रद्धा—यह भारतराज के प्रति भारतवासियो की विशुद्ध भक्ति भावना की प्रतीक है। यह भारतराज से कहती है कि ज्ञानहीन लोग उसकी दुर्दशा करेंगे।

भारतराज—यह भारतवर्ष का प्रतीक है। विज्ञान बाला के द्वारा चरण स्पर्श किये जाने पर क्रुद्ध होकर कहता है कि मेरा चरण छूकर मुझे अपवित्र मत करो।

कर्मराज—यह मस्लिम राजा का प्रतीक है, जो कि केवल कर्म करने मे विश्वास करता है। भारत राज्य के यह कहने पर कि जो मनुष्य कर्मान्ध है वे ईश्वर को कभी नही देख सकते, क्योकि उनके नेत्र बन्द हो चुके होते है। कर्मराज कहता है कि कुरान तो कहती है कि खुदा का जलवा प्रत्येक वस्तु मे होता है, उसे आखो का अन्धा भी देख सकता है। (छठा दृश्य)

मित्रराज—यह ईस्ट इडिया कम्पनी का सचालक है। पश्चिमी बाला के यह समझाने पर कि आजकल धर्मराज कमजोर पड गया है, अतएव वह कर्मराज पर आश्रित हो गया है। फलत धर्मराज को तोडना आसान है, तो यह कहता है कि कर्मराज तो यहा के कण-कण मे छाया हुआ है।

विज्ञानबाला—यह भारत की वैज्ञानिक शक्ति की प्रतीक है। यह भारतराज के द्वारा ठुकराये जाने पर उससे कहती है कि उसे मत ठुकराओ अन्यथा जीवन भर पछताओगे। वह उसके लिए सुखो का द्वार खोल देगी।

पश्चिमी बाला—यह ईस्ट इंडिया कम्पनी की प्रतीक है। यह मित्रराज से कहती है कि वह कर्मराज की मदद के बदले भारत की जमीन को अपने राज्य में पहले से मिलाता चले।

६८८. तीन अंकों का यह नाटक ११८ पृष्ठों में समाप्त हुआ है।

६. सांस्कृतिक नाटक

६८९. भौतिक सभ्यता की अपूर्णता और आध्यात्मिक संस्कृति की पूर्णता को दिखाने के लिए भी हिन्दी साहित्य में "प्रबोधचन्द्रोदय" की रूपक शैली का अवलम्बन किया गया है। इस शैली के अवलम्बन से विकसित नाटक-प्रणाली को हम सांस्कृतिक रूपक प्रणाली कह सकते हैं। इस प्रणाली का हिन्दी साहित्य में केवल एक ही नाटक है और वह है कामना और उसके रचयिता हैं हिन्दी साहित्य के प्रख्यात नाटककार जयशंकर प्रसाद। नाटककार ने इसमें संस्कृति के स्वरूप का परिचय कराते हुए उसको अपनाने की प्रेरणा दी है।

'कामना' नाटक—जयशंकर प्रसाद ने इसकी रचना सन् १९२७ में की थी।

६९०. इसका उद्देश्य भौतिक सभ्यता और आध्यात्मिक संस्कृति के संघर्ष में आध्यात्मिक संस्कृति की विजय दिखाना और उसके महत्व को प्रतिष्ठित करना है।

६९१. कथानक—इसका कथानक कल्पित, रूपकात्मक और संघर्षात्मक है। कथा इस प्रकार है। आध्यात्मिक संस्कृति के अनुयायी फूलों के देश में निवास करते हैं। वहीं पर सोना लेकर भौतिक सभ्यतावादी प्रवेश करते हैं। किन्तु भौतिक सभ्यता के विकास से प्रजा में कष्ट और असन्तोष फैलने लगता है, अतएव फूलों में निवास करने वाले लोग विलास और लालसा को सारा सोना नाव में लादकर विदा कर देते हैं। तब फूलों के देश के निवासी सुखी और सन्तुष्ट हो जाते हैं। प्रसाद जी ने रूपक पात्रों की सहायता से भारतीय संस्कृति की कल्याण-मयता और स्वतन्त्रता का शुभ सन्देश इन दोनों कार्यों को एक साथ प्रतिपादित किया है। इसका कथानक अतीव रोचकता-पूर्ण एवं प्रभावशाली है। इसमें उत्थान और विकास का क्रमिक रूप दिखाई पड़ता रहता है, जिसे हम मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कह सकते हैं।

६९२. पात्र—इसमें प्रयुक्त हुए पात्र मुख्यतः रूपक हैं। नैतिकतत्व पात्र—दुर्वृत्त और क्रूर हैं। मनोवैज्ञानिक पात्र-विलास, कामना, सन्तोष, दम्भ, लालसा महत्त्वकांक्षा, और करुणा हैं। अन्य पात्र—लीला है। अब हम इन पात्रों का सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे।

दुर्वृत्त—यह इस नाटक का एक पात्र है जो दुराचार का रूपक है। परन्तु दुराचरण को ही यह धर्म और संस्कृति समझता है। प्रमदा और दम्भ के विलासशील मनुष्यों के एकान्त संकेत स्थान के लिए नगर निर्माण की योजना बनने पर इसे बहुत प्रसन्नता होती है। यह कहता है कि इसमें सुन्दर महल, सार्वजनिक भोजनालय और मदिरा मन्दिरों को देखकर अर्द्धसभ्य देहाती विशेष आकर्षित होंगे, और इसमें धर्म-संस्कृति का विशेष प्रचार होगा। (पृष्ठ ६५)

क्रूर—यह भी इस नाटक का एक पात्र है और क्रूरता का रूपक है। दम्भ के द्वारा निर्मित होने वाले नगर के विषय में इसकी धारणा है कि वहा अधिक सोने की आवश्यकता होगी-व्यय इतना होगा कि लोगो को अभाव ग्रस्त हो जाना पड़ेगा और अन्य स्थानों से सुन्दर वस्तुओं का सग्रह करने के लिए वहा उद्योगधन्धो की नीव डालनी होगी। (पृष्ठ ६६)

विलास—यह विलास का रूपक है। इसका कहना है कि मनुष्य की मनुष्यता सुखा, विलासो के सचय और उसके उपभोग में है। नियमो के भले और बुरे दोनो प्रकार के कर्त्तव्य होते है। (पृष्ठ ३६)

कामना—यह मानव की अभिलाषाओ की रूपक है। इसका कहना है कि वह जो कुछ प्राप्त है, उससे भी अधिक और महान् पाना चाहती है, चाहे वह कुछ भी हो।

सन्तोष—यह मनुष्य की निस्पृहता का सूचक है। यह हरे भरे खेतो, पहाड़िया, झरनो, वृक्षो, गायो और उनके बच्चो को देखकर यही सोचता है कि इनसे भी अच्छा पदार्थ कोई दुनिया मे होगा ?[1]

दम्भ—यह मनुष्य के ढोंग का मूर्तिमान रूप है। इसी ढोंग को प्रश्रय और बढ़ावा देने के लिए विलासियो के रमण के हेतु सुन्दर-सुन्दर नये भवनो से युक्त नगर-निर्माण की योजना बनाना है जिसमे मदिरा की नदिया प्रवाहित होगी और उससे धर्म और सस्कृति के झरने प्रवाहित होगे। (पृष्ठ ६५)

लालसा—यह मनुष्य की वह चित्तवृत्ति है जो जीवन मे कभी भी सन्तोष का अनुभव नही करती। यह उन्मत्त विलास करने, मदिरा पीने और यथेच्छ विहार करने के उपरान्त भी असन्तुष्ट ही रहती है। (पृ० ७८)

महत्वाकाक्षा—यह मानव की उच्च अभिलाषाओ की रूपक है। इसका कहना है कि जब प्रकृति मे किसी प्रकार का सीमा चिन्ह नही है तो वह अपने सुखो के अनन्त साधनो का विकास क्यो न करें। (पृष्ठ ८२-८३)

---

१. ये हरे भरे खेत, छोटी-छोटी पहाड़ियों से ढुलकते-मचलते हुए झर ने—कुछ न समझने वाले उन्मत्त समुद्र कहां मिलेंगे। (पृष्ठ ४)

करुणा—यह मनुष्य की यह चित्तवृत्ति है जिसे हम दया कहते हैं। काम करते-करते थक कर चूर हुए सन्तोष से यह कहती है कि उसे आज बहुत काम करना पड़ा है इसलिए वह थक गया होगा। अतएव उसे चलकर कुछ खा लेना चाहिये। (पृष्ठ ८२)

लीला—यह क्रीडा की प्रतीक है, और विनोद की प्रियतमा है। यह अपने को तारा की सन्तान कहती है। यह वन लक्ष्मी से कहती है कि मनुष्य के लिए जितना स्वाभाविक है, वही अच्छा है। अन वह (वन लक्ष्मी) अभावों की सृष्टि करके जीवन को जटिल बना रही है। (पृ० १५)

६९३. इस नाटक मे तीन अंक, ८ दृश्य और १०० पृष्ठ है। साहित्यिकता का पुट लिए हुए यह कृति-सर्वथा अनुपम है।

उपसंहार

६९४. अनेक स्वतंत्र रूपक नाटकों का अध्ययन करने के पश्चात् हमें अन्य विविध विषयों पर भी 'प्रबोधचन्द्रोदय' की शैली में रूपक और प्रतीकों से समन्वित नाटक मिलते है।

६९५. 'गृहस्थ सुधार' नामक एक ऐसी रचना है जिसमें गृहस्थ सुधार सम्बन्धी अनेक उपयोगी विषयों पर विचार किया गया है। विषय के अनुसार अध्यायों का विभाजन है। प्रत्येक अध्याय अभिनयात्मक रूप में लिखा गया है। अभिनय के चार पात्र है—'ज्ञानप्रकाश', 'सत्यव्रत', 'सन्तोष कुमारी' और 'उसकी सास'। इन पात्रों के नाम रूपकात्मक एवं प्रतीकात्मक हैं। ये ही पात्र प्रत्येक विषय का अपने जीवन की समस्या को हल करने के रूप में वर्णन करते है। कथोपकथन, प्रश्नोत्तर, भाषण, उपदेश आदि की योजना करके प्रत्येक अध्याय को रोचक बना दिया गया है और ज्ञान भी सहज ग्राह्य हो गया है। प्रस्तुत पुस्तक की रचना श्री महात्मा प्रभु जी आश्रित महाराज ने श्रावण २००१ विक्रमी मे की थी।

६९६. 'कामदेव दमन नाटक' का प्रणयन प्यारेलाल रानम 'हरी' ने चन्दौसी से किया है। इस नाटक का तृतीय संस्करण भार्गव प्रिंटिंग वर्क्स चन्दौसी से प्रकाशित हुआ है। धार्मिक भावों को मनोवैज्ञानिक ढंग से रूपक शैली में व्यक्त करने वाला यह शिक्षाप्रद नाटक है। इस नाटक के रूपक पात्र—दंभ, ज्ञान, वैराग्य, शील, सतोष, धैर्य, विवेक, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, छल और अज्ञान है। इन रूपक पात्रों का चित्रण भी मनोवैज्ञानिक हुआ है।

६९७. 'स्वामी विवेकानन्द' नाटक मराठी भाषा का नाटक है। इसका अनुवाद प० लक्ष्मीधर वाजपेयी ने (सं० १९७४) सन् १९१७ ई० मे किया था।

इस नाटक के पात्रों का नाम भी भावतात्त्विक एवं प्रतीकात्मक है—चैत्यानन्द, विश्राम, शून्य हृदय, मत्सर, चतुर, असूया आदि। स्वामी विवेकानन्द के जीवन अमेरिका सम्बन्धी विशेष घटनायें इस नाटक का आधार है।

६९८. पौराणिक कथा लेकर भारतेन्दु जी ने 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में भी रूपक पात्रों का प्रयोग किया है, जैसे—पाप, धर्म, सत्य आदि प्रत्यक्ष पात्र के रूप में रंगमंच पर अभिनय करते है।

६९९. व्यास जी के शिष्य देव की रचना 'देवमाया प्रपंचनाटक'[1] नाम से मिलती है। यह रचना सत्रहवी ई० शताब्दी की है। यह भावात्मक रचना प्रबोधचन्द्रोदय की रूपक शैली में ही मानी गई है। विजयानन्द त्रिपाठी का एक 'महामोह विद्रावण नाटक' है। जिसकी रचना सन् १८८४ ई० की है। सम्भवतः इसमें मोहादिकों के पराजय की रूपक योजना है।[2] 'अद्भुत नाटक' कमलाचरण मिश्र की सन् १८८५ की रचना है। यह एक सामाजिक रूपक है।[3] रतनचन्द का 'न्याय सभा नाटक भी एक राजनैतिक रूपकात्मक रचना है।[4] सन् १९०४ में श्री किशोरी लाल ने 'नाट्य सम्भव' नाटक की रचना की थी। इसमें उन्होंने नाटक की कथा को रूपकात्मक शैली में व्यक्त किया है।[5] डा० सोमनाथ गुप्त जी ने दरियावसिंह

---

१. (क) हिन्दी साहित्य का इतिहास—पंडित रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १७०।
(ख) हिन्दी नाट्य साहित्य—बाबू ब्रजरत्नदास, पृष्ठ ४६।
(ग) हिन्दी नवरत्न—मिश्रबन्धु, पृष्ठ २२०-२२१।
(घ) हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास, डा० दशरथ ओझा, पृ० ५०९
२. आधुनिक हिन्दी साहित्य—डा० वार्ष्णेय, पृ० २४३।
३. (क) हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, डा० सोमनाथ गुप्त, पृ० ८१-८२।
(ख) हिन्दी नाट्य साहित्य—बाबू ब्रजरत्नदास, पृ० ११५।
४. (क) हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास—डा० सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ ८१-८२।
(ख) हिन्दी नाट्य साहित्य—बाबू ब्रजरत्नदास, पृ० ११२।
(ग) भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य—डा० गोपीनाथ तिवारी, पृष्ठ २२४।
५. (क) हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, डा० सोमनाथ गुप्त, पृ० १२४।
(ख) भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य—डा० गोपीनाथ तिवारी, पृष्ठ ४०१।

के नाटक 'मृत्यु सभा' को एक रूपात्मक रचना माना है।[१] इसका रचनाकाल सन् १८९६ ई० है।

७००. इस प्रकार प्रबोधचन्द्रोदय की रूपकात्मक शैली मे विविध प्रकार की स्वतत्र रचनाए मिलती है। अनुवादो और रूपान्तरो के अतिरिक्त स्वतत्र रचनाओ का इन विविध प्रकारो मे होना प्रबोधचन्द्रोदय की रूपक शैली की एक विस्तृत परम्परा को व्यक्त करता है।

नोट—प्रबोधचन्द्रोदय की हिन्दी परम्परा के स्वतत्र रूपक नाटको का (सक्षिप्त) परिचय आगे चार्ट (अ) मे दिया गया है और पात्रो का विशेष अध्ययन चार्ट (ब) मे दिया गया है।

१ हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास—डा. सोमनाथ गुप्त, पृ० ८१-८२।

(अ) स्वतन्त्र रूपक नाटकों का संक्षिप्त परिचय

क्रम संख्या	विभाजन	नाम व समय	उद्देश्य	कथा	पात्र-रूपक प्रतीक तथा प्ररूप
१		२	३	४	५
१.	आध्यात्मिक	'विज्ञान नाटक'—शकरानन्द (पहला भाग), सन् १९११ ई०, चतुर्थ प्रकाशन।	आत्मिक ज्ञान और विज्ञान स्वरूप ब्रह्मानन्द मे आत्मा का लय होना।	नश्वर और सअन् ससार मे निवृत्ति तथा विज्ञान स्वरूप मोक्ष प्राप्ति का प्रयत्न है।	मन (नट) विषयवासना (नटी), विज्ञान (राजा), प्रज्ञा (रानी), जीव (वृद्ध मनुष्य), श्रीगुरु साधु (ज्ञानी), शम (सिपाही), (श्रीगुरु के मन्त्री)—सन्तोष, सत्सग विचार, ज्ञान (विवेक वैराग्य), द्वारपाल, समता (दफ्तर), सेना, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा, समाधान।
२.	,,	'विज्ञान विजय नाटक'—शकरानन्द (द्वितीय भाग), सन् १९१३ रचनाकाल	अहकारादि विजय तथा विकारो पर सैद्धान्तिक प्रतिपादन	मन और असन् का सघर्ष तथा सन् की विजय।	सतपक्ष—विज्ञान (महाराज), प्रज्ञा (रानी) वैराग्य, दया, वेद और सतसग। असत-पक्ष—अज्ञान, काम, आलस्य, दम्भ, प्रवृत्ति।
३	,,	'ज्ञान गुण दर्पण नाटक'—शकरानन्द (तृतीय भाग), सन् १९१९ रचना काल	मुक्तिलाभ	मोक्ष सबधी ज्ञान वार्ता और ज्ञान के आवश्यक गुणो तथा प्रक्रियाओ को पात्र रूप देना।	मुमक्षु, विज्ञान, प्रज्ञा, उपनिषद्, वेद, अभय, निवृत्ति, विश्वास, विवेक, क्षमा, भक्ति, समाधान, निदिध्यासन।

क्रम संख्या	विभाजन	नाम व समय	उद्देश्य	कथा	पात्र-रूपक प्रतीक तथा प्ररूप
१		२	३	४	५
४	अध्यात्मिक	'लीला विज्ञान विनोद'— केशवानन्द जी, सन् १९११ रचनाकाल	ज्ञान प्रतिपादन और मोक्ष की ओर प्रवृत्ति।	मन्-असन् का संघर्ष और सन् की विजय	विज्ञानदेव, लीलादेवी, धनदास, अमीरी, जगत्कुमार, अहंकार, लोभ, धर्म, मन, विचार, फकीरी, सत्संग।
५	,,	'मायावी'—श्री ज्ञानदत्तसिद्ध सन् १९२२ ई०, नवम्बर, रचनाकाल	सदाचार के व्यवहार और आत्मिक-सुधार से ज्ञानवान बनने का उद्देश्य	संसार की माया में सदात्मा का संघर्ष	सरलसिंह (शुद्ध पवित्रात्मा नायक), मायावी (मायाजाल प्रतिनायक), अंतसराम (अन्तःकरण), मनाराम (मन), ज्ञानानन्द (सत्य और आत्मिक ज्ञान), बुद्धि (मानव बुद्धि-नायिका), फैशन और मदिरा।
६.	,,	'मद्रिका'—सद्गुरु शरण अवस्थी, सन् १९३० ई०, रचना	आध्यात्मिक ज्ञान के विश्लेषण में मन-मतान्तरों का समन्वय, नारी पुरुष की समान योग्यता की समस्या	मद्रिका से सम्बंधित कथा में विभिन्न मतों के समन्वय का प्रतिपादन।	ओंकार, सोहम्, ईश, रसमूल, चिन्ता, माया।

क्रम संख्या	विभाजन	नाम व समय	उद्देश्य	कथा	पात्र-रूपक प्रतीक तथा प्रकार
१		२	३	४	५
७	अध्यात्मिक	'सत्य का सैनिक'—नारायण प्रसाद बिन्दु सन् १९४८ ई०, प्रथम प्रकाशन	वासनाओं का नाश मोक्ष तथा व्यभिचारी साधुओं का सुधार	मानसिक विकारों के संघर्ष पर विजय तथा मोक्ष-प्राप्ति, साधु समाज के बाह्याडम्बर का चित्रण	सत्पक्ष—सत्व, रज, निवृत्ति, वैराग्य ब्रह्मचर्य ज्ञान, विवेक, विश्वास, भक्ति, प्रज्ञा, सरलता, विरक्ति और अभीप्सा। असत्पक्ष—तम, प्रवृत्ति, माया, अह, क्रोध, लोभ, काम-वासना, आसक्ति, मोह संशय।
१.	साहित्यिक	'न घर का न घाट का'—जी० पी० श्रीवास्तव, सन् १९५१ छठा प्रकाशन	पत्र-पत्रिकाओं के नैतिक सुधार का साहित्यिक उद्देश्य।	समाजराय का पत्रिकाओं के विकास के सम्बन्ध में मतभेद, उसकी आलोचना और विकास की प्रेरणा है। अछूतोद्धार, ईसाई मत के प्रचार की समस्या का प्रसंगवश समावेश किया गया है।	समाजराय, जनताराय, पाठकमल सफाईराय, भार्तीं शिक्षा, चाद।

क्रम संख्या	विभाजन	नाम व समय	उद्देश्य	कथा	पात्र-रूपक प्रतीक तथा प्रकरण
	१	२	३	४	५
२	साहित्यिक	'पत्र-पत्रिका सम्मेलन'—जी० पी० श्रीवास्तव, सन् १९२५ ई० रचनाकाल।	साहित्य में हास्यरस की दुर्दशा का चित्रण।	पत्र-पत्रिकाओं के सम्मेलन में हास्यरस की दुर्दशा का चित्रण, पत्र-पत्रिकाओं की अवस्था का वर्णन भी होता है।	हास्य—प्रकृति का पति, समाज, भारत-माता का पुत्र, साहित्य-सम्मेलन का सभापति, चाँद—मासिक पत्र, मतवाला, गोलमाल—हास्य पत्र, श्रीवेंकटेश्वर भारतमित्र—ग्राम गजट (समाचार पत्र), प्रकृति (हास्य की स्त्री), कला, स्वाभाविकता (प्रकृति की बहनें), भारतमाता (समाज की माँ), शिक्षा (कला की नौकरानी), माधुरी, सरस्वती, प्रभा, गल्पमाला, मनोरमा, मोहिनी (मासिक पत्रिकाएँ)।
१.	मनोवैज्ञानिक	'छलना'—भगवती प्रसाद बाजपेयी, रचना काल सन् १९३९ ई०	भौतिक जीवन में मनोवैज्ञानिक असन्तुष्टि और आदर्श की प्रधानता।	एक परिवार में विलासता के कारण असन्तुष्टि, विलासता के समाप्त होने पर जीवन व्यवस्थित चित्रित किया गया है।	बलराज, विलासचन्द, नवीनचन्द्र, कल्पना, कामना।

क्रम संख्या	विभाजन	नाम व समय	उद्देश्य	कथा	पात्र-रूपक प्रतीक तथा प्ररूप
	१	२	३	४	५
२	मनोवैज्ञानिक	'सन्तोष कहाँ'—सेठ गोविन्ददास, प्रथम प्रकाशन, सन् १९४५।	भौतिक जीवन में मनोवैज्ञानिक असन्तुष्टि की समस्या का हल।	मनसाराम नामक पात्र के जीवन की परिवर्तित परिस्थितियों की नाटकीय योजना है। मनसाराम को त्याग में ही सन्तुष्टि मिलती है।	मनसाराम और नीतिव्रत।
१	सामाजिक	'भारत ललना'—खगबहादुर मल्ल, द्वितीय प्रकाशन सन् १९०६।	भारत और नारी की दुर्दशा का चित्रण और जागरण सन्देश।	कलिराज और धर्मराज के संघर्ष में नारी के दुर्भाग्य और सौभाग्य के संघर्ष की कथा।	असत्पक्ष पात्र—कलियुग राजा, दुर्भाग्य, रोग, क्रोध, मूर्खता, कलह, निद्रा, वैधव्य और विधवा विवाह। सत्पक्ष—सौभाग्य, धर्म, पतिव्रत, उत्साह, उद्यम, विद्या, लक्ष्मी एकता, भारतमाता।
२	"	'मारवाड़ी घी'—एक जातीय हितैषी मारवाड़ी, प्रथम प्रकाशन, सन् १९१७ ई०।	मारवाड़ी (वनस्पति) की और समाज के दोषों का सुधार।	कलियुग के द्वारा घी के प्रचार का वर्णन और मारवाड़ी घी का प्रचार करनेवाले मारवाड़ी परिवार की कथा।	असत्पक्ष—कलियुग राजा (धर्मराज का विरोधी), अधर्म, पाखण्ड, वैर-विरोध, लोभ, मोह, स्वार्थपरता, फूट, अपव्यय, फिज़ूलखर्ची, मदिरा, जुआ। सत्पक्ष—सत्य और धर्म।

क्रम संख्या	विभाजन	नाम व समय	उद्देश्य	कथा	पात्र-रूपक प्रतीक तथा प्रारूप
	१	२	३	४	५
१	राजनैतिक	'भारत दुर्दशा'–भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, रचनाकाल सन् १८७६ ई०।	भारतकी दुर्दशा का चित्रण	भारत की दुर्दशा, स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष, अत्यन्त कष्ट में भारत का अन्त।	भारत, भारत-भाग्य, सत्यानाश, रोग, फूट डाह, लोभ, भय, मदिरा, आलस्य, अन्धकार, शोक, अश्रुमार्जन और निर्बलता, भारत दुर्दैव, डिस्लायल्टी, बंगाली, महाराष्ट्री, एडिटर, कवि।
२	,,	'अनोखा बलिदान'–उमाशंकर।	सच्चरित्रता के द्वारा कठोर परिश्रम से स्वतन्त्रता प्राप्ति।	नारी को वीरता और त्याग से पुत्र को स्वराज्य-प्राप्ति की कथा।	नेकी बदी, दुर्जन।
३.	,,	'स्वर्ण देश का उद्धार'–इन्द्र विद्या वाचस्पति रचनाकाल सन् १९२१ ई०।	देशभक्ति का प्रचार और स्वतन्त्रता-प्राप्ति।	न्याय और अत्याचार का संघर्ष, अन्त में न्याय की विजय की कथा।	धर्म और क्रूर, धर्मत्राण, कर्मदास, अनन्त प्रभा, धनदास।
४.	,,	'हिन्दू'–जमनादास मेहरा रचनाकाल सन् १९२२ई०	देशभक्ति का प्रचार और स्वतन्त्रता-प्राप्ति।	देश की स्वतन्त्रता के हेतु प्रयत्नों की कथा।	पृथ्वीमाता, हिन्द, स्वतन्त्रता, प्राचीनता, एकता, परतन्त्रता फैशन, नवीनता, अन्यायसिंह, दुर्भिक्ष, रोगराज, अत्याचार, स्वार्थराज, धनहरण, दमनसिंह, खिला-

क्रम संख्या	विभाजन	नाम व समय	उद्देश्य	कथा	पात्र-रूपक प्रतीक तथा प्ररूप
	१	२	३	४	५
					फत खाँ, राजमतसिंह, सत्यपाल, उद्योगानन्द, सुधारचन्द, प्रेमसिंह।
५.	राजनैतिक	'डिक्टेटर'-बेचन शर्मा 'उग्र' प्रकाशन सन् १९३७।	आदर्श जनता राज्य की स्थापना	अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष का चित्रण	जानबुल, अंकिलसाम, पेरी, डिक्टेटर, बकवादी, विप्लव।
६	,,	'भारत राज'—लक्ष्मीकांत, रचनाकाल सन् १९४९ई०	राजनैतिक चेतना का जागरण	विदेशी सत्ता से संघर्ष का चित्रण	भारतराज, धर्मराज, कर्मराज, मित्रराज, श्रद्धा, विज्ञानबाला, पश्चिमीबाला।
७.	संस्कृति	'कामना'—जयशंकरप्रसाद रचनाकाल सन् १९२७ई०	आध्यात्मिक सभ्यता की श्रेष्ठता-सिद्धि।	फूलदेश के निवासियों का भौतिक-संस्कृति से संघर्ष और आध्यात्मिकता से सुख शान्ति।	लीला, विलास, कामना, सन्तोष, क्रूर, दुर्वृत्त, दम्भ।

(ख) पात्रों का

विभाजन	नाम	तत्व रूपक		
		प्रकृति तत्व	नैतिक तत्व	आध्यात्मिक
१	२	३	४	५
१ आध्यात्मिक	विज्ञान नाटक		विषय वासना, तितिक्षा, दम, समता।	मन, विज्ञान, प्रज्ञा, जीव, शम, ज्ञान, सत्सग, वैराग्य, उपरति, विचार
२ ,,	विज्ञान-विजय			विज्ञान, प्रज्ञा, वैराग्य वेद, सत्सग, अज्ञान,
३ ,,	ज्ञानगुण दर्पण			मुमुक्षु, विज्ञान, प्रज्ञा, उपनिषद्, वेद, भक्ति, निदिध्यासन, निवृत्ति
४ ,,	लीला विज्ञान		फकीरी	विज्ञान, लीलादेवी, जगतकुमार, धर्म, मन, विचार, सत्सग
५ ,,	मायावी		फैशन, मदिरा	सरलसिंह (आत्मा), मायावी, अनसराम, मन्नाराम, ज्ञानचन्द
६ ,,	मुद्रिका			ओंकार, मोह, ईश, रसमूल, माया
७ ,,	सत्य का सैनिक		सरलता, विरक्ति	सत्व, रज निवृत्ति, वैराग्य, ब्रह्मचर्य, ज्ञान, भक्ति, प्रज्ञा, तम, प्रवृत्ति, माया
१. साहित्यिक	न घर का न घाट का			
२ ,,	पत्र-पत्रिका सम्मेलन			

मनोवैज्ञानिक	अन्य	प्रतीक पात्र	प्ररूप पात्र
६	७	८	९
सन्तोष, विवेक, श्रद्धा, समाधान			साधु
दया, काम, दम्भ, प्रवृत्ति			
अभय विश्वास, विवेक, क्षमा समाधान			
अहंकार, लोभ	अमीरी	धनदेव	
बाढ़			
चिन्ता			
अन्तरात्मा विवेक, विज्ञान, अहं, क्रोध, लोभ, काम, वासना, मोह, संशय, आसक्ति			
	समाज राय, जनता राय, पाठकमल, सफाईराय, भारती, शिक्षा, चाँद		
हास्य, प्रकृति	समाज, साहित्य, चाद (मासिक पत्र), मतवाला, गोलमाल (हास्य पत्र), कला, स्वाभाविकता, भारतमाता, शिक्षा, माधुरी, सरस्वती, प्रभा, गल्पमाला, मनोरमा, मोहिनी (मासिक पत्रिकाएँ)		

(ब) पात्रों का

विभाजन	नाम	तत्व रूपक		
		प्रकृति तत्व	नैतिक तत्व	आध्यात्मिक
१	२	३	४	६
१. मनोवैज्ञानिक	छलना		बलराज	
२ ,,	सन्तोष कहाँ ?		नीतिव्रत	
१ सामाजिक	भारत ललना	कलियुगराज, निद्रा	एकता, सत्य, भर्त्सना, कलह पतिव्रत, विधवा-विवाह	धर्म
२. ,,	मारवाडी घी	कलियुगराज	सत्य अधर्म, पाखंड, विरोध, धर्म अपव्यय, मदिरा, जुआ, फिजूल-खर्ची	
१. राजनैतिक	भारत दुर्दशा	रोग	सत्यानाश, मदिरा, आलस्य, अंधकार, अर्थमार्जन निर्बलता	
२ ,,	अनोखा बलिदान		नेकी बदी, दुर्जन	
३. ,,	स्वर्णदेश का उद्धार		क्रूर	धर्म
४. ,,	हिन्दू	रोगराज	एकता, फैशन, नवीनता, अत्याचार	
५. ,,	डिक्टेटर			
६ ,,	भारतराज			धर्मराज
१. संस्कृति	कामना		दुर्वृत्त, क्रूर	

मनोवैज्ञानिक	अन्य	प्रतीक पात्र	प्ररूप पात्र
६	७	८	९
कल्पना, कामना, नवीन चन्द्र, विलासचन्द्र			
मनसाराम			
क्रोध, उत्साह उद्यम	भारतमाता, दुर्भाग्य, सौभाग्य, वैधव्य, विद्या, लक्ष्मी		
वैर, लोभ, मोह, स्वार्थ-परता, फूट			
फूट, डाह, लोभ, भय, शोक	भारत, भारत-भाग्य, भारत-दुर्दैव, डिस्ला-यल्टी		बंगाली, महाराष्ट्री, एडिटर, कवि
	अनन्तप्रभा	कर्मदास, धनदास	
स्वार्थराज	पृथ्वीमाता, हिन्द, स्वतन्त्रता, प्राचीनता, परतन्त्रता, दुर्भिक्ष	अन्यायसिंह, धनहरण, दमनसिंह, खिलाफत खाँ, राजमत्तसिंह, सत्य-पाल, उद्योगानन्द, सुधारचन्द, प्रेमसिंह	
		जानबुल, अंकिल साम, पेरी, डिक्टेटर, बकवादी, विप्लव	
श्रद्धा	भारतराज, कर्मराज	मित्रराज	विज्ञानबाला, पश्चिमी बाला
विलास, कामना, सन्तोष, दम्भ	लीला		

अष्टम अध्याय

प्रबोधचन्द्रोदय की हिन्दी परम्परा के अंशतः प्रभावित नाटक

७०१ इससे पूर्व के अध्याय में विवेचित स्वतन्त्र रूपक नाटकों के अतिरिक्त हिन्दी साहित्य में कुछ ऐसी भी नाट्य रचनाएँ प्रस्तुत हुई जो 'प्रबोधचन्द्रोदय' की रूपक शैली से कथावस्तु, घटनाचक्र और अधिकांश पात्रों में नितान्त पार्थक्य रखती है, परन्तु उनके प्रसग-प्राप्त कुछ पात्रो मे 'प्रबोधचन्द्रोदय' की रूपक शैली की स्पष्ट छाया आलोकित होती है। तात्पर्य यह है कि ऐसे नाटको मे केवल कुछ पात्र ही 'प्रबोधचन्द्रोदय' की शैली के प्रयुक्त हुए है जब कि अन्य तत्त्व पूर्णत मौलिक रहे है। निश्चय ही इन नाटको को न तो हम 'प्रबोधचन्द्रोदय' के अनुवादो की कोटि के अन्तर्गत रख सकते है और न रूपान्तर और स्वतन्त्र रूपक नाटकों की ही कक्षा मे प्रविष्ट कर सकते है, क्योंकि ये रचनाए सभी दृष्टियो से उपरोक्त रचनाओ से अपना पार्थक्य रखती है। ऐसी अवस्था मे इस प्रश्न का उत्तर कि इनको किस कोटि मे रखा जाय, कुछ जटिल सा दिखलाई पड़ता है। हम देखते हैं कि इन रचनाओ मे कुछ पात्र ही प्रबोधचन्द्रोदय की शैली मे प्रभावित रहे है। इस प्रकार यह प्रभाव आंशिक रूप मे ही हुआ है, यह स्पष्ट है। अतएव यदि हम इन नाटको को प्रबोध-चन्द्रोदय की हिन्दी परम्परा मे अंशत प्रभावित नाटक—कहे तो कदाचित सत्य के अधिक निकट होगा। प्रस्तुत अध्याय मे हम इसी नाम से इन नाटको मे प्रबोध-चन्द्रोदय के प्रभाव (पात्रो का) का अध्ययन करेगे।

७०२ इस कोटि की जितनी भी रचनाएँ उपलब्ध हो सकी है[1] उनका सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करने पर उन्हे निम्नलिखित श्रेणियो मे, अधिक सुविधा के साथ, विभाजित किया जा सकता है—

१ धार्मिक सुधार सम्बन्धी

२ सामाजिक सुधार सम्बन्धी

---

१. रचनाओ के नाम चार्ट में द्रष्टव्य हैं।

३. राजनैतिक

७०३. अब हम उपरोक्त शीर्षकों के अन्तर्गत आने वाली नाट्य रचनाओं का उद्देश्य तथा सामान्य परिचय के साथ उनके पात्रों का अध्ययन क्रमश करेंगे।

७०४. उद्देश्य—प्रत्येक रचना के मूल मे कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। इस दृष्टि से यदि हम इन नाटको पर विचार करे तो स्पष्टत प्रतीत होगा कि उपरोक्त तीनो श्रेणियो के नाटको के पृथक् पृथक् उद्देश्य थे। अब हम यहा यह देखने का प्रयास करेगे कि किस श्रेणी के नाटको का उनकी रचना के पीछे क्या उद्देश्य था।

७०५ धार्मिक सुधार सम्बन्धी—सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो इस श्रेणी के सभी नाटको मे उद्देश्य के रूप मे धार्मिकता का सूत्र चाहे यह सुधार के रूप मे हो या अपने वास्तविक स्वरूप मे—ओतप्रोत है। फिर भी—प्रत्येक रचना मे इस सामान्य उद्देश्य के अन्तर्गत उनके अवान्तर उद्देश्य भी निहित है—जैसे 'अत्याचार का अन्त' नामक नाटक का उद्देश्य धर्म के आत्मिक बल की विजय दिखाकर अत्याचार की पराजय के द्वारा देश का जागरण, रखा गया है तथा 'कलि युगागमन' का उद्देश्य कालेज के विद्यार्थियो को उपदेश देना, निर्धारित है। ये दोनो ही धार्मिकता की परिधि म आते हैं। इसी प्रकार किसी का उद्देश्य सत्य पालन की शिक्षा देना, किसी का धार्मिक सुधार के द्वारा देश की स्वतन्त्रता को बल देना, किसी का नास्तिको को आस्तिकता का उपदेश, मदिरापान आदि दोषों से सावधान करना और वनस्पति घी के प्रचार का विरोध करना, किसी का व्यभिचारी साधुओ मे सुधार की आकाक्षा, किसी का बुद्ध भगवान् की अहिंसा के प्रचार की उद्दाम अभिलाषा का होना, किसी का मानवजीवन के ऊपर मनोविकारो के प्रभाव का अकन, किसी का न्यायपूर्ण व्यवहार से धर्म की विजय दिखाना, किसी का अत्याचारो और विपत्तियो पर धर्म की विजय का चित्रण और किसी का उद्देश्य महात्मा निम्बार्क के सिद्धान्तो का प्रचार-प्रसार तथा साधुओ के सुधार से सम्बन्धित रहा है।

७०६. सामाजिक-सुधार-सम्बन्धी—इस श्रेणी के भी सभी नाटको मे यद्यपि सामान्य रूप से सामाजिक सुधार का ही उद्देश्य मुखर रहा है फिर भी पृथक् पृथक् इसके कई स्तर देखे जा सकते है—जैसे 'जनकनन्दिनी' मे भगवती जानकी के चरित्र के आधार पर नारी समाज के चरित्र को सुधारने का उद्देश्य सामने रखा गया है। इसी प्रकार किसी का उद्देश्य विद्यार्थियो को शिक्षा प्रसार की प्रेरणा देना, किसी का अनमेल विवाह को रोकना और लोगो मे देशभक्ति का प्रचार करना, किसी का बाल-विवाह से होने वाले दोषो से लोगो को सावधान करना, किसी का सूद की प्रथा मे सुधार और गाव की जागृति करना, किसी का ब्राह्मणो के पाखण्डो का

उद्घाटन तथा वेश्या एवं हरिजनों की दीन दशा को सुधार के साथ देश भक्ति का प्रचार करना, किसी का बालकों को निर्भीक और वीर बनने की प्रेरणा देना, किसी का सत्य की विजय और असत्य की पराजय को चित्रित करना, किसी का नारी चरित्र की पवित्रता का वर्णन करना और किसी का विवाह सम्बन्धी कुरीतियों को दूर करने की उत्कट इच्छा का होना रहा है।

७०७. राजनैतिक—प्रायः इस श्रेणी के सभी नाटकों में देश की राजनैतिक स्थिति ही मुखर रही है। यह दूसरी बात है कि उसकी पृष्ठभूमि में कुछ दूसरे उद्देश्य भी झाकते प्रतीत हों। उदाहरण के लिए—'आजकल' नामक नाटक में देश की राजनैतिक स्थिति के पीछे महात्मा गान्धी के अहिंसा-सिद्धान्त के प्रचार की कामना छिपी हुई है। अन्य नाटकों के विशेष उद्देश्य यो है—किसी का उद्देश्य देशभक्ति का प्रचार करना, किसी का देश में जागृति की भावना को प्रसारित करना, किसी में स्वतन्त्रता प्राप्ति रूपी लक्ष्य की ओर देश की जनता को अग्रसर करना तथा हिन्दू और मुसलमान—इन दोनों ही जातियों के बीच एकता उत्पन्न करने का प्रयास करना, किसी का देश में नारी-जागृति का प्रोत्साहन देना, किसी का हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदायों में एकता लाते हुए देशभक्ति का प्रचार करना, किसी का देश की विभिन्न जातियों में सौजन्य और ऐक्य की ज्योति जगा कर स्वतन्त्रता के लिए जनता को प्रेरित करना, किसी का सत्य और अहिंसा का प्रचार करना और किसी का देशभक्ति का विकास करना रहा है।

७०८. कथानक—जैसा कि पहले कहा जा चुका है इन नाटकों के कथानकों के ऊपर प्रबोधचन्द्रोदय के रूपकात्मक कथानक का कोई प्रभाव दृष्टिगत नहीं होता। कथानक के आधार पर हम इन्हें विशुद्ध साहित्यिक नाटक कह सकते हैं। परन्तु फिर भी इनमें प्रसगत कथानक के किसी अंग में उसके आदि मध्य या अन्त में आंशिक रूप में ही रूपक शैली का आभास मिल जाता है। इन अंशों में दो-चार रूपक पात्र किसी उद्देश्य-विशेष के लिए रंगमंच पर लाए जाते हैं और नाटककार अपना उद्देश्य पूरा कर इन्हें विदा कर देता है। उदाहरण के लिए 'अत्याचार का अन्त' नामक धार्मिक नाटक में कंस-वध की कथा है। इसके कथा के प्रारम्भ के पूर्व ही लेखक ने एक प्रसंग में परतन्त्र भारत की स्थिति का वर्णन रूपक पात्रों के द्वारा कराकर उन्हें रंगमंच से तिरोहित कर दिया है। 'जनकनन्दिनी' जो कि एक सामाजिक नाटक है और जिसमें भवभूति के 'उत्तर राम चरित' से मिलती जुलती सीता-वनवास की कथा दी गई है—की कथा के प्रारम्भ में ही भावतात्त्विक और रूपकात्मक—अहंकार और क्रोध आदि—पात्रों का प्रयोग कर कथानक को गतिशील बनाया गया है। उसी प्रकार 'आजकल' नामक राजनैतिक नाटक के कथानक में

प्रसंगवश दो प्रतीक पात्रो—व्यगलाल और सत्यव्रत—की योजना की गई है। इन्ही दोनो पात्रो के द्वारा गान्धी जी की अहिसा और सत्य के पालन की व्यवस्था कराई गई है। अब हम इन तीनो ही श्रेणियो के नाटको के कथानको का सामान्य परिचय देगे।

७०९ धार्मिक-सुधार-सम्बन्धी—इस श्रेणी के सभी नाटको मे कथानक धार्मिकता का पुट लिए हुए है। इनमे से किसी मे यदि कंस-वध की कथा है तो किसी मे राजा परीक्षित की, किसी मे सत्यवादी हरिश्चन्द्र का कथानक है तो किसी मे महात्मा बुद्ध का किसी मे विभिन्न प्रसगो के आधार पर धार्मिक सुधार की कथा है तो किसी मे सुदामा और कृष्ण की कथा दी हुई है, किसी मे धार्मिक जीवन व्यतीत करने वाले किसी धनी परिवार की कथा दी गई है तो किसी मे किसी धार्मिक राजा की कथा है। इसी प्रकार एक नाटक मे श्री निम्बार्क महामुनीन्द्र का चरित्र अंकित किया गया है। तात्पर्य यह कि सभी के कथानको मे धार्मिकता भरी हुई है।

७१० सामाजिक सुधार-सम्बन्धी—इस वर्ग के सभी नाटको मे कथानक सामाजिक सुधार से ही सम्बन्ध रखने वाले है। इनमे से, यदि किसी मे अधिक अध्ययन की इच्छा रखने वाले किसी बालक की करुण कहानी दी हुई है तो किसी मे सती सीता के वनवास की कथा दी गई है, किसी मे किसी धनिक पुत्र की कथा है तो किसी मे अज्ञान-चन्द नामक किसी मूर्ख की कथा है, किसी मे सूदखोर महाजन की कथा है तो किसी मे कानूनीमल वकील साहब की कथा है, किसी मे स्काउटो का कथानक चित्रित किया गया है तो किसी मे किसी झूठबोलने वाले व्यक्ति की कथा का अकन किया गया है, किसी मे किसी साहसी नारी द्वारा अपने सतीत्व की रक्षा के प्रयत्न की कथा है तो किसी मे किसी व्यक्ति के द्वारा अपनी भाजी के विवाह के लिए एक व्यक्ति की हत्या के लिए प्रयास का कथानक दिया गया है। निष्कर्ष यह है कि समाज के किसी न किसी वर्ग से सम्बन्धित ही कथानक इनमे दिए हुए है।

७११ राजनैतिक—इस वर्ग के नाटको के कथानको मे देश की तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का सजीव चित्र अंकित किया गया है। इनमे से, यदि, किसी मे अहिसा और सत्याग्रह के अनुयायी किसी देशभक्त की कहानी दी गई है तो किसी मे न्याय-पथ पर चलने वाले किसी देशभक्त के द्वारा देश की शासन-सत्ता के प्राप्त करने की कथा है, यदि किसी में देशभक्तो के चुनाव और अंग्रेजो के शासन प्रबन्ध की कहानी है, तो किसी मे दो देशभक्त परिवारो की कथा अंकित है, किसी मे नारी जागृति के सम्बन्ध में कोई कथानक दिया हुआ है तो किसी मे राज्य-विशेष मे रहने वाले हिन्दुओ और मुसलमानो की एकता के सूत्र मे बाधने की कथा दी गई है, किसी मे भारत की स्वतन्त्रता के लिए हिन्दू-मुसलमान, सिख और ईसाई आदि जातियो

के सम्मिलित प्रयत्न की कथा का सयोजन किया गया है तो किसी मे अत्याचारी राजा से प्रजा के सघर्ष और उसकी विजय की कथा चित्रित की गई है। इसी प्रकार एक मे एक देशभक्त की कहानी दी गई है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन सभी नाटको के कथानक राजनीति की किसी न किसी गतिविधि से परिपूर्ण है।

७१२ पात्र—जैसा कि पहले बताया गया है कि इन नाटको के पात्रो पर ही प्रबोधचन्द्रोदय की रूपकात्मक शैली का कुछ प्रभाव पडा है। अत अब हमे यह देखना है कि इन नाटको मे कुल कितने रूपकात्मक भावनात्विक पात्र प्रयुक्त हुए है उनका स्वरूप क्या रहा है, अमुक पात्र कितने नाटको मे प्रयुक्त हुआ है तथा इन पात्रो की प्रबोधचन्द्रोदय और स्वतन्त्र रूपक नाटको के पात्रो से कितनी समता और विषमता है आदि। इसके लिए हमे प्रथम उद्देश्यो के आधार पर विभाजित नाटको मे पात्रो के प्रयोग को देखना आवश्यक होगा। धार्मिक सुधार सम्बन्धी—नाटको मे निम्नलिखित रूपकात्मक भावनात्विक प्रतीक और प्ररूप पात्र प्रयुक्त हुए है—

धर्म, लज्जा, शान्ति, दया, एकता, सत्य, सरस्वती, भारतमाता, प्रेम। विचार, कलियुग, कुमत, मदिरा, रोगराज आलस, चौपटसिह। सत्य, पाप। भारतमाता, धर्म, द्वापर, क्रोध कलि, पाप फटदेव। कलियुगराज अधर्म, काम, मोह, लोभ, क्रोध, अहकार, तृष्णा, मदिरा, जीवनशाह, धनदास नास्तिक, चातक (वेश्या), पादडी। पृथ्वीमाता, शान्ति, दया, धर्म पाखण्ड, स्वार्थ हिंसा, धनपति, साध, पुजारी, स्त्री। भक्ति, लोभ, अशान्ति। धर्मपाल, न्यायसेन। धर्म, अधर्म, धर्मसेन। करुणा, दया, सौशील्य, सौहार्द, स्वामिता, सत्यप्रतिज्ञता, कृतज्ञता, शरण्यता, उदारता, वीरता वीरता, वैराग्य, ज्ञान, भक्ति धर्मानन्द, शिष्य, उलूकानन्द, और मूर्खानन्द।[1]

७१३ सामाजिक-सुधार-सम्बन्धी नाटको मे निम्नलिखित रूपकात्मक भावनात्विक प्रतीक और प्ररूप पात्र प्रयुक्त हुए है—

आशा, आत्मसम्मान, कर्तव्य, छात्र। पाप, काम, क्रोध, लोभ, मोह अहकार, भावी, कम। ज्ञानप्रकाश, धमदास, स्वार्थचन्द्र, लालपचन्द करमसिह। अज्ञानचन्द्र, दुराचारीसिह, रगीलेसिह मूदीमल सुधारचन्द। कानूनीमल, यमदूत, यमराज, धर्मराज, ढबढब पाण्डेय, भग्गू चोधरी, मनमोहिनी (वेश्या)। धाखराम, अविद्या बाई, विद्यावती, ज्ञानचन्द, साहसनाथ, तर्कप्रसाद। फटचन्द, ठीकचन्द चन्द्रादयसिह, दुर्जनसिह, ज्ञानचन्द स्वार्थ वृद्धि, क्षुदवृद्धि, अज्ञानसिह, उन्मत्तसिह, धृष्ट बुद्धि, करोडीमल। मनहूसलाल, कम्बख्तलाल, दुखदेई, मोतीप्रसाद और बिगडे दिल।[2]

---

१ देखिये चार्ट (अ)

२. देखिये चार्ट (अ)

७१४. राजनैतिक नाटकों में निम्नलिखित रूपकात्मक भावतात्विक प्रतीक और प्ररूप पात्र प्रयुक्त है—

व्यगलाल, सत्यव्रत। ज्ञानशंकर, जालिमसिंह, चौपटानन्द। बेढगासिंह, उपाध्याय, खुशामदचन्द, पेटूलाल, अमृतलाल। शक्ति, धर्म, भारतमाता, कर्मवीर, बीरबल, ईमानदार, धर्म, भारतमाता ब्रिटेनिका, नारीजाति, सत्यधर्म, प्रेम, ऐक्य, शान्ति, बुद्ध सत्व, फूट, मदिरा, आलस्य, दुर्दैव। भारतमाता, हिन्दू, मुसलमान, बगाली, सिक्ख, सत्यवक्ता, वक्रमेन, प्रकाशचन्द और दुर्जनसिंह।[1]

७१५. विभाजन—उपरोक्त तीनों प्रकार के नाटको मे प्रयुक्त सभी पात्रो को हम निम्नलिखित वर्गों मे विभाजित कर सकते है—१, तत्वरूपक, २ प्रतीक और प्ररूप।

(क) तत्वरूपक—वर्ग के पात्रो को पाच उपवर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—प्रकृति तत्व, नैतिक तत्व, आध्यात्मिक मनोवैज्ञानिक और अन्य।

प्रकृतितत्व—मे य पात्र आते है—कलियुग, रोगराज, द्वापर, कलि, कलियुगराज और यमराज।

नैतिक तत्व—मे ये पात्र आते है—कुमत, मदिरा, आलस, चौपट सिंह, सत्य, पाप, फूटदेव, अधर्म मदिरा, पाखण्ड, अधर्म, स्वामिता, सत्य प्रतिज्ञता, कृतज्ञता, शरण्यता, उदारता, धीरता वीरता, कर्तव्य, पाप, घोखेराम, अविद्याबाई, विद्यावती, ज्ञानचन्द, एकता, फूट, मदिरा और आलस्य।

आध्यात्मिक—मे ये पात्र आते है—धर्म, धर्म, धर्म, भक्ति, धर्म, वैराग्य, ज्ञान, भक्ति, धर्मराज, धम, धर्म, सत्य और धर्म।

मनोवैज्ञानिक—मे ये पात्र आते है—लज्जा, शान्ति, दया प्रेम, एकता, विचार, क्रोध, काम, मोह, लोभ, क्रोध, अहकार, तृष्णा, शान्ति, दया, स्वार्थ, हिसा, लोभ, अशान्ति, करुणा, दया, सौशील्य, सौहार्द, आशा, आत्मसम्मान, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहकार, साहसनाथ, तर्क प्रसाद, प्रेम और शान्ति।

अन्य—मे ये पात्र आते है—सरस्वती, भारतमाता, भारतमाता, पृथ्वीमाता, भावी, कर्म, यमदूत, शक्ति, भारतमाता, भारतमाता, बुद्ध-सत्व, दुर्दैव और भारतमाता।

(ख) प्रतीक—वर्ग मे निम्नलिखित पात्र आते हैं—जीवनशाह, धनदास, धर्मपाल, न्यायसेन, धर्मसेन, ज्ञानप्रकाश, धर्मदास, स्वार्थचन्द, लोलुपचन्द, क्रूरसिंह, अज्ञानचन्द, दुराचारीसिंह, रंगीलेसिंह, सूदीमल, सुधीरचन्द, कानूनीमल, झूठचन्द,

---

१ देखिये चार्ट (अ)

ठीकचन्द, चद्रोदयसिह, ज्ञानचन्द्र, स्वार्थ बुद्धि, क्षुद्र बुद्धि, अज्ञान सिंह, उन्मत्तसिह धृष्टबुद्धि, करोडीमल, मनहूसलाल, कम्बख्तलाल, दुखदेई, धोतीप्रसाद, बिगड दिल, व्यगलाल, सत्यव्रत, ज्ञानशकर, जालिमसिह, चौपटानन्द, वेढगासिह, उपाध्याय, खुशामदचन्द, पेटूलाल, अमृतलाल, कर्मवीर, वीरबल, ईमानदार, सत्यवक्ता, वक्रसेन, प्रकाशचन्द्र और दुर्जनसिह।

(ग) प्ररूप--वर्ग के अन्तर्गत निम्नलिखित पात्र आते हैं नास्तिक, चातक (वेश्या), पादडी, धनपति, पुजारी, साधु स्त्री धर्मानन्द, शिष्य, उल्लूकानन्द, मूर्खानन्द, छात्र, डवढव पाण्डे, भग्गु चौधरी, मनमोहिनी, ब्रिटेनिका, नारी जाति, हिन्दू, मुसलमान बगाली और सिक्ख।

किस पात्र का कितने नाटको मे प्रयोग हुआ

७१६ सामान्यत अधिकाश पात्र एक ही नाटक मे प्रयुक्त हुए है। किन्तु कुछ ऐसे भी पात्र है जो दो या उससे अधिक नाटको मे प्रयुक्त हुए है। नीचे एक से अधिक नाटको मे प्रयुक्त होने वाले पात्रो की सूची दी जा रही है।

७१७ दो नाटको मे प्रयुक्त होने वाले पात्र इस प्रकार है— अधर्म, अहकार आलस्य, एकता, कलियुग, काम दुर्जनसिह, प्रेम इष्टदेव, भक्ति, मोह और ज्ञानचन्द।

७१८. तीन नाटको मे प्रयुक्त पात्र इस प्रकार है क्रोध, दया, पाप, मदिरा लोभ, शान्ति और सत्य।

७१९. पाच नाटको मे 'भारतमाता' नाम पात्र और नौ नाटको मे 'धर्म' नामक पात्र का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त सभी पात्र एक-एक नाटक मे प्रयुक्त हुए है।

स्वरूपत एक होते हुए भी विभिन्न नामो से प्रयोग

७२०. इन पात्रो मे कुछ पात्र ऐसे भी है जो अर्थ मे तो समान है किन्तु नाटककारो के द्वारा विभिन्नता लाने के उद्देश्य से भिन्न-भिन्न नामो से प्रयुक्त किए गए है। ऐसे पात्रो की सूची निम्नलिखित है

कलि, कलियुग, कलियुगराज।

अज्ञानचन्द, अविद्याबाई, अज्ञानसिह, प्रकाशचन्द।

करोडीमल, धनदास, धनपति।

कानूनीमल, तर्क प्रसाद।

क्रूरसिह, जालिमसिह, दुराचारीसिह, दुर्जनसिह, धृष्टबुद्धि, बिगडे दिल, उन्मत्तसिह।

चौपटसिंह, चौपटानन्द, मूर्खानन्द।
धर्मपाल, धर्मानन्द, धर्मदास, न्यायसेन।
सत्यव्रत, सत्यवक्ता।
ज्ञानप्रकाश, ज्ञानचन्द, ज्ञानशंकर।
कर्म, कर्तव्य।

स्वतन्त्र रूपक नाटकों के पात्रों से समता

७२१. स्वतन्त्र रूपक नाटकों और इन नाटकों के निम्नलिखित पात्र, अर्थ और रूप दोनों में समता रखते हैं

अधर्म, अहंकार, आलस, काम, क्रोध, कलियुग, दया, धनदास, फूट, बंगाली, भक्ति, भारतमाता, मदिरा, मोह, राग, विचार, वैराग्य, स्वार्थ, सत्य और ज्ञान।

कुछ पात्र थोड़े से रूपान्तर के पश्चात् रूपकनाटक के पात्रों से समता रखते हैं। जैसे—

अज्ञान	अज्ञानचन्द
क्रूर	क्रूरसिंह
कर्मदास	कर्मवीर
दुर्जन	दुर्जनसिंह
प्रेमसिंह	प्रेम
भाग्न दुर्दैव	दुर्दैव
मूर्खता	मूर्खानन्द
स्वार्थपरता	स्वार्थचन्द
ज्ञानानन्द	ज्ञानचन्द

स्वतन्त्र रूपक नाटकों में अप्रयुक्त पात्र

७२२. इन अंशतः प्रभावित नाटकों में कुछ ऐसे पात्रों का भी प्रयोग हुआ है जो स्वतन्त्र रूपक नाटकों में प्रयुक्त नहीं हुए हैं, जैसे—लज्जा, तृष्णा, शान्ति, हिंसा, स्वामिता, सत्यप्रतिज्ञता, कृतज्ञता, शरण्यता, शौशील्य, वीरता, आत्मसम्मान, छात्र, भावी, द्वापर, चौपटसिंह, उन्मत्तसिंह, कम्बख्तलाल, धोतीप्रसाद, बेढगसिंह उपाध्याय, ईमानदार, धोखेराम, ढबढब पाण्डेय, भग्ग चौधरी, रंगीले सिंह और व्यंगलाल आदि।

प्रबोध चन्द्रोदय के पात्रो से समता

७२३. इन नाटको के निम्नलिखित पात्र प्रबोधचन्द्रोदय के पात्रो से समता रखते है —

विचार, वैराग्य, मोह, काम, क्रोध, लोभ, अहकार, कलियुग, हिसा, तृष्णा, शान्ति और करुणा। प्रबोधचन्द्रोदय का चार्वाक इन नाटको मे 'नास्तिक' के रूप मे प्रयुक्त हुआ है।

पात्रो की उपादेयता

७२४ प्रबोधचन्द्रोदय की शैली के पात्रो से प्रभावित हिन्दी परम्परा मे प्रयुक्त पात्रो की कई उपयोगिताओं को ध्यान मे रखकर प्रयोग किया गया है। नीचे हम उन उपयोगिताओ और उनके लिए प्रयुक्त पात्रो का सामान्य विवरण प्रस्तुत करेगे।

७२५ इन राजनैतिक, सामाजिक, एव धार्मिक नाटको मे प्रबोधचन्द्रोदय की हिन्दी परम्परा मे जिन रूपक, प्रतीक और प्रारूप पात्रो का प्रयोग हुआ है, उनसे नाटककारो की समस्याए सजीव रूप मे चित्रित हो सकी है और उनके द्वारा दिये गये सुधार और समाधान की सत्प्रेरणा सदा के लिए अमर हो गई।

७२६ नाटककारो ने समाज की भावना के सस्कार और परिष्कार के लिए, सद्भावनाओं के रूपक पात्रो का प्रयोग करके समाज को आदर्श-भावना-सम्पन्न बनाना चाहा। इनके लिए उन्होने लज्जा, शान्ति, दया, प्रेम, विचार, करुणा, सौशील्य, सौहार्द, स्वामिता, सत्यप्रतिज्ञता कृतज्ञता शरण्यता उदारता, धीरता, वीरता, वैराग्य, आशा, आत्मसम्मान, कर्तव्य कर्म और शक्ति जैसे रूपक पात्रो का प्रयोग किया।

७२७ इन नाटककारो ने इन आदर्श भावनाओ से सम्पन्न समाज की कल्पना करके स्वतन्त्र देश की दृढ नीव डालनी चाही थी। उस समय का समाज लोभ, मोह, तृष्णा और फूट आदि भावनाओ के कारण पतनोन्मुख हो रहा था। उस पतनोन्मुख समाज का सच्चा चित्र खीचने के लिये नाटककारो ने पाप क्रोध, काम, मोह, लोभ, क्रोध, अहकार, तृष्णा पाखण्ड, स्वार्थ, हिंसा, अशान्ति और फूट जैसे असद्भावनाओं के पात्रो को रगमच पर उतारा।

७२८ उस समय के समाज मे धार्मिक विश्वास अधिक था। यह धार्मिकता अधिकाश मे अन्धविश्वास की सकुचित सीमा मे जकडी हुई थी। उस सकुचित सीमा का परित्याग कर, धर्म का व्यापक स्वरूप देने की उद्दाम कामना से इन नाटककारो ने धर्म, सत्य, सरस्वती, भक्ति और ज्ञान जैसे धार्मिक पात्रो का प्रयोग किया। इसके अतिरिक्त इन नाटककारो का ध्यान समाज मे व्याप्त नैतिक दोषो की ओर भी

गया। उनसे समाज को मुक्त करने के लिए उसमें पूर्ण नैतिकता की प्राण-प्रतिष्ठा करने के लिए और उन दोषों का जिनके कि कारण समाज दूषित हो चुका था, स्वरूपोद्घाटन करने के निमित्त इन नाटककारों ने चौपटसिंह, स्वार्थचन्द, लोलुपचन्द, धनपति, क्रूरसिंह, अज्ञानचन्द, दुराचारीसिंह, रंगीले सिंह, धोखेराम, झूठचन्द, दुर्जनसिंह, स्वार्थबुद्धि, क्षुद्रबुद्धि, उन्मत्तसिंह, धृष्टबुद्धि, करोड़ीमल, मनहूसलाल, कम्बख्तलाल, दुखदेह, बिगडेदिल, जालिमसिंह, चापटनानन्द, बेढगासिह उपाध्याय, खुशामदचन्द और वक्रसेन जैसे नैतिक दोष वाले पात्रों का प्रयोग किया है ताकि लोग इनके स्वरूप को समझ सके।

७२९. इन नैतिक दोषों के अलावा समाज में अनेक प्रकार के दोष प्रविष्ट हो गये थे। जैसे कलह का होना, अधर्म की भावना की वृद्धि का होना, लोगों में नाना प्रकार की विपरीत बुद्धियों का सद्भाव, मदिरापान, गन्दे रहने के कारण रोगों का चारों तरफ फैलना, समाज का अकर्मण्य होकर बैठा रहना, लोगों में वेश्यागमन की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलना, सूदखोर सेठों के द्वारा गरीब जनता से सूद पर सूद लेकर उनका सर्वस्व अपहरण कर लेना, लोगों में अशिक्षा के साम्राज्य का फैलना, रूढ़िवादी लोगों का अपनी विनाशकारिणी परम्पराओं से चिपटे रहना तथा लोगों के धन को एकत्रित कर उनको किसी भी कार्य में न लाना आदि उस समय अतीव वृद्धि पर थे। इन सब दोषों को समाज से दूर करने की कल्पना से ही इन नाटककारों ने निम्न लिखित पात्रों का प्रयोग कर व्यंग्य रूप से समाज पर कठोर प्रहार किया है। वे पात्र निम्न है —

कुमति, मदिरा, रोगराज, आलस, चातव वेश्या, सूदीमल, अविद्याबाई, धनीप्रमाद और पेटूलाल।

७३०. इसके अतिरिक्त उस समय के समाज में एक क्रान्तिकारी सुधार का आन्दोलन चल रहा था। इसके लिए इन लोगों ने निम्नलिखित पात्रों का प्रयोग कर समाज के सम्मुख धर्म के सत्य स्वरूप को उपस्थित करने की चेष्टा की। यह कार्य इन पात्रों के द्वारा किया गया —

एकता, भारतमाता, पृथ्वीमाता, न्यायसेन, धर्मसेन, छात्र, ज्ञानप्रकाश, धर्मदास, सुधारचन्द, कानूनीमल, विद्यावती, ज्ञानचन्द, साहसनाथ, तर्कप्रसाद, ठीकचन्द, व्ययलाल, सत्यव्रत, ज्ञानशंकर, अमृतलाल, कर्मवीर, ईमानदार, नारी जाति, सत्यवक्ता आदि।

७३१ इन सबके अलावा उस समय के समाज में फैले नास्तिकों, जिनके कि कारण समाज में अनैतिकता एवं अनुशासन हीनता की भावना की वृद्धि होती है—लोगों में अराष्ट्रीय भावनाओं को भड़काने वाले पादरी, समाज को दूषित करने

वाले साधु और पुजारी, दुनिया को मूर्ख बनाने वाले लोग और ढोंगियों के प्रभाव से समाज को मुक्त करने की आवश्यकता भी बनी हुई थी। इन सबके लिए इन लोगों ने नास्तिक पादड़ी, साधु, पुजारी, धर्मानन्द, शिष्य, उलूकानन्द, मूर्खानन्द, ढबढब पाण्डेय और भग्गू चौधरी जैसे पात्रों का प्रयोग किया है।

७३२ इन सब दोषों के मूल कारण में विद्यमान है कलियुग और अधर्म। इन लोगों ने कलियुग के दोषों और अधर्म के सभी अत्याचारों को समाज के समक्ष रखने के उद्देश्य से ही इन कलियुग और अधर्म जैसे पात्रों का प्रयोग किया है।

७३३ इन पात्रों के अलावा ब्रिटेनिका, बंगाली और सिक्ख जैसे प्ररूप पात्र भी इसमें प्रयुक्त हुए है। उनका उद्देश्य तत्कालीन समाज में होने वाली तत्तत् प्रान्तीय एवं देशज भावनाओं को चित्रित कर उनके दोषों की ओर संकेत करना है।

७३४ इस प्रकार उपरोक्त पात्रों के प्रयोग के द्वारा इन नाटककारों ने समाज और उस समय की राजनीति आदि में आए हुए जिन दोषों के परिहार की चेष्टा की थी—वे दोष आज भी—भारत के स्वतन्त्र होने के एक दशक बाद भी—वर्तमान है। अतएव इस दिशा में किये गये उपरोक्त नाटककारों के प्रयत्नों की आज के युग में कम आवश्यकता नहीं है। इन दोषों को दूर करने के लिए उपरोक्त नाटकों के रूपक-प्रतीक एवं प्ररूप पात्र अपने मत एवं सजीव रूप में मानो उन्हें चुनौती दे रहे हैं।

नोट—प्रबोधचन्द्रोदय की हिन्दी परम्परा के अन्तर्गत प्रभावित नाटकों का (संक्षिप्त) परिचय आगे चार्ट (अ) में दिया गया है और पात्रों का विशेष अध्ययन चार्ट (ब) में दिया गया है।

अंशतः प्रभावित नाटकों का संक्षिप्त परिचय

क्रम संख्या	विभाजन	नाम व समय	उद्देश्य	कथा	पात्र
	१	२	३	४	५
१	धार्मिकसुधार	'अत्याचार का अंत'—श्री वशिष्ठ, प्रथम प्रकाशन, सन् १९२२	धर्म के आत्मिक बल की विजय अत्याचार की पराजय दिखा कर देश के जागरण का उद्देश्य।	कंस बध की कथा के साथ ही भारत की अवस्था का चित्रण।	धर्म, लज्जा, शान्ति, दया एकता, सत्य, सरस्वती, भारतमाता, प्रेम।
२	,,	'कलियुगागमन'—पं० रामेश्वरदत्त, तृतीय प्रकाशन, सन् १९२२ ई०	कालेज विद्यार्थियों को सदुपदेश	राजा परीक्षित की कथा	सतपक्ष—धर्म, विचार। असतपक्ष—कलियुग, कुमत, मदिरा, रोगराज, आलस, चौपटसिंह।
३.	,,	'सत्य हरिश्चन्द्र'—मास्टर निसादरसिंह, प्रथम प्रकाशन सन् १९३६।	सत्यपालन की शिक्षा	सत्यवादी हरिश्चन्द्र की कथा	सतपक्ष—सत्य। असतपक्ष—पाप।
४	,,	'कर्मवीर'—पं० रेवतीनन्दन भूषण, प्रथम प्रकाशन, सन् १९२५ ई०	धार्मिक सुधार की प्रेरणा से समाज और देश की उन्नति।	राजा परीक्षित की कथा के साथ भारतदेश की दशा का चित्रण।	सतपक्ष—भारतमाता, धर्म और द्वापर। असतपक्ष—क्रोध, कलि, पाप और फूटदेव।

क्रम संख्या	विभाजन	नाम व समय	उद्देश्य	कथा	पात्र
	१	२	३	४	५
५	धार्मिकसुधार	'जीवन मुक्त नाटक'—पं० भगवानदत्त पाण्डेय, प्रथम प्रकाशन, सन् १९२७ ई०	नास्तिकों को आस्तिकता का उपदेश मदिरा और वेश्यादि दोषों का सुधार, मारवाड़ी घी के प्रचार का विरोध।	एक ज्ञानी साधु विभिन्न प्रसंगों में सुधार ज्ञान का प्रारम्भ करता है।	कलियुगराज, अधर्म काम, मोह, लोभ, क्रोध, अहंकार तृष्णा मदिरा, जीवनशाह, धनदास, नास्तिक चातक (वेश्या), पादड़ी।
६	,,	'बुद्धदेव'—श्री विश्वम्भर सहाय प्रकाशन सन् १९३५	बुद्धमत की दया, अहिंसा का प्रचार व्यभिचारी साधुओं का सुधार	महात्मा बुद्ध के जीवन की कथा	पृथ्वीमाता, शान्ति दया, धर्म, पाखण्ड, स्वार्थ, हिंसा, धनपति साधु, पुजारी, स्त्री।
७.	,,	'दीन नरेश'—प्रो० सरनाम-सिंह शर्मा 'अरुण' प्रकाशन जयपुर से।	मनोविकारों का प्रभाव	सुदामा और कृष्ण की कथा	भक्ति, लोभ, अशान्ति।
८.	,,	'स्वार्थी संसार'—श्री दास प्रकाशन उपन्यास बहार आफिस।	न्यायपूर्ण व्यवहार से धर्म की विजय।	न्यायपूर्ण जीवन व्यतीत करनेवाले धर्मी परिवार की कथा।	धर्मपाल, न्यायसेन।

क्रम संख्या	विभाजन	नाम व समय	उद्देश्य	कथा	पात्र
	१	२	३	४	५
९.	धार्मिकसुधार	'अधर्म का अन्त'—श्री मोहन लाल गुप्त, प्रकाशन, सन् १९३८ ई०।	अन्याचारी विधर्मियों पर धर्म की विजय।	धर्मपालन करनेवाले राजा की कथा।	धर्म, अधर्म, धर्मसेन।
१०.	,,	'श्री निम्बार्कावतरण'—दान बिहारीलाल शर्मा प्रथम प्रकाशन, सन् १९३२ ई०।	श्री निम्बार्क के सिद्धान्तों का प्रचार तथा साधुओं का सुधार।	श्री निम्बार्क का जीवन-चरित्र	करुणा, दया, सौशील्य, सौहार्द स्वामिता, सत्य, प्रतिज्ञता, कृतज्ञता, शरण्यता, उदारता, धीरता, वीरता, वैराग्य, ज्ञान, भक्ति, धर्मानन्द, शिष्य, उलूकानन्द, मूर्खानन्द।
११.	सामाजिक	'छात्र दुर्दशा'—पाण्डेय लोचन शर्मा, प्रकाशन, सन् १९१५।	विद्यार्थियों में शिक्षा प्रसार की प्रेरणा।	अधिक अध्ययन करने की इच्छा करने वाले विद्यार्थी की करुण कहानी।	आशा, आत्मसम्मान, कर्तव्य, छात्र।
१२.	सामाजिक सुधार	'जनक नन्दिनी'—पण्डित तुलसीदत्त शैदा, प्रथम प्रकाशन, सन् १९२५ ई०।	नारी के सच्चरित्र का चित्रण।	सती सीता की बनवास की कथा।	पाप, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, भावी, कर्म।

क्रम संख्या	विभाजन	नाम व समय	उद्देश्य	कथा	पात्र
	१	२	३	४	५
१३	सामाजिक सुधार	'भारत रमणी'—श्री दुर्गाप्रसाद जी, प्रथम प्रकाशन, सन् १९२३ ई०।	अनमेल विवाह का सुधार और देशभक्ति का प्रचार	एक धनी पुत्र की कथा है।	सतपक्ष—ज्ञानप्रकाश, धर्मदास। असतपक्ष—स्वार्थचन्द्र, लोलुपचन्द, क्रूरसिंह।
१४	.	'बाल्य विवाह दूषक,—प० देवदत्त मिश्र, प्रथम प्रकाशन सन् १८८५ ई०।	बालविवाह के दोषों का सुधार।	अज्ञानचन्द नामक एक मूर्ख की कथा।	अज्ञानचन्द, दुराचारीसिंह, रंगीलेसिंह।
१५	,,	लकडबग्घा'—श्री जी०पी० श्रीवास्तव, सन् १९२७ ई० ई० के लगभग रचना।	सूदकी प्रथाका सुधार और गाँव की जनता में जागृति।	सूदखोर महाजन की कथा	सूदीमल, सुधारचन्द।
१६		'लोक परलोक'—श्री जी० पी० श्रीवास्तव, प्रथम प्रकाशन, सन् १९५० ई०।	ब्राह्मणों के पाखण्ड का, वेश्या का तथा हरिजनों का सुधार के साथ देशभक्ति का प्रचार।	कानूनीम वकील की कथा है उसमें अन्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अन्य प्रासंगिक कथाएँ भी मिली हुई है।	कानूनीमल, यमदूत, यमराज, धर्मराज, डबढब पाण्डे, भग्गू चौधरी, मनमोहिनी वेश्या।

क्रम संख्या	विभाजन	नाम व समय	उद्देश्य	कथा	पात्र
१		२	३	४	५
१७	सामाजिक सुधार	'सच्चा भूत'–पं० दशरथ ओझा बाल नाटक माला का प्रकाशन सन् १९४६ ई०	बालकों को निडर और वीर बनने की प्रेरणा।	स्काउटों की कथा।	धर्मराम, अविद्याबाई, विद्यावती, ज्ञानचन्द मोहनमनाथ, तर्कप्रसाद।
१८	,,	'सच की खोज'–पं० विद्याप्रसाद जी शुक्ल, प्रकाशन, सन् १९४६ ई०।	सत्य की विजय, झूठ की पराजय।	एक झूठ बोलने वाले व्यक्ति की कथा।	झूठचन्द, ठीकचन्द।
१९	,,	'सती चरित्र नाटक'–श्री हनुमन सिंह रघुवंशी, रचना सन् १९०१ ई०।	नारी चरित्र की पवित्रता का वर्णन।	साहसी नारी द्वारा अपने सतीत्व की रक्षा करने की कथा।	चन्द्रोदयसिंह, दुर्जनसिंह, ज्ञानचन्द्र, स्वार्थबुद्धि, क्षुद्र बुद्धि, अज्ञानसिंह, उन्मत्तसिंह, धृष्ट बुद्धि, करोड़ीमल।
२०	,,	'गड़बड़ झाला'–श्री जी० पी० श्रीवास्तव, छठा प्रकाशन, सन् १९५१ ई०।	विवाह सम्बन्धी कुरीतियों का सुधार।	अपनी भाजी के विवाह के लिए एक प्रयत्नशील व्यक्ति की कथा।	मनहूसलाल, कम्बख्तलाल, दुखदेई, घोंनीप्रसाद, बिगड़े दिल।
२१.	राजनैतिक	'आजकल'–श्री ताराप्रसाद वर्मा, प्रकाशन १९३९ ई०।	गांधी के अहिंसा और सत्याग्रह का प्रचार।	अहिंसा और सत्याग्रह के अनुयायी देशभक्त की कहानी।	व्यगलाल और सत्यव्रत।

क्रम संख्या	विभाजन	नाम व समय	उद्देश्य	कथा	पात्र
	१	२	३	४	५
२२	,,	'कराल चक्र'—श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय, प्रथम प्रकाशन, सन् १९३३ ई०।	देशभक्ति का प्रचार	न्याय के अनुयायी देशभक्त का शासन सत्ता प्राप्त होने की कथा।	ज्ञानशंकर, जालिमसिंह, चौपटानन्द।
२३	,,	'कौंसिल के उम्मीदवार'—पं० हरशंकर प्रसाद उपाध्याय, प्रथम प्रकाशन, सन् १९२१ ई०।	देश जागृति	देशभक्तों के चुनाव और अंग्रेजों के शासन प्रबन्ध की कथा।	बैठगासिंह, उपाध्याय, खुशामदचन्द, पेटूलाल तथा अमृतलाल।
२४.	राजनैतिक	'देश दीपक'—लाला किशनलाल जैबा, प्रथम, सस्क०, सन् १९२२ ई०।	स्वतन्त्रता प्राप्ति और हिन्दू मुस्लिम एकता।	दो देशभक्त परिवारों की कथा।	शक्ति, धर्म, भारतमाता, कर्मवीर, बीरबल, ईमानदार।
२५.	,,	'भारतमाता'—श्री राधेश्याम कथावाचक, रचना, सन् १९१९ ई०।	देश में नारी जागृति।	नारी जागृति की कथा।	धर्म और भारतमाता, ब्रिटेनिका, नारीजाति।

क्रम संख्या	विभाजन	नाम व समय	उद्देश्य	कथा	पात्र
१		२	३	४	५
२६	,,	'भारतोदय'—पण्डित रामगोपाल मिश्र, प्रकाशन सन् १९३० ई०।	हिन्दू मुस्लिम एकता देशभक्ति का प्रचार।	हिन्दू और मुसलमानो की एकता की एक राज्य मे सम्बन्धित कथा।	सतपक्ष—सत्य, धर्म, प्रेम, ऐक्य, शान्ति, बुद्ध, सत्व । असतपक्ष—फूट, मदिरा, आलस्य और दुर्दैव।
२७	,,	'भारतवर्ष'—श्रीदुर्गाप्रसाद गुरु, प्रकाशन उपन्यास बहार आफिस।	विभिन्न जातियों की एकता और देशभक्ति का प्रचार	हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि सभी जातियों के सम्मिलित प्रयत्न मे भारतमाता के प्रसन्न होने की कथा।	भारतमाता, हिन्दू, मुसलमान, बगाली और सिख।
२८.	,,	'सत्यविजय'—कवि गोकुलप्रसाद, द्वितीय स० उपन्यास न्यास बहार आफिस	सत्य अहिंसा का प्रचार।	अत्याचारी राजा से सघर्ष और सत्य की विजय।	सत्यवक्ता, वक्रसेन।
२९.	,,	'सघर्ष'—श्री छगनलाल जैन प्रकाशन १९४९ ई०।	देशभक्ति का प्रचार।	एक देशभक्त की कथा।	प्रकाशचन्द्र और दुर्जनसिंह।

विभाजन	नाटक का नाम	तत्व रूपक		
		प्रकृति तत्व	नैतिक तत्व	आध्यात्मिक
१	२	३	४	५
१. धार्मिक सुधार	अत्याचार का अंत		सत्व	धर्म
२. ,,	कलियुगागमन	कलियुग, रोगराज	कुमत, मदिरा, आलस, चौपटसिंह	धर्म
३. ,,	सत्य हरिश्चन्द्र		सत्य, पाप	
४. ,,	कर्मवीर	द्वापर, कलि	पाप, फूटदेव	धर्म
५. ,,	जीवनमुक्त नाटक	कलियुग राज	अधर्म, मदिरा	
६. ,,	बुद्धदेव		पाखण्ड	
७. ,,	दीन नरेश			भक्ति
८. ,,	स्वार्थी समार			
९. ,,	अधर्म का अन्त		अधर्म	धर्म
१०. ,,	श्री निम्बार्क		स्वामिता, सत्य, प्रतिज्ञता कृतज्ञता, शरण्यता, उदारता, धीरता वीरता	वैराग्य, ज्ञान, भक्ति
१. सामाजिक सुधार	छात्र दुर्दशा		कर्त्तव्य	
२: ,,	जनकनन्दिनी		पाप	
३: ,,	भारत-रमणी			
४. ,,	बाल्यविवाह दूषक			
५. ,,	लकड़बग्घा			

मनोवैज्ञानिक	अन्य	प्रतीक पात्र	प्रतिनिधि पात्र
६	७	८	९
लज्जा, शान्ति, दया, प्रेम, एकता	सरस्वती, भारतमाता		
विचार			
क्रोध	भारतमाता		
काम, मोह, लोभ, क्रोध, अहंकार तृष्णा		जीवनशाह, धनदास	नास्तिक, चातक (वेश्या) पादड़ी
शान्ति दया, धर्म, न्याय हिंसा	पृथ्वीमाता		धनपति, पुजारी, साधु, मन्त्री
लोभ, अशान्ति			
		धर्मपाल, न्यायसेन	
		धर्मसेन	
करुणा दया सौजन्य, सौहार्द			धर्मानन्द, शिष्य, उत्कलानन्द, मूर्खानन्द (साधु)
आशा, आत्मसम्मान			छात्र
काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार	भावी कम		
		ज्ञानप्रकाश, धर्मदास, स्वार्थचन्द, लोलुपचन्द, कर्मसिंह	
		अज्ञानचन्द, दुराचारीसिंह, रंगीलेसिंह	
		सूदीमल, सुधारचन्द	

(ब) पात्रों का

विभाजन		नाटक का नाम	तत्व रूपक		
			प्रकृति तत्व	नैतिक तत्व	आध्यात्मिक
१		२	३	४	५
६.	,,	लोक परलोक	यमराज		धर्मराज
७.	,,	सच्चा-भूत		घोखेराम, अविद्या-बाई, विद्यावती, ज्ञानचन्द	
८.	,,	सच की खोज			
९	,,	सतीचरित्र नाटक			
१०.	,,	गड़बड़झाला			
१. राजनैतिक		आजकल			
२	,,	करालचक्र			
३	,,	कौंसिल के उम्मीद-वार			
४	,,	देशदीपक			धर्म
५	,,	भारतमाता			धर्म
६	,,	भारतोदय		एकता, फट, मदिरा, आलस्य।	सत्य, धर्म
७	,,	भारतवर्ष			
८	,,	सत्य विजय			
९	,,	सघर्ष			

		प्रतीक पात्र	प्रनिनिधि पात्र
मनोवैज्ञानिक	अन्य		
६	७	८	९
	यमदूत	कानूनीमल	ढवढब पाण्डे, भग्गू चौधरी, मनमोहिनी
साहसनाथ, तर्कप्रसाद			
		झूठचन्द, ठीकचन्द	
		चन्द्रोदयसिंह, दुर्जनसिंह, ज्ञानचन्द, स्वार्थबुद्धि, क्षुद्रबुद्धि, अज्ञानसिंह, उन्मत्तसिंह, धृष्टबुद्धि, करोड़ीमल	
		मनहूसलाल, कम्बख्तलाल, दुखदेई, धोतीप्रसाद, बिगड़े दिल	
		व्यंगलाल, सत्यव्रत	
		ज्ञानशंकर, जालिमसिंह, चौपटानन्द	
		वेढंगासिंह उपाध्याय, खुशामदचन्द, पेटूलाल, अमृतलाल	
	शक्ति, भारतमाता	कर्मवीर, बीरबल, ईमानदार	
	भारतमाता		
प्रेम, शान्ति	बुद्धसत्व, दुर्दैव		
	भारतमाता		हिन्दू, मुसलमान, बंगाली और सिक्ख
		सत्यवक्ता, वक्रसेन	
		प्रकाशचन्द्र, दुर्जनसिंह	

नवम अध्याय

प्रबोधचन्द्रोदय की हिन्दी परम्परा में धर्म और संस्कृति

७३५. विगत अध्यायो मे 'प्रबोधचन्द्रोदय' और उसकी हिन्दी परम्परा मे आने वाले अनुवादो, रूपान्तरो, स्वतन्त्र रूपक नाटको एव अंशत प्रभावित रचनाओ का एक आलोचनात्मक एव शास्त्रीय अध्ययन कर लेने के उपरान्त उपरोक्त परम्परा मे धर्म और संस्कृति का अध्ययन करना अतीव आवश्यक प्रतीत होता है। धर्म और संस्कृति समाज का प्राण या जीवन होती है। अतएव उस समाज मे रहनेवाले ग्रन्थ के लेखक और उसकी परम्परा के प्रवर्तको मे अनिवार्य रूप से ग्रन्थकार की अनिच्छा के होते हुए भी, हठात् उसके कुछ तत्व आ मिलते है। इसी धर्म और संस्कृति के तत्व समूह के कारण ही उन ग्रन्थो और रचनाओ मे जीवनी शक्ति का उदय होता है जिसके बल पर वे कल्पान्त तक अजर और अमर बने रहते है। परन्तु जिन ग्रन्थो मे इस जीवनी शक्ति का अभाव होता है वे अकाल मे ही काल कवलित होते देखे गये है। इस प्रकार विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म और संस्कृति वे आधार स्तम्भ है जिनके आधार पर किसी देश या समाज तथा जिनका चित्रण करने पर किसी ग्रन्थ के जीवन-प्रासाद का स्थायित्व निर्भर करता है। 'प्रबोध-चन्द्रोदय' ने महान् गौरव, अपूर्व जीवनी शक्ति और विशाल परम्परा के प्रवर्तन मे, उसके, तत्कालीन देश और समाज के विभिन्न वर्गो और सम्प्रदायो के विकीर्ण सांस्कृतिक तत्वो के समन्वयात्मक प्रस्तुतीकरण मे जो योगदान किया है, वह इतिहास के पृष्ठो मे स्वर्णाक्षरो मे अंकित है, और सुदूर भविष्य मे भी अंकित रहेगा। संस्कृति के इस महत्व को देखते हुए यह आवश्यक ही नही अनिवार्य भी प्रतीत होता है कि यह देखा जावे कि उस महान् ग्रन्थ की विशाल परम्परा मे उसके सांस्कृतिक तत्वो का किस सीमा तक संरक्षण हो पाया है और किस सीमा तक, परिवर्तित सामाजिक परिस्थितियो मे अंकुरित नवीन सांस्कृतिक चेतना का संस्थापन किया गया है।

७३६ जैसा कि देख चुके हैं—यह परम्परा बहुत विशाल है। एक तो इसम

आने वाले कुछ ग्रन्थों का अभी तक ठीक से काल निर्धारण भी नहीं हो पाया है तथा कुछ ऐसे भी ग्रन्थ है जिनमें सास्कृतिक तत्वों को खोज निकालना कोई सरल कार्य नही, क्योकि वे 'प्रबोधचन्द्रोदय' के केवल अनुवाद होने के कारण अपने समय की संस्कृति का चित्रण अपने आप मे ठीक से प्रस्तुत न कर सके, साथ ही अनुवादो के अव्यवस्थित, विश्रृखल और मनमाना छोटा बडा कर देने के कारण 'प्रबोधचन्द्रोदय' मे चित्रित सस्कृति का भी सरक्षण इनमे नही हो सका है। दूसरे इस परम्परा में प्राप्त स्वतन्त्र रूपक नाटको एव अशत. प्रभावित रचनाओं मे अवश्य ही नवीन समाज की नयी सास्कृतिक चेतना जागरूक है। परन्तु इसका अध्ययन पृथक् अनुसन्धान की अपेक्षा रखता है। अत हम यहा पर केवल प्रबोधचन्द्रोदय के अनुवादो और रूपान्तरो मे प्राप्त सामग्री के आधार पर झलकने वाले धर्म और सस्कृति के तत्वो की एक झलक मात्र प्रस्तुत करते है।

७३७ अब यहा पर पहले अनुवादो, उसके बाद रूपान्तरो का अध्ययन करेगे। इनमे भी हम 'कालक्रम' के अनुसार एक-एक को लेगे।

७३८ मल्ह कवि का अनुवाद (१५४४ ई०)—इस अनुवाद मे अत्यन्त सक्षेप से काम लिया गया है। फलस्वरूप 'प्रबोधचन्द्रोदय' के दार्शनिक स्थलो का अनुवाद बहुत ही सक्षिप्त हो गया है। इसलिए धर्म और सस्कृति के ऊपर इससे अधिक प्रकाश नही पडता। कही कही कुछ तत्व बिखरे अवश्य है, जैसे—जैन साधु को 'खोना', कापालिक को 'जगम' और बौद्ध साधु को 'भिखू' कहा गया है। साथ ही साधुओ के व्यभिचार का भी वर्णन किया गया है। इससे जहा यह सिद्ध होता है कि कवि ने अनुवाद को मूल रूप के निकट लाने का प्रयास किया है, वहा यह भी सिद्ध होता है कि उस समय के समाज मे धार्मिक बाह्याडम्बरो की प्रधानता थी। साधुओं का प्रचार था। जनता साधारणतया इन लोगो के चक्कर मे फस जाती थी। जैन साधुओ को 'खोना' और कापालिको को 'जगम' कहा जाना, तत्कालीन समाज की देन है।

इसी प्रकार—

> बिप्तदेह पुनि तिलक ललाटा।
> शंख चक्र भुप धरे पाटा॥छन्द ५॥

यह प्रकट करता है कि साधुओ का एक सम्प्रदाय ललाट में तिलक और बाहुओं मे शंख और चक्र का चिन्ह धारण करता था।

७३९ महाराज जसवन्तसिह का अनुवाद (सन् १६४३)—यह अनुवाद भी सास्कृतिक अशो को जैन, बौद्ध आदि की आलोचना को सक्षेप में प्रस्तुत

करता है। फिर भी व्यभिचारी साधुओ के आडम्बरो का विस्तृत वर्णन किया गया है। गम्भीर तत्वो के विवेचन मे लेखक नही गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय के समाज मे किन्ही कारणो से जैनियो और बौद्धो की आलोचना की प्रवृत्ति घट रही थी—जब कि साधुओ के आडम्बर अपने पूर्ण यौवन पर थे। लडाई झगडे के कारण शायद धार्मिको मे दर्शन शास्त्र की ओर झुकाव कम हो गया था। इसमे 'विष्णु भक्ति' के स्थान पर 'आसतिकता' को लाया गया है। इससे यह प्रतीत होता है कि उस समय के समाज मे विष्णुभक्ति का कोई विशेष महत्व नही रह गया था। इसलिए सभी मे ग्राह्य 'आसतिकता' को ही जसवन्त सिंह जी ने पात्र रूप मे ग्रहण किया।

७४० ब्रजवासीदास का अनुवाद (१७६० ई०)—इसमे विस्तार से पाखण्डो एव आडम्बरो का वर्णन किया गया है। इसके वर्णन से प्रतीत होता है कि समाज मे अन्धविश्वास जड जमाए हुए थे। वैष्णव सम्प्रदाय के लोग छापा-तिलक का प्रयोग करते थे। यति, सेवरा, साधु और सन्यासी आदि का आपस मे कलह करते देख प्रतीत होता कि ये लोग अपने लक्ष्य तत्व चिन्तन से पराङ्मुख होकर केवल बकवादी हो गये थे। जैसे—

> लम्बी धोती कटि तट लसै। नामांकित जु उपरना लसै।
> टोपी अति चटकीली लाल। छापा तिलक विराजत भाल।
> चारु जनेऊ अरु उर माल। नैन रसील बचन रसीले।
> इत उत धरी पोथी बनी। तकिया गादी उज्ज्वल बनी।।

इसके इन पद्यो से उस समय के पाखण्डी धार्मिक समाज का चित्र प्रत्यक्ष हो जाता है।

७४१ गुलाबसिंह का अनुवाद (सन् १७८९)—गुलाबसिंह जी सिक्ख मत के अनुयायी थे। इसलिए इनके अनुवाद मे गुरु गोविन्दसिंह जी की वन्दना की गई है। फिर भी उनमे सकुचित विचार नहीं दिखाई पडते। उन्होने 'नारायण' के भक्तो की भी चर्चा की है—बहुनाम नारायण मांहि, प्रीति सुजन को आई।—कवि ने कुबुद्धि और अनाचार जैसे नये पात्रो का प्रवेश किया है जिससे यह प्रतीत होता है कि उस समय के समाज मे कुबुद्धि और अनाचार का बोलबाला था। लोग धर्म को बहुत सकीर्ण दृष्टि से देखने लगे थे।

> उर निस वासर दमडा चाहे कबहू न होवें रामरति

इसके इस पद्यांश से प्रतीत होता है कि साधु-समाज पैसे के पीछे पड़ा रहता था। राम मे उसका कोई सम्बन्ध नही रह गया था।

७४२. नानकदास का अनुवाद (सन् १७८९)—इस अनुवाद मे समाज के साधुओं का वर्णन विस्तार के साथ दिया गया है। साधु लोग कण्ठी, माला, छापा, तिलक आदि लगाकर लोगो को ठगा करते थे। वे दम्भी तथा ताडी पीने वाले होते थे। नानक दास ने यह भी बताया है कि मथुरा और काशी आदि तीर्थों मे भी प्रतिभाशाली विद्वान नही रह गए थे—'इन तीर्थन पर ब्राह्मण केते—कितना कठोर व्यग्य है। शूद्र जातिया शस्त्र और शास्त्र मे पारगत थी, जब कि ब्राह्मण उस से विमुख हो चले थे—शूद्र ओ वर्ग को दिये शस्त्र शास्त्र विचार। इससे यह भी प्रतीत होता है कि उस समय जैन साधु—'श्रेवरा' और बौद्ध साधु 'पूज' कहे जाते थे। समाज की स्थिति को नीचे का पद्य कितनी सुन्दरता के साथ व्यक्त करता है—

दिन मे भेष बनाइ के बठे ताड़ी लाइ।
निशि सोवे कइ मास अपि नारी कण्ठ लगाई॥

७४३ घोंकल मिश्र का अनुवाद (सन १७९९)—इस अनुवाद मे साधुओं और सन्यासियो के आपसी विरोध और आडम्बरो का वर्णन नही किया गया है। पौराणिक देवताओं पर ग्रन्थकर्ता की विशेष श्रद्धा दीख पडती है। वस्तुत देश का एक बड़ा वर्ग पौराणिक सस्कृति पर ही अधिक विश्वास करता है। यह अनुवाद उन्ही लोगो का प्रतिनिधित्व करता है। अनुवादक साधुओ के अर्थ मे 'पण्डे और दम्भ' के वर्णन के प्रसग मे 'सिद्ध महन्त' के नाम से इन्हे अभिहित करता है। जैसे—

देवो भोवनि मत्त करे वृत्तए मुडित कच मुंडा।
बेदरन को पढ़े पढावे, कहै बड़े हम पडा॥ (पृ० २०)
सिद्ध महन्त को यह आसन।
किहि विधि वास विचारयो। (पृष्ठ ५३)

इससे बात की भी व्यंजना होती है कि साधु आदि उस समय भी पाखण्डी ही थे।

७४४. अयोध्या प्रसाद चौधरी का अनुवाद (सन् १८८५)—इस अनुवादक ने बड़े ही सक्षेप मे वाद-विवाद के अशो का अनुवाद कर दिया है। जैनो और बौद्धो को केवल दम्भी और विलासी कह कर छोड़ दिया है। इससे यह अनुमान होता है कि इनकी प्रवृत्ति मतो के विरोध की ओर थी। फिर भी पौराणिक देवताओ की और उसकी श्रद्धा का परिचय उसके अनुवाद से लगता है। इसमे विष्णु की नवधा भक्ति का वर्णन किया गया है जिससे ग्रन्थकार पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव प्रतीत होता है। यहाँ पर श्री मन्नारायण की उपासना और स्मरण को मोक्ष का उपाय बताया गया है। इससे भी अनुवादक का वैष्णव धर्म की ओर विशेष झुकाव प्रतीत होता

है। वैष्णव सम्प्रदाय के छापा तिलक आदि का भी उल्लेख इसमे मिलता है, जैसे—
"हमको क्या स्त्री पुरुष सब कोई छापा तिलक लगाओ जिससे सब दुख दूर हो।"

७४५. भुवदेव दुबे का अनुवाद (सन् १८९३)—यह अनुवाद ब्रजवासीदास के आधार पर किया गया है। इसलिए इसमे धर्म और संस्कृति के स्वरूप की ओर जो भी संकेत मिलते है, वे इसके अपने न होकर के, ब्रजवासीदास के अनुवाद के हैं। किन्तु कुछ तो ग्रन्थकर्ता ने उस ओर संकेत किया ही है। इससे प्रतीत होता है कि उसके समय मे भी साधु समाज दूषित था और धर्म की ओर उसका उतना आकर्षण न था जितना कि विलास की ओर। इससे अधिक इस अनुवाद मे कोई प्रकाश नही पडता।

७४६ कार्ष्णि गोपालदास का अनुवाद (सन् १९०८)—यह अनुवाद प्रबोधचन्द्रोदय का अविकल अनुवाद है। इसलिये इसमें धर्म और सस्कृति के सम्बन्ध मे स्वतन्त्र संकेत नही प्राप्त होते। इतना ही कहा जा सकता है कि इन्होंने अपने अनुवाद मे प्रबोधचन्द्रोदय के धर्म और सस्कृति के स्वरूप को अक्षुण्ण रखा। इन्होंने अपने अनुवाद के प्रारम्भ मे श्री वृन्दावनविहारी की वन्दना की है। इससे इतना मात्र प्रतीत होता है कि ये श्रीकृष्ण के भक्त थे।

७४७ महेशचन्द्र प्रसाद का अनुवाद (सन् १९३५)—यह अनुवाद आधुनिक काल मे किया गया है, इसलिए इसमे प्रबोधचन्द्रोदय की पुरानी कट्टरता देखने को नही मिलेगी। ग्रन्थकार ने अपनी भूमिका मे ही इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि आज के युग मे हरिजन कहे जाने वाले लोगों को जब गले से लगाया जा रहा है तब जैनो एव बौद्धो की आलोचना करना—कोई माने नही रखता। इसी दृष्टिकोण को सामने रखने के कारण इस अनुवाद मे सतो एव सम्प्रदायो का पारस्परिक दोषो का उद्घाटन नही कराया गया है। यद्यपि कापालिक और महन्तो के दोषो को अपने हिन्दू समाज के अग समझ कर कुछ उद्घाटित किया गया है। इसका कारण भी लेखक ने—'अपने समाज के फोडे फुन्सी देखने चाहिए' कह कर बता दिया है। यह सब आधुनिक युग की सहिष्णुता का प्रभाव है। महन्त का यह वर्णन देखिये—

(घूमकर श्रद्धा से) अघ कृष्णार्चन भी कैसा सुखद है। धन्य वह रासक्रीडा।

\+ \+ \+

यद्यपि इस अनुवाद से प्रबोधचन्द्रोदय की धर्म और सस्कृति का परिचय नही मिलता फिर भी अनुवादक ने अपने युग की धर्म और सस्कृति के स्वरूप को अच्छी प्रकार निर्धारित किया है—यह कहा जा सकता है।

७४८ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का अनुवाद—'पाखण्ड विडम्बना' यह 'प्रबोधचन्द्रोदय' के तीसरे अक का अविकल अनुवाद है। अतएव इसकी भी सस्कृति और

धर्म प्राय वही हैं जो कि 'प्रबोधचन्द्रोदय' के थे। परन्तु इसका कापालिक तथा अन्य पात्र खड़ी बोली मे बोलते है, जब कि जैन दिगम्बर तथा बौद्ध भिक्षु—ये दोनो अपनी एक विशिष्ट भाषा मे बोलते है—

जैन दिगम्बर—अरे सरावकोरा कुल एक छिण मत छेड़िया।

बौद्ध भिक्षु—अले, छुनो भगवान छोगत का वचन छुनो, भिच्छुओ, अले सुनो, भगवान छोगत का वचन छुनो।

इस भाषा विभेद के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि भारतेन्दु के समय इस प्रकार के साधु रहे होंगे—जो उपर्युक्त बोलियो को बोलते रहे होंगे।

७४९ विजयानन्द त्रिपाठी का अनुवाद—यह अनुवाद 'प्रबोधचन्द्रोदय' का अविकल अनुवाद है। तथा अनुवादक सनातनी विचारधारा का है। इसलिए उसने सनातनधर्म से मतभेद रखने वाले सभी मतो के स्वरूप का प्रबोधचन्द्रोदय के अनुकूल ही वर्णित किया है। इसलिए इसमे जो भी संकेत धर्म और संस्कृति के प्रयुक्त हुए है वे प्रबोधचन्द्रोदय के ही हैं। इस प्रकार त्रिपाठी जी प्रबोधचन्द्रोदय की संस्कृति और धर्म का अक्षुण्ण रखा है। यह साधिकार कहा जा सकता है।

रूपान्तर

७५० 'प्रबोधचन्द्रोदय' के रूपान्तर के रूप मे जो कृतिया उपलब्ध होती हैं, उनकी संख्या केवल पाच है। विगत छठे अध्याय मे हम इन कृतिया का अध्ययन कर चुके है। वैसे इन रूपान्तरो का 'प्रबोधचन्द्रोदय' की हिन्दी परम्परा मे एक विशिष्ट महत्व है, परन्तु संस्कृति और धर्म का प्रश्न जब सामने आता है तब हमे बडी ही निराशा के साथ यह कहना पडता है कि इनमे से कुछ ही कृतिया अपने महत्व के अनुरूप बन पडी है। बात यह है कि इन पाचो कृतियो मे से आदिम जो तीन कृतिया 'मोह विवेक युद्ध' के नाम से निर्मित्त हुई है उनमे किसी विशेष संस्कृति तथा धर्म का कोई विवरण हमे उपलब्ध नही होता। यद्यपि रूपान्तर होने के कारण उनमे अनुवादो की अपेक्षा सामयिक संस्कृति और धर्म का निरूपण करने के लिए अधिक अवकाश था। परन्तु यहा सामयिक संस्कृति धर्म की बात तो दूर रही, प्रबोधचन्द्रोदय मे निर्दिष्ट संस्कृति और धर्म की ओर भी संकेत नही किया गया।

७५१ ये तीनो ही कृतियो के रचयिता है, लालदास, जनगोपाल और बनारसी दास। इनमे से लालदास किस सम्प्रदाय या मत को मानते थे इसका पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नही होता। अवश्य ही उनके रूपान्तर को देखने पर प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार राम को अन्य देवताओ की अपेक्षा अधिक महत्व देता था। क्योकि उसने स्थान-स्थान पर रामभक्ति का गुणगान किया है। जनगोपालदास दादू सम्प्रदाय

के प्रसिद्ध सन्त माने जाते हैं। इन्होंने अपने रूपान्तर मे निर्गुणतत्त्व के ऊपर जोर दिया है। तीसरे बनारसीदास ने जो कि जैन कवि थे अपने रूपान्तर सर्वत्र जिन भक्ति की ही चर्चा करते दिखाई पडते है। इनके अतिरिक्त इन ग्रन्थो मे और कोई सामग्री नही मिलती। जिनके आधार पर हम उसके समय की सस्कृति और धर्म के स्वरूप का विवरण दे सकें।

७५२ अब रह जाते है दो रूपान्तर 'विज्ञान गीता' और 'प्रबोधद्युमण्युदय'। इनमे अवश्य ही अपने समय की कुछ न कुछ सास्कृतिक चेतना जागरूक रही है। इसलिए यहा पर इन दोनो का ही इस दृष्टि से सामान्य विवरण दिया जाता है।

७५३ केशवदास की विज्ञान गीता (सन् १६६७ ई०)—'विज्ञान गीता' प्रबोधचन्द्रोदय का प्रसिद्ध रूपान्तर है। पहिले ही यह बताया जा चुका है कि रूपान्तर मे कवि को मौलिकीकरण का जितना अवकाश मिलता है उतना अनुवाद मे नही। यह कहा जा सकता है कि केशवदास ने इस स्वतन्त्रता का उपयोग किया और अपने समय की सस्कृति और धर्म का चित्रण 'विज्ञान गीता' मे किया। जैसा कि उनके निम्न पद्य मे प्रतीत होता है, उन्होंने अपने ग्रन्थो मे दार्शनिक मीमासा के लिए श्रीमद्भगवद्गीता और भागवत का आश्रय लिया था—

कहे भागवत मे असम, गीता कहे समान।
अप्रमान कौनहि करो, कानहि करो प्रमान॥

इससे यह सिद्ध होता है कि केशवदास एक ऐसे समाज मे थे या वे ऐसे मत को मानते थे जिसमे गीता और भागवत दोनो को प्रामाणिक माना जाता था। इन दोनो को प्रामाणिक मानने का अर्थ होता है, सगुण ईश्वर की सत्ता मे पूर्ण विश्वास करना। यह चीज उस समय के समाज मे सर्वत्र व्याप्त थी। केशव दास के समय मे पाखण्डो का भी खूब प्रचार था—यह उनके आठवे अध्याय को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है। इस आठवे अध्याय की पुष्पिका को उन्होंने 'पाखण्ड धर्म वर्णनो नाम अष्टम प्रभाव' के रूप मे दिया है। तत्र मत्र जानने वाले नाथ सम्प्रदाय के साधुओ की भी सत्ता उस समय परिलक्षित होती है। इससे उस समय के समाज मे तत्र-मत्र के भी प्रचार की सिद्धि होती है।

७५४ उमादयाल का 'प्रबोधद्युमण्युदय'—यह प्रबोधचन्द्रोदय का अन्तिम रूपान्तर है। इस ग्रन्थ की भूमिका मे ही रूपान्तरकार ने यह स्पष्ट कर दिया है कि सभी धर्म वास्तव मे, ईश्वर को प्यारे है। इसलिए मतो या धर्मों को लेकर झगडा या कलह करना ठीक नही है। उनकी भूमिका का यह अश देखिये—"वास्तव मे यदि पक्षपात छोड विचार किया जाय तो निश्चय ईश्वरीय और सत्यमत एक है

ईश्वर हम सब पर समान प्यार करता है, हम सबको अतएव पक्षपात , द्वेष, ईर्ष्या छोड़ना उचित है और सत्य ग्रहण करना ही धर्म है।" (पृष्ठ ३) इस अश से यह सिद्ध होता है कि ग्रन्थकार के समय मे एक ऐसी संस्कृति का प्रवाह समाज मे प्रवाहित हो रहा था जो सभी धर्मों मे भेदभाव को समाप्त कर देना चाहती थी। यद्यपि ग्रन्थकार ने ग्रन्थ के आरम्भ में जो मगलाचरण किया है, उसमे अनेको धर्म और उनके इष्ट देवताओ का विवरण दिया है, परन्तु इसमे भी अन्त मे उसने देवताओ और धर्मों का एकत्व ही सिद्ध किया है। तात्पर्य यह है कि ग्रन्थकार की दृष्टि मे हिन्दू और पारसी तथा मुसलमान और ईसाई का भेद वर्तमान नही था—उसके मगला-चरण की कुछ पक्तिया द्रष्टव्य है—

"जाको मुसल्मीन अल्लह अर खुदा सदा बतलाते।
जाको इगलिस्तान निवासी गाड ईश कहि गाते।"

इस विशेष सस्कृति से प्रभावित होते हुए भी ग्रन्थकार ने अपने समाज की स्थिति की ओर से आखे नही मूदी। उसने इसकी ओर अपनी भूमिका मे ही सकेत कर दिया है। जैसे—'हिन्दू मुसलमानो को म्लेच्छ, मुसलमान हिन्दुओं को काफिर कहते है। आर्य समाजी पण्डितो को पोप, पण्डित आर्य समाजियो को लोप और गपाष्टकी बतलाते है।" इसमे सिद्ध होता है कि उस समय मे भी समाज मे सघर्ष वर्तमान था। इस प्रकार यह ग्रन्थकार अपने समय की सस्कृति और धर्म को अकित करने मे जागरूक रहा है।

७५५ निष्कर्ष रूप मे हम कह सकते है कि इस परम्परा मे कुछ ने प्रबोध-चन्द्रोदय की सस्कृति और धर्म को अक्षुण्ण रखा, कुछ ने नई सस्कृति का चित्रण किया और कुछ ने न तो उनके पुराने रूप को ही ग्रहण किया और न उनके नये रूप को ही।

नोट—अनुवादो और रूपान्तरो मे आए हुए धर्म और सस्कृति के सकेतो का चार्ट आगे दिया गया है।

प्रबोधचन्द्रोदय की हिन्दी परम्परा मे धर्म और संस्कृति

क्रम सख्या	ग्रन्थ	धर्म सस्कृति के सकेत
१	'प्रबोधचन्द्रोदय' अनुवाद —मल्ह कवि	१ जैन साधु—'खोना' कहे जाते थे। कापालिक—'जगम' कहलाते थे बौद्धमतानुयायी—'भिखू' कहलाते थे। } इनका प्रचार समाज मे था २ माधो की स्तुति होती थी। ३ शख, चक्र और तिलक आदि बाह्याडम्बरो का प्रचार था। (अनुच्छेद ७३८)
२	प्र० च० अनुवाद —जसवन्तसिह	१ मतमतान्तरो के विरोध का चित्रण नही है, विचार उदार एव सहिष्णु। २ विष्णुभक्ति के स्थान पर आस्तिकता नामक स्त्री पात्र का प्रयोग किया गया है। (अनुच्छेद ७३९)
३	प्र० च० अनुवाद —ब्रजवासीदास	१ गीता का उपदेश देने वाले कम थे। २ हरि के गुण का गान करने वालो के छापा, तिलक, जनेऊ, नामाकित उपरना, गद्दी, तकिया आदि वस्तुओ और व्यभिचार का वर्णन है। ३ कृष्ण की भक्ति से उद्धार की कामना की जाती थी। (अनुच्छेद ७४०)
४	प्र० च० अनुवाद —गुलाबसिह	१ गणेश और अन्य सनातन देवताओ की वन्दना है। २ सिक्ख-गुरु-गोविन्दसिह को प्रणाम किया गया है। ३ रामोपासको के धर्मच्युत होने का वर्णन है। ४ धनलिप्सा मे लिप्त रहते थे। ५ नारायण की उपासना सच्ची श्रद्धा-भक्ति से होती थी। (अनुच्छेद ७४१)
५	प्र० च० अनुवाद —नानकदास	१ जैन साधु—'श्रेवरा' कहलाते थे। बौद्ध साधु—'पूज' कहलाते थे। २ साधुसमाज मे, कण्ठी-माला, छापा, तिलक आदि बाह्याडम्बरो का प्रचार था तथा वे लोगो को ठगते थे। ३ काशी और मथुरा जैसे तीर्थों में भी विद्वान् नही रह गये थे।

क्रम संख्या	ग्रन्थ	धर्म संस्कृति के संकेत
५	प्र० च अनुवाद —नानकदास	४ शूद्र और धीवर जातियां शास्त्रों मे पारंगत थी, किन्तु ब्राह्मण विद्या से विमुख हो चले थे। (अनुच्छेद ७४२)
६	प्र० च० अनुवाद —घोकल मिश्र	१ साधुओ, सन्यासियो के आपसी विरोध और मतमतान्तरों का वर्णन नही है। २ पौराणिक देवताओ पर विशेष श्रद्धा व्यक्त की गई है। ३ साधुओं को 'पण्डा' और पाखण्डियो को 'सिद्ध महन्त' कहा जाता था। (अनुच्छेद ७४३)
७	प्र० च० अनुवाद —अयोध्याप्रसाद चौधरी	१ जैनो और बौद्धो को केवल विलासी और दम्भी कहा गया है। २ पौराणिक देवताओ पर विशेष श्रद्धा प्रकट की गई है। ३ विष्णु की नवधाभक्ति का वर्णन है। ४ श्रीमन्नारायण की उपासना और स्मरण से मोक्ष सम्भव माना गया है। ५ साधुओ के छापा, तिलक का उल्लेख है। (अनुच्छेद ७४४)
८	प्र० च० अनुवाद —भुवदेव दुबे	१ ब्रजवासीदास के आधार पर। (अनुच्छेद ७४५)
९	प्र० च० अनुवाद —कार्ष्णि गोपालदास	१ वृन्दावन बिहारी को नमस्कार किया गया है। (अनुच्छेद ७४६)
१०	प्र० च० अनुवाद —महेशचन्द्र प्रसाद	१ जैन साधुओं का वर्णन नही किया गया है। २ कृष्ण के रास के उपासक महत का उल्लेख है। (अनुच्छेद ७४७)
११	पाखण्ड बिडम्बना —भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	१ जैन साधु और बौद्ध साधु अपनी विशेष बोली मे बोलते है। (अनुच्छेद ७४८)
१२	प्र० च० अनुवाद —विजयानन्द त्रिपाठी	— (अनुच्छेद ७४९)
१३.	मोह विवेक युद्ध —कवि लालदास	१ रामभक्ति का वर्णन है। (अनुच्छेद ७५१)
१४	मोह विवेक युद्ध —जनगोपालदास	१. दादू सम्प्रदाय मे प्रचलित निर्गुण तत्व की भक्ति का वर्णन है। (अनुच्छेद ७५१)

क्रम संख्या	ग्रन्थ	धर्म संस्कृत के संकेत
१५.	मोह विवेक युद्ध —बनारसीदास	१ जिन भक्ति का वर्णन है। (अनुच्छेद ७५१)
१६	विज्ञान गीता —केशवदास	१ गीता और भागवत को प्रामाणिक माना गया है। २ सगुण ईश्वर में विश्वास किया गया है। ३ साधुओं के पाखण्डों का वर्णन है। ४ तन्त्र और मन्त्र का भी प्रचार था। (अनुच्छेद ७५३)
१७	प्रबोधद्युमण्युदय —उमादयाल मिश्र	१ हिन्दू, ईसाई, मुसलमान, बौद्ध, जैन और सिक्ख आदि धर्मों का सहिष्णुता के साथ उल्लेख। २ सभी मत एक ही ईश्वर का प्राप्त करने के लिए हैं। इस मत का प्रतिपादन किया गया है। (अनुच्छेद ७५४)

दशम् अध्याय

उपसंहार

७५६. 'प्रबोधचन्द्रोदय' की हिन्दी परम्परा के उपर्युक्त अध्ययन का उपसंहार करते हुए हम अध्ययन के निष्कर्ष को इस रूप में उपस्थित कर सकते है।

७५७. 'प्रबोधचन्द्रोदय' के रचयिता कृष्ण मिश्र अनेक शास्त्रों के पारगामी विद्वान् और बहुश्रुत व्यक्ति थे। उनके निवासस्थान के सम्बन्ध में यद्यपि विद्वानों में पर्याप्त मतभेद पाया जाता है, परन्तु उपलब्ध सामग्री के आधार पर वे बिहार प्रान्त के उत्तर-पूर्वी भाग के सिद्ध होते है। उनके स्थितिकाल के विषय में भी पर्याप्त मतभेद पाया जाता था। किसी भी एक विद्वान् का मत दूसरे विद्वान् के मत से मेल नहीं खाता था। परन्तु इधर मुझे कृष्ण मिश्र के आश्रयदाता राजा कीर्तिवर्मा के जो दो शिलालेख मिले, उनके आधार पर निर्भ्रान्त रूप से उनका काल ईसा की ग्यारहवी शताब्दी सिद्ध हो जाता है। जहा तक उनकी कृतियो की संख्या का प्रश्न है, कुछ स्थलो पर उनके नाम से अन्य कृतियो का उल्लेख होने पर भी एकमात्र 'प्रबोधचन्द्रोदय' को ही उनकी कृति होने का गौरव प्राप्त है।

७५८. 'प्रबोधचन्द्रोदय' रूपकात्मक भावनात्विक शैली मे लिखा गया, संस्कृत-साहित्य का एक विख्यात नाटक है। यद्यपि इस शैली को नाटकीय रूप देने का सर्वप्रथम प्रयास कृष्ण मिश्र का ही है, परन्तु इसके विकास का मूल स्रोत हमे वेदो मे ही मिलता है। ब्राह्मणो और उपनिषदो मे भी वेदो की ही रूपक शैली को कुछ परिष्कृत और रूपान्तरित रूप मे अपनाया गया। यही रूपक शैली आगे चलकर लौकिक संस्कृत मे भी अपनायी गई। जैन कवि सिद्धर्षि ने 'उपमितिभव प्रपंच कथा' को रूपकात्मक भावनात्विक शैली मे निबद्ध कर अपने अलौकिक पाण्डित्य का परिचय दिया था। इसके अतिरिक्त संस्कृत के अन्य किसी काल मे इस शैली का प्रयोग देखने को नही मिलता। अश्वघोष के उपलब्ध खंडित नाटक 'शारिपुत्र प्रकरण' मे इस शैली के देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि नाटको में इसका प्रथम प्रयोग करने का श्रेय अश्वघोष को ही प्राप्त है। उसके परवर्ती नाटककार उसके उत्तराधिकार का उपयोग नही कर सके। अन्तत इस शैली का पूर्ण विकास हमे 'प्रबोधचन्द्रो-

दय' मे ही दिखाई पडता है। इसके पश्चात् लिखे गए 'सकल्प सूर्योदय' आदि रूपक नाटको मे हमे अवश्य इस शैली का प्रयोग मिलता है, परन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि उनमे इतनी सफलता और प्रभावात्मकता के साथ इसका प्रयोग नही हो सका जितना कि 'प्रबोधचन्द्रोदय' मे।

७५९ 'प्रबोधचन्द्रोदय' न केवल एक रूपक नाटक है, अपितु जैसा कि देखा गया है, नाटक के सभी गुणो से भी समन्वित है। भाषा और शैली की दृष्टि से तो यह अपनी परम्परा मे अपना प्रतिद्वन्द्वी ही नही रखता। शान्त रस को मुख्य रस मान कर इसके पहले कभी कोई नाटक लिखा ही नही गया था। 'प्रबोधचन्द्रोदय' की रचना के रूप मे, कृष्ण मिश्र ने सस्कृत साहित्य को इस दृष्टि से एक नयी दिशा दी यह दूसरी बात है कि शान्त रस का अभिनय के लिए कुछ आचार्यो ने निषेध किया है। परन्तु आचार्यो के द्वारा निषिद्ध होने पर भी, उस दिशा मे अग्रसर होना कृष्ण मिश्र जैसे साहसी का ही काम था। अन्य रसो का भी अग के रूप मे, सुरुचिपूर्ण निवेश इसमे किया गया है। पाश्चात्यमतानुसार कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, शैली, उद्देश्य और टेकनीक इन तत्त्वो की दृष्टि से, इसमे किसी प्रकार की कमी नही दिखाई पडती। सन्धियो और अवस्थाओ का भी मनोहर विकास इसमे हुआ है। भाव सम्पत्ति की दृष्टि से भी नाटक महत्वपूर्ण है। अपने निरावरणीय मतो को पृष्ठभूमि के रूप मे उपस्थित कर अद्वैत मत और विष्णुभक्ति के समन्वय से जीव की मुक्ति का सिद्धान्त, जो कि नाटककार का अपना सिद्धान्त प्रतीत होता है, भव्य रूप मे प्रस्तुत किया गया है। इसी महत्व के कारण न केवल सस्कृत मे अपितु हिन्दी मे भी इस नाटक की विशाल परम्परा का प्रवर्तन हुआ।

७६० यह हिन्दी परम्परा चार रूपो मे मिलती है—अनुवाद, रूपान्तर, स्वतत्र रूपक नाटक और अशत प्रभावित नाटक। इनमे से उपलब्ध और अनुपलब्ध अनुवादो की सख्या कुल बीस के लगभग है। जो अनुवाद उपलब्ध हुए है उनके अध्ययन से यह पता चलता है कि जहा तक प्रबोधचन्द्रोदय के मुख्य विषय अर्थात् विवेक और महामोह का युद्ध का प्रश्न है, यह नि सन्देह कहा जा सकता है कि इन अनुवादो मे उसके साथ न्याय हुआ है, किसी न किसी प्रकार इस विषय को प्रत्येक अनुवाद मे लाया गया है। परन्तु अन्य विषयो का सयोजन प्रबोधचन्द्रोदय के समान किसी मे नही हुआ है और इसीलिए प्रबोधचन्द्रोदय का सफल सर्वांगीण और परिशुद्ध अनुवाद इसमे से अधिकाश नही हो सके है। न तो प्रबोधचन्द्रोदय की भाषा की तरलता, सरलता और विषय-प्रतिपादन की उपयुक्तता इनकी भाषा मे मिलती है और न शैली की गूढता और व्यजनात्मिकता इनकी शैली मे। आधुनिक युग मे भी जो अनुवाद हुए उनमे से विजयानद त्रिपाठी तथा कार्ष्णि गोपालदास के अनुवाद

अविकल कहे जा सकते हैं। तात्पर्य यह है कि इन अनुवादों के द्वारा प्रबोधचन्द्रोदय के केवल मुख्य विषय का ही प्रतिपादन किसी रूप मे हो सका है।

७६१ 'रूपान्तर' पाच मिलते है। इनमे विषय तो प्राय 'प्रबोधचन्द्रोदय' का विवेक और मोह का युद्ध—ही किया गया है—जहाँ तक हो सका है शैली और पात्र भी उसी के लिए है किन्तु ग्रन्थ के नामकरण की सज्ञा को बदल दिया है। नाम बदल देने से उन्हे विषयो के भी प्रतिपादन का भी उन्मुक्त क्षेत्र मिल गया—जिसका कुछ रूपान्तरकारो ने, जैसे केशवदास और उमादयाल मिश्र ने अपनी रचनाओ मे उपयोग किया। इन रूपान्तरो मे तीन तो 'मोह विवेक युद्ध', एक 'विज्ञान गीता' और एक 'प्रबोधद्युमण्युदय' के नाम से प्रसिद्ध है। यहा यह समझना भ्रमपूर्ण होगा कि प्रबोधचन्द्रोदय और इन रूपान्तरो मे केवल नाम का ही अन्तर है। वस्तुत प्र० च० और उसके इन रूपान्तरो के स्वरूप, वर्णन प्रणाली मे भी अन्तर दिखाई पडता है। इन दोनो के अन्तर निम्नलिखित रूप से प्रकट किये जा सकते हैं—

प्रबोधचन्द्रोदय	रूपान्तर
१ नाटक ग्रन्थ है।	१ अविकनर काव्य है।
२ युद्ध का सकेत दिया गया है।	२ प्रत्यक्ष युद्ध का दृश्य उपस्थित किया गया है।
३ शस्त्रो से युद्ध होने का सकेत मिलता है।	३ केवल वाक्युद्ध है।
४ सैनिक पात्र अपने-अपने राजाओ के सम्मुख अपनी-अपनी वीरता और पौरुष का वर्णन करते है।	४ सैनिक-पात्र युद्ध क्षेत्र मे शत्रु राजा के समक्ष अपने पौरुष का बखान करते है।
५ भावनाओ का वर्णन किया गया है।	५ भावनाओ के वर्णन मे कही प्रबोध-चन्द्रोदय का अनुकरण किया गया है और कही मौलिकता का सहारा लिया गया है।
६ महामोह और विवेक का द्वन्द्व-युद्ध नही दिखाया गया है।	६ मोह और विवेक द्वन्द्व-युद्ध दिखाया गया है।
७. धर्म और दर्शन का समन्वय उपस्थित किया गया है।	७ धर्म और दर्शन की विवेचना मे गम्भीरता नही रह गई है, कुछ मनोवैज्ञानिकता का पुट अवश्य है।

७६२. इन अन्तरो को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये रूपान्तर प्रबोधचन्द्रोदय से कितने ही अशो मे अपना पार्थक्य रखते हुए भी समान है। प्रबोधचन्द्रोदय से प्रभावित मोह-विवेक-युद्ध रूप मनोवैज्ञानिक सघर्ष इन रूपान्तरो मे अनेक विशेषताओ के साथ व्यक्त हुआ।

७६३. स्वतन्त्र रूपक नाटक प्रबोधचन्द्रोदय की हिन्दी परम्परा की तीसरी श्रेणी मे आते है। इनमे कुछ तो प्रबोधचन्द्रोदय की आध्यात्मिक परम्परा को ही लेकर चले है और कुछ सामयिक समस्याओ के समाधान का मार्ग प्रशस्त करने के लिए भिन्न-भिन्न उद्देश्यो को समक्ष रख कर सामाजिक और राजनैतिक नाटको के रूप मे प्रस्तुत हुए। तात्पर्य यह है कि यहा आकर प्रबोधचन्द्रोदय की परम्परा आध्यात्मिकता के क्षेत्र तक ही सीमित नही रही, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र मे भी उसका प्रवेश हुआ। सामाजिक और राजनैतिक उद्देश्यो को लेकर लिखे गये नाटको मे, नाटककारो ने अपने उद्देश्यो की सिद्धि के लिए सामाजिक और राजनैतिक पात्रो का प्रयोग किया है। इनका कथानक तो पूर्णतया अमूर्त और रूपक है। अधिकतर नाटककारो ने अपने उद्देश्य को व्यक्त करने के ही लिए प्रबोधचन्द्रोदय के रूपक और अमूर्त शैली को अपनाया।

७६४ इस परम्परा की चौथी कडी के रूप मे हम उन रचनाओ को लेते है जो प्रबोधचन्द्रोदय से अशत प्रभावित रही है। क्योकि इन रचनाओ मे कथानक और शैली आदि सब अपनी है किन्तु प्रसगवश कही-कही प्रबोधचन्द्रोदय के रूपक पात्रो जैसे कुछ पात्रो का प्रयोग हो गया है। तात्पर्य यह कि इन रचनाओ और प्रबोधचन्द्रोदय मे साम्य केवल रूपक पात्रो को लेकर ही है। अन्य दृष्टियो से वैषम्य ही है। इस साम्य को व्यक्त करने के लिए हम उन पात्रो की सूची प्रस्तुत कर देना चाहते है जो कि स्वतन्त्र रूपक नाटको और अशत प्रभावित रचनाओ मे प्रयुक्त हुए है।

(अ) स्वतन्त्र रूपक नाटको के पात्र-रूपक, प्रतीक, प्ररूप

१ अज्ञान
२ अभय
३ असीगी
४ अहकार
५ अन्तसगाम
६ अर्भात्मा
७ अधर्म
८ अपव्यय
९ अन्धकार
१० अश्रुमार्जन
११ अनन्त प्रभा
१२ अन्तर्यामिह
१३ अत्याचार
१४ अकिलमाम
१५ आलस्य
१६ आसक्ति
१७ ईसा
१८ उपरति
१९. उपनिषद
२० उत्साह
२१. उद्यम

२२ उद्योगानन्द
२३ एडिटर
२४. एकता
२५ ओंकार
२६ काम
२७ क्रोध
२८ कला
२९ कल्पना
३० कामना
३१ कलियुगराज
३२ कलह
३३ कवि
३४ क्रूर
३५ कर्मदास
३६ कर्मराज
३७ खिलाफत खां
३८ गल्पमाला
३९ गोलमाल
४० ग्राम गजट
४१ चिन्ता
४२ चाद
४३ जीव
४४ जगत्कुमार
४५ जनताराय
४६ जुआ
४७ जानबुल
४८ डाह
४९ डिक्टेटर
५० डिस्लायल्टी
५१ तितिक्षा
५२. तम
५३. दम
५४ दया
५५ दम्भ
५६ दुर्भाग्य
५७ दुर्जन
५८ दुर्भिक्ष
५९ दमनसिंह
६० दुर्वृत
६१ धनदास
६२ धर्म
६३ धमप्राण
६४ धनहरण
६५ निवृत्ति
६६ निदिध्यासन
६७ नवीनानन्द
६८ नीतिव्रत
६९ निद्रा
७० निर्बलता
७१ नेकी
७२ नवीनता
७३ प्रजा
७४ पाठकमल
७५ प्रवृत्ति
७६ प्रकृति
७७ प्रभा
७८ पतिव्रत
७९ पाखण्ड
८० पश्चिम बाला
८१ पृथ्वीमाता
८२ प्राचीनता
८३ परतन्त्रता
८४ प्रेमसिंह
८५. परी
८६ फैशन
८७ फूट
८८ फकीरी
८९ फिजूलखर्ची
९०. बुद्धि
९१ बलराज
९२ ब्रह्मचर्य
९३ बंगाली
९४ बदी
९५. बकवादी
९६ भक्ति
९७ भारती
९८ भारतमित्र
९९ भारतमाता
१०० भारत
१०१ भारतभाग्य
१०२ भारत दुर्दैव
१०३ भय
१०४. मन
१०५ मुमुक्षु
१०६ मायावी
१०७ मन्शाराम
१०८ मदिरा
१०९ माया
११० मोह
१११ मतवाला
११२ माधुरी
११३. मनोरमा
११४ मोहनी
११५ मूर्खता
११६ महाराष्ट्री
११७ मित्रराज

११८. रसमूल
११९ रज
१२० रोग
१२१. राजमतसिंह
१२२ लीला
१२३ लक्ष्मी
१२४ लोभ
१२५ विषय वासना
१२६ विज्ञान
१२७ विचार
१२८ विवक
१२९ वैराग्य
१३० वेद
१३१ विश्वास
१३२ विरक्ति
१३३ विलासचन्द्र
१३४ वैधव्य
१३५ विधवा विवाह
१३६. विद्या
१३७ वैरविरोध
१३८ विप्लव
१३९ विज्ञानवाला
१४० शम
१४१ शिक्षा
१४२. शोक
१४३ श्रद्धा
१४४ श्री वेंकटेश्वर
१४५ सन्तोष
१४६ सतसंग
१४७ समता
१४८ समाधान
१४९ सरलसिंह
१५० सोहम
१५१ सत्व
१५२ सरलता
१५३ संशय
१५४ समाजराय
१५५. सफाईराय
१५६ साहित्य
१५७ स्वाभाविकता
१५८ सरस्वती
१५९ सौभाग्य
१६० स्वार्थपरता
१६१ सत्य
१६२ सत्यानाश
१६३ स्वतन्त्रता
१६४ सत्यपाल
१६५ सुधारचन्द
१६६ हास्य
१६७ हिन्द
१६८ क्षमा
१६९. ज्ञान
१७० ज्ञानानन्द

(ब) अंशतः प्रभावित नाटकों के पात्र-रूपक, प्रतीक, प्ररूप

१ अधर्म
२ अहंकार
३ अशान्ति
४ अज्ञानचन्द
५ अविद्याबाई
६ अज्ञानसिंह
७ अमृतलाल
८ आलस्य
९ आशा
१० आत्मसम्मान
११ ईमानदार
१२ उदारता
१३ उन्मत्तसिंह
१४ उपाध्याय
१५ उल्कानन्द
१६ एकता
१७ कलियुग
१८ कुमत
१९ क्रोध
२० काम
२१ करुणा
२२ कृतज्ञता
२३ कर्त्तव्य
२४ करोड़ीमल
२५ कमबख्तलाल
२६ कर्मवीर
२७ कानूनीमल
२८. कर्म
२९ क्रूरसिंह
३० खुशामदचन्द
३१. चौपटसिंह
३२ चातक (वेश्या)
३३ चन्द्रोदयसिंह
३४ चौपटानन्द
३५ छात्र
३६. जीवनशाह

३७. जालिमसिंह
३८. झूठचन्द
३९. ठीकचन्द
४०. डबडब पाण्डे
४१ तृष्णा
४२ तर्कप्रसाद
४३ दया
४४. द्वापर
४५ दुराचारीसिंह
४६ दुर्जनसिंह
४७ दुखदेई
४८ दुर्दैव
४९ धर्म
५० धनदास
५१ धनपति
५२ धर्मपाल
५३ धीरता
५४ धर्मानन्द
५५ धर्मदास
५६. धृष्टबुद्धि
५७ धोतीप्रसाद
५८ धोखेराम
५९ न्यायसेन
६० नारीजाति
६१ नास्तिक
६२ प्रेम
६३. पाप
६४ पादड़ी
६५ पृथ्वीमाता
६६. पाखण्ड
६७. पुजारी
६८ प्रकाशचन्द्र
६९ पेटूमल
७० फूटदेव
७१ बिगड़ेदिल
७२. बंगाली
७३ बेढबसिंह
७४ ब्रिटेनिका
७५ बुद्धमत्व
७६ भारतमाता
७७ भक्ति
७८ भग्गू चौधरी
७९ मदिरा
८० मोह
८१ मूर्खानन्द
८२ मनमोहनी (वेश्या)
८३ मनहूसलाल
८४ मुसलमान
८५ यमदूत
८६ यमराज
८७. रोगराज
८८ रंगीलेसिंह
८९ लज्जा
९० लोलुपचन्द
९१ लोभ
९२ विचार
९३ वीरता
९४ वैराग्य
९५ विद्यावती
९६ व्यंगलाल
९७ वीरबल
९८ वक्रसेन
९९ शान्ति
१००. शिष्य
१०१ शरण्यता
१०२ शक्ति
१०३ सत्य
१०४. सरस्वती
१०५ स्वार्थ
१०६ स्वार्थचन्द
१०७ सत्यप्रतिज्ञता
१०८ स्वामिता
१०९. सौहार्द
११० सौशील्य
१११ साधु
११२ सूदीमल
११३ सुधारचन्द
११४ साहसनाथ
११५ सत्यव्रत
११६ सिक्ख
११७ स्त्री
११८ सत्यवक्ता
११९ हिन्दू
१२० हिंसा
१२१. क्षुद्रबुद्धि
१२२ ज्ञान
१२३. ज्ञानप्रकाश
१२४ ज्ञानचन्द
१२५ ज्ञानशंकर

७६५ प्रबोधचन्द्रोदय की हिन्दी परम्परा में चित्रित धर्म और संस्कृति के स्वरूप का सम्यक् उद्घाटन करने के लिए विस्तृत अनुसन्धान की आवश्यकता है। इसलिए केवल उसके प्रमुख अंगो, अनुवादों एवं रूपान्तरों को ही आधार बना कर प्रस्तुत अध्ययन के नवें अध्याय में धर्म एवं संस्कृति को निरूपित करने का प्रयास किया गया है। परन्तु इन ग्रन्थों में धर्म और संस्कृति के तत्वों का स्वरूप विवरण संक्षेप में दिया गया है।

७६६ इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन में यह दिखाया गया है कि रूपक शैली का विकास किस रूप में हुआ, किस प्रकार प्रबोधचन्द्रोदय ने इस शैली का आश्रय ग्रहण कर संस्कृत नाटक साहित्य को एक नया मोड़ दिया और किस प्रकार वह अपने इस गौरवपूर्ण कार्य के द्वारा संस्कृत साहित्य में एक महान स्थान का अधिकारी बना। अन्त में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि इस महत्वशाली ग्रन्थ की हिन्दी परम्परा के विशाल साहित्य का प्रवाह अनुवाद और रूपान्तर आदि की विविध धाराओं में प्रवाहित होता हुआ किस प्रकार भारतीय जनजीवन के धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक पहलुओं को प्रभावित कर सका।

परिशिष्ट

(१) प्रबोध चन्द्रोदय (हिन्दी अनुवाद) 'मल्ह कवि' (हस्तलिखित प्रति)

(पृ० १)

प्रबोधचन्द्रोदय (मोह विवेक)—मल्ह कवि। पत्रसंख्या—२५। साइज—८×६ इंच। भाषा—हिन्दी प०। रचनाकाल—सं० १६०१। लेखनकाल—११ पूर्ण। वेष्टन नं० ८९९। क्रमसंख्या—५८९। प्राप्तिस्थान—दीवान बधीचन्द का मन्दिर, जयपुर।

श्री गणेशाय नम

अथ प्रबोधचन्द्रोदय नाटक ग्रंथ मोह विवेक लि० ॥

चौपाई—अभिनंदन परमारथ कीयो, अरु व्है गलित ज्ञान रस पीयो।
नाटिक नागर चित मैं बस्यौ, ताहि देखि तन मन हुलस्यौ ॥१॥
कृष्णभट्ट करता है जहाँ, गगासागर भेटे जहाँ।
अनभा को घरु जानै सोई, ता सम नाहि विवेकी कोई ॥२॥
तिन प्रबोधचन्द्रोदय कीयो, जानै दीपक हाथ लै दीयो।
करणीसूर सु पावै स्वाद, कायर और करै प्रतिबाद ॥३॥
इंद्री उदर प्रगायन हाई, कबहू पै नही रीझै सोई।
पच तत्व अब गति मन धार्‌यौ, तिहि माया नाटिक विस्तार्‌यौ ॥४॥
अनर नाडी सोखै बाय, समरस आनद सहज समाय।
विरव चक्र मै चितन होय, पडित नाम कहावै सोय ॥५॥
जब बर वेमचद गुर दीयो, तब आरभ ग्रन्थ को कीयो।
यह प्रबोध उतपन्यो आय, अधकार तिहि घाल्यो खाय ॥६॥
भीतर बाहर कहि समुझावै, सोई चतुर तापै कहि आवै।
जो या रस का भेदी होई, या मैं खोजै पावै सोई ॥७॥
मथरादास नाम विस्तार्‌यौ, देवीदास पिता को धार्‌यौ।
अंतरबेद देस मैं रहै, तीजै नाम मल्ह कवि कहै ॥८॥
ताहि सुनत अद्भुति रुचि भई, निहचै मन की दुविधा गई।
जितने पुस्तक पृथ्वी आहि, यह श्री कथा सिरोमणि ताहि ॥९॥

(पृ०२)

यह निज बात जानीयो सही, पर्चे प्रगट मल कवि कही।
पोथी एक कहू तै आनि, ज्यो उहा त्यो इहा राखी आनि ॥१०॥
सोरह सै सवत जब लागा, तामहि वरष एक अर्द्ध भागा।
कातिक कृश्न पक्ष द्वादसी, ता दिन कथा जु मन मैं बसी ॥११॥
जो हौ कृश्न भक्ति नित करौ बासुदेव गुरु मन मै धरौं।
तौ यह मो पै ह्वै ज्यौ जिसी, कृश्नभट्ट भार्षी है तिसी ॥१२॥

दोहा--मथुरादास बिलास इहि, जो रमि जानै कोय।
इहि रस बेधे मल्ह कहि, बहुरि न उलटै मोइ ॥१३॥

जब निसु चद्र अकासै होई, तब जो तिमर न देखै कोई।
तैसैहि ग्यान चद्र परकासै, ज्यौ अग्यान अध्यारौ नासै ॥१४॥
परमात्म परगट है जाहि, मानो इहै महादेव आहि।
ग्यान नेत्र तीजे जब होई, मृगतृष्णा देखै जगु सोई ॥१५॥
अनुभै ध्यान धारना करै, समता सील माहि मन धरै।
इहि बिधि रमि जो जानै सही, महादेव मन वच क्रम कही ॥१६॥

कथा सबध

राउ गुपालचद्र व्रत लीयो, जिनि सब राज सिष्य कौ दीयो।
करता कृत ब्रह्म सो कह्यौ, आपुनु निरालब ह्वै रह्यौ ॥१७॥
परमात्मा गुपालहि मानि, कृत ब्रह्म जीव अभिन्न वखानि।
राजा कृत ब्रह्म है जैसौ, अब हु बरनि सुनाऊ तैसौ ॥१८॥
नवद्वार सरबगी देस, तिहु लोकगामी वन रेस।
महा अग्र कछु कह्यौ न जाई, विद्यामान नट लीयो बुलाई ॥१९॥
नव आयुस भुवपाल जु दीयो, नवरस नाच सबै तुम कीयो।
अनुभै नाचि दिखावहु तैसे, मानि निरतर निह्चल जैसे ॥२०॥

/ / ×

(पृ० १०)

सुमति उवाच

स्वामी सुमतिन कबहू बोलै, जो यह प्रभु के बधन खोलै।
अबहि नाथ ताहि हुकम करावहु, बाहि बुलाइ बेगि ले आवहु ॥९६॥

श्री विवेकोवाच

श्री विवेक बुलावै दोऊ, सरधा साति और नही कोऊ।
सरधा माता साति जु पुत्री, दोऊ आय राय पै उतरी ।।९७।।
सबै समान राय पै आई, दोऊ मिलि बानारसी चलाई।
ल्यावहु तुम उपनिषध हेरी, तुम अति चतुर भावती मेरी ।।९८।।

इति श्री प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के प्रथमो अक ।।१।।

जब जासूस मोह पै आयौ, मतौ विवेक कौ कहि समझायौ।
सुनि विचार बुरौ व्है जाई, हमै विवेक कहि बढी लगाई ।।१।।
जो कोऊ उपनिषध कौ ल्यावै, निहचै मीच हमारी आवै।
महामोह पाखड बुलायो, बिदा कीयो बानारसी आयो ।।२।।
ऊँचा द्वार धौलहर ठानै, मौनिन चौंक चौंतरा बानै।
पुर पाखड चलायौ जैसै, महामोह कहि पठयो तैसै ।।३।।

× ✓ ×

अनुवाद का अन्त—(छठा अक—पृ० ४७)

पुरुषवाच

नव आकास भयौ जैकारा, औरु सबै मिट गयौ बिकारा।
पुरुष प्रगट परमेस्वर आहि, तिसै विवेक जानियो ताहि ।।६६।।
अब प्रभु भयो मोखि तन धरीयो, चद्र प्रबोध उदै तब करीयौ।
सुमति बिबेक रु सरधा सानि, काम दक काटन कौ काति ।।६७।।
इनिकी कृपा प्रबल मन मुवो, जो हो आदि सोइ फिरि हुवो।
विष्णु भक्ति तेरे परसादा, कृत कृत भयो मिट्यो अनुवादा ।।६८।।
अब निह सग रहे गो एही, हौ लयो ब्रह्म बिसरीयो देही।
विश्नुभक्ति तु पुहची आइ, कीयो अनद जु सदा सहाइ ।।६९।।
अरु चिरकाल मनोरथ पूजे, गयो सत्रु साल है दूजे।
जो निर्वास्ति बासना होई, ताते प्याग और न कोई ।।७०।।
अद्वैत राज अनभै पद लयो, अचित चितवत अचि तै भयो।
जासिर ऊपर सनक सनदा, अरु वासिष्ट बदै नाहि बदा ।।७१।।
(पृ० ४८)
कृष्ण भट सोइ रस गाथा, मथुरादास सारु सोई बाता।
बदे गुरु गोबिंद के पाइ, मति उनमान कथा सो गाइ ।।७२।।
इति श्री मल्ह कवि बिरचिते प्रबोधचन्द्रोदयनाटके षष्टमो अक. समाप्त ।।६।।

।। श्री कुंवर सेन जी पठनार्थ ।।

दोहरा—आब स्नानस्यौ काम है, पेड गिनन स्यौ नाहि।
बाद बिबादहि छाडि कै, करौ विचार या माहि ।।१।।

श्री कस्तूरचन्द जी कासलीवाल के सौजन्य से प्राप्त।

लिपिकार—सुगनचन्द जैन, जैन साहित्य शोध संस्थान, सवाई मानसिंह हाईवेज, जयपुर।

(२) प्रबोधचन्द्रोदय (हिन्दी अनुवाद) जसवन्तसिंह (टाइप प्रति)
अथ श्रीगणेशाय नम ।। अथ प्रबोधनाटक लिख्यते।

कवित्त—जैसे मृग त्रिस्ना विषे जल की प्रतीत होत,
रूपे की प्रतीत जैसे सीप विषे होत है।।
जैसे जाके बिन जाने जगत सत जानियत,
जाके जाने जा नियत बिस्व सब तोत है।
ऐसो जो अखड ग्यान पूरन प्रकासवान,
नित सम सभी सत्त आनद उदात है।
ताही परमातमा की करत उपासना ही,
निमदेह जानो या की चेतना ही जोत है ।।१।।

ऐसे मगल पाठ कर सूत्रधार अपनी नटी बलाइ। यह ही आग्या दीजै। सूत्रधार बोल्यो।। दोहा।। महाविवेकी ज्ञान निधि। धीरजमरयतावान।। परमप्रतापी दानि अनि।। नीति रीति को जान।।१।। तिन महाराज ने आज्ञा करी है।। कि हमारे सभा के लोक है।। तिनके लिये प्रबोधनाटक दिषावऊ।। जो इनको विवेक होइ।। अरु मोह का नाम होइ।। तब नटी सोच करन लागी।। कि महाराज की सभा मे।। ऐसे सुभट बैठे है।। तिनके मन मे सतोस कैसे आवे। तितने जमनिका मे काम बोल्यो।। अरे पापी अधम नट।। हमारे जीवन हमारे प्रभु का।। नास विवेक तु क्यो कहत है।। तब सूत्रधार कछु भय लिए नटी सू बोल्यो।। कि यह काम है।। और रति प्रसग है। याको मेरे वचन ते क्रोध भयो है।। ताते हमारा रहिबो बनत नही।। यह कहि के चले।। तितनेकाम रति सग लियो।। सक्रोध जन्म का कै। बाहेर आइ बोल्यो।।

दोहा—स्यानी पडत एसबे। जो लोकोठा वान।
तो ली एना हित परे। मेरे उन परवान।।२।।

और यही ही जानत हो।। कि जो लो ए मेरे बान हैं।। तो लौं विवेक को कहा

सामर्थ है ।। और प्रबोध कैसे होइगो। रति बोली ।। अहो तो राजा महामोह को वह विवेक मोही मत्रु है। काम बोल्यो ।। तो को कहा विवेक नें भय उपज्यो तू मेरो धनुष ।। और एवान फूलन के जानत है। पे देवता और मनुष्य ए मेरे इन बानन की आग्या लोप सके नही ।। और ने मुनी ही होइगी।। कि मेरे बान। ब्रह्मा ।। इन्द्र।। चद्रमा और ही अनेक कै कैसो नास करीयो।। तो इन लोकन के विवेक को नास करनो कहा है ।। रति बोली।। अहो यही है ये तऊ बोहत महाय जा मत्रु के।। होहि और जम नैमादिक से महाबली मत्री होइ ।। ताते भय उपजे ही ।।

× × × ×

(पृ० २)

।।मति बोली।। अहो एसे जो पितामह छुटे तो मोकु औ कहा चाहिये ।। राजो-वाच।। जो तु एसी हमारी आज्ञा मे है ता हमारे कारज महजे मिद्ध भए। सुनि एक को बांधि अनेक कियो है। और मृत्यु को प्रापत कियो है। ते बंध छुडाइ और ब्रह्म एकता को प्रापत करो। तब मैं हू प्रान त्याग प्रायश्चित करि ।। ब्रह्म एकता को पाऊ।। एसे कहि के चले ।। तितने दंभ आये। (पृ० ३) आय के बोल्यो ।। राजा महामोह ने मोकों ।। आग्या दीनी है ।। पुत्र दंभ विवेक ने प्रबोध को उदिम कियो है। उदिम कहा कियो। अपने सेवक ठौर ठौर पठ ए प्रबोध करिबे को।। ताते तुम सावधान हो।।

× × × ×

अनुवाद का अन्त (पृ० ११)—तितने देवी आस्तिकता आइ ।। आइके हरख सहित कह्यो ।। बोहत काल ते हमारो ।। मनोरथ भयो ।। जु सत्रु रहित तुमको देखे ।। तब पुरुष बोल्यो ।। देवी के प्रताप ते ।। प्रमाद ते कहा कठिन है। यह कहि के पाय परियो ।। देवी आस्तिकता पुरुष को ।। उठाय के कह्यो ।। और तोको कहा उपकार करो ।। तब पुरुष बोल्यो ।। याते परै कहा है ।।

दोहा—जापर है सब भार यह । ताहि न भार विचार ।।
जापर नाहि भार सो । मृत भार के भार ।।१।।
जा बिनु जाने कहत हो । उहे लिख्यो जु रेख ।।
ता जाने जाने नही । हान समान विसेष ।।२।।
जाबिनु जाने सार कोई । जाने राग द्वेष ।।
ता जाने जाने नही । हान समान विसेष ।।३।।
जाबिनु जाने भासतौ । बिधी बिधी भाव अलेख ।।
जाबिनु जाने विस्व मे ।फिरे फिरी फिरी भेष ।।४।।
ता जाने जाने नही । हानी समान विसेष ।।५।।

जल निध विना तरग जो। विना पवन आकाश ॥
द्वद रहित त्यो हो भयो। आतम ग्यान प्रकाश ॥६॥
यह काहि के चल्यो। तितने सूत्रधार आय आसीरवाददयो।

कवित्त

जा को ला गगा को प्रवाह वहत खिति मडल मे
सेस वरे भार ज्यो सकल ब्रह्माड को।
ससि की किरन जा लो पोखत है।
औषधीन प्रबल प्रकासतपे बिम्ब मार्तंड को॥
छाडत न मरजाद अपनी उदधि जल
जो लो आयु बल महा रिगि मारकड को।
तेज परिवान को घनश्याम नृप सतनमु।
तो लो राज करै महाराज नव पट को ॥१॥
इति श्री महाराजाधिराज महाराज श्री जसवन्तसिह जी कृत प्रबोध नाटक भाषा सम्पूर्ण। शुभ भवतु। श्रीरस्तुकल्याणास्तु।
श्री रस्तु कल्याणमस्तु
जोधपुर मे प्राप्त
टाइपकर्ता Shri Mangi Lal

(३) प्रबोध चन्द्रोदय (हिन्दी अनुवाद) ब्रजवासी दास (प्रकाशित प्रति)

(मुख पृष्ठ)

श्री
प्रबोधचन्द्रोदय नाटक
बृजवासीदास कृत
जिसको
सन्मार्गावलम्बी रसिक जनो के चित्त
विनोदार्थ अतीव शुद्धता से
प्रोप्राइटर सेठ टीकाराम जी ने
निज 'ज्ञान भास्कर' प्रेस बारावकी मे
छाप कर प्रकाशित किया
Gyan Bhaskar Press, Bara Banki
फाल्गुण कृष्ण २ सम्वत् १९५६

श्री गणेशाय नम

(पृ०१) अथ प्रबोधचन्द्रोदय नाटक

दोहा—चरण कमल बन्दौ रुचिर जे हरिदास अनन्य।
जिनकी कृपा कटाक्ष ते सकल देव परसन्य॥१॥
धवल धाम जिनके हृदै सदा शान्ति सुखरास।
तहा सच्चिदानन्द हरि करत निरन्तर बास॥२॥
जिन हरि को निरगुण सगुण एक अनेक विधान।
बहुमत बहुश्रुति बहुस्मृति करत विविध बिधि गान॥३॥
बरणन विविध विधान सब नहि पावत कछु पार।
ताते यह निरणय किया नेति नेति निरधार॥४॥
ऐसो प्रभु उरमे धरे विचरत है ससार।
जल पुरइन के पात लों सकल जगत ब्यौहार॥५॥
परस्वारथ स्वारथ जिन्है परमारथ दातार।
जिनकी सगत ते लहै जीव पदारथ चार॥६॥
दीनदयाल कृपाल शुचि ऐसे सन्त सुजान।
जन ब्रजबासीदास की विनय कीजिये कान॥७॥
दीजै दीनदयाल मुहि बडो दीन जन जानि।
चरण कमल को आसरो सतसगत की बानि॥८॥

× × ×

(पृ० २)

सो०—सतसगति परणम्य गुरुपद पकज राखि शिर।
प्रथम सुकहु अति रम्य ग्रन्थोत्पत्ति जिहि विधि सुनी॥१२॥

चौ०—दक्षिन भूमि भयो एक पण्डित। भक्ति ज्ञान विद्यागुण मण्डित॥
दयाल दीन हितकारी। जीवन का पुरण चितकारी॥
ष्यन करै ज्ञान उपदेशा। जनम मरन जिहि मिटै कलेशा॥
हतिमिर नाशक जिमि घामा। कृष्णदास भट अस ता नामा॥
नके शिष्य एक द्विज बालक। गुरू कृपा शरणागत पालक॥
दयाभाव तापर अति भारा। भवसागर ते चहै उबारा॥
ताहि गुरू वेदान्त पढावै। भक्ति ज्ञान बैराग दिढावै॥
सो किशोर बय काम नबीना। शृगारादिक रसमन भीना॥

गुरु उपदेश न मन मे आवै। जिमि ज्वर ग्रसित सुनाजन भावै ॥
जो मार्गं तौ कुपथ खटाई। जाके खात ताप अधिकाई ॥
ताहि वैद्य समरत्थ सुजाना। चूरण देत खटाई साना ॥
जाके खात होइ ज्वर नाशा। औगुण अमल न करै प्रकाशा ॥
सो०—तैसे गुरू सुजान कीन्हो ग्रन्थ नवीन तब।
कला विदूषक खान अर्थ सिद्ध वेदान्त मय ॥१४॥

(पृ० ३)

सगीतिका छन्द—नाम राख्यो ग्रन्थ को परबोध चन्द उदोत। सुनत मधुरे श्रवण को अति समुझिते सुख होत ॥ मथि निकास्यो वेद निधि ते सुधा को सो सोत। रीत नाटक तासु पाठक शिष्य कीन्हा पोत ॥१५॥ सतसग मे ऐसे सुनी मैं ग्रथ की उतपत्ति। रचना विचित्र प्रवन्ध सुन्दर वस्तु बरनत सत्ति ॥ हानि अह मम मोह प्रापति ज्ञान की सम्पत्ति ॥ सुनैं समुझैं पढै रुचि सौ मिटै जगत विपत्ति ॥१६॥

दोहा—सो ता बाणी सस्कृत प्राकृत करि न विचार।
ताके समुझन का चही विघा बुद्धि अपार ॥१७॥
बलीराम ताकी करी भाषा यमन किताब।
सोऊ विद्या अति कठिन समुझि न परै शिताब ॥१८॥
मित्र एक रसी कहो जो यह भाषा होय।
सरल होय ता सबन को सुनि सुख पावैं लोय ॥१९॥
ताते यह भाषा करी अपनी मति अनुसार।
सत सगत परताप ते विपुल छन्द बिस्तार ॥२०॥
नही चतुरताहि रसिक बर नहि कवि युक्त उदार।
पाछो लै हरिजन कहत ले है तात्र सुधार ॥२१॥
हरिजन चितवै जासु तन दया दृष्टि करि बक।
तासु भाल बिधि लिखित जो होहि कुअक सुअक ॥२२॥
ऋषि शशि धन गणपति रदन सम्मत सरस बिलास।
तामे यह भाषा करी जन व्रजबासी दास ॥२३॥
कृष्णदास यह शिष्य सो कहत कथा परबोधि।
नट लीला के व्याज करि परम तत्वमय शोधि ॥२४॥

कृष्णदास भट उवाच चौ०।

सुनहु शिष्य इक कथा सुहाई। परम विचित्र परम सुख दाई ॥
कौरनि ब्रह्म नाम इक भूपा। परम अनूप जासु को रूप ॥

× × × ×

(पृ० २९)

विवेक-दोहा

धन्य तुम्हारी रति सुमति मोहि भरोसो तोर।
चलो समादिक को विदा करिये तीर्थन ओर ॥१७६॥
यहि विधि मति सो मंत्र करि गयो विवेक भुआल।
गाय उठे नट शिष्य तब बाजे तत्री ताल ॥१७७॥
इति श्री प्रबोधचन्द्रोदय नाटके भाषाया प्रथम टक ॥१॥

नट० दोहा—तब नृप कीरत ब्रह्म सो बोल्यो नट सरदार।
राजन राजामोहने सन्यो विवेक विचार ॥१॥
ताते अपने मत्रिन हूँ आज्ञा दीन्ही मोह।
करिये यतन विवेक की मत्र सिद्ध नहि होइ ॥२॥
नाही अनर दम्भ को आयो स्वाग सवाँरि।
तिन पर मन्दिर ते कह्यो ऐसी भाँति पुकारि ॥
× × × ×

(अनुवाद का अन्त पृष्ठ १३३)

हरिगीतिका छन्द—जोरि कर बिनती करी ये मात सब सुख धाम तू।
कहा दुर्लभ तुव कृपा ते सकल पूरण काम तू।
तुम अनुग्रह ते लह्यो अब मेटि दुख आनन्द महा।
महिमा अपार अनन्त गुन पावन चरित कहिए कहा ॥१६०॥

कुसुम विचित्रा छन्द—श्री विष्णु भक्ति ह्वै कै प्रसन्न। कह्यो पुरुष को धन्य धन्य।
अब कहि जा तुहि इच्छा होय। करो आशु ही बिलम न सोय।
मोको अति प्रसन्न अनुमान। मागि लेहु वाञ्छित बरदान ॥
हे देवी मेरो जो काज। सो सब पूरण भयो जु आज ॥
भयो सुथिर भव भर्म नशाय। सुखमय परम शात को पाय ॥
द्रोही नृप विवेक के जिते। भये विनाशवत सब तिते ॥
अभयानन्द विमल पद जहाँ। अस्थित कियो मोहि तुम तहा ॥
अब कछु इच्छा नाहि न मोहि। तदपि देवि याचत हो तोहि ॥
हैं जो दुखित जीव जग माहि। भवसागर के भवर भ्रमाहि ॥
ममता लहर माँझ बहि मरै। बूड़त उछरत धीर न धरै ॥

ते करि कृपा पार करि लेहु। अहो देवि मोको यह देहु।।
पुरुष वचन सुनि भक्ति सुजान। कह्यो होहु सबको कल्यान।।
बहुरौ स्वाग सग सब लये। निकसि सभा ते बाहिर गये।।
याको भाव अहै यह अबै। भये ब्रह्म को प्रापन सबै।।१६१।।

दोहा—बहुरि सभा के मध्य नट कीन्ह्यो नृत्य सुदेश।
भयो प्रसन्न चरित लखि कीरत ब्रह्म नरेश।।१६२।।
मनते ममता मैल की काई ह्वै गई दूर।
सादर नट मनमान करि किर्यो काम भरिपूर।।१६३।।
कृष्णदास भट शिष्य को जब यह ग्रन्थ सुनाय।
ह्वै कै निरमल बुद्धि सा परयो गुरू के पॉय।।१६४।।
फीकी परि गइ चित्त ते विषय वासना रूप।
भयो विवेकी विशदमति पण्डित परम अनूप।।१६५।।
पढ़ै सुनै समझै गुनै जो कोऊ यह ग्रन्थ।
ताके उरते छूटि है अह अविद्या ग्रन्थ।।१६६।।
भक्ति होय भगवन्त की और विवेक प्रकास।
भक्ति बिना त्रिभुवन दुखी कह ब्रजवासीदास।।१६७।।
जो चाहै आनन्द सदा रे ब्रजबासी दास।
तौ कीजै हरिभक्ति को छोडि विषय की आस।।१६८।।
इति श्री प्रबोधचन्द्रोदयनाटके भाषा षष्ठष्टङ्कः ।।६।।

इति श्री प्रबोधचन्द्रोदय नाटक समाप्तम्।।

(८) प्रबोधचन्द्रोदय (हिन्दी-अनुवाद) गुलाबसिंह (प्रकाशित प्रति) (मुख पृष्ठ)

।। श्री ।।

प्रबोधचन्द्रोदय नाटक

कवि गुलाब सिंह कृत

जिसको

प० गुरु प्रसाद उदासीन ने गुरुमुखी अक्षरों से

देवनागरी में टिप्पणी सहित बनाया।

तथा

मुमुक्षजनों के हितार्थ,

श्रीमान १०८ स्वामी परमानन्द जी ने
खेमराज श्री कृष्णदास के
बम्बई
श्रीवेंकटेश्वर स्टीम यन्त्रालय मे
प्रथमा वृत्ति
छपाकर प्रसिद्ध किया
सवत् १९६२, शके १८२७
रजिस्टरीतक प्रसिद्ध कर्ता ने स्वाधीन रक्खा है।

श्री गणेशाय नम
ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नम।
अथ श्रीमत्कवि गुलाबसिंह कृत—
प्रबोधचन्द्रोदय नाटक भाषा प्रारम्भ

दोहा

गौरि पुत्र गणेश पद, वन्दो बारबार।
काय कीजिय सिद्ध मम, देहु सुबुद्धि उदार ॥१॥
जाके नाम प्रताप ते, जल पर शैल तराहि।
वह रघुनायक दास के, सदा वसै मन माहि ॥२॥
गुरुनानक गोविन्द गुरु, जासम और न कोई।
अभिवन्दन पद कमल बिन, जोर सदा कर दोइ ॥३॥
भारत भूमि पुनीत पद, तपोज्ञान अवतार।
मानसिंह गुरु को नरो, तारण करुणासार ॥४॥

नराज छन्द

प्रबोधचन्द्र नाटक, सुबोध ग्रन्थ मैं करो।
अलख साधु सग को, विचार चित्त मे धरो॥
सुनै पढै सु जे जना, निवार मोह बन्धना।
लहै अपार मोक्ष को, टुटै समस्त फन्धना ॥५॥

---

१. ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति रूप।

सवैया

भूपन[1] बोध सुबोध अति कौतुक माहि रहे लपटाए।
बोध बिना जगमोक्ष कहाँ इस सत मर्म मुखवेद[2] अलाए।।
अन्त समै यम दीन करे विन हेर महा करुणारस आए।
बोध उपावन हेत सतो नरनाहन के इह ग्रन्थ बनाए।।६।।
भानु मरीचि सुनीर सम पुनि जा अज्ञान जगत्त बनायो।
वायु अकाश सुपावक नीर मही पुनि लोक सुनीत उपायो।
जाहि पिखेर जुमापजि मे जगफेर सभोतिन माहि बिलायो।
उज्ज्वल आतम बोध[3] हम ब्रह्म आनंद सो उरमाहि धियायो[4]।।७।।
प्रत्यक्ज्योति[5] सनातन जो जग व्याप रही सममाहि सुहाई।
रिद शान्त विशे अति भासत है कृत सयम को जिह आनन्द ताई।
विषु चूड निरोध सुवायु भले ब्रह्म रन्ध्र हने अति ऊँच चलाई।
दृगतीमर व्याज सुभाल विषेशिव सथम वनमु आप दिखाई।।८।।

दोहा

कीरति वरमा नाम जिह, भूपति बड़ रसाल।
ताहि सभा मे विमलमति, आहि प्रधान गुपाल।।९।।
वर्ष एक नाटक तहा, भया सुसभा मझार।
जाको हेरसुज्ञान लहि, भये भूप भव पार।।१०।।
याको सुने ज कान मे नीके चित्त लगाइ।
आसुर सपति दूर तज, वेग ज्ञान बहु पाइ।।११।।
सूत्रधार उवाच स्त्रपत्नि प्रति।।

सवैया

बहु वातन को कछु काम नही अब आयसु मोहि गुपाल दई।
सम भूपति जा सुकटामणि के पद पकज आरती आनेकई।।

---

१. आदि अन्त के ग्रहण से दशो बादशाहो का ग्रहण करना, २. ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। ज्ञानादेवतु कैवल्यम् इत्यादि वेद। ३. अविद्या तत्कार्यमलरहितस्वप्रकाशरूप, ४. सेवते हैं अर्थात् उपासते हैं, ५. अनृत जड़ दुखरूप अहंकारादिकों से प्रतिकूल होयकर अर्थात् सत्यज्ञानान्दादिरूपकर जो प्रकाशे सो कहिए प्रत्यक् सोई होवे ज्योति कहिए प्रकाश रूप सो कहिए प्रत्यक् ज्योति।

काम उवाच।।

सवैया

(पृ० २०)

रति जे कुल नाश प्रवृति भये, बहु पाप करे नहिं पाप डराए।
मुख नीत मलीन रहे तिनको, उपजे निजतात सुआतम घाए।।
बलि पावक धूम सुमेघ भयो फिर धूम[1] धुजहन आप खपाए।
कुल कटक अहि विवेक सुनो नित पाप करे नहिं रच लजाए।।१०९।।

(अथ नेपथ्ये कल कला शब्द)

विवेक उवाच।।

सवैया

आहि दुरातम काम कलक सुतुधरमातम आप अलाए।
ते अबवन सुपाप करे इम भाय अघी हमको सुठराए।
नाहि लयो मन तान मनो जिम मूढ मनोज सुनो चितलाए।
तात[2] भयो सुत मोह अधीन सुमारग वेद को दूर भुलाए।।११०।।
कार्य औ अकार्य को गुरु जान पिखे उरमे गरबाए।
वेद विरुद्ध सुपथ विषे मन के मद कै जब पाँउ टिकाए।
ताहि त्याग सुवेद कहे मनुस्मृति[3] मै पुन एहुबनाए।
बीच पुरानन व्यास कहे ऋषि पूर्व ले पुन एहु अलाए।।१११।।

दोहा

पिता गुरू मत त्याग कर, बडभागी प्रहलाद।
मुक्ति पाइ बन्धन तजे, हरि के सेव सुपाद।।११२।।

कवित्त

(पृ० २१) तात जो हमारो सुहृकार के अधीन भयो,
कार्य अकार्य न रंचक विचारियो।।

---

(१) अग्नि, (२) मन, (३) श्लोक—गुरोप्यवलिप्तस्य कार्याऽकार्य-मजानतः। उत्पथ प्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते। अर्थयहः—जो गुरु अहंकारादिक दोषों करके उन्मत्त भावकूं प्राप्त भया है तथा जो शास्त्र करणे योग्य अर्थकूं तथा शास्त्र निषिद्ध अकरणे योग्य अर्थ कूं जाणता नहीं तथा शास्त्र निषिद्ध मार्ग में प्रवृत्त होवै है ऐसे गुरु का शिष्य परित्याग करणा।

जगत को पति जो परमात्मासु तात निज
ताहि को सुबाध जग-श्रृंखल में डारियो।।
माहमदमान निसदिन सनमान कर,
छोडिना सुदूर बध दृढ विसतारियो।।
ऐसो मन तात जोई हत एन दोष कोई,
कर्यो हम त्याग नहिं नाहि मनो धारियो।।११३।।

सवैया

इह औसर वाम विलोकन कै रति के प्रति एहु सुवाक अलायो।
हमरे कुल मे सुप्रधान बडो मति सगसिरयो सुविवेक हि आयो।।
गजगामनि आवत है इत और चले मृग के पति ज्यों हुलसायो।
शिव ज्यो तुहिनाचल की तन्या, मति सगमिले इह भांति सुहायो।।११४।।

दोहा—रागादिक जिन बस किये, कीरतिवन उदार।
उर अतिकोप्यो मान घन, मनोनिरादर धार।।११५।।

सवैया

तन दूबर एहु विवेक पिखो रति चित्त कठोर महादुख दाई।
[1]कलपी मति माहि मुयो लस कै तुहिना चल ज्यो शशि देत दिखाई।
इह कारण ते हम योग्य नहीं रह ठोर निवास चले मृपलाई।
रति सग मनोज सुभाग गए मति सग विवेक बरे तिहआइ।।११६।।
(पृ० २८) ऐसे मति मान मति पति तौ बखान कर।
गए भीन और पिख जाहि सुख पाइये।।१४४।।

सवैया

मात सग विवेक विचार कियों जग भीतर जो जन को सुखदाई।
जिह सो सभ जीव की बन्ध मिटे परमात्म सग सुबेग मिलाई।।
तप सातट तीरथ जोग भजे उपजे सुत बोध बडो जस दाई।
कवि सिह गुलाव बसु एह कथा प्रथमै यह अब निरतर गाई।।१४५।।
गुलाब सिह मति पति मतो, जान मोह भूपाल।
दभ कलादिक पठेगो, तीरथहनन बिमाल।।१४६।।

---

१. रागादि रूप कालस

इति श्रीमन्मानसिंह चरण शिक्षित गुलाबसिंह विरचिते प्रबोधचन्द्रोदयनाटके प्रथमोऽक. समाप्त ॥१॥

इति श्रीमदुदासीनवर्य्य परमानंद शिष्य गुरुप्रसाद विरचिता प्रबोधचन्द्रोदय नाटक प्रथमांकटिप्पणिका समाप्ता। १॥

ॐ श्रीगणेशायनम

अथ षष्ठोऽक प्रारम्भ ॥६॥

दोहा

(पृ० १५०) याउपरत सुहोयगी, जीवनमक्ति[1] रसाल।
सभामाहि प्रवेश तब, कीनो शांति बिमाल॥१॥

शांतिरुवाच

चौपाई

नृप विवेक इम मोहि अलायो। समाचार शांति ने पायो।
मन सुत कामादि कथे जेई। मुए महारण भीतर तेई॥२॥
मोह बिलीन वैराग्य उपाए। पच[2] कलेश सुदूर मिटाए॥
मन प्रशांति की मगनि धार। तत बोधनर करे विचार॥३॥
तुम उपनिषद पास अब जावो। आदर कर तिह मम ढिग ल्यावो।
यों कहि शान्ति सुजवै पधारी। श्रद्धा आवत ताहि निहारी॥४॥
हरष हेर इम शांति उचारे। यह श्रद्धा कछु मत्र विचारे।
इही ओर यह आवत नीकी। सुनो भला अब याके जी की॥५॥

× × ×

---

(१) जीवन्मुक्ति का लक्षण—श्रवणोदिको करके उत्पन्न भया है ब्रह्म साक्षात्कार जिसकूं तिस ब्रह्म वेत्ताकूं जा जीवत अवस्था विषे कर्तृत्व भोक्तृत्वादि रूप सर्वबन्ध प्रतीति की निवृत्ति है ताका नाम जीवनमुक्ति है। (२) (अविद्याऽस्मितारागद्वेषाऽभिनिवेशाः क्लेशाः) मिथ्या ज्ञान का नाम अविद्या है (१) बुद्धि तथा आत्मा के ऐक्याध्यास का नाम अस्मिता है, (२) विषय की इच्छा का नाम राग है, (३) साधन सहित दुख में अप्रीति द्वेष है। (४) मरण से भय का नाम अभिनिवेश है।

(पृ० १८०)

गौरी जननी लोक मे गाया जनक महान।
गुलाबसिंह सुत ताहि के नाटक कीन बखान।।२२२।।

× × × ×

(पृ० १८१)

जिह अज्ञान निवारयो, दीनो मोक्ष अपार।
मानसिंह गुरु चरन को, बन्दौ बारम्बार।।२२४।।

शंकर छंद

रस[1] वेद[4] औ वसु[8] चन्द[1] संवत लोक भीतर जान।
नभमास भृगु पुन वासरे दशमी वदी पहिचान।
गुरुमानसिंह पदार्थविद अलखना उत्थान।
कुरुक्षेत्र प्राचीकूल तट यह कीन ग्रन्थ बखान।।२२५।।

श्लोक

शुद्धाशुद्धाञ्च संशोध्य गूढार्थाञ्च प्रकाशिता।
अविशिष्टाम शुद्धिच शोधयन्तु मनीषिण:।।१।।
गुरो कृपा समासाद्य रचयित्वा सटिप्पणीम्।
मया गुरु प्रसादेन गुरु पाद समर्पिता।।२।।

इति श्रीमन्मानसिंह शिक्षित गुलाब सिंह विरचिते प्रबोधचन्द्रोदय नाटके षष्ठोंकः समाप्तः ।।६।।

इन्दुस्कन्धाक चन्द्राऽब्दे द्वादश्यां श्रावणे तिथौ
बलखण्डिप्रसादाख्यात्सम्पूर्णा टिप्पणी शुभा[1]।

१. अर्थ यह—इस ग्रन्थ में शुद्धाऽशुद्धशोधन करके गूढ़ अर्थों का प्रकाश किया है तथा अविशिष्ट (बाकी) रही हुई अशुद्धि को बुद्धिमान पुरुष स्वयं शोध लेंगे।।१।।

गुरु महाराज की कृपा को प्राप्त होयकर मैंने गुरुप्रसाद से सुन्दर टिप्पणी का निर्माण करके श्री गुरु जी के चरणों मे समर्पित कियी है।।२।।

इति श्री १०८ सत्परमानन्दोदासीन शिष्य गुरुप्रसाद विरचिता प्रबोधचन्द्रोदय नाटक टिप्पणी का समाप्ता।।इति शुभम्।

(५) प्रबोधचन्द्रोदय (हिन्दी अनुवाद) नानकदास (हस्तलिखित प्रति)

(पृ० १)

ओ स्वस्ति श्रीगणेशायनमः
अथ प्रबोधचद्र नाटक लिप्यते नानकदास कृत
ओ नमो भगवते वासुदेवाय

दोहरा

विघन हरन मगल करन क्षेम कुशल परसादि।
ऊत्पति ऊत्पति जोग हरि हितकर ऊचरो आदि ॥१॥
जगत नाट जिम् तट रच्या ऊपत षपत समरथु।
मै तिम कर्त्ता पुरुष को ध्यायत मगल अरथु ॥२॥
नरुनारायण को प्रणम श्री गुरुचर्ण जुहार।
बोधचद्र नाटक कहो सुनो मन चित धार ॥३॥

चौपई

दक्षण देश अवती नगरी, जाकी प्रजा धरम रत सगरी।
तहा रहे कृष्णदास भट नाम, अति प्रवीन पडित गुन ग्राम।
परम विवेक वान हरि भगत, अहि निश कृष्ण भगति आसकत।
तिनका एक शिष्य था मुड, जो बन कर चचल बडह् हुड।
जो गुर ताको ऊपदेश बतावै, परवहु मत्र हृदै नही लावै।
जद्यपि गुरु उपदेश न धरै, पर गुरु की सेवा नित करै।
ताते गुरु को लगे पिआरा, चाहै सिष्य का होय उधारा।
ज्ञान मुक्तिदायक नर देहा। भजन करन को अवसर एहा ॥४॥

दोहरा

भजन कह्यो ताते भज्यो, भज्यो न एकी बार।
दूर भजन ताते कह्यो, ताको भजे गवार ॥५॥
मानुष देह जहा जु है, भव निध तरवे काज।
गुर खेवट हरि पवन लहि, तरे सुराजन राज ॥६॥

चौपाई

बहुत निगम आगम सिषराए, भगति ज्ञान के पंथ बताए।
पर बहु सिष्य जुवा बहु चपल, ताको रुचै नाहि इह सकल ॥

हास विलास बृझारन राता, हित सो सुने युद्ध की वाता।
लोक वारता ही नहिं भावै, पसू अनुमानऊ गाली खावै॥
गुरु उपदेश जु अत मुषदाइक। लोक लोक परलोक सहाइक।
किंचित अपने हृदै न लावै। अव्रत तजि मानो विष खावै॥
कृष्णदास भट थे परवीने। शास्त्र पुरान सभै जिन चीने।
सेवक भव निध डूवत जाना। मत सुभाऊ अनुग्रह नाना॥७॥

दोहरा

(पृ० २)

बोधचन्द्र नाटक ज इह सकल शास्त्र अनुसार।
नाटक मिस वरनन कीओ षट अध्याय मझार॥८॥
जद्यपि सुनवे मात्र एहि है नाटक अज्ञान।
पर केवल याको अरथ लीए विराग ज्ञान॥९॥

कवित्त

प्रथमे अध्याय मैं अविद्या को सग पाइ
निजानद आदि रूप अपना भुलाया है।
अहंकार महामोह ममता अधीन भयो
वार वार जनम मरण माहि आया है।
अव जिन दैव की क्रिया ते सतसग कर
भले शास्त्र पडि सर्वातमा दिडाया है।
तवी इह दुविधा आवर्ण को नाम होइ
चिर जिन याके हृदे आत्मा छपाया है॥१०॥

चौपाई

क्रिष्णदास पडत सुर ज्ञानी। निज सेवक सो कथा विथारनी॥
हे सुत थोरो ही काल विहाना। भयो एक धरती को राना॥
कीरत वरम नाम था याका। सगली वरनि राजथाना का॥
इक दिन सो राजा बल धारी। सुख सो बैठ्यो सभा मझारी॥
नृप ढिग बहुतकि नटूए आए। नट नटनी या बहुत सग छाए॥
अरु अनेक याजत्री सग। चहे कीयो नाटक को रग॥
नृप को सभन करी परणामा। ऊचर्यो राग मधुर अभरामा॥
वाजत्रीयो विजाए वाजे। लगे करन वाजी ढिग राजे॥११॥

दोहरा

आगे करी कनात इक स्वाग बनावन काज।
जाते आवै स्वाग बन देषे सकल समाज ॥१५॥

चौपाई

तब इक नट् अनकाजु सिरोमण, पटते निकस कह्यो ऊंचे मन।
रे भई आम नगागु अलावौ। अरु रे मत बाजत्र बजावौ ॥
राजा की आज्ञा सुन लीजै। माई करो जासों नृप रीझै ॥
सुन कर सभहीं चुप कर गए। अरु बाजत्र घरनि धर दए ॥
तब ही सूत्रधार की नारी। नट विद्या में चतर करारी ॥
पति पाछे आप ठाढी भई। पट भूषण करि सोभा मई ॥

(पृ० ३)

सूत्रधार तब नाहि उचारा। सुन प्यारी पिक वचन हमारा ॥
पिम नृप के वजीर गोपाल। हमको आज्ञा करी रसाल ॥१३॥
× × × × × ×

(पृ० १७)

इह विध वृद्ध अरु राइ विवेक। कहे परस्पर वचन अनेक ॥
समदम यम नेमादि महा भट। तिनके पठवन को तीर्थन प्रत ॥
दोऊ अस्वारे ते ऊठ गए। रिपु मारन हित उद्दम ठए ॥
बोल पठायो समदम ताई। पठ्यो क्षेत्र तीरथन धाई ॥
सगल सूरमा सजधज आए। सातों पुरीयो मो गड छाए ॥
बिंद्रावन मो वस्यो प्रेम। काशी माहि मुक्ति अरु क्षेम ॥
जगन्नाथ मो भगति सुहाग। द्वारकानाथ ज्ञान वैराग ॥
रामनाथ मो धर्म महान। द्वारकानाथ पुत्र परवान ॥१०२॥

दोहरा

(पृ० १८)

यत्न प्रीत परतीति बिन दिसै न आत्म योत।
खाड खाड के कहे ते कब मुख मीठा होत ॥१०३॥
सीसे माहि गुलाब है सीसे के किस काम।
ईऊ जड को सूझे नही घट घट आतम राम ॥१०४॥

इति प्रथम अंक समाप्तम

दोहरा

नृप विवेक को जत्न सुन दुतीए मोहनर राज।
निज भट पठहै दसे दिस विघ्नऊ पावन काज ॥१॥

चौपाई

फिर नटवर एकठ होइ आए। राग अलाप वजत्र वजाए ॥
ता छिन स्वाग दभ का आया। बडे शब्द सो गर्ज सुनाया ॥
मेरी बात सुनो रस भरी। महामोह मोहि आज्ञा करी ॥
जो विवेक नृप पठ्यो वजीरन। सम दम यम नेमादिक धीरन ॥
तीर्थ क्षेत्र जाइ तिन घेरे। आज काल आवत है नेरे ॥
अरु विवेक हमरे वध लीने। सम दमाद भल विदि आ कीने ॥
वोध पुत्र चाहत ऊपजायो। तासो चाहत हमें हनायो ॥
तुम भी सावधान अब होवो। तन मन ते आलस सभ खोवो ॥२॥

चौपाई

(पृ० ११५) (अनुवाद का अन्त)

मुन करि विष्णु भगति हर्षानी। तथास्त पुर्ष को दिखानी ॥
कोई वर्ण जात किन होई। मेरी सर्ण ऊधर है सोई ॥
शक्ल स्वाग नव पूर्ण भए। वाजे वाजन ते मिट गए ॥
सूत्रधार सभ वाहरि आए। राजा को सभनो सिर न्याए ॥

(पृ०११६)

कीर्तवर्म नाम भूपाल। अरु वजीर ताको गोपाल ॥
अैसे अचर्य स्वाग निहारे। तिनके वचन सुनो रद धारे ॥
सभ सर्म तिनके मिट गए। परम तत्त् को प्राप्त भए ॥
मिट्यो अह मोह अज्ञान। पायो अनभव पद निर्वान ॥१७७॥

कवित्त

कृष्णदास पडित को सेवक के ऊधरन की
बहुतक अभिलाषा दृढ निता प्रति ही रहै।
काहू विध मेरो मिथ्य तन को अभिमान तजे
भगवत की भगति द्वार तत्त् ज्ञान को लहै।

अदभुत इतहास सरच विचार्‌यो निज मिक्ष पास
एक पक्षि युद्ध को विलास जहा ठाओ है।
ज्ञान पक्षि दूजे जित काम क्रोध लोभ आदि
शम दम यम नेम भगनि द्वार ज्ञान को गहै ॥१७८॥

दोहरा

इह इतहास सुनाइ के, सेवक कीयो ऊधार।
ब्रह्म ज्ञान को पाइ के, त्यगे सगल विकार ॥१७९॥
कृष्णदास मुख पाइयो, पायो आतम ज्ञान।
पढे सुने जे अवरु ही लहे भगनि भगवान ॥१८०॥
इह पोथी पूरण करी बलीराम हरि मन।
ताको भाखा मो रच्यो नानकदास विनवत ॥१८१॥

सोरठा

हौ अल्पज्ञ अजान यथा बुद्धि भाखा करी।
तुम साधू सज्ञयान भुल चुक लेहु सवार के ॥१८२॥
सकल मतन के पामि मागो दो करजोर के।
पावो भगति निवासि कामादिक दल को दलो ॥१८३॥

दोहरा

अत हित चित सो जो पढे अथवा सुने सुनाइ।
प्रेम भगति भगवान की सहजे सो जन पाइ ॥१८४॥

× × ×

इह इतहास पुनीत वड जहा अध्यात्म ग्यान।
पढे सुने जो प्रीत सो पावै पग भगवान ॥१८९॥
सबन सत अक्षादस अवर षष्ट चालीस।
मघर शुक्ला पचमी पोथी पर्ण करीस ॥१९०॥
इति श्री प्रबोधचन्द्र नाटके षष्टमो अक समाप्त ॥६॥
ओ नमो भगवते वासुदेवाय ओ नम शुभम्

(६) प्रबोधचन्द्रोदय (हिन्दी अनुवाद) घोकलमिश्र

(हस्तलिखित प्रति)

(मुखपृष्ठ)

श्री

प्रबोधचन्द्रोदय नाटक

(पद्यानुवाद)

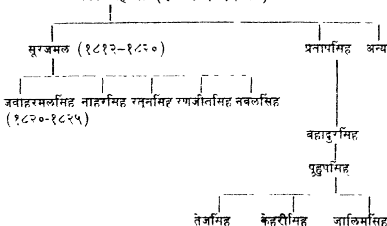
घोकल मिश्र कृत

(श्री तेज सिंह के आश्रित)

(लिपि काल अज्ञात)

हस्त स० ६५।५२ पत्र स० १—१२४ पूर्ण साइज

(श्री मायाशकर याज्ञिक सग्रह से)



नोट—यह वश वृक्ष मूल पुस्तक मे नहीं है। श्री याज्ञिक जी से इसे बनाया है।

श्रीगणेशाय नम.

पृ० १

छप्पै

शकरनदन इदुभाल गणपाल महामति।
मुक्तिमाल गलचारु हारु झमकत उरि विस्तृति॥
हरत विघन वरजाल हाल पूजित नव निधि धर।
तुदि विशाल निहाल करत ध्यावत सब सुर नर॥
गजवदन रदन इक सुप सदन मदन दहन मूषक गवन।
जय शिवानद आमद निधि अति अमद भारति भवन॥१॥

फट्टिय थभ तडक्कि प्रगट्टिय रूप प्रचडिय॥
भयउं सद् दुद्धरप सकल ब्रहमडरमंडिय॥
दिठ्ठिय भार अपार कष्ट निज जन कौं वठ्ठिय।
कुद्धित अति विकराल माल गल आतन मठ्ठिय।
दैत्येंद्र झटक्कि पटक्कि करनषन विध्वसिय जघ धर।
षडन अषड सकट विकट श्रीनृसिह आनद कर॥२॥

दोहा

ज्ञानाजन की मीक लै अजे जिहि जग नैन।
अज्ञ तिमिर को नास किय तिह पदन मौ सुचैन॥३॥

वस वर्नन, अनुगति छद

भूपति भयौ जदुवस मै इक वदन स्यघ उदार।
जर्लनिधि सुता जिहि भवन मे प्रगटी अमित विस्तार॥
भूपाल भूमि जिते सकल वदन चरन अरविंद।
नदन बहुत जाके भये पूजत सदा गोविंद॥४॥
द्वैसुत उदार सुचारु ते सिरदार छविजित मार।
गुन ग्राम मडित जुद्ध पंडित षडि शत्रु अपार।
वय करि बडे महराज सूरजमल्ल उज्जल रूप॥
जीती अनेकन वार सैना म्लेच्छ वोरे कूप॥५॥
तिनते भये परताप लघु जिनको अलघु परताप।
श्री रामचरण सरोज वदत प्राप्त पद दुखाप॥
तिनके बहादुर सिघ राजा भये गुन गभीर।
गुणिजन समुद आनद कर हम कर सरस रस धीर॥६॥
सुत श्री बहादुर के पहुप परसिद्ध विपुल स्वरूप।
जगमगत जाको तेज उज्वल लषत भज्जन भूप।
श्री पुप्प के सुत तीन प्रगटे जे महा परवीन।
महराज श्री रणजीत स्यह प्रताप रक्षित पीन॥७॥
सुघर पुरदर नद मनु जिमि उदधि नंदन चद।
प्रगट्यौ कुसुम नदन बडो श्री तेज स्यह अनद॥
रघुवर चरण युग नित्य वहत लहत परमानद।
गावत सुनत निरमल चरित ध्यावत गुनन के वृद॥८॥

श्री तेजसिंह भुवाल कविजन करत बहु सत्कार।
गुरुदान मान अमान मानत थान पान प्रचार।
असमान आन प्रमान राजत सभामधि गुनवान।
द्युतिवान अग अनग निदरत बुद्धिवान सुजान॥९॥
इक दिन अनुज्ञा करी रचियै ग्रथ यह सुछद।
परबोधचद्रोदय सुनाटक वानि नर सानद।
तवही अनुज्ञा पाय घौकल मिश्र मति अनुसार।
रचिवर्ण भाषा के घरे सज्जन पढौ करि प्यार॥१०॥

छप्पं

धरनि नीर हुत वहन पवन अवर इमि भासत।
तीन लोक जिह ज्ञान विना अज्ञान विकासत॥
मध्यम दिनकर किरन नीर जिमि है मृग तिमना।
वृथा भ्रमत तिह निरखि मद जिनकी है धिमना।
जिह तत्व जानि पडित तजत सर्प बुद्धि जिमि मृगविमै।
तिहँ भजत विमल आनदमय तेज आत्म भा सकल मैं॥११॥
नाडिन करि उद्धृत पवन अतर उल्लंघिय।
ब्रह्म रध्र पुनि सांत मन विषै आनद फुल्लिय।
उज्ज्वल कज्जल हीन सकल ब्रह्माडग मडिय।
परघट तीजे नैन व्याज लल्लाट सुमडिय॥
जय चड ज्योति चडीस की द्युति प्रचड निरखड भुव।
माल भाल सुविमल गल वसन व्याल की किर्ति ध्रुव॥१२॥

× × ×

(पृ० ३)

सोनाटक श्रीकृष्ण मिश्र नैं रचि कैं हमको दीनौ।

(पृ० ४)

नाम प्रबोध इदु को जामैं उदय सुमति सौ कीनौ।
तिही ख्याल की रचना अब हम करिहैं ताके आगै।
कीत्तिवर्म राजा अरु परिसद सकल लखौ अनुरागै॥२१॥
इतनी कहि ग्रहमध्य धस्यौ पुनि घरनी सो इमि वोल्यौ।
करौ तयारी गीत नाट्य की जो कछु होय अमोल्यौ॥

पुनि जथा थान थित व्है के सन्मुष नेपथ्यहि अवलोक्यौ।
कही आर्य इतकु आवौ तुम सब को मन रोक्यौ ॥२२॥

दोहा

मति बोली पीतम सुनौं जो स्वामी छुटि जाय।

(पृष्ठ १८)

तौ तुम अज्ञा मानि सब रचना रचै वनाय ॥१३३॥

छप्पै

जौ तू भई प्रसन्न सिद्ध सब भये मनोरथ।
एक जगत कौ ईम चलायौ पापिन दुप्पथ।
परम पुरुष बहु बाजि मृत्यु ताकी करवाई।
कियौ ब्रह्म नैं भेद ईसहू तैं प्रभुताई।
विद्याहि मग ले रग मे निनि पापिन को हौ हनौं।
पुनि पर ब्रह्म सौ ऐक्यता प्रायश्चित्तहि मम गनौ ॥१३४॥

दोहा

कही जू मैं सो होयगी प्रिया चलौ उताल।
सम दमादि मंत्रीन को अज्ञा करै जुहाल ॥१३५॥

हरिगीत छंद

श्री पुष्प रजन तेज राजत इदु वस प्रदीप है।
रघुवीर पद अरविंद कौ हिय ध्यान और प्रतीप है।
तिह आन मान सु छंद घौकल मिश्र रचित निसक है।
परबोधचन्द्रोदय सु नाटक भयौ प्रथम सुअक है ॥१३६॥

इति श्री यदुकुलावतस राजा जी श्री तेजस्यध आज्ञा मिश्र घौकल विरचित प्रबोधचन्द्रोदय नाटके प्रथमोऽक ॥१॥

सोरठा

(पृ० १९) दंभ कियौ परवेस महामोह अज्ञा दई।
सत्रुन कौ वलवेस लयै प्रतिज्ञा जिन करी ॥१॥

भुजंगीछंद

दई मोहि अज्ञा महामोह राजा।
सुधारौं सबै काज ताके समाजा ॥

करी हे प्रतिज्ञा जु ज्ञानी नरिदा।
पठाए करौ ज्ञान जू मन्त्रि नदा॥२॥

दोहा

सम दमादि मन्त्री गए तीरथ पुण्य सुथान।
ज्ञाने भूप कौ राज बिन थाप्यौ मकल जिहान॥३॥
हमरे कुल कौ नास जव लग्यौ मोह महिपाल।
तव मोकौ अज्ञा दई तू करि इनकौ काल॥४॥
परम मुक्ति दाता सुनी नगरी कासी नाम।
प्रथम विघ्न तामे करौ च्यारि वरन के धाम॥५॥
सो मैंने वाराणसी अपनी करी वसाय।
स्वामी कौ आदेसहू कीयौ अदव वजाय॥६॥

× × ×

अनुवाद का अन्त
(पृ० १२०)

उचरी हर्षित वैन भयौ सव सिद्ध सुकामा।
साति अराति तुम्है अवलोकत हौं चिरकाला।
सुनि देवी कौ वैन पुरुष उचर्‌यौ तिहि काला।
हे देवी तुव परसाद तै मोकौं कछु दुल्लभ नही।
इमि वैन कहि चरनार विदनि भेटि सुष पायौ सही॥२०७॥

मोहनी छन्द

विष्णु भक्ति उचरी तिहि वैन सुनाय।
उठौ पुत्र कछु चहियै लेव सुभाय॥२०८॥
पुरुष उच्चरयौ मात न बातै और।
भलौ कियौ उपकार कहौ सिर मौर॥२०९॥
साति अराति भए भूपति के आज।
भौ कृत कृत्य विवेक लहे सुष साज॥२१०॥
निरमल आनन्द पद मैं कियौ प्रवेस।
यातैं परै न कारिज और सुवेस॥२११॥
श्री पुण्य नदन तेज राजत इदु बंस प्रदीप है।
रघुवीर पद और विद कौ हिय ध्यान और प्रतीप है।

तिहिं आंनि मान सुछद चौकल मिश्र रचित निसंक है।
परवोध चद्रोदय सुनाटक भयौ षष्ठम अंक है ।।२१२।।

(७) प्रबोधचन्द्रोदय (हिन्दी अनुवाद) अयोध्याप्रसाद चौधरी।
(हस्तलिखित प्रति)

(मुख पृष्ठ)

प्रबोधचन्द्रोदय (नाटक)
(हिंदी भाषा गद्य मे)

जिसको कस्बा लखना जिला इटावा निवासी पडित देवीदीन अध्यापक नार्मल स्कूल आगरा ने अपने विद्यार्थी अयोध्या प्रसाद चौधरी मल्हौसी वासी से बनवाया और प्रकाशित किया।

सुख सम्पति अरु भक्ति प्रद नाशक तन अज्ञान।
पढ़हु चित्त दै ग्रथ यह सत्य स्वर्ग सोपान।।

आगरा

मतबअ अबुल उलाई मुहल्ला विल्लोचपुरा मे गफूर बख्श के प्रबध से छपा।
भाद्रपद म० १९४२ वि०
सितम्बर १८८५ ई०

प्रथमबार २५०
पुस्तक

(पृ० १) निवेदन।

प्रिय पाठकगण! यद्यपि इस नाटक मे समयाभाव और विस्ताराभाव के कारण विशेष रोचकता नही आयी। तथापि आप लोगो का समय व्यर्थ न जायगा लीजिये! आद्योपात इसे मन लगा कर एक बार देख तो जाइए तो इस ग्रथकार का परिश्रम सुफल हो। इति सज्जन जन भूल-चूक क्षमा करें।

ग्रथकार

(पृ० २)

श्री गणेशाय नम

दोहा

मगलाचरण

गुण गणेश गावो गुणी सब विधि सुख सरसाय।
बाढ़ै बुद्धि बिबेक बल महामोह मिटि जाय।।

अलख अनादि अनत अज अद्भुत अतुल अभेव।
अविनाशी अद्विय अमित नमस्कार तिहि देव।।

प्रस्तावना

स्थान राजसभा

(गोपाल नाम मत्री विचार करता आया) हमारे महाराज कीर्तिवर्म विषय-वासना मे ऐसे लिप्त हो रहे हैं कि उससे छूटना बडा कठिन है। यत्न तो मैंने ऐसा किया जो सहज ही मे उसके ज्ञानचक्षु खुल पड़े (साम्हने देखकर) आहा सभा मे तो सब सभासद आ गये (साम्हने जाकर) महाराज मैं प्रणाम करता हूँ।

राजा—स्वागत—आओ आज अब तक कहा रहे मैं बड़ी देर से प्रत्याशा कर रहा था।

मत्री—महाराज वह एक नया नट आ गया था उसकी बातचीत मे देर हो गई वह बडा चतुर है और विवेक और मोह के झगडे का जिसमे मोह की हार और विवेक की जीत होगी बहुत अच्छा स्वाग करना जानता है मैं उसे अभी बुला आया हूँ आता होगा आप भी उसका कौतुक देखे।

राजा—अच्छा देखेंगे।

(स्त्री-समेत सूत्रधार आया)

सूत्रधार—(धीरे स्त्री से) प्यारी देखो यही साम्हने राजा कीर्तिवर्म निज मत्री गोपालचन्द्र समेत सिहासन पर बैठे है × × × राजा का मन विषयवासना मे अत्यन्त ही लिप्त देखकर इसी मत्री महाशय ने विचार कर इनके मन मे ज्ञान प्रवेश करने को वह प्रबोधचन्द्रोदय नाटक हम लोगो को सिखलाया है वही आज इस सभा मे होगा × × ×।

× × × ×

(पृ० ३)

सूत्रधार—× × × अब यहा ठहरना उचित नही चलो और स्थान में चलें। (दोनो जाते हैं)

(इति प्रस्तावना)

प्रथम अंक

स्थान रगभूमि निज स्त्री रति समेत कामदेव आया।

कामदेव—देखो प्यारी निर्लज्ज सूत्रधार क्या गप्प मारता था। हमारे

महाराज मोह की पराजय और विवेक राजा की जय मिथ्या बखानते उसे लाज नही आती।

× × × ×

(पृ० ५)

कामदेव—××× इससे रिस भरा इधर ही आता जान पड़ता है। इससे अब यहां रहना न चाहिए। चलो मोह राजा के पास चले। (दोनो गये)

इति प्रथम अक

अथ द्वितीयो अंक

(निज स्त्री मति सहित राजा विवेक आया)

विवेक—देखो प्यारी दुष्ट कामदेव कैसी कैसी गर्व की बाते वृथा बक गया यह ससार मिथ्या है जिसमे यह ससारिक सुख बिलकुल झूठ है।

× × × ×

(पृ० १५)

अथ छठा अक

स्थान सभा

(विद्या का प्रवेश)

विद्या—(आप ही आप) मैंने सुना है कि मेरे दादा मन महाराज बहुत दिनो से माया मे फस कर अचेत हो रहे हैं सो मैं इन्ही की भूल निवारण हेतु यहा आई हूँ। ×××

(मन) हे! विद्या देवी! यह कुटुम्ब स्नेह हृदय से नही छूटता।

× × × ×

विद्या—यह जो मोहमयी माया है सो आपके हृदय मे समाई हुई है। इससे अब एक ईश्वरीय माया का नाटक आपको दिखलाती हूँ। जैसे श्रीमन्नारायण जी ने मालव देश निवासी गाधिनाम ब्राह्मण निज भक्त को अपनी माया का चरित्र दिखा कर माया से छुड़ाय जीवन मुक्त किया था तो आपके हृदय से माया अलग हो जायगी अब आप चित्त धर कर देखिए।

अथ प्रथम गर्भांक

(स्थान नदी तट)

(गाधिनाम ब्राह्मण का प्रवेश)

गाधि—(आप ही आप) कोटिश धन्यवाद है। उस करुणावा उस करुणालय प्रभु का जिसकी माया ने ससार को मोह रक्खा है।

× × × ×

(पृ० २४) (सनुवादक का अन्त)

विद्या— × × ✕ इससे कर्त्ता अकर्त्ता वही है उसी का ध्यान नित्य करना चाहिए। वह माया मे मोहित नही होना इससे हे मन राजा माया त्याग कर उसी मे लीन हो जाओ।

(मन) हे विद्या देवी ! धन्य-धन्य हो अब मेरे हृदय का अधकार दूर हुआ। माया दूर हुई अब मुझे यह सर्व ससार ब्रह्ममय भासता है जो है सो ब्रह्म है (अब मैं वन मे जाकर समाधि लगाऊँगा (गया) सब गये।

इति पाँचवाँ गर्भांक

कीर्तिबर्म—(आश्चर्य और आनद से) अहा यह क्या ! मैं ससार जाल मे कैसा फँसा था कि किसी प्रकार निकलना सभव न था। सो अज्ञान इस सूर्यरूपी पवित्र नाटक के देखने से तम की भाँति नष्ट हो गया। यह ससार झूठ है जो है सो सब ब्रह्म है। (मत्री से) मित्र तुम धन्य हो बारबार तुम्हारा धन्यवाद है। तुमने ही कृपा कर मुझे इस अधकूप से निकाल लिया अहा सत्सग धन्य है। ईश्वर करे ऐसा मित्र सबको मिले। न जाने मेरे किस जन्म के पुन्य उदय हुए जो तुम सा मित्र पाया। मै तुम्हारी कृपा का पात्र हूँ।

मत्री—महाराज मैं तो आपका सेवक हूँ। यह सब उसी नारायण की कृपा है नही तो मेरी क्या सामर्थ्य थी अतएव उस दया सागर से बारबार विनय है कि हम सब इस ससार के आवागमन से छूट मक्ति पदार्थ पावे। और जो कोई इस नाटक को देखे अथवा उसकी कथा पढ़ै-सुनै वह भी माया से छूट कर भवसागर पार हो।

॥ इति ॥

(८) प्रबोधचन्द्रोदय (हिन्दी अनुवाद) भुवदेव दुबे (प्रकाशित प्रति) (मुख पृष्ठ)

प्रबोधचन्द्रोदय नाटक

प्रथम व द्वितीय भाग

जिसमे

नाटक की रीति पर नट और नटी—काम और रति विवेक और सुमति दम्भ, दम्भशिष्य—अहकार, मोह चारवाक, अज्ञान,-क्रोध, लोभ-तृष्णा, हिंसा-सरस्वती, मिथ्या—इनमे परस्पर अनेकानेक चित्र-विचित्र वार्ता हुई है उसका वर्णन है।

जिसको

नाट्य रसिक पुरुषो के चित्त विनोदार्थ पण्डित भुवदेव दुबे गढ़ा कोटासागर निवासि ने देश भाषा मे अति ललित बनाया है।

प्रथम बार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी० आई० ई०) के छापेखाने में छपा

एप्रिल सन् १८९४ ई०

इस पुस्तक का हक तसनीफ महफूज है बहक नवलकिशोर प्रेस

जुज ३ वर्क १

टिप्पणी—इसके मुख पृष्ठ के पश्चात् द्वितीय पृष्ठ पर मुख पृष्ठ के वर्णन से कुछ अन्तर है।

प्रबोधचन्द्रोदय नाटक

जिसमें

नाटक की रीति पर नट और नटी, काम और रति,

विवेक और सुमति इनमे परस्पर अनेकानेक चित्र-विचित्र वार्ता

हुई है उसका वर्णन है

जिसको

नाट्य रसरसिक पुरुषों के चित्त विनोदार्थ पण्डित

भुवदेव दुबे गाढा कोटासागर निवासी ने देश

भाषा मे अति ललित बनाया है

प्रथम बार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी० आई० ई०) के छापेखाने में छपा

अक्टूबर सन् १८९३ ई०

इस पुस्तक का हक तसनीफ महफूज है बहक नवलकिशोर प्रेस

(पृ० २)

श्री गणेशाय नम

प्रथमांक

नाटक पात्र

(कीर्त्तब्रह्म राजा गुपाल मत्री साधु समागम नट समाज)

वार्ता—कीर्त्तब्रह्म महाराज की सभा मे साधु समागम नामी नट अपर निज सहायक रूप यौवन गर्वित पुरुष स्त्री सहित सपूर्ण बीणा, मृदंग, सितार आदि यन्त्र लेकर प्रवेश करते गान करने लगे पश्चात् नट कहता है)

नट—(भुजा उठा कर कहता है) अहो समस्त तत्री गण हो किंचित समय पर्यन्त यत्रों को मौन करके श्रवण करो (फिर निज स्त्री से कहता है) हे मृगनैनी कोकिल बैनी मेरी प्रिया आज महान सुखदायक एक अद्भुत आकाशवाणी हुई है जिसके श्रवण करते ही मेरे शिर पर से अभिमान का भार गिर गया जिससे अब मैं पाय फैलाकर सुखपूर्वक सोता हूँ—

नटी—(हस कर) अहो प्राणपति प्रीतम कहिए वह बाणी किसने कही और उसने क्या कहा—

नट—हे प्रिये जो पुरुष प्रकाशमय प्रसिद्ध अविगत अविनाशी जगत प्रकाशी जिसके रोम रोम मे ब्रह्माड है और सबके सुखदायी सुखधाम सर्वव्यापक परमानद है और अकल अनीह अज अनत भगवान् हैं, जिसको नेति नेति कहि वेद गान करते है और जिसकी आज्ञानुसार माया ने सम्पूर्ण ससार प्रपच रचा है। जो अगुग अनूप सर्वगुण रूप अवर्णनीय है जो बिनत्वक् स्पर्शी है—बिना पद के गमन कर्ता है बिना नेत्रो देखता है बिना श्रवण के सुनता है बिना नासिका के सूघता है बिना मन के गुनता है × × × उसी ने बिना बाणी के सम्पूर्ण दासो की कामना पूर्ण होने के निमित्त कहा है कि जो कीर्तब्रह्म नामी भूपति सपूर्ण गज कार्यानुरागी है तथापि उसने सामारिक विषय मिथ्या समझ कर परमार्थ मार्ग पर चरण रख मोहजाल के तोडने की अभिलाषा की परन्तु इसी अन्तर्गत मे गुपाल मत्री ने फिर राज्याशक्ति करा दिग्विजय कराय दी × × ×।

× × × ×

(पृ० ५)

(यहा तक नट के वचन सुनकर परदा के भीतर से काम का स्वाग बोल उठा)

काम— (महान् क्रोध करके) अरे हू नीच तूने यह क्या कहा अरे मूर्ख तू महाराज मोह का द्रोह करता है विवेक की क्या सामर्थ्य है जो जीन सके कारण कि जिनके हम सरीखे चढवायक हैं × × ×।

× × × ×

(पृ० २१)

सुमति—हे नाथ जो इस प्रकार से शील समुद्र पुत्र उत्पन्न होवे तो मन आपके वश हो जायगा और मैं भी बडभागिनी होऊँगी और हे प्राणप्यारे आपको पिता का उपकार करना उचित है और मैं तो आपकी आज्ञा में हूँ इससे शीघ्र ही श्रद्धा को उपनिषद् के समीप भेजिए सो मनाय ल्यावे × × × ×।

विवेक—(ऐसे वचन सुन कर अत्यन्त हर्ष से कहते हैं) हे सुमति अब जो तुम मेरी सहायक हुई हो तो सम्पूर्ण कार्य बिना ही प्रयास से सिद्ध हो जावेंगे × ×।

(पृ० २२)

सुमति-—हे नाथ आपने जो यह मत्र किया है सो मैंने भी निश्चय कर लिया है × × × ×।

(पृ० २३)

विवेक—हे सुमति तुमको धन्य है मुझको तुम्हारा भरोसा है इससे अब चलकर समाधिकों को तीर्थों की ओर बिदा करैं (इस प्रकार कहि कर विवेक महाराज गये और सत्रीगण गान करने लगे)

इति प्रथमो टक

"भुवदेव दुबे"

गढाकोटा सागर

मुशी नवलकिशोर (सी० आई० ई०) के छापेखाने मे छपा

अक्टूबर सन् १८९३ ई०

इस पुस्तक का हक तसनीफ महफूज़ है बहक नवलकिशोर प्रेस

१ जुज़ ४ वर्क

श्री गणेशाय नम·

प्रबोधचन्द्रोदयनाटक दूसरा भाग

द्वितीयाक

(पृ० २५)

पात्र—नटदभ दभशिष्य अज्ञान क्रोध लोभ अहकार मोह चारवाक तृष्णा हिंसा भरमावती मिथ्या।

नट०—(कीर्तिब्रह्म महाराज से) हे महाराज पूर्वांक मे जो विवेक ने विचार किया उसको सुनकर मोह ने भी अपने मत्रियो को यह आज्ञा दी है कि ऐसा यत्न करो जिसमे विवेक का मत्र सिद्ध न होवे

(इसी अन्तर मे परदा के ओट से दभ का स्वाग यह कहता हुआ बाहिर आया—

दम्भ०—महाराज मोह ने मुझसे यह कहा है कि विवेक राज उपनिषद् नामिक दूसरी रानी से प्रबोध नामिक पुत्र उत्पन्न कर कुल सहित मेरा नाश कराया चाहता है × × इस हेतु जो योद्धा मेरी ओट के होंय सो आलस्य-निद्रा को छोड बखतर पहिन अपनी अपनी कमर कसे × × × ×।

× × × ×

(पृ० ४५)

मिथ्या—(मुसक्याकर) मुझे किस कार्य को बुलाया है।

मोह—हे भामिनी तुम अच्छी प्रकार से जानती हो कि मेरे सपूर्ण कार्य तुम

बिना फीके थे इससे तुम सदैव मेरे हृदय मे बसती हो एक क्षण भी नही भूलती हो और जिस हेतु मैंने बुलाया है सो मानौ आज वह सब कार्य हो गया मैंने सुना है कि श्रद्धा शाति सहित उपनिषद् के समीप गई है इस हेतु उसको विवेक से मिलाय बोध का प्रकाश चाहिती है उसके उदय होते ही कुल का नाश हो जायगा इससे चिन्ता बहुत है इस कारण हे प्रिया तै वहा जाकर छल-बल से पकड चोटी धर यहा लाव तौ वह बन्दीगृह मे रहै जिससे हमारा क्लेश मिटै।

मिथ्या—हे राजन यह कौन बड़ा कार्य है आपके प्रताप से मिथ्या शास्त्र रूपी ऐसा उपाय है कि उसको अभी बाँध कर पाखण्ड मे रखती हूँ जिससे विवेक को भी सभार न रहै और जो उपनिषद् का चन्द्रतुल्य प्रकाश है उसको अस्त किये देती हूँ फिर श्रद्धा की कितनी बात है।

(ऐसा सुन मोह हर्ष को पाय हृदय से लगाय कहिने लगा)

मोह—हे प्यारी तू बुद्धि बल साहस सहित चतुर है इस हेतु सब प्रकार से मुझे निश्चय है कि जो कार्य मुझसे नही होगा वह तुमसे हो जायगा (ऐसा कहि हर्ष सहित प्यारी रम्भा कहि मुख चूम कुच को स्पर्श किया तब)

मिथ्या—हे राजन सभा के बीच ऐसा करने से लज्जा आती है इस जो कदाच आपकी ऐसी ही इच्छा होय तो सुखदायक रगमहल को चलिए।

(यह मिथ्या के वचन सुनकर मोह राज इस ख्याल को पूर्ण कर शयन को चला।)

इति द्वितीय अक

(९) प्रबोधचन्द्रोदय (हिन्दी अनुवाद) कार्ष्णि गोपालदास
(मु० पृष्ठ)

(प्रकाशित प्रति)

ओ३म्

॥ श्री वृन्दावनविहारिणेनम ॥

॥प्रबोधचन्द्रोदय॥

नाटक

श्रीमत्परमहंसोदासीनशिरोवतस स्वामि-
ज्ञानदास शिष्य कार्ष्णि गोपालदास
विनिर्मित
कार्ष्णीश्वरदासीयटिप्पणीसमुद्घाटित
जिसको
राज्य भरतपुर जय श्री ग्राम निवासी

नन्दराजवंशोद्भव भक्त रामनारायण जी ने
स्वद्रव्य व्यय से धर्मार्थ
"लक्ष्मीनारायण" यन्त्रालय
मुरादाबाद मे
छपा करके प्रकाशित किया
प्रथमा वृत्ति सन् १९१०
लक्ष्मीनारायण ने अपने नारायण प्रेस मुरादाबाद मे छापा

धन्यवाद पत्र—

शतश उन पुरुषो को धन्यवाद है कि जो न्यायोपार्जित निज द्रव्यव्यय से सद्-ग्रन्थो को छपवाय के प्रदान करे है, × × ×अत सर्व दानो से सच्छास्त्र प्रदान का अधिक फल है, × × ×इसमे स्वार्थ परार्थ दोनो ही सिद्ध हो सके है, अत विचारशील पुरुषो को सद्ग्रन्थो के प्रचार मे ही स्वद्रव्य व्यय करना चाहिए, अलधर्भज्ञेषु !

कार्ष्णि गोपालदास
ठि० रामद्वारा, कसकिला मथुरा।

(पृ०क) भूमिका—

प्रियवर ! अनेक श्रुति-स्मृति-पुराणादिको में प्रसिद्ध है कि—नाना ससार-दु ख-दैन्य-दावानल-दग्धहृदय-देहधारियो को तत्व साक्षात्कार अमृतार्णव का मज्जन ही शान्ति देता है, सो तत्वज्ञान वेदान्त शास्त्र के विचार से प्राप्त होय है, परन्तु मन्दमति मलिनान्त करण पुरुषो का मन विचार मे नही लगे है, ऐसे मन्दाधिकारियो पर परमानुग्रह करके वेदान्त शास्त्र मे प्रवेश के लिये श्रीकृष्ण मिश्र जी ने नाना रसो कर भूषित अद्भुत काव्य "प्रबोधचन्द्रोदय नाटक" निर्माण किया है। × × ×

× × × ×

(पृ०ग)

यद्यपि इसकी छन्दोबद्ध भाषा प्रथम गुलाबसिह जी ने की है, परन्तु उसके अनुसार नाटक नही हो सके हैं, क्योकि नाटक काव्य के नियम उसमे नही हैं, और मूल से न्यूनाधिक भी बहुत किया है, किंच उसका लेख प्राय गुरुमुखी-वर्णलिपि के अनुसार है इस वास्ते सब के उपयोगी भी नही है, और जो देवनागरी वर्णो मे छपा है उसमे शब्दशुद्धि करने से बहुत ठिकाने छन्द भग हो गया है, और भी जिस किसी ने इसकी भाषा की है सो सर्वथा मूल के अनुसार नही की, इस वास्ते अब यह ब्रज भाषा की है।

कविवरो से सविनय प्रार्थना है कि कर्णापाटवादि दोषते यदि कोई अशुद्धि हो तो कृपा करके शुद्ध कर लें। अलम्—

भवदीय कृपाभिलाषी—
कार्ष्णि गोपालदास
रामद्वारा, कसकिला, मथुरा

ओ३म्

श्री वृन्दावनविहारिणेनम

प्रबोधचन्द्रोदय नाटक

(नान्दी[1])

जिस पुरुष[2] के अज्ञान का नभ,
आदि जगत् विलास है।
मध्याह्न भानु मयूख[3] मे पय[4]-
पुञ्ज सम जो भास है॥
पुन जा सके विज्ञान कर स्रज,[5]
सर्प-सदृश विलाव है।
तिस अमल स्वय प्रकाश सुखमय,
ज्योति को हम ध्याव है॥१॥
नाडी[6] विरुद्ध समीरन,[7]
ब्रह्माण्ड मे जो लयगई।

(पृ० ८)

जो योगिजन के विमल मन मे,
मोदमय[8] प्रकटित भई।
स्वतृतीय लोचन व्याज[9] से जो,
चन्द्रशेखर[10] सिर धरी।
सो सर्वव्यापी ज्योति प्रत्यक,[11]
जयति[12] नित सर्वोपरी॥२॥
(नान्दी के अन्त मे सूत्रधार[13] कहे है)

---

१. ग्रन्थ विवय—सूचक मगलाचरण। २. परिपूर्ण परमेश्वर के। ३. किरण। ४. जल। ५. माला में। ६. सुषुम्ना। ७. वायु। ८. आनन्द स्वरूप, ९. मिष से, १०. महादेव ने, ११. अन्तरात्मा, १२. सर्वोत्कृष्टता को प्रकट करे है। १३. नाटकाचार्य,

सूत्रधार—तिस परिपूर्ण परमात्मा की अनन्त महिमा है, कहां तक निरूपण की जाय ब्रह्मादिक भी जिसका पार नही पा सके हैं, तो मैं मन्द मति कौन हू, अब तो जैसे, सकल महीप समूह मुकुटमणि-किरण कदम्ब[1] पूजित पाद पद्म, बलिष्ठ रिपु पुंज—वक्षस्थल-कपाटपाटन-प्रकटित-नरसिंह रूप, अति प्रबल भूपाल कलाप[4] प्रलय पयोनिधि-निमग्नमेदिनी उद्धार-वराहावतार रूप,

(पृ० ९)

सकल दिशा ललनाकर्ण भूषण कृत—कीर्तिलतापल्लव, समस्त दिग्गज—कर्णताल-संघर्षोत्पन्न—पवनपुंज प्रचार-प्रज्वलित प्रताप पावक, श्रीमान् गोपाल भूपाल ने कहा है कि सहज सुहृद श्री कीर्तिवर्मा नरेन्द्रदेव के दिग्विजय व्यापार कर तिरोहित[2] ब्रह्मानन्द रस हुए हम लोगो ने प्राप्त विविध विषय रसास्वादन से व्यर्थ ही दिवस व्यतीत किये हैं, परन्तु अब हम कृतकृत्य हैं। जिससे—

अमित्र[3] भूपती समूह कीर्तिवर्म का जिता।
प्रसिद्ध मन्त्रिसंघ[4] मे क्षिती[5] अतीव रक्षिता।
क्षितीन्द्र पुंज के किरीट कोटि[6] से समर्चिता।
समुद्र मेखला धरा अखण्ड राज्य निर्मिता ॥३॥

इसमे हम शान्तरस प्रधान नाट्यानुकरण से आत्मविनोद को चाहते हैं। × × ×

(पृ० ३३)

राजा—प्रिये! यदि इस प्रकार तू प्रसन्न है, तो चिरकाल के हमारे मनोरथ सिद्ध हुए। सो सुनिये—

परम पुरुष प्रभु जगदादी जो
अविनाशी अविकारा।
तिमे बान्ध[7] पुन बहुत रूप[8] कर,
पुरभव[9] मे जिन[10] डारा।
तिन हत्यारो[11] का प्राणान्तिक

(पृ० ३४)

कर प्राश्चित्त विधान।
जीव ब्रह्म की एक रूपता,
विद्याकर पुन ठानू ॥३१॥

---

१. समूह। २. अन्तरधान, ३. शत्रु, ४. समूह, ५. पृथ्वी। ६. कोण। ७. अहंकारान्वित करके, ८. उपाधि भेद से बहुरूपता, ९. देहरूप संसार में, १०. मन आदिकों ने, ११. ब्रह्मक ब्रधक होने से ब्रह्महत्यारे।

सो जो कुछ होना है सो हो वो। अब तो पूर्वोक्त प्रयोजन[1] की सिद्धि वास्ते शमादिको को इस कार्य मे लगावे।

(मति और विवेक राजा जाते है)

इति श्री प्राकृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटके आत्मबन्धमोक्ष-
कारण निरूपण नाम प्रथमोऽङ्क
समाप्त ॥१॥

अथ द्वितीयांक

(तिसमे अनन्तर दम्भ प्रवेश करे है)

दम्भ—महाराज महामोह ने मेरे को कहा है कि हे तात दम्भ ! यमनियमादि मन्त्रियो के सहित विवेक ने प्रबोध-उदय के वास्ते यथावत प्रतिज्ञा करी है, (पृ० ३०)

और तिस तिस तीर्थ मे शम-दमादिक भी भेजे है, सो यह उपस्थित हमारे कुल का नाश, सावधान होय के तुमको निवृत्त करना चाहिए। तहां पृथिवी मे परम मुक्ति का क्षेत्र काशीपुरी है, सो तू वहां जाय के चारो आश्रमो के मोक्ष मे विघ्न वास्ते प्रयत्न कर। × × ×

× ×

अनुवाद का अन्त पृष्ठाङ्क ६

पृ० (२०३)

(अनन्तर भगवद्भक्ति प्रवेश करे है)

विष्णुभक्ति—(हर्ष से समीप जाय कर) शत्रुओ की शान्ति से स्वस्थ हुआ तुमको देख के बहुत काल पीछे हमारे सर्व मनोरथ सिद्ध भये है।

पुरुष—आपके अनुग्रह से क्या दुर्लभ है।

(इस प्रकार कह के चरणो म गिरे है)

विष्णुभक्ति—(पुरुष को उठा के) वत्स उठिये कहिए तुमारा और क्या हित करू।

पुरुष—इससे अधिक और हित क्या है जिससे—

भए भूप कृतकृत्य अब, शत्रु भये सब लीन।
शुद्ध सदा मुत्र पद विषे, मो को स्थापित कीन ॥

---

१. प्रायश्चित्त, २. बोधोत्पत्ति। ३ विवेक राजा

सूत्रधार—यद्यपि प्रार्थना की आवश्यकता नही है तथापि इस प्रकार होना चाहिए।

मेघ मानो अनुकूल जगत मे,
वर्षा बहु विध वर्षावें।

(पृ० २०४)

विविध उपद्रव रहित नृपति जन,
[1]भू-पालन मे मन लावे॥
तत्त्व बोध से तिमिर[2] हनन कर,
विज्ञ कृपा तुमरी[3] पावे।
विषय ममत्व भीति[4] पकाकित[5]
समृति-सागर[6] तरजावे॥३३॥
(इस प्रकार विचित्र अभिनय करके सर्व पात्र जाते हैं)
बोध चन्द्रमा उदय, मिश्र की गिर[7] नभ माही।
सम्कृत लोचन हीन, पुरुष को दीसत नाही।
प्रतिबिम्बित अब कीन, लोक भाषा मे सोई।
देख सकत अब सुगम, मन्द दृष्टी जन जोई।
कृष्ण मिश्र की सुरगिरा,[8] क्षीर समुद्र समान।
कृष्ण कृपा से मथन कर, काढा रत्न महान।
काढा रत्न महान, बोधचन्द्रोदय नामा।

(पृ० २०५)

जिसकी द्युतिकर[9] नष्ट, भया अब "घनतम ग्रामा"।
भाग गये कामादि, चार-पिशिताशी[10] तृष्णा।
शुद्ध सच्चिदानन्द, सकल भासत श्री कृष्णा॥२॥
शुद्धाशुद्ध विवेक कर, विरचा मति अनुसार।
कविजन पुन शोधन करें पूरब अपर विचार॥३॥
मूल ग्रन्थ मे नियम जो, सो अब इसमे जान।
न्यूनाधिक कुछ नहि किया, लख प्रतिबिम्ब समान॥४॥
शररस अंक मृगांक[11] मे, महाविपिन कर वास।
माघमास मे ग्रन्थ यह, विरचा मथुरा पास॥५॥

---

१. पृथिवी के, २. अज्ञान रूप अन्धकार, ३. भगवद्भक्ति की, ४. भय, ५. कीच कर के सयुक्त, ६. ससार, ७. वाणी, ८. देववाणी। ९. प्रभ., १०. गाढ़, ११. अंधकार का समूह, १२. पिशाची। १३ चन्द्र अर्थात सं० १९६५।

इति श्रीमत्परमहंसोदासीनशिरोवतंस स्वामिज्ञानदास शिष्येण कार्ष्णि गोपालदासाह्वयेन विनिर्मिते प्राकृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटके जीवन्मुक्ति निरूपणं नाम षष्ठोक समाप्त ।।६।।

सम्पूर्णोय ग्रन्थ·

पुस्तक मिलने का पता—

कार्ष्णि गोपालदास नरोत्तमदास

टि० जटामल श्यामलाल का टाल

कमकिला—मथुरा

कार्ष्णि चित्र चरित्रम्—

धृत्वा देह द्विजकुलभव पश्चिमे रामपुर्य्यां,
हित्वा बाल्ये निजसखिजनै क्रीडन कृष्ण चित्त ।।
भित्वा मोह युवति जन तीवन्धु वर्ग किशोरो-
मत्वा भोगान्विषवदखिलानैहिकामुष्मि कान्य ।।१।।

× · ×

तत्रोपित्वाचरमदिवसे मौनमाप्त्वाप्यतन्द्रे,
चित्ते त्वब्दे मघशिनिदले[1] बाणबाणाक चन्द्रे ।।
त्यक्त्वा काय त्वचमिव फणी मस्मगग्नप्रयाम ।
कृष्ण वन्दे परपदमितम्न[2] गुरु ज्ञान दासम् ।।८।।

श्रीज्ञानदासस्य हि कार्ष्णिकेन।-
श्चित्र चरित्र परम पवित्रम् ।।
परन मनुष्य परमात्मभक्ति,
लब्ध्वा सदा कार्ष्णिगति लभेत ।।९।।

इति श्री कार्ष्णि गोपालदास विनिर्मितम् कार्ष्णिचित्रचरित्र सम्पूर्णम् ।

पुस्तके मिलने का पता—

गणेशीलाल, लक्ष्मीनारायण

लक्ष्मीनारायण, यत्रालय,

मुरादाबाद

१०. प्रबोधचन्द्रोदय (हिन्दी अनुवाद) महेशचन्द्रप्रसाद (प्रकाशित प्रति)

(मुख पृष्ठ) श्रीमत्कृष्णमिश्रयति

प्रणीत

---

१. चैत्र कृष्ण पक्षे २. गतः ।

प्रबोधचन्द्रोदय

नामक संस्कृत नाटक का

हिन्दी अनुवाद

'संस्कृत साहित्य का इतिहास', 'स्वदेश सतसई'', 'जातक-माला'',
'हिन्दू-सभ्यता', ''भारत-भाग्योदय'', 'भारतेश्वर का सन्देश'',
''शोक-संगीत'', प्रभृति के।

लेखक

पटना निवासी

महेशचन्द्रप्रसाद, एम० ए० (संस्कृत) एम० ए० (हिन्दी)

द्वारा

रचित और प्रकाशित

प्रथम संस्करण	१९३५	मूल्य
१,०००	सर्वाधिकार सुरक्षित	॥)

समर्पण

श्रीमान श्री निर्मल कुमार जी जैन,
ज़मीदार, बैंकर, मिल-ओनर, तथा प्रेसिडेन्ट, बिहार चेम्बर आव
कामर्स आरा, शाहाबाद

श्रीमन् !

आप बिहार प्रान्त के एक आदर्श × × ×आप इसे सानुग्रह स्वीकार करेंगे।

आरा विनयावनत

३०-४-३५ महेशचन्द्रप्रसाद

भूमिका

अनन्त धन्यवाद है उस अनन्त अखिलान्तरात्मा को जिसकी अनुकम्पा से आज मुझे इस पुस्तक की भूमिका लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। × × ×

मूल ग्रन्थ का परिचय—मूल ग्रन्थ बड़े महत्व का है। संस्कृत साहित्य में इसका आसन अतीव ऊँचा है।

× × × ×

ग्रन्थ का विषय

इस नाटक में वेदान्त-दर्शन का दिग्दर्शन है। वेदान्त उपनिषदों के सिद्धान्तों को नियमबद्ध कर यथोचित रूप से वर्णन करता है। × × × ×बुद्धि के नाश से मनुष्य का सर्वनाश हो जाता है। इसी सर्वनाश से बचने का उपाय इस नाटक में है।

टीकायें और अनुवाद

ग्रन्थ जब बहुत ही विख्यात होता है तभी उस पर टीका-टिप्पणी × × × × "प्रबोधचन्द्रोदय" की प्रसिद्धि के प्रमाणस्वरूप इसकी दो टीकायें वर्तमान हैं—एक तो नाण्डिल्ल गोप मन्त्रिशेखर "चन्द्रिका व्याख्या" और दूसरी रामदास दीक्षित कृत "प्रकाशाख्य व्याख्या"।

इतना ही नहीं। इसका अनुवाद अंग्रेजी में भी किया गया है।

× × × ×

संवत् १८४६ मे अर्थात् आज से १४५ वर्ष पहले कविवर गुलाबसिंह जी द्वारा ब्रजभाषा मे इसका अनुवाद हुआ था जिसको पंडित गुरुप्रसाद उदासीन ने हाल ही मे गुरुमुखी अक्षरो से देवनागरी लिपि मे उतारा है, और जो "श्री वेंकटेश्वर प्रेस" बम्बई से प्रकाशित हुआ है।

प्रस्तुत अनुवाद

× × × × परन्तु जब हिन्दी कविता की भाषा की दो धाराएं बह रही है, तब ब्रजभाषा के अतिरिक्त वर्तमान हिन्दी अर्थात खड़ीबोली मे भी एक अनुवाद का होना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत हुआ।

× × × × तीसरे अंक मे मुझे कुछ उलटफेर करना पड़ा है। इस समय एकता की तूती बोल रही है। ईसाई, मुसलमान यहा तक कि मेहतर को भी अपनाया जा रहा है। उक्त अंक का अनुवाद प्रकाशित करना धार्मिक विद्रोह फैलाना होता। "प्रबोधचन्द्रोदय" के उत्तर में श्रीवादि चन्द्र सूरि कृत 'ज्ञान सूर्योदय" नामक संस्कृत नाटक—जिसका हिन्दी अनुवाद बम्बई के 'हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय' के अध्यक्ष श्रद्धेय श्री नाथूराम प्रेमी जी ने किया है।

× × × ×

पुनः जब हमारे हिन्दू धर्म में ही पतित से पतित पुरुष विद्यमान है, तब हम अपने फाड़े को न देखकर दूसरे की फुसी निहारें यह सर्वथा अनुचित है। और कही जो रोग रहित अंग का रोग युक्त माना गया तो और भी अनर्थ हुआ। अतएव मूल ग्रन्थ मे जैन और बौद्ध के सम्बन्ध मे कही गई बातो का सम्बन्ध कापालिक के अतिरिक्त एक नवीन कल्पित पात्र 'महंत' से करा दिया गया है। × × ×

× × × ×

आरा

होलिकोत्सव-संवत् १९९२। महेशचन्द्रप्रसाद

श्रीगणेशायनम

(पृ० सं० १)

प्रबोधचन्द्रोदय नाटक

प्रस्तावना

छप्पं

नान्दी—मध्य दिवस रवि रश्मि बीच जल वीचि सुहावे।
अनिल, अनल, जल, नभ थल त्यों त्रैलोक्य रचावे।
जिस प्रभु का अज्ञान, पुन. वह लय को पावे।
लहे ज्ञान ज्यों भ्रम न हार हर-हार सजावे।
अमल और आनन्द-घन, अमल हृदय मे गम्य की।
करते चारु उपासना, हम उस ज्योति सुरम्य की॥१॥

पुन —

प्रविश सुषम्ना ब्रह्म रन्ध्र उल्लघन कारी।
शान्त स्वान्त मे भासमान आनन्द विहारी।
नाश अनृत को अहकार शुभ ज्ञान प्रसारी।
जय हो प्रत्यग्ज्योति परम वह जगतम हारी।
योगिराज भव भाल दृग, मिस जो प्रकटित है हुई।
जगव्यापी उस ज्योति मे, निशिदिन रति होवे नई॥२॥

(सूत्रधार का प्रवेश)

पृ० २)

सूत्रधार—

बस बढाने का काम नही। सकल सामन्त समूह की मकुट-मणियो की किरणो से जिनके चरणकमलो की आरती होती है, पराक्रमी रिपु पुजो के वक्षस्थलरूपी कपाट को विदीर्ण कर जो नृसिह रूप से प्रकट हुए है, प्रबल नृप-वश-विनाश रूपी महार्णव मे मग्न हुई मेदिनी के उद्धार करने मे जो महावराह स्वरूप है, जिन्होने निखिल दिग्वधुओ को अपनी कीर्तिलता के पल्लवो के कर्णाभरण पहराये है, पुन समग्र दिग्गजो के कानों के आस्फालन से निकले हुए अनिल के आघात से जिनका प्रताप रूपी अनल नृत्य कर रहा है—ऐसे श्रीमान् गोपाल महानुभाव ने मुझे यह आदेश दिया है—"सहज सुहृद राजा कीर्तिवर्मा देव के दिग्विजय के कारण ब्रह्मानन्द के रसास्वादन मे हम लोगो को विलम्ब हो गया। विविध विषयो के

रसास्वादन से हम लोगो के दिन मानो दूषित रूप से व्यतीत हुए। किन्तु अब हम कृतकृत्य है।

× × × ×

(पृ० १७)

मति—आर्य्यपुत्र ! यदि दृढ ग्रन्थ से कुल प्रभु का इस प्रकार बन्धन मोक्ष हो तो उपनिषद् देवी के साथ आपका सब दिन सम्बन्ध रहे। यही सुन्दर है और यही मुझको प्रिय है।

(पृ० १८)

राजा—प्रिये ! यदि तुम इस प्रकार प्रसन्न हो तो सकल मनोरथ सिद्ध हैं। क्योकि—

विजया

विविध विधि बाँध के, विपुल भेद साध के,
अनन्त अखिलेश को धरा है नर-देह मे।
हा ! जिन अति क्रूरो ने, असुर-मति-शूरो ने,
कठोरता सु घोर मे, रखा है मृत्यु गेह मे।
उन ब्रह्म भेदियो को, नित्य मर्म छेदियो का,
कु-वेधियो को दल के, कुचल कर खेह मे।
प्रबल विद्या के बल, अमल आ अविकल,
मां ब्रह्म को धरूँ पुन मैं एकता अदेह मे।।३१।।

अच्छा तो प्रस्तुत कार्य्य के निमित्त शम इत्यादि को नियुक्त करता हूँ।

(मति और विवेक का प्रस्थान)

तीसरा अक

(पृ० ४३)

(शान्ति और करुणा का प्रवेश)

शान्ति—(रोती हुई) माँ ! माँ ! तू कहा है ? मुझको प्रिय दर्शन दे।

× × × ×

करुणा—(रोती हुई) सखि ! × × × इधर-उधर अच्छी तरह अन्वेषण करती हूँ। × × ×

× × × ×

(पृ० ४७)

(शान्ति और करुणा घूमती है)
(चन्दन टीका किये हृष्ट-पुष्ट एक महत का प्रवेश)

महत—(विचार कर) हे, हे उपासको!

कुसुम-स्तवक

क्षण-भगुर ओ स्थिति-शून्य घटादिक-भाव
सभी यह जो विहरे विहरे।
न्ति अर्पित हो जिनमें, रह भीतर भी,
सम बाहर के लहरे लहरे।

(पृ० ४८)

मृदु-मोह-विनोद-विलास-विभाव
कषाय-विहाय वही छहरे छहरे।
कष वल्मष हीन-अहो अब ज्योति निधान
स्व ज्ञान यहाँ फहरे फहरे॥८॥

(घूम कर श्लाघा से) अहा! कृष्णचंन भी कैसा सुखद है! धन्य वह रास क्रीडा!

शिष्य—भगवन्! यह कोई वैष्णव देख पडता है। यह क्या कह रहा है जरा सुना जाय। (दोनो सुनते है)

महत—अहा महत का जीवन क्या ही उत्तम है?

सार

सुन्दर सदन-निवास, वणिक-रमणी गण मन अनुकूला।
इच्छित समय इष्ट भोजन, शय्या, सुमज्ज सुख-मूला।
श्रद्धा से जिनमे करती तरुणी उपासना हरी।
कटे चाँदनी चारु दिशाएँ मदन मोद से पूरी॥९॥

× × × ×

अनुवाद का अन्त अक ६

(पृ० ११७)

पुरुष—देवी विष्णु-भक्ति के प्रसाद से भला कौन सा पदार्थ दुर्लभ है?
(चरणो पर गिरता है)

विष्णुभक्ति—(पुरुष को उठाती है) वत्स! उठो। मैं कौन सा अपर प्रिय पुरस्कार तुमको दूं?

पुरुष—क्या कोई इससे भी प्रिय पदार्थ है?

क्योंकि—

दोहा

अरि को जीत विवेक अब, अति कृतकृत्य सुधन्य।
नीरज नित्यानन्द मे, मैं भी मग्न अनन्य।।३२।।

तथापि ऐसा हो—

(भरतवाक्य)—

घनश्याम

सुमेघ अभीष्ट वृष्टि करें जग मे नित ही!
विहीन अरिष्ट भूप करी परिपाल मही।
स्व ज्ञान प्रकाश नष्ट अज्ञान महान चरे!
कृपा तव मोह-पंक-भरा भव सिन्धु तरे।।

(सब जाते हैं)

इति

अनुक्रमणिका

हिन्दी ग्रन्थ सूची

सहायक ग्रन्थों की सूची

संस्कृत

१ 'अमरकोश'—अमरसिंह (सन् १९५२) मुद्रक एवं प्रकाशक खेमराज श्रीकृष्ण दास, अध्यक्ष, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

२ 'उपमितिभवप्रपचकथा'—श्री सिद्धर्षि, एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, न्यू सीरीज नं० १०८९, (सन् १९०४) प्राप्ति स्थान—आगरा कालेज पुस्तकालय, आगरा पुस्तक नम्बर-९४ ९।३२)

३ 'चैतन्य चन्द्रोदयम्'—कवि कर्णपूर, द्वितीय संस्करण, सन् १९१७, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई। प्राप्ति स्थान—इन्द्रप्रस्थ वैदिक पुस्तकालय, दिल्ली पु० नं० २७७

४ 'छान्दोग्योपनिषद' (हिन्दी), तृतीय संस्करण सन् १९१३, नवल-किशोर प्रेस, लखनऊ। प्राप्ति स्थान हिन्दी विद्यापीठ आगरा विश्व-विद्यालय आगरा-पु० नं० १९४९।

५ 'ज्ञानसूर्योदय' (अनुवाद)—श्रीवादिचन्द्र सूरि (नाथूराम प्रेमी), प्रथमा-वृत्ति, सं० २४३५, जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई प्राप्ति स्थान —जैन साहित्यसदन, चाँदनी चोक देहली-पु० नं० १५१०।

६ 'जीवानन्दनम्'—आनन्दरायमखी सम्पादक एम० दुरैस्वामी आयगर प्राप्ति स्थान—आगरा विश्वविद्यालय पुस्तकालय, आगरा (पु० नं० ८२ अ ११ ज (स)।

७ 'दशरूपक'—(धनिक-धनंजय) डा० भोलाशंकर व्यास, सं० २०११, चौखम्बा विद्या भवन, बनारस, प्राप्ति स्थान—हिन्दीविद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय आगरा-पु० नं० ४००.

८. 'धर्मविजयनाटकम्'—भूदेव शुक्ल, प्रथम संस्करण, १९३०, विद्या विलास प्रेस, बनारस सिटी, प्राप्ति स्थान—चिरंजीव पुस्तकालय पु० नं० ७००१,LI.

९ 'नाट्य शास्त्र' (अभिनव भारती सहित)—भरत-अभिनव गुप्त, भाग १-३, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज नम्बर—१. XXXVI पु० नं० २३९५

२ LXVIII पु० न० २३९६ ३. CXXIV पु० न० २३९७।
प्राप्ति स्थान--हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।

१० 'प्रबोधचन्द्रोदयम्'–कृष्णमिश्र, टीकाकार प० रामचन्द्र मिश्र, स० २०१२, चोखम्बा विद्या भवन, बनारस।

११ 'पुरजन चरितम्'–कृष्णदत्त मैथिल, प्रथम सस्करण, सन् १९५५ ई० म० कु० नीरुम सोलकी, चैटर बुक स्टाल, आनन्द, (डब्लू० आर०) भारत प्राप्ति स्थान आगरा विश्वविद्यालय, आगरा—

१२ प्रबोधचन्द्रोदयम्–(श्री गोविन्दामृत भगवत्कृतया नाटका भरणाख्य-व्याख्या) कृष्णमिश्र त्रिवेन्द्रम सस्कृत सीरीज न० १२२, राजकीय मुद्रण यन्त्रालय से प्रकाशित, सन् १९३६।

१३ प्रबोधचन्द्रोदयम्–(चन्द्रिका व्याख्या, प्रकाश व्याख्याख्याभ्या) कृष्णमिश्र निर्णय सागर प्रेस, बम्बई। षष्ठावृत्ति सन् १९३५

१४ 'मिथ्याज्ञान विडम्बनम्'–रविदास, सन् १८९४ ई०, हरिश्चन्द्र, कविरत्न द्वारा विद्यारत्न य० कलकत्ता मे मुद्रित।

१५ 'मोहराज पराजयम्'–यशपाल, प्रथम सस्करण सन् १९१८, सम्पादक मतिचतुर विजय जी, सेन्ट्रल लाइब्रेरी, बडौदा, प्राप्ति स्थान चिरजीव पुस्तकालय, आगरा पु० न० ६७९३, L१।

१६ 'सकल्प सूर्योदयनाटकम्'–वेकटनाथ (दस अक) श्रीमद् वेदान्तदेशिक ग्रथमाला, ग्रन्थमाला आफिस कार्जीवरम्, सन् १९४१ ई०, प्राप्ति स्थान—प० श्रीकान्त पाण्डेय जिला बस्ती।

१७ 'साहित्य दर्पण'–विश्वनाथ कविराज, दूसरा सस्करण, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी (बनारस)।

१८ 'श्रीमद्भागवत'–वेद व्यास, द्वितीय सस्करण, सम्वत् २००८, गीताप्रेस, गोरखपुर, प्राप्ति स्थान—हिन्दी विद्यापीठ पुस्तकालय, आगरा पु० न० ३४३।

हिन्दी ग्रन्थ

१ 'अत्याचार का अन्त'–श्री वशिष्ठ सन् १९२२, प्रथम प्रकाशन।

२ 'अधर्म का अन्त'–श्री मोहनलाल गुप्त, सन् १९२९।

३ 'अनोखा बलिदान'–उमाशकर, प्रथम सस्करण। संवत् १९८५, हरिशकर मरमडल, अजमेर (प्राप्ति स्थान—चिरजीव पुस्तकालय आगरा—पु० न० ४९७५।LI)

४ 'अपभ्रंश साहित्य'–हरिवंश कोछड, हिन्दी अनुसन्धान परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय, भारतीय साहित्य मंदिर, फव्वारा, दिल्ली, हिन्दी विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय आगरा—पु० न० ८१-१२ उ० २२ अ.

५ 'अभिनव नाट्य शास्त्र,–श्री सीताराम चतुर्वेदी प्रथम खण्ड, प्रथम संस्करण सन् २००८ वि०, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, प्राप्ति स्थान—हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय आगरा—पु० न० ६०० ।

६ 'अर्द्ध कथानक' की भूमिका–नाथूराम प्रेमी, प्रथम संस्करण, १९४३ हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई।

७ 'आजकल'–श्री ताराप्रसाद वर्मा, प्रथम संस्करण, सन् १९३९ ई० तरुण हाउस, काशी। प्राप्ति स्थान—नागरी प्रचारिणीसभा, आगरा, पुस्तकालय, पु० न० ४८२३।

८ ''आधुनिक हिन्दी साहित्य''–डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, द्वितीय संस्करण, सन् १९४८ ई० हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी ।

९ 'आधुनिक हिन्दी नाटक'–डा० नगेन्द्र, पंचम संस्करण, संवत् २०११, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा।

१० 'कर्मवीर'–प० रेवतीनन्दन भूषण, प्रथम संस्करण स० १९८२, प्रकाशक श्री श्याम साहित्य मंदिर, ३९, माटलेन, कलकत्ता। (चिरंजीव पुस्तकालय आगरा पु० न० ५५७८L।

११ 'कगालचक्र'–श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय, प्रथम संस्करण स० १९९०, भार्गवी भवन, बनाज, पो० बछरावा, जि० राय बरेली।

१२ 'कलियुगागमन'–प० रामेश्वरदत्त, तृतीय संस्करण, फरवरी १९२२ ई०, उपन्यास बहार आफिस, काशी।

१३ 'कामना'–श्री जयशंकर प्रसाद, पंचम संस्करण। स० २०१३, भारती भंडार लीडर प्रेस, प्रयाग।

१४ 'कृष्ण काव्य मे भ्रमर गीत'–डा० श्यामसुन्दरलाल दीक्षित, प्रथम संस्करण सन् १९५८, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

१५ 'चन्देल और उनका राजत्व काल'–श्री केशवचन्द्र मिश्र, प्रथम संस्करण स० २०११ नागरी प्रचा० सभा, काशी, प्राप्ति स्थान—हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा पु० न० ४१५५।

१६. 'छलना'–भगवतीप्रसाद बाजपेयी, सन् १९३९, माडर्न प्रेस, नमकमण्डी, आगरा।

१७. 'छात्र दुर्दशा'—पाण्डेय लोचन शर्मा, प्रथम सस्करण। सन् १९१५, हरिदास वैद्य नरसिंह प्रेस, कलकत्ता।

१८. 'डिक्टेटर'—बेचन शर्मा 'उग्र', सन् १९३७, प्रकाशक हरिशंकर शर्मा, कलकत्ता, प्राप्ति स्थान—मारवाडी पुस्तकालय, दिल्ली पु० न० २२०१०।

१९ 'ज्ञान गुण दर्पण'—श्री शकरानन्द स्वामी, सन् १९१९, लाला हरिप्रसाद केसवा, जिला अलीगढ। प्राप्ति स्थान—चिरजीव पुस्तकालय।

२०. 'जनक-नन्दिनी'—प० तुलसीदत्त शर्मा, प्रथम सस्करण स० १९८२, श्री व्यास साहित्य मन्दिर, कलकत्ता, प्राप्ति स्थान चिरजीव पुस्तकालय, आगरा पु० न० ५५७६ L'

२१ 'जायसी ग्रन्थावली की भूमिका'—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।

२२ 'न घर का न घाट का'—जी० पी० श्रीवास्तव, छठा स० १९५१, हिन्दी पुस्तक एजेंसी, ज्ञानवापी, बनारस,। प्राप्ति स्थान नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय आगरा पु० न० ६५४५।

२३ 'प्रबोधद्युमण्युदय'—उमादयाल मिश्र, द्वितीय सस्करण अक्टूबर सन् १९०५ ई० मुशी नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।

२४ 'प्रबोधचन्द्रोदय'—हिन्दी अनुवाद,—मल्हकवि, श्री कासलीवाल जयपुर से हस्तलिखित प्रति प्राप्त।

२५ 'प्रबोधचन्द्रोदय' (हि० अनु०)—जसवन्तसिंह, हस्त० प्रति०, पुस्तक प्रकाश पुस्तकालय, जोधपुर से टाइप्ड प्रति प्राप्त।

२६ 'प्रबोधचन्द्रोदय' (हि० अनु०)—ब्रजवासीदास, स० १९५९ ज्ञानभास्कर प्रेस, बाराबकी, प्राप्ति स्थान—चिरजीव पुस्तकालय आगरा—पु० न० ८०१० L ३

२७ ,, —गुलाबसिंह, प्र० स० १९६२, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई। श्री मोहन बल्लभ पन्त बल्लभनगर गुजरात के सौजन्य से प्राप्त,

२८ 'प्रबोधचन्द्रोदय' (हि० अनु०)—नानकदास, ह० प्रति, नागरी प्र० सभा काशी।

२९ ,, —घोकलमिश्र, ,, ,,

३० ,, —अयोध्याप्रसाद चौधरी ,, ,,

३१ ,, —भुवदेव दुबे, प्रथम स० सन् १८९४ मुशी नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित।

३२. ,, –कार्ष्णि गोपालदास, प्र० स०, सन् १९१०, लक्ष्मीनारायण यन्त्रालय, मुरादाबाद, प्राप्ति स्थान––चिरजीव पुस्तकालय आगरा (पु० न०-३७१ L३)

३३ ,, –महेशचन्द्र प्रसाद, प्र० स० सन् १९३५, देवाश्रम, आरा।

३४ ,, –विजयानन्द त्रिपाठी, ह० प्रति, ना० प्र० सभा, काशी।

३५ 'पत्र पत्रिका सम्मेलन'–जी० पी० श्रीवास्तव 'दुमदार आदमी' एकाकी सग्रह, हिन्दी पुस्तक एजेंसी, ज्ञानवापी, बनारस।

३६ 'पूर्व भारतेन्दु नाटकों का परिचय'–डा० सोमनाथ गुप्त, प्रथम स० सन् १९५८, हिन्दी भवन जालधर और इलाहाबाद।

३७ 'पेप्सू प्रदेश मे हिन्दी की प्रगति'–सम्पा० सत्यपाल गुप्त, प्रथम सस्करण १९५६, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पटियाला।

३८ 'बगला साहित्य की कथा'–प० भोलानाथ शर्मा, तृतीय स०, स० २००६, प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

३९ 'बुद्धदेव'–श्री विश्वम्भर सहाय, प्रथम स०, भारती भण्डार, विक्रेता लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्राप्ति स्थान––चिरजीव पुस्तकालय, आगरा १०२५१ L १।

४० 'बृहद् हिन्दी कोश'–श्री कालिक प्रसाद।

४१ 'भारत दुर्दशा'–भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, द्वितीय स० सन् १९५६, विनोद पुस्तक मदिर, आगरा।

४२ 'भारत ललना'–खग बहादुर मल्ल, द्वितीय स०, सन् १९०६, खग विलास प्रेस, बाकीपुर, प्राप्ति स्थान––नागरी प्र० सभा पुस्तकालय, आगरा पु० न० ६०–९८९।

४३. 'भारतराज'–लक्ष्मीकान्त, प्रथम स०, सन् १९४९, यगमैन एण्ड को० दिल्ली।

४४ 'भारतवर्ष'–श्री दुर्गाप्रसाद गुप्त, प्रथम स०, उपन्यास बहार आफिस, काशी

४५ 'भारतीय दर्शन'–श्री बलदेव उपाध्याय, पचम सस्करण, १९५७ ई० शारदा मदिर, वाराणसी।

४६ 'भारतीय दर्शन'–डा० उमेश मिश्र, प्रथम सं०, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ।

४७ 'भारतीय दर्शन' (हि० स०)–दत्त और चटर्जी, द्वितीय स०, सन् १९५८, पुस्तक भण्डार, पटना-४।

४८ 'भारतेन्दु नाटकावली'–भारतेन्दु, प्रथम भाग व द्वितीय भाग, सम्पादक—ब्रजरत्नदास, प्राप्ति स्थान—आगरा विश्वविद्यालय पुस्तकालय, आगरा पु० न० ८२ ११–ह० ४५ न

४९ 'भारतेन्दु कालीन नाटक साहित्य'–डा० गोपीनाथ तिवारी, प्रथम संस्करण, १९५९, हिन्दी भवन, जालन्धर और इलाहाबाद।

५० 'भारतोदय'–प० रामगोपाल मिश्र, स० १९८७ वि०, श्री गोपालराम, जासूस आफिस, गहमर, प्राप्ति स्थान—चिरजीव पुस्तकालय, आगरा, पु० न० ६२५४ LI

५१ 'मायावी'–ज्ञानदत्त सिद्ध, प्रथम स० सन् १९२२ ई०, श्रीसिद्ध हिन्दी प्रचारक कार्यालय, जयपुर सिटी।

५२ 'मारवाडी घी'–एक जातीय हितैषी, प्रथम स० स० १९७४, प० चन्नी-लाल शर्मा, कलकत्ता, प्राप्ति स्थान—चिरजीव पुस्तकालय, आगरा पु० न० ३९३८। L२

५३ 'मुद्रिका'–श्री सद्गुरु शरण अवस्थी प्रथम स० सन १९३९, छात्र हितकारी पुस्तक माला, दारागंज, प्रयाग।

५४ 'मोह विवेक सम्वाद'–जनगोपाल दास, हस्त० प्रति, महावीर भवन, मानसिंह हाई वे, जयपुर, लिपिकर्त्ता सुगनचन्द जैन।

५५ 'मोह विवेक युद्ध'–बनारसीदास, प्रथम स०, वीर निर्वाण स० २४८१, प्रकाशक—वीर पुस्तक भण्डार, मनिहारों का रास्ता, जयपुर।

५६ 'मोह विवेक युद्ध'–लालदास, हस्त० प्रति, श्री अगरचन्द नाहटा जी बीकानेर से प्राप्त।

५७ 'राष्ट्र भाषा कोश'–प० ब्रजकिशोर मिश्र, प्राप्ति स्थान—हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।

५८ 'लकड़बग्घा'–जी० पी० श्रीवास्तव, १९५७ ई०, प्रका० रघुनाथप्रसाद, भारतीय प्रकाशन मण्डल, नन्दनसाहलेन, वाराणसी।

५९ 'लीला विज्ञान विनोद'–केशवानन्द स्वामी, प्रथम स०, स० १९६९, लक्ष्मी नारायण यन्त्रालय, मुरादाबाद, प्राप्ति स्थान—चिरजीव पुस्तकालय आगरा पु० न० ३६६, L ३.

६० 'लोक परलोक'–जी० पी० श्रीवास्तव, प्रथम सं० सन् १९५०, कर्मयोगी

प्रेस लि०, प्रयाग, प्राप्ति स्थान—नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय आगरा पु० न० ८२८२।

६१. 'विज्ञान नाटक'–शकरानन्द स्वामी, चतुर्थ सस्करण स० १९६८, लक्ष्मीनारायण यत्रालय, मुरादाबाद, प्राप्ति स्थान—चिरजीव पुस्तकालय आगरा पु० न० ३६९ L ३।

६२. 'विज्ञान विजय नाटक'–शकरानन्द स्वामी, प्रथमबार, स० १९७२ लक्ष्मीनारायण यत्रालय, मुरादाबाद, प्राप्ति स्थान—चिरजीव पुस्तकालय आगरा पु० न० ३६८। L ३

६३ 'विज्ञान गीता'–केशवदास, स० १९५१ वि० प्रका० खेमराज श्रीकृष्णदास वेकटेश्वर छापाखाना, बम्बई, प्राप्ति स्थान—चिरजीव पु० आगरा, पु० न० ३६७। L ३

६४. 'सत्य का सैनिक'–श्री नारायण प्रसाद बिन्दु, प्रथम स०, सन् १९४८, केशवदेव पोद्दार, श्रीहरविन्द मर्किल, बम्बई।

६५ ''सन्तोष कहा?'–सेठ गोविन्ददास, प्रथम स० स० २००२, कल्याण साहित्य मन्दिर, प्रयाग।

६६ ''सत्य विजय'–कवि गोकुलप्रसाद, द्वितीय स० प्रका० उपन्यास बहार आफिस, काशी।

६७. 'सती चरित्र'–श्री हनुमन्तसिह रघुवशी, राजपूत ऐग्लो ओरियण्टल प्रेस, आगरा, प्राप्ति स्थान—नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा पु० न० ४०५।

६८ 'सच की खोज'–प० विद्या प्रसाद जी शुक्ल, सन् १९४६, हिन्दी प्रेस, आगरा, प्राप्ति स्थान—नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय, आगरा पु० न० ८६३५।

६९ 'सच्चा भूत'–प० दशरथ ओझा, सन् १९४६, इडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद। प्राप्ति स्थान–नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय, आगरा पु० न० ८६३४।

७० 'स्वर्ण दश का उद्धार'–श्री इन्द्र विद्या वाचस्पति, प्रथम स०, सन् १९२१ गुरुकुल यत्रालय कागडी प्राप्ति स्थान—चिरजीव पुस्तकालय, आगरा, पु० न० ३४६९ L १ !

७१. 'स्वार्थी ससार'–श्री शिवरामदास, प्रथम सस्करण, उपन्यास बहार आफिस, प्राप्ति स्थान। चिरजीव पुस्तकालय, आगरा पु० न० १०४८२

७२. L१.। 'साहित्या लोचन'–डा० श्यामसुन्दरदास, नवा सस्करण, इडियन प्रेस लि०, प्रयाग।

७३. "सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रंथ'—सम्पा० डा० नगेन्द्र, प्रथम संस्करण, सेठ गोविन्ददास हीरक जयन्ती समारोह समिति, नई दिल्ली।

७४. 'संस्कृत साहित्य का इतिहास'—बलदेव उपाध्याय, चतुर्थ सं० शारदा मंदिर, काशी। प्राप्ति स्थान—हिन्दी विद्यापीठ, आगरा वि० वि० आगरा पु० नं० ८७८

७५ 'संस्कृत की रूपरेखा'—श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय, सन् १९५४, चतुर्थ सं०, साहित्य निकेतन, कानपुर।

७६ 'संस्कृत कवि दर्शन'—डा० भोलाशंकर व्यास, द्वितीय सं०, चौखम्बा वाराणसी। प्राप्ति स्थान—हिन्दी विद्यापीठ, आगरा वि० वि० आगरा।

७७. 'सत्तर्प'—श्री छगनलाल जैन, प्रथम सं०, सं० २००६, वनवाणी प्रकाशन कलकत्ता-७ प्राप्ति स्थान—नागरी प्र० सं० पुस्तकालय आगरा पु० नं० ९३७३

७८ 'श्री निम्बार्कावतरण'—दानविहारी लाल शर्मा, प्रथम सं०, सं० १९८९, प्रकाशक—वैष्णव श्री रामचन्द्रदास, वृन्दावन, प्राप्ति स्थान—चिरंजीव पुस्तकालय आगरा पु० नं० ११३४L

७९ 'हिन्दी विश्व कोश'—श्री नगेन्द्र नाथ वसु, प्रथम सं०, सन् १९२२, विश्वकोश प्रेस, कलकत्ता, हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय आगरा।

८० 'हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास'—डा० दशरथ ओझा, द्वितीय सं०, सं० २०१३।

८१ 'हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास'—डा० सोमनाथ गुप्त, तीसरा सं०, सन् १९५१, हिन्दी भवन जालंधर और इलाहाबाद।

८२ हिन्दी साहित्य कोष, डा० धीरेन्द्र वर्मा, प्रथम सं०, सं० २०१५, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी।

८३ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल संशोधित संस्करण, सं० २००२, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

८४ 'हिन्दी नाट्य साहित्य'—बाबू ब्रजरत्नदास, द्वितीय सं० २००१, हिन्दी साहित्य कुटीर बनारस, प्राप्ति स्थान—आगरा विश्वविद्यालय पुस्तकालय आगरा, पु० नं० ८२.१—ब ८१ ह।

८५ 'हिन्दू'—जमुनादास मेहरा, प्रथम सं०, सं० १९७९, एस० आर० बेरी २०१ हरिसन रोड, कलकत्ता।

पत्रिकायें

१. ''अनेकान्त'–अप्रैल १९५७, वीर सेवा मण्डल, देहली।
२ 'वीरवाणी'–३ मई १९५८ ई० जयपुर।
३. 'रसवन्ती में' से डा० अगरचन्द नाहटा से प्राप्ति लेख।

English Books :—

1. Advanced History of India, R. C Majumdar, Reprinted 1953 Delhi University Library—Book No. TV. v2·1 N5 J 3.
2 A History of Sanskrit Literature, Arthur A. Macdonell, Fifth Edition 1958, Munshiram Manoharlal, Nai Sarak Delhi, Hindi Vidyapeeth, Agra University Agra Book No. 5838.
3. Epigraphia Indica, Vol. I, II.
4 Indian Antiquary Vol. XVIII.
5 Memoirs of the Archaeological Survey of India, R. D. Banerji, Government of India Central Publication Branch, Calcutta 1931.
6 Prabodhchandrodaya Thesis for London University Dr. Jai Dev.
7. Prabodhchandrodaya, J Taylor, Central Library Bombay.
8. Sanskrit English Dictionary, Sir M. Monier Williams, New Edition, Hindi Vidyapeeth, Agra University Agra. Book No. 37719.
9. The Sanskrit Drama, A. Berriedale Keith, Edition 1958, Oxford University Press, Hindi Vidyapeeth, Agra University Agra. Book No. 668.
10. The Dynastic History of Nothern India, H. C. Ray, Volume II Edition 1936, University Press Calcutta, Agra University Library, Agra. Book No. 934.071 R. 21. D (2/0).
11. The History of Sanskrit Literature, Keith, Edition 1953,

Oxford University Press, London. Agra University Agra. Book No. 40.09 K. 28. H

(S/O).

12. The Struggle for Empire, R. C. Majumdar, Volume II & V. Hindi Vidyapeeth, Agra University, Agra.

13. The Oxford History of India, The Late Vincent A Smith C. I. E. Third Edition 1958. Delhi University Library— Book No. V2 1·N5 TV

J8 1.

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ		पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४		१७	ृष्ठो	पृष्ठो
३५	टिप्पणी	४	यन्मनुष्यान्मेनीयते	यन्मनुष्यान्नीयते
४०		१०	दृष्टाभिसन्धि	दुष्टाभिसन्धि
४५	टिप्पणी	१४	पकाति (अत)	प्रकाशित) । अत
५६	टिप्पणी	९	ragularly	regularly
६५	टिप्पणी	३	मकप	सकल्प
७९	टिप्पणी	२	विधिघोपप्लवा	विविघोपप्लवा.
८२	टिप्पणी	४	परिभषा	परिभाषा
८२	टिप्पणी	४	साहित्य दर्पण	'साहित्य-दर्पण'
९८		१३	मता	मतो
९४	टिप्पणी	५	Characteristiece	Characteristics
९४	टिप्पणी	५	Nordictype	Nordic type
९४	टिप्पणी	९	Gatenty	Gatenly
९५		३	प्रथम	प्ररूप
१०२		१९	घूम्न	घुएँ
१०२		२३	विवेक के	विवेक को
११६		२	कथा	तथा
११६		३	पर आत्मा	मे आत्मा
११७		९	स्वगत कथनो की	स्वगत कथनो को
१२२	टिप्पणी	१	अक	अक
१२२	टिप्पणी	३	सदप्र	सदय
१२२	टिप्पणी	३	हृदप	हृदय
१२६	टिप्पणी	८	निर्विद	निर्वेद
१३३		५	घटना	घटना
१३३		१५	व्यर्य	व्यर्थ
१३५	टिप्पणी	३	Sameperiod	same period

पृष्ठ		पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३५	टिप्पणी	३	agreat	a great
१३५	टिप्पणी	८	evervating	everlasting
१५३	टिप्पणी	२	सागण	सगुण
१६६		८	आरोपकर	आरोप कर
१७२		१४	क्रुरने	करने
१७२		१६	वपितु	अपितु
१७५	टिप्पणी	१	मण	भण
१८१	टिप्पणी	२	सुहृद्वन्धिवा	सुहृद्बान्धवा
१८१	टिप्पणी	१	द्विवैव	द्विधैव
१८६		११	हीने	होने
१९६	टिप्पणी	३	in to	into
१९७		११	ृष्टि	दृष्टि
२०१		२२	सयता	सम्यता
२०६		७	घारणा	धारणा
२०८		१५	मल	मूल
२१८		३	न्थ	ग्रन्थ
२१९		२	द्कितीय	द्वितीय
,,		२८	बौद्धाभगम	बौद्धागम
,,		३१	अक	अरु
२२२		८	दौहे	दोहे
२४४		४	ारे	द्वारे
२४७			पृष्ठ सम्ख्या ७४२	२४७
,,		२३	भृगननी	मृगनैनी
,,		,,	कोकिल नैनी	कोकिल बैनी
२६६		१८	ृष्ठ	पृष्ठ
२७४		१३	ेव	देव
२७९		३	ुद्ध	युद्ध
,,		२४		द्वै
२८२		७	प्रबोधद्युमण्ुदय	'प्रबोधद्युमण्युदय'
,,		१७	ह्म	ब्रह्म
२८५		३१	यग	युग

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८८	२	ुग	युग
२९०	९	घनदास	धनदास
२९७	३	सपाही	सिपाही
३०४	१	दुखि ो	दुखियो
३१०	३	वीं	वीर्य
३१४	३०	माघरी	माधुरी
३२२	१८	ृतीय	तृतीय
३७१	७	११ पाखण्ड बडम्बना	११ पाखण्ड बिडम्बना
३७२	१	घर्म सस्कृत	धर्म संस्कृति
३८१	९	कायार	कायर
३८४	१७	धीरजमूरयतावान	धीरजमूरतवान
३८७	२२	हतिमिर	तिमिर
४१७	११	भपती	भूपति
४३४	१	Archacological	Aichaeological
४३४	४२	Lernors	Learners
४३४	५०	oxford	Oxford